देवतात्मा हिमालय

प्रबोधकुमार सान्याल

*

भूमिका

पं० जवाहरलाल नेहरू

भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन

लोकोदय ग्रन्थमाला :
सम्पादक एवं नियामक
लक्ष्मीचन्द्र जैन

ंक : ३२१
ग : दिसम्बर १९७१

देवतात्मा हिमालय

(यात्रा-विवरण)

प्रबोधकुमार सान्याल

हिन्दी अनुवाद : छेदीलाल गुप्त

प्रकाशक
भारतीय ज्ञानपीठ
३६२०/२१, नेताजी सुभाष मार्ग, दिल्ली-६
मुद्रक
सम्मति मुद्रणालय
दुर्गाकुण्ड मार्ग, वाराणसी-५

• • • •

DEVATATMA HIMALAYA

(Travelogue)

Prabodh Kumar Sanyal

Translated in Hindi by : Chhedi Lal Gupta

Published by : BHARATIYA JNANPITH
3620/21, Netajee Subhash Marg, Delhi-6
(Phone : 272582. *Gram* : 'JNANPITH', Delhi)

Price
Rs. 20.00

मूल्य : बीस रुपये

समर्पित

स्वर्गवासिनी जननी

विश्वेश्वरी देवी

की

स्मृति

को

FOREWORD

September 18, 1955

NEW DELHI

This book is in Bengali, and I am very sorry to say that I do not read Bengali. I have always regretted my ignorance of this great language of India. I have, therefore, not been able to read this book, but I have seen summaries of it which have interested me greatly.

I like mountains wherever they might be. But the Himalayas have exercised a peculiar fascination on me. Almost everything connected with them attracts me. They are not only physically present in India, dominating the vast Indian plain, but, for every Indian, they convey a deeper message. They have been entwined in the life of our race from the dawn of history and have not only affected our politics but have been an intimate part of the art and literature, mythology and religion of our people. I suppose nowhere else in the world have any mountains or mountain ranges played such an important part in the development of a race as the Himalayas have done in India for thousands of years past.

So, I welcome writings about these great and ancient friends and protectors of ours. More particularly, I welcome the approach of anyone who feels intimate and friendly with them and not that of a mere geographer. There is beauty there and poetry and both fierceness and calm of spirit. It is only those who can put themselves in tune with these varying moods that can appreciate the Himalayas. The author of this book, Shri Probodh Kumar Sanyal, has evidently been very much in tune with these great friends and companions of ours. I envy him his many journeys.

Others, who read this book, may be helped by it to gain some insight into this charm and realise somewhat the fascination they have exercised through the ages for innumerable generations of the people of our country.

—*Jawaharlal Nehru*

भूमिका

यह पुस्तक बाँग्ला में लिखी है, और मैं बहुत खेद के साथ यह कहता हूँ कि मैं बाँग्ला पढ़ नहीं सकता। भारत की इस गरीयसी भाषा से अनभिज्ञ हूँ, इस के लिए हमेशा दुखी रहूँगा। मूल पुस्तक मैं पढ़ नहीं पाया, मगर भाषान्तर के द्वारा बहुत से संक्षिप्त अंश मैं पढ़ चुका हूँ, उस से मैं विशेष रूप से आकृष्ट हुआ हूँ।

पहाड़-पर्वत, जहाँ भी हैं, हमें प्रिय हैं। परन्तु हिमालय ने मुझ में एक अद्भुत चाव-विस्तार किया है, उस से जो कुछ भी संलग्न है वही मेरे अन्तर को छूता है। ये पहाड़ पर्वत भारत के विस्तीर्ण भू-भाग की चोटी पर नगाधिराज के रूप में विराजमान हैं; मात्र इतना ही नहीं, प्रत्येक भारतवासी के अन्तर मन तक वे अपना गहन सन्देश पहुँचाते हैं। इतिहास के उषाकाल से ही हिमालय हमारे जातीय जीवन के साथ जुड़ा हुआ है और सिर्फ़ हमारी राष्ट्रनीति को ही वह प्रभावित करता रहा है; यही नहीं, हमारी शिल्पकला, हमारे साहित्य, हमारे पुराण और धर्म के साथ भी यह पर्वतश्रेणी घनिष्ठरूप से जुड़ी है। सुदूर अतीत से हज़ारों-हज़ार वर्षों से हमारे जातीय जीवन के विकास में भी हिमालय ने जो हिस्सा लिया है, मुझे लगता है, पृथ्वी पर और कहीं अन्य पहाड़ या गिरिश्रेणियाँ वह करने में सक्षम नहीं हुईं।

इस लिए इस अतिप्राचीन और अतिमहान् मित्र और रक्षक के विषय में लिखी सभी रचनाओं का मैं आदर करता हूँ और खासकर उन का स्वागत करता हूँ, जिन रचनाकारों ने सिर्फ़ एक भौगोलिक दृष्टि से ही हिमालय को नहीं देखा बल्कि जिन्होंने मित्रवत् उसे छाती से लगाया। एक ओर तो उस का सौन्दर्य और काव्य है, दूसरी तरफ़ जैसा है डर-डरावना, उसी प्रकार है भाव-गहनता। हिमालय के इसी भिन्न-भिन्न भाव-बोध के संग जो अपने-अपने स्वर मिला सकते हैं, वे ही हिमालय का रस ले सकते हैं। इस ग्रन्थ के लेखक श्री प्रबोधकुमार सान्याल ने हमारे इस महान् मित्र और संगी के साथ अपने अन्तर का स्वर गहराई से मिलाया है—यह उन की लेखनी से साफ़ समझ में आता है।

और कोई जो इस पुस्तक को पढ़ेंगे, उन की अन्तर्दृष्टि में इस पुस्तक के द्वारा हिमालय की आकर्षण शक्ति का रहस्य, कुछ परिमाण में, उद्घाटित होगा; एवं युग-युगान्तर से, वंश-परम्परागत हिमालय की गिरिशृंखला हमारे देशवासियों के मन में जो मोहनी-माया विस्तार करती आयी है, उस को, कुछ अंशों में, वे उपलब्धि कर पायेंगे।

—जवाहरलाल नेहरू

१८ सितम्बर, १९५५
नयी दिल्ली

पूर्व भाषण

'देवतात्मा हिमालय' के प्रथम खण्ड के नये संस्करण में तीन परिच्छेद जोड़े गये हैं—पार्वत्य असम, बौद्ध सिक्किम और दार्जिलिंग। इन के 'देश' पत्रिका में छपने पर भी कुछ कारणों से दोनों खण्डों में से एक में भी पहले नहीं जा सका। यह कहना ही काफ़ी है कि इस सुयोग से सम्पूर्ण पुस्तक का आद्यन्त सुधार हुआ। जिन्होंने पहाड़-पर्वतों में भ्रमण किया है वे ही जानते हैं एक-एक अंचल की दूरियों-ऊँचाइयों के ब्योरे इकट्ठे करना हर वक़्त सम्भव नहीं होता। इसी कारण अपनी जानी हुई जगहों के सम्बन्ध में भी मुझे यहाँ-वहाँ बीच-बीच में खोजबीन करनी पड़ी है। विशेषकर भारत-प्रसिद्ध हिमालय-विशेषज्ञ आन्ध्र निवासी संन्यासी रेवेरेण्ड स्वामी प्रणवानन्द जी से मुझे कुछ-कुछ सहायता मिली है। इस अवसर पर उन के प्रति अपना आन्तरिक धन्यवाद ज्ञापन करता हूँ। अन्य विषयों के बारे में इस के आगे के 'पूर्व भाषण' में जो कुछ कहा है, उसे भी इस बार कुछ सुधार कर ज्यों का त्यों यहाँ दे रहा हूँ।

वैशाख २५, १३६४ —लेखक

कोई दो वर्ष पहले कशमीर से लौट रहा था। स्वर्गीय सुरेशचन्द्र मजुमदार महोदय तब दिल्ली में थे। उन्होंने अपने दफ़्तर में मेरा तिरस्कार किया—हिमालय भ्रमण की कथा मैं आज भी क्यों लिख नहीं रहा हूँ, बिना लिखे निस्तार नहीं है। मगर इस के भी बहुत पहले से 'देश'-सम्पादक बन्धुवर सागरमय घोष ने 'देवातात्मा हिमालय' के लिए मेरे पास बार-बार पत्र लिखा और आवश्यकतानुसार फ़ोटो भी भेज दिये। इस तरह टालमटोल में तीन वर्ष कट गये। गत वर्ष 'देवतात्मा हिमालय' का प्रथम खण्ड 'देश' में छपा। दुःख हुआ कि बाँग्ला के लेखक और पत्रकारों के परम आत्मीय सुरेश बाबू के हाथों में इस पुस्तक को दे नहीं पाया। उन्हीं परलोकवासी शुभैषी के प्रति मैं सकरुण श्रद्धा निवेदित करता हूँ।

इस पुस्तक को खातिर भारत के प्रधान मन्त्री हिमालय-स्नेही श्री जवाहरलाल नेहरू महोदय ने भूमिका लिखी है, उन के प्रति मैं आन्तरिक कृतज्ञ हूँ। प्रधान मन्त्री के पद-ग्रहण के बाद भारत की किसी भाषा की किसी भी पुस्तक के सम्बन्ध में आज तक

उन्होंने अपना अभिमत प्रकट नहीं किया। किन्तु हिमालय से उन के स्वाभाविक गहरे अनुराग की बात मेरी जानी हुई थी। इस लिए कई एक महीने आगे उन से भूमिका लिख देने के लिए दिल्ली में उन के निवास में उपस्थित हो कर अनुरोध किया था। कुछ समय बाद उन्होंने बताया, हिमालय सदा से उन्हें आश्चर्यचकित करता आया है। मैं जो हिमालय-सम्बन्धी पुस्तक लिख रहा हूँ, वे इस से अतिशय आनन्दित हैं। ऐसी पुस्तक के सम्बन्ध में कुछ लिख पाने से वे बहुत खुश होते मगर बांग्ला न जानना ही उन के लिए असुविधाजनक है। तत्पश्चात् 'देवतात्मा हिमालय' का अंगरेज़ी में अनुवाद कर उन्हें भेजा गया। यह खबर पश्चिम बंगाल के मुख्य मन्त्री डॉ० विधानचन्द्र राय के कानों में पड़ी। उन्होंने सोत्साह श्री नेहरू से पत्राचार किया और काम के सिलसिले में दिल्ली में रहते समय प्रधान मन्त्री के निवास जा कर भी इस विषय में बातें कीं। मेरे हिमालय-भ्रमण के सम्बन्ध में डॉ० राय के इस स्नेह-युक्त औत्सुक्य और प्रेरणा ने मुझे मुग्ध किया था। बंगाल के इस नरसिंह के प्रति अपनी श्रद्धा निवेदित करता हूँ।

बत्तीस वर्ष पूर्व मेरी माँ गयी थीं तीर्थ-दर्शन के लिए हरिद्वार। मैं साथ था। यही मेरा प्रथम हिमालय-दर्शन था। वह सन् १९२३ का अक्तूबर था। साधारणतया जिस जगत् और जिस समाज में मेरा आना-जाना था, हिमालय उस से सम्पूर्ण भिन्न था। इस लिए उस दिन के उस तरुणवय के एक विशेष सन्धिक्षण में मेरी दृष्टि में समग्र हिमालय एक विचित्र अभिनव आविष्कार जैसा लगा था। नवीनता के इस अचानक आविर्भाव से मेरा जीवन चमत्कृत हो उठा। फलस्वरूप, जिस ने मुझे प्रथम बार हिमालय पहचनवाया उसी माँ के ही अनजाने में भी अनेक बार हिमालय के कई अंचलों में आना-जाना पड़ा था। इस का कारण भी वे जान गयी थीं कि मुझे अब इस का नशा सा ही है। तत्पश्चात् भारतीय सैन्य विभाग में नौकरी पा कर मैं हिमालय में पीरपंजाल पर्वत श्रेणी के कोमारी नामक अंचल में—आज पश्चिम पाकिस्तान के अन्तर्गत—प्राय: २७ वर्षों तक रहा। यह अंचल है कश्मीर के दक्षिण-पश्चिम में। यहाँ रहते हुए मैं कार्यवश सीमान्त के विभिन्न पार्वत्य अंचलों में घूमता-फिरता रहा। मेरे पीछे तब समग्र भारतवर्ष के 'साइमन कमीशन' के 'बाइकाट' करने का भयंकर राजनीतिक तूफ़ान मचा था। वह था सन् १९२८ का अन्तिम काल। पण्डित मोतीलाल नेहरू कांग्रेस के सभापति निर्वाचित हुए थे। उन्हीं दिनों हिन्दू राज्य पर्वतमाला की दक्षिण-पूर्व उपत्यका यानी खैबर गिरिसंकट के अन्तिम छोर पर लैण्डीकोटल में खड़े हो कर मैं ने इंगलैण्ड के दो राजनीतिज्ञ, सर जॉन साइमन और मिस्टर इटली को निकट से देखा था। वे तब डू-रण्ड लाइन को नाप रहे थे। फिर सन् १९३२, अप्रैल माह में केदार-बदरी की तीर्थयात्रा करता रहा और चार सौ मील से कुछ अधिक की पैदल परिक्रमा मुझे शेष करनी

पड़ी—वह परिक्रमा ऋषिकेश से आरम्भ हुई और अलमोड़ा ज़िला के रानीखेत नामक पार्वत्य शहर में समाप्त। कुल अड़तीस दिनों में यह यात्रा पूरी हुई। इसी कहानी को ही ले कर लिखा गया था 'महाप्रस्थानेर पथे' मगर इसी जगह मेरे रुके रहने में कोई तुक नहीं थी। १९३२ से १९३६ की अवधि में बार-बार अशान्त भाव से मैं ने हिमालय के विभिन्न स्थानों में भ्रमण किया और इस समय से ही आज-पर्यन्त भिन्न-भिन्न अवस्थाओं में एक से अधिक बन्धुओं और बान्धवियों का संग और सहयोग प्राप्त करता आ रहा हूँ। उन में से बहुतों की चर्चा उन के नाम से छद्म नाम से या 'देवतात्मा हिमालय' में आयी है।

हिमालय-भ्रमण से अवसर निकाल-निकाल कर लम्बे दिनों तक मैं भारत के बहुत सारे स्थानों का भ्रमण करता फिरा। वह पथ आज भी शेष नहीं हुआ है। इस प्रसंग में इन सब का ज़िक्र बेमानी है। किन्तु हिमालय की अपनापे और स्वभाव की विचित्रता मेरे लिए गहरे अचरज का विषय है। दक्षिणान्त का पूर्व और पश्चिम घाट, पश्चिम भारत की अरावली, मध्य भारत की विन्ध्यगिरि श्रेणी और रेवा-क्षिप्रा-वेत्रवती-नर्मदा-ताप्ती और हैदराबाद अंचल के बहुत से पर्वतलोकों में घूम-फिर कर देखा है, किन्तु मेरे सामने हिमालय जैसा अपार और अनन्त विस्मय और कोई भी वहन नहीं करता। इन गिरिशृंगों के नीचे-नीचे विचरण करने वाले हृदयवान पर्यटकों की भी अपनी प्रकृति, आचरण, विचार, ध्यान-धारणा—सब-कुछ कुछ समय के लिए बदल जाता है, यह अनुभव मैं ने बार-बार किया है। जो आत्मगत भाव पर्यटकों पर हावी हो जाता है, समतल जगत् में वह दुर्लभ है। मेरा विश्वास है कि भावना का इतना बड़ा आश्रय हिमालय छोड़ और कहीं नहीं है।

पचीस वर्ष पहले, हिमालय को ले कर आज की तरह चर्चा-आलोचना और अन्वेषण नहीं होता था। कुछ दिनों पहले तक बाँग्ला साहित्य-क्षेत्र में जिन्होंने प्रधानतया हिमालय को सुपरिचित किया, उन में स्वर्गीय जलधर सेन, सत्यचरण शास्त्री, कला-गुरु श्री प्रमोदकुमार चट्टोपाध्याय के नाम विशेष श्रद्धा से स्मरणीय हैं। इन्हें छोड़ कर भी बहुत से ऐसे हैं जिन्होंने इन्हीं की तरह हिमालय के किसी-किसी विशेष अंचल की तीर्थ-यात्रा कर के पुस्तकें लिखीं। इन से भिन्न जिन यूरोपीय जातियों ने समय-समय पर हिमालय के अगणित शिखरों का विजय-अभियान किया है उन में से अनेक की रचनाओं ने जनसाधारण के औत्सुक्य को आन्दोलित किया है। किन्तु व्यापक रूप से अब हिमालय को ले कर चर्चा हिमालय से सम्बन्धित कई संस्थाओं और पत्रिकाओं के माध्यम से हो रही है। इस के अतिरिक्त भी कई कारण हैं। इतने दिनों तक हिमालय का समग्र चेहरा बीहड़, दुरतिक्रम्य और निरुत्साहित करने वाला था। अब मोटरों के आने-जाने से हिमालय को प्रथम और द्वितीय स्तर बहुत कुछ सहज साध्य हो गया है। आज समुद्री सतह से नौ हज़ार फ़ुट ऊँचाई तक मोटर आ-जा सकती है। यातायात बहुत कुछ सहज हुआ इसी कारण शिक्षित जनों की आँखें उस पर पड़ीं।

हिमालय नाम क्या है। इस का आदि पौराणिक नाम रहा—महाहिमवन्त। भू-तत्त्वविद् कहते हैं, कुल छह करोड़ वर्ष पहले समुद्रगर्भ के नीचे के प्राकृतिक उद्वेलन के फलस्वरूप हिमालय क्रमशः सिर उठा कर खड़ा हुआ। इस से गंगा-उपत्यका के साथ ही उत्तरपूर्व पंजाब और कश्मीर-उपत्यका का आविर्भाव हुआ और गंगा महीतल में अवतीर्ण हुईं। अभी हिमालय का दो-तिहाई हिस्सा सम्भवतः धरती के गर्भ में ही पड़ा है। इस महाहिमवन्त की शाखा-प्रशाखाएँ ब्रह्मदेश से आरम्भ हो कर चीन-तिब्बत सीमान्त एवं वहाँ से असम-बंगाल-नेपाल होते हुए कुमायूँ, पंजाब, कश्मीर, हिन्दूकुश और अफ़गानिस्तान हो कर मध्यप्राच्य के प्रान्तों में चली गयी हैं। सम्पूर्ण हिमालय की गोलाई कमोबेश पाँच हज़ार मील की है, और चौड़ाई में कहीं पाँच सौ मील है, किसी-किसी स्थल में इस से भी अधिक। पृथ्वी की दूसरी किसी पर्वत-श्रेणी की तुलना हिमालय से नहीं हो सकती। किसी व्यक्ति के लिए एक जीवन में समग्र महादेश-प्रसारित इस गिरिश्रेणी का सम्पूर्ण भ्रमण करना सम्भव नहीं।

कई एक प्रसिद्ध तीर्थ-स्थानों को छोड़ कर हिमालय में सहस्रों देव-मन्दिर विद्यमान हैं। इन में से अधिकांश ही प्राचीन महिमा के साक्षी देते रहे हैं। आधुनिक युग के किसी भी धनिक ने हिमालय के किसी गहन लोक में पहुँच कर देवस्थान की प्रतिष्ठा की हो, ऐसा देखने को नहीं मिलता। अलबत्ता धर्मशाला और मन्दिर का संस्कार होते कहीं-कहीं जरूर देखा है। खैर जो भी हो, हिमालय हिन्दू-तीर्थ है—यह हम जानते आये हैं। मगर बौद्ध और जैनियों के तीर्थ-मन्दिर भी तो असंख्य हैं, यह बात भी ध्यान में रखना जरूरी है। भगिनी निवेदिता किसी जमाने में इसे ले कर कुछ आलोचना भी कर गयी हैं। ईसाइयों की कीर्ति कुछ नहीं है, फिर भी प्रायः प्रत्येक पार्वत्य शहरों में एक या एक से अधिक गिरजे वर्तमान हैं। मसजिदों की संख्या पूरब हिमालय में एकदम कम है, तब भी पश्चिम हिमालय में कहीं-कहीं नजर आयी हैं। मन्दिरों का पथ जितना बीहड़ है, उतना ही उस का आकर्षण है। मसजिदों का पथ जितना सरल-साध्य है, उतनी ही उस की जनप्रियता। हिमालय के किसी दुर्गम अंचल में एक भी मसजिद नहीं है।

हिमालय का पर्यटक हूँ मैं इस लिए सचमुच तीर्थ-यात्री हूँ, यह बात सच नहीं है। तीर्थयात्रा गौण है, हिमालय का पर्यटन मुख्य है। लक्ष्य आनन्द का है, उपलक्ष्य तीर्थ का। हिमालय का रंग मैं ने लपेटा है अपने सारे अंग में, सर्वत्र रस मिला है। अँगरेजी में इस परिभ्रमण के लिए सही संज्ञा है—एड्स्थेटिक। केवल तीर्थयात्रा करना ही यदि मूल उद्देश्य होता तो जिस दिन बदरीनाथ के मन्दिर में घुस कर विष्णु-मूर्ति का दर्शन किया, उसी दिन ही मेरा गढ़वाल देखना शेष हो जाता, परन्तु हुआ नहीं। सम्पूर्ण कुमायूँ का मुझे आठ-दस बार भ्रमण करना पड़ा है। हिमालय के सभी देव-देवताओं का दर्शन कुल दस वर्षों में शेष हो जाता किन्तु बत्तीस वर्षों में भी मेरा हिमालय-दर्शन शेष नहीं हुआ। मैं भक्ति-भाव में बहने वाला नहीं जो मन्दिर में घुस कर

ठाकुर देखने मात्र से भाव-विभोर हो जाता। मगर बीहड़ पहाड़ों में कहीं भी अध्यात्म-साधना-केन्द्र देख कर आनन्दित हो जाता हूँ। उन में मनुष्य की महिमा देखता हूँ, जिस मनुष्य ने दुस्साध्य पथों पर चल कर वहाँ देव-स्थान बनाया है। देव-देवता से मुझे किसी वस्तु की कामना नहीं है।

असल बात यह कि मेरी दृष्टि रही है हिमालय के व्यापक रूप की तरफ़। इस की समग्र विशालता को अपने मन में धारण करूँगा—यही रहा लक्ष्य। मध्य हिमालय में दो प्रधान पर्वतश्रेणी हम देख पाते हैं—जो दोनों ही हिन्दू भारतीय संस्कृति के धारक और वाहक हैं— उन में से एक का नाम है 'महाभारतीय' और दूसरे का शिवलिंग पर्वतमाला। अँगरेज़ी में दूसरे को कहा गया है शैवालिक रेंज। इन की दीर्घता हज़ार मील से कम नहीं है परन्तु इस के बाहर भी हिमालय बहुत व्यापक है। मात्र कई सौ वर्ष आगे भी भारत के मानचित्र से जो संकेत पाया जाता है, उस से उस की पश्चिमी सीमा निर्धारित होती है सुलेमान गिरिश्रेणी, और उत्तर-पश्चिम में हिन्दूराज पर्वतमाला तक। राजनीतिक कारणों से समय-समय पर यह मानचित्र बदलता रहा, यह हम जानते हैं। मगर मैं जहाँ तक जानता हूँ, मात्र एक सौ वर्ष पहले भी पामीर उपत्यका का एक हिस्सा भारत के अन्तर्गत था। अर्थात् हिन्दूकुश और काराकोरम उर्फ़ कृष्णगिरिश्रेणी भारत के उत्तर प्राकार के रूप में निर्दिष्ट थे। इन दोनों पर्वत-मालाओं की दूसरी ओर पामीर की मालभूमि पड़ती है, इसी लिए सम्भवतः पामीर को हम खो बैठे। अवश्य यह बात ध्यान में रखने की ज़रूरत है कि हिमालय के बहुत-सारे अंचल आज भी वीरान हैं, उन्हें 'No man's land' कहना ग़लत न होगा। परन्तु कालक्रम में यदि कोई ओर-छोर पर पहुँच कर वहाँ आधिपत्य कर बैठे तब तो बाद में उसे हटा पाना भी असुविधाजनक है।

दो-एक उदाहरण यहाँ दूँ। बदरीनाथ के मन्दिर से कुछ दूर पर अवस्थित माना गाँव के अधिवासी तिब्बत की गवर्नमेण्ट के दरबार में आज भी राज्य-कर देते क्यों हैं—यह समझ पाना बुद्धि से बाहर की बात है। लद्दाख प्रदेश को आज भी पश्चिम तिब्बत कहा जाता है, यह असंगत है। कश्मीर स्थित नागा और देवसाई पर्वतश्रेणी के उस पार गिलगिट अंचल में सिन्धु नद के तीर पर हिन्दू तीर्थ रामघाट विद्यमान है, मगर इस गिलगिट अंचल में कश्मीर-भारत की सीमा आज भी बहुत कुछ अनिर्दिष्ट है। सिर्फ़ इतना ही नहीं नैसर्गिक शोभा-समृद्ध नदी के तट पर का सुहावना चित्रल राज्य काफ़िरिस्तान के सीमा-अंचल सहित आज भी है जो कश्मीर के अन्तर्गत पड़ा है—इस बात को लोग भूलने लगे हैं। इसे छोड़ कैलास पर्वतमाला के सम्बन्ध में भी कुछ बातें शेष रह जाती हैं। पौराणिक काल से कैलास और मानसरोवर, रावणह्रद, गुरला-मान्धाता इत्यादि हिन्दूतीर्थों के संग भारतीय संस्कृति का एक आत्मिक सम्पर्क था, वही आत्मीयता आज तक वर्तमान है। भारत के पुराणों, काव्यों, उपकथाओं से यहाँ तक कि इतिहास के किसी-किसी अंश में भी भारत और कैलास की संलग्नता और एकात्मता का उल्लेख देख

पाता हूँ। कुछ दिनों आगे भी कैलास और मानसरोवर के तीर्थयात्री शत्रु-भय के कारण ताकलाकोट से भारत सरकार की मदद ले कर बन्दूकें इकट्ठी करते थे, चीन और तिब्बत के आधिपत्य की बातें तब नहीं उठती थीं। सिर्फ़ इतना ही नहीं, केदार-बदरी, गंगोत्री, यमुनोत्री की भाँति कैलास और मानसरोवर के बहुत सारे देव-देवी तथा पूजा अर्चना के अनुष्ठान आदि की पद्धति अभी भी समग्र रूप में भारतीय है। बहुतों की धारणा है, कैलास पर्वतमाला का समान्तराल—जिस के भीतर से लद्दाख से तसिगंग और गारटक हो कर प्राचीन कारवाँ-पथ सीधे दक्षिण में नीचे उतर मानसरोवर की तरफ़ चला गया है—वही भारत की आदि सीमा है। अद्वैतवादी भारत की स्वाभाविक उदासीनता के कारण, युगयुगान्त से भारतभूमि बारम्बार द्विधाविभक्त होती रही है। और एक-एक युग में एक-एक टुकड़ा भू-भाग काट कर बाहर के लोग लेते जा रहे हैं। इस लिए आज यदि कोई कहे कि भारत का उत्तर भू-भाग समग्र हिन्दूकुश है, काराकोरम और कैलास पर्वत माला से घिरा है तो मैं उस पर अविश्वास करने का साहस नहीं करूँगा। प्राचीन काल में आर्यों ने भारत की ऐक्य-साधना के निमित्त आचमन-मन्त्र 'गायत्री' में यदि सात नद-नदियों के साथ ब्रह्मपुत्र को भी जोड़ लिया होता तो यह भूल नहीं होती। सम्राट् भिक्षु अशोक बहुत अधिक उदार थे अहिंसा मन्त्र से अनुप्राणित हुए थे। सत्य, प्रेम और अहिंसावाद राष्ट्र का आधार रहे, यह अच्छा है; किन्तु इस के लिए न्यायसंगत अधिकारों की वर्जना राष्ट्र के लिए मंगलमय नहीं है। अशोक के बाद मौर्य साम्राज्य नष्ट हुआ था।

किन्तु भौगोलिक विवेचना मेरी इस अनुक्रमणिका का मूल उद्देश्य नहीं है। हिमालय को ले कर आज अन्तर्राष्ट्रीय राजनीतिका खेल हो रहा है—इस सम्बन्ध में कोई अभिमत देना भी मेरा अभिप्राय नहीं है। मगर कथा-प्रसंग में कुछ-कुछ इतिहास, समाजतत्त्व दर्शन, नृतत्त्व आदि आ घुसे हैं। इस पुस्तक में समग्र हिमालय को, उस के स्वभाव और सौन्दर्य सहित हृदय से उपलब्ध करने की चेष्टा हुई है। मैं जहाँ तक जानता हूँ, भारत की किसी भाषा में आज भी हिमालय के समग्र भौगोलिक रूप को समेट कर किसी भी लेखक ने इस प्रकार की चेष्टा नहीं की। नगाधिराज हिमालय की गिरिशृंगमालाएँ देवभूमि भारत की छोर पर अपलक प्रहरी की भाँति युगयुगान्तों से खड़ी हैं। दूर-दूर तक फैली उस की शाखा-प्रशाखाओं ने एक तरफ़ मध्य एशिया और तिब्बत की हिमवायु की सर्वनाशी झंझाओं से भारत की हर क्षण रक्षा की है, और दूसरी तरफ़ दक्षिण-पश्चिम सागर की मौसमी वायु का पथ उत्तर दिशा में अवरोध कर के इस विशाल भारत को शस्यश्यामलता से जीवन्त कर रखा है। इसी कारण से देवतात्मा हिमालय भारत का नित्य रक्षक और प्रतिपालक है। वेदों में, उपनिषदों में, पुराणों में, महाकाव्यों में और इतिहासों के परिच्छेदों में वे भारत की पूजा प्राप्त करते आये हैं। अनन्त विस्तृत इस पर्वतमाला की शाखा-प्रशाखाएँ असंख्य नामों से युक्त हैं। सहस्रों गिरि, नदी, झरने इन के अंचल में विद्यमान हैं। चिर तुषार मण्डित शत-

सहस्र मीलों में इस का अगम्य अंचल विस्तृत है। हज़ारों वर्गमील व्यापी हैं इस के भीषण घने जंगल आदि। इन जंगलों में हैं हिंसक बाघ, भालू, हाथी, हायना, हरिण, गेंडे, साँभर, चमरी इत्यादि अनेक जानवर; और शत-सहस्र सरीसृपों का अबाध विचरण-क्षेत्र हिमालय की पर्त-पर्त में है। इतिहास की आँखों की ओट में कितने धर्म-युद्ध हिमालय में हो चुके हैं, कितने राज-भिखारी रोते फिरते हैं इस की निर्जन नदियों के किनारे-किनारे, कितने सर्वत्यागी संन्यासी पद्मासन में आँखें मूँदे बैठे-बैठे अन्त में पत्थर हो गये। साम्राज्यों का उत्थान-पतन, एक के बाद एक सभ्यता का उदय और अस्त, वीर विक्रम नरसिंहों की एक के बाद एक अज्ञात कहानी हिमालय के एक-एक पत्थर से जुड़ी है। इस महापुण्य गिरिमाला के चप्पे-चप्पे का आर्य ऋषियों ने परिभ्रमण किया है। इस के बाद बारी-बारी से गौतम बुद्ध, महावीर, रामानन्द, सम्राट् अशोक, आचार्य शंकर, श्री ज्ञानदीपंकर, महाकवि कालिदास, गुरु नानक, कबीर और इस युग में भी राजा राममोहनराय, महर्षि देवेन्द्र, रवीन्द्रनाथ, विवेकानन्द, देशबन्धु, गांधी जी, सुभाष-चन्द्र, जवाहरलाल आदि मनीषियों ने कभी न कभी हिमालय में अपना-अपना अस्थायी डेरा डाला था। शायद बहुतों को यह पता नहीं कि चिरतुषारमौलि, त्रिशूल शृंग के सम्मुखवर्ती कौसानी पहाड़ की चोटी पर बैठ कर गान्धी जी ने अपने 'अनासक्तियोग' ग्रन्थ के कई परिच्छेद लिखे थे। बहुत से लोग, हो सकता है, यह भूल चुके हैं कि मुक्तेश्वर तीर्थ-पथ में मिलने वाले रामगढ़ पर्वत की चोटी पर कुछ दिनों तक बैठ कर रवीन्द्रनाथ टैगोर ने कविताएँ लिखी थीं। सुभाषचन्द्र अपने वैरागी स्वभाव के कारण किशोरावस्था में संन्यास लेने की कल्पना कर के हिमालय गये थे। इस के अतिरिक्त जो सत्य कथा आज भी ईसाई जगत् में प्रस्थापित नहीं हुई, वह यह है कि स्वयं ईसा अपनी तरुणाई के दिनों में अहिंसावादी गौतम बुद्ध के मन्त्र से सिद्ध हो कर भारत-भ्रमण के लिए आये थे तथा उत्तर भारत और गौतम बुद्ध की जन्मभूमि दक्षिण हिमालय के अनेक अंचलों में भ्रमण कर फिर मध्य पश्चिम की ओर चले गये थे। विद्वानों के पास इस के तथ्य और प्रमाण आज भी मौजूद हैं।

समग्र हिमालय के भिन्न-विभिन्न अंचलों में सहस्रों देव-देवालय, मन्दिर और बौद्धमठ प्रतिष्ठित हैं। गान्धारगिरि लोक, हिन्दूकुश, हिन्दूराजपर्वतमाला, पीरपंजाल के पश्चिम हिस्सों में—जो सभी अंचल आज पाकिस्तान, अफ़गान और पठान मुल्कों के अन्तर्गत हैं—सैकड़ों देव-मन्दिर, मठ तथा गुफ़ाओं के भग्नावशेष आज भी मौजूद हैं। वे सभी सुदूर प्राचीन अतीत से ले कर आज अद्यतन इतिहास की साक्षी देते आ रहे हैं। पूर्व हिमालय के आदि अन्तहीन गिरिशृंग दलों के आस-पास युगों से लाखों संसार-त्यागी साधु, संन्यासी, वैरागी, बाउल, तपस्वी, ज्ञानपिपासु, तीर्थवासी, सत्यान्वेषी विभिन्न श्रेणियों के लोग अपनी-अपनी शान्ति-नीड़ रचे बैठे हैं—उसी प्रकार जैसे विराट् वनस्पतियों की शाखा-प्रशाखाओं के कोटरों, जठरों में छोटे-छोटे पंछी रहते हैं। इस हिमालय के शृंग-विक्रम-

[illegible] अभियान-दलों के लोग, कितने दिनों और कितने मृत्युवरण के बाद गौरीशृंग पर विजय करने में आज वे सफल हुए। इस हिमालय के अज्ञात ओषधवन में पूरी संजीवनी को ढूंढ़ निकालना इसी शताब्दी में सम्भव है—बहुत सारे वैज्ञानिक यह महसूस करते हैं। वीरों के असाध्य अध्यवसाय में, संन्यासियों की एकाग्र तपस्या में, तीर्थयात्रियों के पूजा-पाठ में, कवि-चित्रकार-दार्शनिक की सौन्दर्य-कल्पना में देवतात्मा हिमालय मानव के लिए चिर विस्मय है।

समतल जगत् में छुट्टी कहीं भी नहीं। हमारी आँखें, मन, चिन्ता, कल्पनाएँ नित्य भ्रान्त हैं; हरक्षण मन एक विषय से दूसरे विषय पर और दृष्टि अविश्रान्त भाव से एक से दूसरे पर आकृष्ट होती है। किन्तु हिमालय के अचरजमय जगत् में हमारे मन की छुट्टी वृहत्तर दिशाओं में प्रसारित है—इसी कारण बाहर से दृष्टि लौट आती है अपने अन्तर में, यह दृष्टि आनन्द के मधुमय स्वाद से भी है। भगोड़े मन की चर्चा यहाँ नहीं की जा रही है, किन्तु आधुनिक युग की जटिल झंझा से विक्षुब्ध और थका देने वाली जीवन-यात्रा से जो कभी-कभी हट जाना चाहते हैं, हिमालय उन के लिए एक परम सान्त्वना का आश्रय है। यह स्वीकार करूंगा ही कि हिमालय के जंगलों की जटिलता ने— उस की मिट्टी, पत्थर, तुषार, निर्झर सभी ने मिल कर मेरी चेतना के जड़त्व को बहुत बार मुक्ति दी है—बारम्बार उत्सुक, उन्मुख मन को चंचल कर दिया है। हिमालय की पुकार बहुत बार दुखदायी हो उठती है—परन्तु दुःख के बीच जीवन जागता भी है। मन में आनन्द-उत्सवों का जो गुंजार होता है, बाह्य लोक के लिए वह दुर्बोध हो उठता है। ध्वनि को धारण कर पाता है केवल वही व्यक्ति, जो हर क्षण उत्कर्ण है। सभी वह पुकार सुन नहीं पाते।

'देवतात्मा हिमालय' के प्रथम खण्ड के प्रकाशन के समय उन को याद आती है, इस लम्बे अरसे में, जो कभी-कभी मेरे संगी बने। उन में से कोई-कोई अब जीवित नहीं हैं और बहुतों का कोई पता भी नहीं है। मैं एक लेखक-साहित्यकार हूँ, यह भी बहुतों से छिपा था। आज उन्हीं अनाम बंगाली और अबंगाली स्त्री-पुरुष की याद हो आयी है—जिन के संग एक साथ बहुत सारे दिन बीते हैं और जिन की सेवा करने में मुझे खुशी हुई है। कभी हिमालय को ले कर उन का कोई सहचर पुस्तक लिखेगा—यह बात अनेक की धारणा से परे थी। मैं अपने उन्हीं अज्ञात, अख्यात, अपरिचित संगी और संगिनी—जीवित या मृत, जो कभी मेरे पथ के परम आत्मीय हो उठे थे—के प्रति इस पुस्तक प्रकाशन से पूर्व अपनी आन्तरिक प्रीति, कृतज्ञता, और श्रद्धार्घ अर्पित करता हूँ।

—लेखक

गान्धी जन्म-तिथि,
अक्तूबर २, १९५५

अस्त्युत्तरस्यां दिशि देवतात्मा हिमालयो नाम नगाधिराजः ।
पूर्वापरौ तोयनिधी वगाह्य स्थितः पृथिव्या इव मानदण्डः ।।

—कालिदास

प्राय: पन्द्रह सौ साल पहले की बात है—

सिंहासन से नीचे उतरकर सम्राट् हर्षवर्धन ने परिव्राजक ह्वेनत्सांग को अभिवादन किया, "महात्मन्, विदा देने से पहले यह अखण्ड, महान् भारत आप का आशीर्वाद चाहता है।"

प्रणत विनयपूर्वक पुरुषश्रेष्ठ ह्वेनत्सांग ने उत्तर दिया, "इस योगासीन ध्यानावस्थित प्राचीन भारत के आशीर्वाद का पाथेय मैं भी अपने साथ ले जाना चाहता हूँ, राजन्! यह भारत भूस्वर्गमय है। हिमालय के इस ब्रह्मपुरा में रह कर मैं ने बारबार उस भूस्वर्ग के दर्शन किये हैं।"

भारत की प्राचीन आर्य सभ्यता का आदिमन्त्र इसी ब्रह्मपुरा ने प्राप्त किया था। सैकड़ों-हज़ारों साल से, इस ब्रह्मपुरा के पथ पर ही मुनि-ऋषि, योगी-संन्यासी, परिव्राजक और पर्यटक परिभ्रमण करते रहे हैं। हिमालय के इसी दुस्तर-दुरारोह पार्वत्य प्रदेश के एक निर्झरिणी-तटस्थ तपोवन में बैठे महामुनि वेदव्यास ने शिवपुराण और केदार-खण्ड की रचना की थी। अन्यान्य पुराणों में भी इस ब्रह्मपुरा को भूस्वर्ग ही कहा गया है। महाकवि कालिदास ने इसे स्वप्नपुरी बताया है। महाभारत की रचनास्थली था यही ब्रह्मपुरा। वैदिक भारत के कल्प में, सनातन भारत के पर्व में, बौद्ध भारत के काल में, ऐतिहासिक भारत के युग-युग में—मौर्य साम्राज्य के अशोक और उस के बाद समुद्रगुप्त आदि के शासनकाल में—ब्रह्मपुरा ने ही ऋषियों के तपस्या-लोक, आनन्द और शान्ति की लीला-भूमि होने का गौरव पाया था। पाँचों पाण्डवों ने इसी रास्ते से ब्रह्मलोक की यात्रा की थी, इसी लिए इस महाभारतीय भू-खण्ड का आदि नाम ब्रह्मपुरा पड़ गया। इसी के बीच से बहती हैं गोमुखी-समुद्भवा जननी जाह्नवी, दिव्य नदी अलकनन्दा, ब्रह्मलोक-विधौता मन्दाकिनी। यहाँ के सूर्य-किरणों से उज्ज्वल तुषार-किरीट हिमालय का प्रथम स्तर ही ब्रह्मलोक है—पृथ्वी से बहुत दूर, उसी के नीचे, जहाँ शिवलिंग पर्वतमाला का दुरतिक्रम्य स्तर है, देवलोक है—देवताओं की विचरण-भूमि। भागीरथी जहाँ शिलाहत और ऊर्मिमुखर हो ऋषिकुल के आश्रम-सीमान्त पर बह रही है, उस स्तर को ऋषिगण सदा से तपोलोक कहते आये हैं। उस के नीचे भी, जहाँ दिग्दिगन्तव्यापी हिमालय का चरण प्रान्त है, वह अरण्यमय स्तर—जहाँ गंगा माँ का राज है—मर्त्यलोक है; नर-वानर, पशु-पक्षी, कीट-पतंगादि की अव्याहत लीला-भूमि! इस भू-खण्ड पर गंगा के उतरने से ही तो यह उपत्यका गंगावतरण कहलाती है; गंगा इसी स्थान से जीवलोक में अवतरित हुई हैं। वह आर्यावर्त के प्रतिपालनार्थ उतरी हैं। त्रिभुवनतारिणी तरल-तरंगा!

मेरे यौवन ने पहली बार अपनी आँखें ब्रह्मपुरा की इसी गिरिश्रेणी के नीचे गंगावतरण प्रान्त में खोली थीं। बत्तीस साल पहले उसी दिन सर्वप्रथम हिमालय का चरणस्पर्श किया था मैं ने। किन्तु वह हजारों साल पहले का ब्रह्मपुरा तो अब नहीं है। अब तो उस का एक स्थलवर्ती नाम है—गढ़वाल। चार सौ साल पहले की ही तो बात है, राजा अजयपाल ने सारे ब्रह्मपुरा के बावन गढ़ों को एक साथ मिला कर नया नाम रखा था गढ़वाल, अर्थात् दुर्ग-प्रधान। उस दिन आँखें तो खुलीं, किन्तु कुछ देखा नहीं था। भारत की नवीन, विचित्र और श्रेष्ठ महिमा को देख कर मेरी दृष्टि अपलक एकाग्र ताकती ही रह गयी थी। सिर्फ़ उस की वह नीली धारा देख आया था, जो एक से दूसरे रहस्य-लोक के भीतर से गुजरती किसी पर्वतमाला के नीचे जा कर न जाने कहाँ खो गयी थी। उस दिन मेरा मन मुखर नहीं था, इसी लिए आस्वाद और उपलब्धि के पथ पर विचरती मेरी यह बुभुक्षु चेतना अपना खाद्य संग्रह कर के ही लौट आयी थी। फिर भी उस में उपलब्धि की अपेक्षा आविष्कृति की ही अधिक चेष्टा थी।

उस के बाद तो इस ब्रह्मपुरा की प्रान्त-सीमा में बार-बार गया हूँ, गढ़वाल की पहाड़ियों के नीचे-नीचे नील धारा के किनारे-किनारे इस के वन-वनान्तरों में, गिरि-गुहाओं में, इस की वासन्ती शोभा में, उन्मादिनी निर्झरिणी के प्रस्तर-संकुल तटों पर बार-बार घूमा-फिरा हूँ। कितनी ही दोपहरियों का एकाकी-भाव, कितने ही प्रभातों का निस्संग सूनापन मुझे साथ ले कर इस की सँकरी पहाड़ियों पर, यहाँ-वहाँ—मन्दिर में, तपोवन में, उपत्यका में, और गहन गुफाओं में अपनी छाप छोड़ गया है। इन की यादें भी नहीं हैं आज मन में। मैं ने वहाँ बार-बार वही देखना चाहा था जो दिखाई नहीं पड़ता, वही विचारना चाहा था जो विचारातीत है, वही जानना चाहा था जो ज्ञानातीत है। कितनी बार निर्जन-भयंकर कन्दरा के नीचे शिलातल पर चुपचाप बैठा कलकल बहती दिग्भ्रान्त नदी की पार्श्ववर्ती वासन्ती शोभा निरखता रहा हूँ। कभी-कभी सहसा उन झाड़-झंखाड़ और काई से भरी अँधेरी गुफाओं की ओर ताक कर सारी देह काँप उठी है और फिर डरता-सहमता लौट आया हूँ। शायद उस में कोई भयानक अजगर था या कोई अनजाना विशाल जन्तु अथवा कोई अटल-अचल, योगतन्द्राच्छन्न महर्षि—जटाजटिल, ध्यानस्थ-मौन, महास्थविर। प्राण अकुला उठे हैं, समस्त जीवन हाय-हाय कर उठा है। किन्तु फिर वही अपने रास्ते आ गया हूँ। ऐसा लगा है मानो हजारों साल पहले की विदेह आत्माएँ मेरे पीछे पड़ गयी हैं। उन्होंने मेरी पगध्वनियों में अपनी पदचाप सुननी चाही है, उन्होंने मुझ में अपना आविर्भाव देखना चाहा है; मेरे माध्यम से अपना आशीर्वाद जताना चाहा है। और अन्त में वे सब की सब छाया-मूर्तियाँ जैसे मेरी इस काया-मूर्ति में विलीन हो गयी हैं।

गढ़वाल के साथ तिब्बत का कम सम्बन्ध नहीं है। जोशीमठ से ही इस का आभास होने लगता है, हनुमान चट्टी छोड़ते ही यह मालूम हो जाता है। नारी-पुरुष के चेहरे-मोहरे और वेश-भूषा में देखते-देखते परिवर्तन आ जाता है। घर के पालतू

जानवरों के डीलडौल भी कुछ और ही नज़र आने लगते हैं। जैसे कि नेपाल में, पूर्वी कशमीर में, सारे सिक्किम और भूटान में, ठीक वैसे ही उत्तर-पूर्व गढ़वाल में भी जहाँ तिब्बत के पहाड़ दीखने लगते हैं, वहाँ उस का प्रभाव कुछ अधिक है। वहाँ के आचार-व्यवहार, रीति-रिवाज और पहनावे-ओढ़ावे में ही नहीं बल्कि हिमालय के अनेक मन्दिरों पर, वहाँ की स्थापत्य कला पर भी तिब्बत का प्रभूत प्रभाव है। जोशीमठ हो या उखीमठ या फिर केदार-बदरीनाथ के मन्दिर ही क्यों न हों—तिब्बत की गुफाओं और मन्दिरों के स्थापत्य से हमारा जो थोड़ा-बहुत सम्बन्ध है उसी का सारा प्रभाव है इन मन्दिरों पर। कशमीर के लद्दाख में, कुलू घाटी के उत्तरी हिस्सों में भी यही रूप-रेखा है, किन्नर देश में यही अभिव्यक्ति है, उत्तरी अल्मोड़ा में भी इसी की पुनरावृत्ति है। जिन्हें तुर्किस्तान और पामीर के पठारों से आते देखा है, जो हूणजातीय लोग कभी झेलम और सिन्ध के किनारे-किनारे आ कर सीमान्त प्रदेश तक बस गये हैं वे भी शाक्त-शैव-बौद्धों के इस सर्वग्रासी प्रभाव से आज तक बच नहीं सके। तिब्बती या किसी बड़ी गुफा में घुस कर देखो तो वहाँ शक्तिरूपिणी महाकाली शायद किसी दूसरे ही नाम से विराजती मिलेंगी और हिमालय के बहुत से मन्दिरों में प्रवेश कर के देखो कि बौद्ध चमत्कार की कैसी परिणति हुई है! भारत के साथ पश्चिमी तिब्बत एकाकार हो उठा है।

गढ़वाल की उत्तरी सीमा को तिब्बत, कशमीर और हिमाचल प्रदेश से अलग कर रखा है शतद्रु नदी ने। मानसरोवर से उतर कर यह तिब्बत पार करती हुई गढ़वाल के उत्तर से हो कर उत्तर-पूर्व पंजाब चली गयी है—जैसे कशमीर में पहलगाँव की नीलगंगा। इन की मूल धारा का क्या कोई अनुसरण कर पाया है? सैकड़ों-हज़ारों पहाड़ी नदियाँ शत-सहस्र शाखा-प्रशाखाओं में बहती इन्हें किस रास्ते से कहाँ लिये जाती हैं, कौन जाने? इन के इस पार तथा उस पार ऐसे अनेक अनदेखे-अनजाने पहाड़ी प्रदेश हैं जहाँ आज भी किसी आदमी के पैरों की छाप नहीं पड़ी। न वहाँ जीव-जन्तु जन्मते हैं, न कोई कीड़ा-मकोड़ा या सरीसृप ढूँढ़े से मिलता है। उस निष्प्राण घास-पातविहीन वीरान पर्वतलोक की निर्जनता मानो एक विभीषिका है, जिसे मैं खड़ा-खड़ा देखता रहा हूँ, कितने ही दिनों तक!

किन्तु गढ़वाल में इस का कुछ व्यतिक्रम है। एक पर्वत से दूसरे पर्वत तक जाते हुए, एक शिखर से दूसरे शिखर तक—कहीं रुक्षता नहीं है। बर्फ़ीली चोटियों को छोड़ दो, बस ताकते रहो समग्र ब्रह्मपुरा की ओर। जहाँ तक दृष्टि जाती है केवल घनश्यामी आभा—चारों ओर हरियाली ही हरियाली। जितनी चाहो नदियाँ, जितनी चाहो जल-धाराएँ! इधर-उधर जितना चाहो, ताकते रहो—फूलों से लदी-लदी वन-भूमि! दुनिया भर के फूल यहाँ खिलते हैं, गुच्छों पर गुच्छे। जहाँ भी जाओ, जिधर भी देखो, वहीं तपोवन! सुर्ख सेब और अनारों ने बड़े पहाड़ को लाल-लाल कर दिया है—संसार का आठवाँ आश्चर्य देख लो। उन पक्षियों की ओर देखो, जिन्हें तुम ने कभी नहीं देखा,

जिन का वर्ण-वैचित्र्य तुम्हारी कल्पना को नन्दन-कानन पहुँचा देगा—जी भर कर देख लो उन्हें। नीलनयना नदी को ओर ताकते रहो, जिस की जलराशि में अनन्त उदार आकाश की परछाइँ पड़ रही है। यह रोमांचक कौतुक तुम कभी भूल नहीं सकोगे। ऊँचे पहाड़ की चोटियों पर चढ़ो, एक चोटी से दूसरी चोटी पर—चिरतुषारधवल त्रिशूल पर्वत और नयनाभिराम नन्दादेवी की शोभा तुम्हें मन्त्रमुग्ध कर लेगी। पिण्डार हिमानी की ओर देखते रहो, नन्द-कोट के दर्शन करो। वहीं से पिण्डार गंगा उतरी है, जैसे रामगंगा गढ़वाल से अलमोड़ा में आयी है। तुम्हारे दो अपलक नयन····

गढ़वाल का प्रकृत रूप है गांगेय। उत्तरी ब्रह्मपुरा में गोमुख से गंगा का निकलना पता है। किन्तु क्या यह ज्ञात हो सका कि अलकनन्दा और सरस्वती कहाँ से आयी हैं? धवल गंगा की जन्मस्थली का पता है क्या? आसानी से कुछ नहीं जाना जाता। असंख्य नामों के अगणित जल-स्रोत अन्त में गंगा में ही जा मिलते हैं—उसी गंगा को हम हरिद्वार के चण्डी पर्वत के चरणतल में देखते हैं। चण्डी पर्वत की ऊपरी चोटी पर अधिष्ठित हैं असुरनाशिनी चण्डी। गंगा के इस पार है शिव-पूजा में व्यस्त हरिद्वार और उस पार चलती है शक्ति-पूजा! कनखल का रास्ता मायावती से हो कर मूलगंगा के किनारे-किनारे चला गया है। यहाँ से उत्तर में हिमकिरीट बदरीनाथ का गिरि-शिखर दीखता है। आकाश-मार्ग से लगभग पचास मील होगा। मैं ने इसी गंगा के दोनों ओर की तट-भूमि से बीनी हैं बहुत सी रंग-बिरंगी गोल-गोल बटियाँ, चिकने और कोमल प्रस्तरखण्ड।

गढ़वाल के अधिकांश मन्दिर प्राचीन हैं और पूजा अकिंचनों की है। सारी पूजा शैव हरिद्वार खींच लेता है, और काली तथा चण्डी के लिए बहुत सा अंश बचता है। यहाँ की विधि है बलिदान। पाकदण्डी पथ पार कर के चढ़ते-चढ़ते चण्डी-मन्दिर आता है। परिक्रमा का रास्ता लोहे की रेलिङ् से घिरा है। अन्दर चण्डी-मूर्ति है। वे भैरवी हैं—भीरुता की शत्रु। भय का अर्थ है मनुष्यता की अपमृत्यु, इसी लिए वे भयनाशिनी हैं।

रास्ता भूल कर मैं पश्चिम की ओर उतर गया। किन्तु वहाँ वे मिले जिन्हें गुहा-वासी साधु कहते हैं। ये हैं हमेशा हिमालयवासी, संसारी जन-समागम से दूर, रोजमर्रा की जिन्दगी से अछूते। वे क्या खाते हैं, इन्हें कौन खिलाते हैं, ये सारी खबरें नहीं जुगाड़ी मैं ने। ये घूमते-फिरते ही खाते और सोते हैं। घाट-बाट में ही इन का जीवन-मृत्यु का खेल चलता है। ये नग्न, दरिद्र, सर्वत्यागी, स्नेह-मोहमुक्त अद्वैतवादियों की श्रेणी के हैं, किन्तु इन्होंने ही आसमुद्र-हिमाचल भारत को एकता के सूत्र में बाँध रखा है। भभूत रमाने वाले ये नागा साधु ब्रह्मपुरा के पहाड़ों में जाड़े-गरमी की परवा किये बिना ही घूमते-फिरते हैं। इन की कोई जाति नहीं है, ये लोग संन्यासी हैं। इन का कोई धर्म नहीं है—ये विश्व-द्रष्टा हैं। मैं ने इन्हें कभी गुफाओं में आत्म-निमग्न देखा है तो कभी हिम-प्रदेश में जाप करते हुए। कभी यह भी देखा है कि ब्रह्मपुरा की

पहाड़ियों पर किसी पुराने पीपल के पेड़ के नीचे ये निष्काम व्रत लिये महीनों तक ध्यान-मग्न पड़े हैं, कभी कहीं अपने-आप में मग्न से अपलक दृष्टि से ताकते हुए। पठान, मुग़ल, अँगरेज़ किसी के भी शासनकाल में इन्हें कभी तंग नहीं किया गया, इन का तपोभंग करने को हिम्मत नहीं पड़ी किसी को। यहाँ तक कि कट्टर मुसलमान सम्राट् औरंगजेब ने भी गुरु रामराय के लिए इसी ब्रह्मपुरा के उत्तर में स्थित मोहन दर्रे में एक संन्यास-आश्रम निर्दिष्ट कर दिया था।

साधुओं के आश्रमों की सीमा छोड़ कर सुरसरि-सिकता पर उतर आया हूँ। किन्तु शाम को उसी जंगल के छोर पर रेतीले रास्ते में बाघ के पंजों की छाप देख कर देह सिहर उठी है। बियावान जंगल! बाघ के पंजों के निशान उत्तर से दक्षिण की ओर जाते साफ़ दिखाई पड़ रहे हैं, मानो अभी थोड़ी देर पहले ही वह उधर से गुज़रा है। सहमते क़दमों से जंगल का मोड़ पार कर नदी की ओर बढ़ चला हूँ।

इसी ब्रह्मपुरा को काटते हुए चार तीर्थ-पथ जाते हैं—केदारनाथ, बदरीनाथ और उत्तर काशी हो कर यमुनोत्री तथा गंगोत्री। ऋषिकुल जाओ या गुरुकुल, कनखल जाओ या लालतारा बाग़, ऋषिकेश जाओ या देवप्रयाग, जोशीमठ जाओ या उत्तर काशी—अनुभव करोगे कि यहाँ जैसी विचित्र सुषमा तुम ने अब तक कभी नहीं देखी है। अपनी आधुनिक शिक्षा-दीक्षा, संस्कार-विचार, न्याय-नीति—जो कुछ भी अब तक तुम्हारी मनोवृत्ति के उपादान रहे हैं—देखोगे कि यहाँ आ कर उन सब की व्याख्या बदलती जा रही है। यदि तुम सच्चे भारतीय हो, यदि इस देश की संस्कृति के एक भी कण के साथ तुम्हारी अपनी मानवता की तिल भर प्रतीति हो सके तो सिर्फ़ तुम्हीं नहीं बदलोगे, तुम्हारी इच्छा अभिरुचि, संस्कार, अभ्यास, आदर्श, यहाँ तक कि तुम्हारी सहज प्रकृति में भी परिवर्तन अवश्यम्भावी है। लगेगा कि हिमालय की हवा में तुम्हारा अस्तित्व लीन हो गया है।

रास्ता बहुत लम्बा है, चढ़ाई कड़ी है। होने दो, ऋषिकेश से चलो, धीरे-धीरे चलो, नदी पार कर चलो, पहाड़ लाँघ कर चलो, उपत्यका पीछे छोड़ दो। यदि, देवी सुरेश्वरी भगवती भागीरथी को चाहते हो तो देवप्रयाग से जाओ। टेहरी से डुण्डागाँव और उत्तर काशी के रास्ते जाओ। यदि यमुनोत्री जाना हो तो सीधे उत्तर, गंगोत्री चाहो तो फिर वही पूर्व-पथ। पूर्व से उत्तर कितनी भी दूर जाओ, कहीं भी जाओ, भागीरथी तुम्हारे साथ ही रहेंगी। हिमानी तो और भी उत्तर में है, वही निर्जन भयानक तुषारप्रदेश है, देवाधिदेव की हिमजटा है, जिस के भीतर से जाती जाह्नवी की धारा गोमुख की दिशा में खो जाती है। अन्त में तुम गंगोत्री के गंगा-मन्दिर में विश्राम करो। गंगा का आदि और अन्त देखते रहो—गोमुख से गंगासागर तक लगभग दो हज़ार मील। संसार के किसी भी देश की संस्कृति ने एकमात्र नदी को इस प्रकार अपने प्रत्येक मांगलिक कार्य में इतनी श्रद्धा और अनुराग के साथ कभी ग्रहण नहीं किया।

कन्याकुमारी जाओ, मदुरा और रामेश्वरम् जाओ, आबू पहाड़ या द्वारका जाओ, जगन्नाथ या पंचवटी जाओ—सभी जगह तुम्हारा अन्तिम पुण्यलाभ गंगाजल के दान से ही होगा। इस गांगेय सभ्यता ने हो विशाल और विचित्र भारत को सर्वकालजयी सूत्र से बांध रखा है।

देवप्रयाग से रुद्रप्रयाग—अलकनन्दा से मन्दाकिनी। चारों ओर केवल 'गिरिशृंगमाला के महान् मौन में ध्यानस्थ वसुन्धरा' है। चिरदरिद्र गढ़वालियों में आत्म-परिचयहीन हो कर रहना ही ब्रह्मपुरा का वास्तविक परिचय पाने का मार्ग है।

सारा पश्चिमी तिब्बत भारत का ही एक अंश है, यह एक ऐतिहासिक सत्य है। ह्वेनत्सांग के युग के ब्रह्मपुरा की सीमा में कैलास पर्वत-श्रेणी, मानससरोवर और रावण-ह्रद थे। केदारनाथ और बदरीनाथ की चोटियों के पीछे तीन विराट् गिरिशिखर खड़े हैं—श्वेत वरुण, शिवलिंग और सुमेरु। इन के बीच में गोमुख से निःसृत गंगा की शोभा संसार के किसी भी देश के मनीषियों के लिए विस्मयकारी है, किन्तु इन शिखरों के ऊपर से जो हिमानी-स्तर सैकड़ों वर्गमील में फैला है उस के जटिल तल-पथ का सन्धान क्या किसी के लिए भी अभी तक सम्भव हुआ है? भूतत्त्ववेत्ताओं ने यहाँ हार मान कर गंगा की उत्पत्ति गढ़वाल की सीमा में मान ली है। पर वाल्मीकि ने कहा है: वेगवती भागीरथी का प्रखर प्रवाह देख कर कैलासनाथ को ध्यान आया कि यदि इस उन्मादिनी दिशाहारा को अबाध गति से बहने दिया गया तो यह कुलनाशिनी सर्व-नाश कर देगी! आकाश के देवता डर से काँपने लगे—सृष्टि कहीं रसातल में न चली जाये! किन्तु जब इन्द्र का ऐरावत भी बह गया तब कैलासनाथ शान्त नहीं रह सके, गंगा को समेट कर अपने जटिल जटा-सम्भार में धारण कर लिया। गंगा उस में अपना पथ खो बैठीं। गोमुख के उत्तर की बर्फ़ीली चोटियाँ शिव की जटिल जटाओं-जैसी ही हैं। इसी लिए गंगा का प्रथम दर्शन गढ़वाल में होता है। किन्तु जैसे गढ़वाल की उत्तरी सीमा से उत्तरकाशी के रास्ते भागीरथी गंगा आयी हैं वैसे ही उसी क्षेत्र से अलकनन्दा बदरिकाश्रम की ओर जा कर जोशीमठ के नीचे धवली गंगा में मिल जाती हैं। गंगोत्री की ओर गंगा के साथ मिलने वाली पहली नदी है केदार गंगा—इस की उत्पत्ति केदारनाथ पर्वत के बीच में हुई है।

देवतात्मा हिमालय की कहानी और परिचय के साथ भागीरथी का इतिहास आदि से अन्त तक जुड़ा है। गंगा की मूल धारा हिमालय की हिमानियों से संयुक्त है, इसी लिए इस की तट-भूमि पर भारतीय सभ्यता का सूत्रपात हुआ। भारत की संस्कृति का प्रथम मन्त्र गंगा का मन्त्र है। गंगा के किनारे ही पहला मन्दिर बना था, गंगा के तटवर्ती क्षेत्र में ही प्रथम जनपद बसा था। जैसे सहस्र धाराओं ने चारों ओर से आ कर और गंगा में मिल कर उसे ऐश्वर्यशालिनी बना दिया है वैसे ही गंगा को केन्द्रित कर भारतीय सभ्यता और इतिहास की सहस्रधारा भी नाना दिशाओं में चली गयी है। सगर राजवंश की साठ हज़ार सन्तानों की भस्मीभूत देहें गंगा के पुण्य-स्पर्श

से सजीव हो उठी थीं, यह कथा उस दिन को भाँति आज भी सत्य है। कारण, यदि किसी प्राकृतिक चमत्कार से गंगा की धारा ब्रह्मपुरा में ही कहीं सूख जाये तो भारत के दस-बारह करोड़ से भी अधिक नारी-पुरुष का जीवन असम्भव हो उठेगा। उत्तर भारत को सारो प्राकृतिक सम्पत्ति गंगा पर ही आधारित है। गंगा ही उत्तर भारतीयों के जीवन का मूल मन्त्र है। गंगा अर्थात् मर्त्य-गामिनी—जो निरन्तर गति-शीला है। गति का अर्थ ही जीवन है, गतिहीनता अर्थात् मृत्यु।

गंगा का पथ ही ब्रह्मपुरा का पथ है। हिमालय की 'महाभारतीय' गिरि-श्रेणी में श्रेष्ठ भू-भाग है—ब्रह्मपुरा। समग्र हिमालय में बहुत से शिखर और तुषार-किरीट हैं, किन्तु ब्रह्मपुरा गिरि-श्रेणी के समान पूजा किसी को भी नहीं मिलती। गौरीशृंग और गौरीशंकर, धवलगिरि और कंचनजंघा, अमरावती, तट पर भैरवघाट की नयनमोहिनी चोटी, धवलाधार और नांगा और हरमुख—ये सब अपनी दिव्य गरिमा के बावजूद जैसे अनादृत ही पड़े रह गये, इधर-उधर।

हिमालय का और कोई भी अंचल भारतवासियों को ब्रह्मपुरा जितना प्रिय नहीं है, इसी से यात्रियों के कलकण्ठ में ब्रह्मपुरा सदा मुखरित रहता है। इसी लिए आचार्य शंकर की अध्यात्म-प्रतिभा की श्रेष्ठ अभिव्यक्ति यहाँ हुई। उन के पहले भी युग-युगान्तर से भारतीय जनता इस गंगावतरण-पथ पर यात्रा करती रही है। केवल प्रस्तर-मन्दिर तीर्थ नहीं हैं, क्योंकि वे मानव-निर्मित हैं। असंख्य मन्दिर और मूर्तियाँ तो हैं आसपास! कलकत्ते में ही कम से कम पाँच सौ देवमन्दिर खड़े हैं, कौन लेता है उन की सुध? काशी जाइए, वहाँ तो रास्ते में, घाट पर ज़रा सा पैर चूका कि शिवमूर्ति से ठोकर खायी! कराची में, गोआ में, पाण्डिचेरी में, श्रीलंका में, चटगाँव में—कहाँ नहीं हैं देवमन्दिर? फिर भारत के लोग युग-युग में यही कहते आये हैं कि ब्रह्मपुरा का जोड़ भारत में दूसरा नहीं है! मन्दिर नहीं, वास्तव में पथ ही तीर्थ है और वह पथ है गंगा-वतरण का पथ। पथ समाप्त होते ही तीर्थ-यात्रा सम्पूर्ण हो जाती है। मन्दिर नहीं, देवता नहीं, केवल तीर्थ-परिक्रमा! गंगा-पथ जाऊँगा, ब्रह्मलोक के संकीर्ण गिरि-पथ में गंगा का उद्गम देखूँगा और उस के किनारे-किनारे चला जाऊँगा, जहाँ तक उस की गति है—यही है वह तीर्थ-परिक्रमा। इसी आनन्दोपलब्धि का नाम है भगवद्भक्ति। इस गंगा-पथ को ही तीर्थ यात्रा कहा गया है!

देवतात्मा हिमालय के रहस्यलोक अलकापुरी को देखने के लिए मर्त्यलोक के तीर्थयात्री दौड़े आते हैं। इस कड़ी चढ़ाई के रास्ते में कितनों ही की छाती फट गयी, कुछ साँस न ले सकने के कारण मर गये, कुछ बर्फ़ीले अन्धड़ से हताहत हुए। कितने ही रोग से, पथ-श्रम और उपवास न सह सकने से भी मर गये—इतिहास में इन की कहीं गिनती नहीं है। फिर भी ब्रह्मपुरा के गंगा-पथ के रम्य आकर्षण ने किसी भी युग के लोगों को स्थिर रहने नहीं दिया। दर्रे के अन्दर से दौड़ती उन्मादिनी गंगा की दुर्निवार धारा के समान ही उस के किनारे-किनारे तीर्थयात्रियों की अजेय प्राणधारा

भी अप्रतिहत गति से दौड़ती रही है। कभी आँधी, वर्षा, कड़ी सर्दी, कुहरा, महासूर्य की आग बरसाने वाली तेज़ धूप से वे परेशान होते हैं तो कभी ऋतुराज के नव घनश्याम वसन्तोत्सव से मुग्ध हो जाते हैं।

उन की इस आनन्द-वेदना की तरंग-माला में मैं ने भी अपने को बार-बार आत्मसात् किया है। हास्य-रुदन की गंगा-यमुना में डुबकियाँ ले घड़ा भरा है, विदा ली है। उन के बीच में हूँ; उन के आनन्द में, वेदना में सम्मिलित हुआ हूँ मैं। वे थके पैरों की यन्त्रणा से रोने लगे हैं तो मेरी आँखों में भी आँसू भर आये हैं। साँस न ले सकने से मेरा भी दम घुटने लगा है। वे सैकड़ों-हज़ारों हैं, वे हर साल, हर मौसम के हैं, वे जब से इस पथ पर आते रहे हैं मेरा चिरंतन मानस भी उन के साथ-साथ आया है। वे सब मेरी ही अभिव्यक्ति हैं, मेरी ही इच्छा हैं, मेरी ही एकाग्रता हैं। मैं एक हूँ, किन्तु अनेक भी हूँ, उन के बीच—'एकोऽहं बहुस्याम' मैं उन के साथ अभिन्न-अविच्छेद्य हूँ। उन सब को ले कर ही मेरे जीवन की व्याख्या हो सकती है।

पीछे की ओर गगनचुम्बी महाहिमालय की असंख्य चोटियाँ हैं; पुराणों में किसी ने अपना नाम रखा है कनककान्त, मणिरत्नाभ, शोणितशिखर तो किसी ने स्फटिक-पर्वत। इन के नाम सुन कर एक से दूसरे की उपलब्धि करनी चाही है मैं ने। दोनों आँखों में वासनाओं के दो प्रदीप जला कर यह खोजने चला हूँ कि प्राचीन हिमालय के वे खोये हुए शिखर कहाँ गये—कभी जिन का नाम था कदम्ब, कुक्कुट, गौतम और वासव, श्यामांग और शोभिता। आज भी वे मौजूद तो हैं किन्तु अब वे दूसरे नामों से अभिहित हैं। उन की अँधेरी गुफ़ाओं के नीचे शायद आज भी उस ज़माने की जंगली झाड़-झंखाड़ों से जली आग की लौ जलती है—जिस की सुनहली-पीली किरण में प्राचीन हिमालय के शेर-शिकारी किरात, यक्ष, राक्षस अपनी चोरावृता अर्धनग्न रमणियों को छिपाये रखते थे। कैलास और मन्दार के छोरों पर वह 'अनवन-प्तार' जल-राशि है—बाद में जिस का नाम मानसरोवर हो गया था—तुषार की पृष्ठभूमि में जिस की छाती पर आज भी सफेद और लाल कमल खिलते हैं। वहाँ गन्धमादन और चित्रकूट के आस-पास का अंश है जिसे तब किन्नर खण्ड बोलते थे क्या आज भी वहाँ हँसती-बोलती दिगम्बरा रमणियों की आवाज़ से गुहा-वासी पशुराज, केशरी सिंह चौंक पड़ते हैं? सर्वनाशिनी उर्वशी मेनकाएँ क्या आज भी सुमेरु के आस-पास पुरुरवा-विश्वामित्रों को खोजती फिरती हैं?

किन्तु ब्रह्मपुरा के पथ पर आज-कल तीर्थयात्री चलते हैं। प्यासे, थके-मादे, आँखों में सपने संजोये, उत्कण्ठित, कौतूहल से गरदन ऊँची किये चींटियों की कतारों सा उन का कारवाँ चला जा रहा है, मानो चल नहीं रहा है, खड़ा है; गतिशील है पर जैसे गति-वेग नहीं है उस में! वे कभी भागीरथी के किनारे चलते हैं तो कभी अलकनन्दा पर और कभी मन्दाकिनी, नन्दाकिनी और विष्णुगंगा पर, कभी पिण्डार और नायार में तो कभी

मूलगंगा और नीलधारा पर पहुँचते हैं। कितनी ही बार उन के जीवन के छोटे-छोटे इतिहास भी सुने हैं। कोई अपनी खोयी हुई संस्कृति खोजने आया है तो कोई जीवन-ज्वाला शान्त करने आया है। शायद, पति ने दूसरी बार शादी की है इसलिए पहली पत्नी तीर्थयात्रा करने आयी है। सन्तान न होने से सारी सम्पत्ति रसातल जाने वाली है; बहुत बड़े जमींदार सन्तान-कामना से आये हैं। संसार के किसी भी अखाड़े में स्थान नहीं मिला, गुसाईं जी वैष्णवी को साथ लेकर यात्रा पर निकले हैं। एक मात्र योग्य सन्तान की मृत्यु हो गयी है, रोती-कलपती माँ अपनी सारी वेदना हिमालय में प्रसारित करने आयी है। विश्वास-घातिनी नारी का मोह त्याग कर निराश प्रेमी दूर-दूरान्तर की ओर चल पड़ा है। संशयाच्छन्न दार्शनिक आत्म-शुद्धि के लिए आया है, बैरागी आत्म-ताड़ना के लिए। इन सब के साथ चले आये हैं, घूमते-फिरते व्यापारी, फ़कीर एवं बकने-झकने वाली स्त्रियाँ, निष्ठावती गृहिणी, नायक और नायिका; पंजाबी और दक्षिणी, गुजराती और मराठी, साधु और संन्यासी। कोई घर-द्वार छोड़ कर आया है तो कोई सारी रुकावटें तोड़ कर आया है, कोई सुख-शय्या छोड़ कर आया है तो किसी ने मोह-बन्धन काटकर इधर की ओर क़दम बढ़ाये हैं।

ऐतिहासिक युग ठीक कब से शुरू होता है, मुझे नहीं मालूम। किन्तु ऐतिहासिक युग में आकर देखता हूँ कि भौगोलिक और राष्ट्रीय सीमाओं में ब्रह्मपुरा बाँध दिया गया है। हम यह भूलने बैठे हैं कि आधुनिक पंजाब का एक अंश, सारी गढ़वाल और सहारनपुर का एक अंश, द्रोणाचार्य भूमि (आधुनिक देहरादून), कूर्मांचल (आधुनिक कुमायूँ), सारा पश्चिमी तिब्बत और पश्चिमी नेपाल—ब्रह्मपुरा इस सारे भू-भाग की संज्ञा थी। इतिहास की कोई तिथि तो नहीं मालूम पर श्रुति और स्मृति के अतिरिक्त शायद यह कोई नहीं जानता कि विशाल भारत की राष्ट्र-संहति एवं ऐक्य-साधना इसी ब्रह्मपुरा में पहले-पहल शुरू हुई थी। किसी को नहीं पता कि इसी ब्रह्मपुरा में बैठ कर महाकवि व्यास ने समग्र वेद-शास्त्रों को चार संहिताओं में विभाजित किया था। किन्तु ब्रह्मपुरा में एक बार शैव, शाक्त, जैन, बौद्ध, वैष्णव सभी प्रकार के धर्मों और मतों की परीक्षा चली थी। गुरु नानक, कबीर, महावीर, शंकर, दीपंकर, तुकाराम कोई भी नहीं छूटा था। ब्रह्मपुरा वही आदिम कसौटी है, जिस पर युग-युग में हिन्दू जाति के विभिन्न सम्प्रदाय, विभिन्न अध्यात्म-दर्शन, मतवाद और श्रद्धा-विश्वास कसे जाते हैं। रामायण की संस्कृति ने इस ब्रह्मपुरा पर अधिकार जमाना चाहा था—रामपुर, रामवाड़ा, राम गंगा, हनुमान चट्टी का राम मन्दिर, अगस्त मुनि, रामनगर, लक्ष्मणझूला, भरत मुनि की रेती के तपोवन में शत्रुघ्न का मन्दिर इस के प्रमाण हैं। फिर आया महाभारत। हरद्वार के भीमगोड़ा से इस की शुरुआत हुई। द्रोणभूमि इसी के पास है। आगे बढ़ते ही मिलेगी व्यास-गुहा और गंगा। मन्दाकिनी के किनारे भीमसेन, बलराम और उखीमठ हैं। विष्णुप्रयाग के बाद पाण्डुकेश्वर है। पिन्दार और अलकनन्दा में कर्ण प्रयाग। उस के बाद बदरीनाथ के आगे पाण्डवों का स्वर्गारोहण-पथ। इस के अतिरिक्त केदारखण्ड

और शिवपुराण का शुरू से अन्त तक आधिपत्य। बौद्ध युग में भी ब्रह्मपुरा का एक अत्यन्त दुस्तर पार्वत्य अंचल प्रधान हो गया था। यह हरद्वार से शुरू होता है। केदारनाथ के रास्ते बायीं ओर गुप्तकाशी और दाहिनी ओर उखीमठ हैं। इन्हीं को केन्द्र बना कर नाला चट्टी और बेथुआ चट्टी के चारों ओर एक जमाने में बौद्ध विहार, स्तूप और बोधिसत्व की मूर्तियाँ निर्मित हुई थीं। यहाँ के प्रसिद्ध जय-स्तम्भ से बौद्ध स्तूप का सुसादृश्य देख कर कोई भी चौंक उठता है। इस के भी प्रमाण मिलते हैं, कि स्वयं बदरीनाथ अंचल भी कभी बौद्ध-प्रधान था।

किन्तु मेरा ज्ञान और विद्या सामान्य हैं। मैं तो सिर्फ़ देखता फिरा हूँ, विवेचना तो नहीं की। बार-बार वर्णन ही किया, विश्लेषण तो नहीं किया। इस ब्रह्मपुरा में आकर, इस के तीर्थ-पथ पर क़दम बढ़ा कर, इस के दुरारोह पर्वतों की चढ़ाई या उतराई में क़दम बढ़ा कर कोई किसी का अपरिचित नहीं रहता। एक ही शिक्षा, एक ही संस्कृति, एक ही भावना ले कर सब चलते हैं। हज़ारों नर-नारी, जो कि तीर्थ यात्री हैं—मानो एक ही परिवार के हों। पुरुषों में अकर्मण्यता नहीं, स्त्रियों में पर्दा नहीं, यौवन की लज्जा की कुण्ठा नहीं। एक ही आहार, एक ही जगह टिन के नीचे रैन-बसेरा, एक ही मार्ग पर सब का मेल-जोल। हँसी-ठट्ठे और मौज-मजे का एक ही विषय। दुःख, वेदना, यन्त्रणा और रोग-क्लेश में प्रत्येक परिचित यात्री का दूसरे के प्रति सम-वेदना-ज्ञापन। पग-पग पर, पथ-पथ पर देखा है कि पंजाबी और बंगाली के, बिहारी और मराठी के, तमिल और आसामी के, सिन्धी और मद्रासी के दिलों के तार जुड़े हैं।

भारत का कैसा आश्चर्यजनक ऐक्य है। मन्त्र-विद्या, पूजा, प्रणाम, श्राद्ध-तर्पण, आचार-व्यवहार—सब में विस्मयकारी समन्वय है। जिस के साथ कभी परिचय तक नहीं हुआ उस से अपने सगे-सहोदर जैसी मदद मिलती है। रेलगाड़ी के डब्बे में जिन के साथ बातें करने में भी झिझकते थे, यहाँ आ कर उन्हीं के साथ खूब मिल-भेंट रहे हैं। हों न बिलकुल अपरिचित, आदमी हों या औरत एक दूसरे का हाथ पकड़ कर मजे-मजे में आगे बढ़ते जा रहे हैं; कष्ट होने पर जलपान कराते हैं, रसोई में हाथ बँटाते हैं; सोने के लिए बिस्तर लगा देते हैं। कोई किसी को नहीं जानता, एक मिनट का भी परिचय नहीं है, एक की भाषा दूसरे को नहीं मालूम, किन्तु क्या आश्चर्य है कि इस नदी-मेखली पार्वत्य शोभा की ओर ताक कर अचानक दो अपरिचित स्त्री-पुरुष ठहर गये और पथ-श्रम के बावजूद दोनों हँस पड़े, संकेतों के सहारे ही एक दूसरे की क्षेम-कुशल जान ली! और फिर उस विशाल पटभूमि के नीचे खड़े इन दो व्यक्तियों का यह क्षणिक बन्धुत्व चिरकालिक गहरी छाप छोड़ गया मन पर।

कन्याकुमारी से कश्मीर का कृष्णगिरि, द्वारका से ब्रह्मदेश, इस विस्तीर्ण अंचल को ले कर अखण्ड भारत का जो क्षुद्र महादेश बनता है उस के सभी पार्श्व सभी गंगा-पथ से पहुँचते हैं इसी ब्रह्मपुरा गढ़वाल में। यहाँ के तपोवनों और मन्दिरों में सारे मत और सारे मार्ग मिल गये हैं। इसी गंगा-भागीरथी, अलकनन्दा-मन्दाकिनी के किनारे-

किनारे। देवतात्मा हिमालय में सर्वाधिक प्रिय, सर्वाधिक पूज्य, और सर्वाधिक वन्य सुषमा सम्पन्न भूभाग यह अविभक्त गढ़वाल लगता है। बहुकाल व्यापी विज्ञापन द्वारा कश्मीर को भू-स्वर्ग कहा गया है। किन्तु दोनों आँखें खोल कर जिन्होंने कश्मीर और गढ़वाल की तुलना की है वे जानते हैं कि गढ़वाल में अनगिनत भू-स्वर्ग बिखरे पड़े हैं। भारत से बाहर के जो भी पर्यटक कश्मीर में स्विट्जरलैण्ड या आल्पस् पर्वत वाली आबोहवा पा जाते हैं वे ही कश्मीर की शतमुखी प्रशंसा करते हैं। किन्तु कश्मीर-हिमालय में देवतात्मा की प्रतीति नहीं है। मौज-मजे, घूमने-फिरने, सुयोग-सुविधा और विलास-व्यसन आदि की दृष्टि से कश्मीर आधुनिक पर्यटकों के लिए बेशक अतीव आरामदेह है? किन्तु गांगेय ब्रह्मपुरा की तो बात ही दूसरी है। यहाँ आज भी आधुनिक काल की वैज्ञानिक सभ्यता के आत्म-श्लाघामय रूप का दर्शन नहीं होता। यह तो मानो अनादि-अनन्त काल से आधुनिक है, लाखों-करोड़ों सालों से भी अधिक आधुनिक है। अनन्त काल के एक खण्ड को मानो इस ने अपने सर्वांग में समेट रखा है। यहाँ आने पर आप को दिखाई पड़ेगी भारत की मौलिक प्रतिमा, भारत की आदि संस्कृति, भारत का सर्व-काल-जयी ऐक्य मन्त्र। यहाँ सुख नहीं, आनन्द है। आराम नहीं, अनन्त मधुर अवकाश है। पर्याप्त मात्रा में आहार नहीं, विदुर का साग-पात है। वहाँ भोग है तो यहाँ त्याग है। सर्व-त्यागी साधु सर्व-नीति-भ्रष्ट भिखारी न हो जायें, इस लिए ब्रह्मपुरा में पुरुष-श्रेष्ठ कालीकमली वाले बाबा का आविर्भाव हुआ था। उन्होंने यहाँ देखा कि जीव मात्र शिव है, नर मात्र नारायण है। गोमुखी गंगोत्री, उत्तरकाशी अन्नपूर्णा, बुद्ध केदार, भैरवनाथ अथवा असी-वरुणा-भागीरथी का संगम सर्वत्र ही एक बात है। केदारनाथ, बदरीनाथ, तुंगनाथ, त्रियुगीनाथ, कमलेश्वर, गोपेश्वर, पाण्डुकेश्वर, एक ही पत्थर के मन्दिर हैं, सब जगह। किन्तु प्रत्येक मन्दिर की वेदी पर नित्य प्रणाम करती आ रही है युग-युग की भारतीय महाजनता।

[२]

हमारे पूर्व प्रान्त में देवतात्मा हिमालय की जटा जैसे जगह-जगह खुली झूल रही है दक्षिण की ओर—इस अंचल में इस की शाखा-प्रशाखाएँ वटकाई, लुसाई, नागा, गारो, खसिया, जयन्तिया आदि नामों से परिचित हैं—वैसे ही उत्तर-पश्चिम के सीमान्त भारत में हिमालय का जटिल जटा-सम्भार हिन्दूकुश के दक्षिण भू-भाग में फैल गया है। ये सब पर्वतश्रेणियाँ विभिन्न नामों से अभिहित होती हैं; यथा, चित्रल का शस्य-

श्यामला भू-सौन्दर्य-सम्पन्न सुषमा-मण्डित उपत्यका के पास कोहिस्तान और काफ़िरिस्तान, पंजसिर और सफ़ेद कोह और पाघमाना, चोचिखेल तथा मोरन था। इसी प्रकार पर्वतराज की ओर भी बहुत सी शाखाएँ सुलेमान पहाड़ की ओर चली गयी हैं। वैसे ये पुरातन काल से ही हिन्दूकुश और हिन्दूराज पर्वतमाला की शाखा-प्रशाखाओं की तरह परिज्ञात हैं तथापि भारत के सीमान्त में ये सदा से ही अचिह्नित रही हैं। कश्मीर की सीमा-रेखा के बारे में भी भारत ने सैकड़ों वर्षों तक कभी परवाह नहीं की थी। यही बात बलूचिस्तान, गिलगित, पामीर, समग्र कश्मीर प्रदेश और असम की ओर चीन तथा बर्मा के साथ हमारी सीमा-रेखाओं के बारे में भी सच है। जो सीमान्त अभी तक चलता आया है वही चल रहा है। आज भी तिब्बत-भारत, गिलगित, हिन्दूकुश-कश्मीर, भूटान-तिब्बत आदि की सीमाएँ एकदम साफ़-साफ़ चिह्नित नहीं हैं! अभी तक राष्ट्रीय कारणों से कोई समस्या नहीं उठी थी इस लिए भारत उदासीन बना रहा। अन्यथा, यह बात कितनी ही बार प्रमाणित हो चुकी है कि सम्पूर्ण हिमालय अपनी सारी शाखा-प्रशाखाओं सहित अखण्ड भारत की राष्ट्रीय सीमाओं में आता है। झगड़ा शुरू होता है अनगिनत उपत्यकाओं और अधित्यकाओं को ले कर। जो यह कहते हैं कि धार्मिक-विश्वास से राष्ट्र की सीमाएँ बनती हैं वे भी बिलकुल ग़लत नहीं कहते। धर्मानुष्ठानों के विभिन्न मतवादों एवं क्रिया-प्रक्रियाओं से ही सामाजिक रीति-नीति और आचार-विचार बदलते हैं। जैसे कि बौद्ध-तिब्बत और शैव भारत में अन्तर है, तुर्क-ईरानियों से आर्य जाति का भेद है। इन भेदों से ही धीरे-धीरे राष्ट्र-सीमाएँ भी बनी हैं। किसी ने हिमालय की उपत्यकाओं पर कब्जा कर लिया तो किसी ने अधित्यकाओं पर। इसी तरह ये लोग अपनी-अपनी सीमाएँ फैलाते गये और उन्हीं में अचिह्नित राष्ट्र-सीमाएँ भी बनती गयीं, अभी तक। पश्चिम तिब्बत के एक अंश पर से भारत का अधिकार कब मिटा यह इस युग में सचमुच गवेषणीय है। चित्रल राज्य से कश्मीर का विच्छेद कब और किस लिए हुआ—यह सवाल अब कोई उठाना ही नहीं चाहता!

गान्धार यदि कन्दहार बन गया है और पश्तो भाषा का प्रथम पाठ संस्कृत से आया है तब तो भारत की सांस्कृतिक सीमा अफगानिस्तान तक फैली है इस में सन्देह का अवकाश नहीं है। कौन नहीं जानता कि कभी गान्धार पारस के आंशिक भूभाग तक प्रसारित था—अफ़गानिस्तान के जन्म को तो अभी हुए ही कितने दिन हैं। किसी ज़माने में सिन्धु उर्फ़ हिन्दू देश की सीमा भी तो पारस तक प्रसारित थी। भारत की सभ्यता का विस्तार भी तो हमेशा हिमालय को केन्द्र बना कर हुआ है। हिमालय से नदियाँ उतरी हैं और उसी के साथ आर्य संस्कृति भी। आज कल इस संस्कृति का एक छोर सिन्धु है तो दूसरा है ब्रह्मपुत्र। इन्हीं के आस-पास फैली हैं हिमालय की शाखा-प्रशाखाएँ।

पेशावर से रवाना होते वक़्त मेरे मन में यही नक़्शा था। मेरा प्रधान आकर्षण

था उत्तर-पश्चिम हिमालय देखना। निस्सन्देह यह लक्ष्य अस्पष्ट और अनिश्चित था किन्तु उस की मूल प्रेरणा कम प्रखर नहीं थी। बचपन में जब रूपकथा के राजकुमार की बातें सुनता था तब हिमालय का नाम भी सुनने में नहीं आता था। वह मेरे मन में केवल एक प्रश्न-रूप में समाया रहता था। उम्र बढ़ने के साथ ही समझा कि रूपकथा में सब कुछ है, केवल हिमालय नहीं है। न रहने का कारण भी है। बंगालियों की कल्पना एक चीज़ है, शारीरिक शक्ति बिलकुल दूसरी।

रात के नौ बजे रावलपिण्डी छावनी से गाड़ी पेशावर की ओर चल पड़ी। कड़ाके की सर्दी थी उस दिन। उत्तरी पहाड़ी प्रदेश में प्रसारित अनजाना देश व उस का अपरिचित पथ। गाड़ी चल तो पड़ी लेकिन जैसे चलना नहीं चाहती थी, मानो थके पहिये निद्रालु हो उठे हों। बाहर कुछ भी दिखाई नहीं पड़ रहा था। जैसे काली रात ने भी इसी बीच आँखें बन्द कर ली हों। गाड़ी के नीचे पहियों का घन-घर्षण कान लगा कर सुनता तो लगता कि दुर्घटना होने वाली है। लम्बी-चौड़ी देह के तुर्क-ईरानी-अफ़रीदी जब लाल-लाल सेब चबाते हैं तो उन के दोनों जबड़ों की चमचमाती दन्त-पंक्तियों के घर्षण से भी ऐसी ही आवाज़ होती है। नज़दीक से देखने पर मेरे जैसे बंगाली छोकरे को डर लगता है। उस रात गाड़ी में मेरे साथ दो-चार हमसफ़र हिन्दुस्तानी हैं, इतना तो पता था लेकिन उन की आदतों एवं आचार-विचार से तो मेरा किंचित् भी मेल नहीं बैठता था। उन की देह की गन्ध और साँसों में जैसे इस अंचल का गुप्त इतिहास छिपा है। शक, हूण, तुर्की-तातार यहाँ तक कि ग्रीक-विजय की भी याद आ जाती है। याद आया नादिरशाह, चंगेज खान और ग़ज़नी का महमूद। जैसा विशाल शरीर है वैसे ही अनोखे नयन, जिन में अकसर सुर्मई रेखाएँ खिंची रहती हैं। कटी-सँवरी दाढ़ी में प्रायः मेंहदी का रंग, छोटी-छोटी मूँछें धारदार छुरी जैसी। बाँह जितनी लम्बी उतनी ही समर्थ और चौड़ी, मज़बूत कलाई के आगे उँगलियाँ तो ऐसी कि देखते ही डर लगे। सच कहने में क्या झिझक, डर तो मेरे साथ ही यात्री बना बैठा था। नयी जगह के नाम से ही मुझे डर लगता है। लेकिन भय से ही मेरी सारी उद्दीपना भी जन्मती है। उस उनींदी गाड़ी की धीमी-धीमी चाल से आगे बढ़ते मेरे शरीर में सिर्फ़ जाड़े की ही नहीं, डर की भी कँपकँपी थी। रोशनी इतनी धुँधली थी कि आस-पास काठ की दीवारों पर दानवीय देहों की भयावनी परछाइयाँ पड़ने लगीं। हरेक के पास एक हुक़्क़ा। चिलम सजाने की सामग्री तो साथ-साथ लगी फिरती है। लोहे की जंजीरों से बँधे चिलम-चिमटे, जिन के पैने नुकीले नग्न भागों की ओर देख-देख गला सूख जाता है।

तब भी मुझे जाना ही होगा। यही तो मेरी नियति का निर्देश है। काफ़िरिस्तान से कोहिस्तान कहाँ—किस पहाड़ में मिलता है, यह मुझे देखना ही होगा। अपने बचपन में भूगोल में पढ़ी काराकोरम पर्वत-श्रेणी गिलगित के उत्तर से गुज़रती हिन्दूकुश-गिरिमाला में कहाँ जुड़ी, यह देखे बिना मेरा काम जो नहीं चलेगा! उन के दक्षिणी

भूभाग से आता है सिन्धु नद। कैलास से शुरू की है उस ने अपनी मंजिल। अनगिनत गिरि-गह्वर पार करता लद्दाख के आस-पास से गुजरता वह उत्तुंग नंगा-पर्वत के तले गिलगित आ पहुँचा है। यहाँ से उत्तर की ओर देखिए तो रूस, और दक्षिण में भारत। फिर हुंजा और दक्षिण पामीर से होता हजारा जिले में आ जाता है और उस के उपरान्त इसी अँधेरे रास्ते में जहाँ से आज मैं गुजर रहा हूँ।

तक्षशिला उतरने की बात थी, वहाँ से हवैलियन और एबटाबाद जाने की सुविधा है। इतना याद है कि तक्षशिला की सांग्राहिकी (म्यूजियम) के अध्यक्ष एक बंगाली सज्जन हैं। दो ही तो घर हैं बंगालियों के वहाँ। लेकिन पहले खबर नहीं भेजी थी, सो उतरा भी नहीं। तक्षशिला से गाड़ी अटक की ओर बढ़ी। अटक के आगे पड़ता कैम्पबेलपुर। वहाँ से पश्चिम में कोहाट और दक्षिण में सीधे सिन्धु के किनारे-किनारे सारा पंजाब, सीमान्त पार का मुलतान और बहावलपुर होते हुए सिन्धु देश। पर मुझे तो यह देखना था कि हिन्दूकुश और काराकोरम मिला कर पूर्वी अफ़ग़ानिस्तान तक जो एक बड़ा भूभाग है, उस पर आज से एक हजार साल पहले जयपाल का राज्य था। काबुल और कुनार नदियों के किनारे-किनारे उस जमाने के राजवंशों के अगणित कंकाल बालू और कंकड़ों के नीचे दबे पड़े हैं। कौतूहल मुझे हमेशा यत्र-तत्र ले जाता रहा है।

अफ़रीदी दस्युओं का तो इधर यह हाल कि गहन अँधेरी रातों में कैम्पबेल से पहले कहीं भी गाड़ी रोकने का हुक्म नहीं है। बहुत ही जरूरी हो और पहले का पूरा बन्दोबस्त हो तभी रात में इस लाइन पर औरतें यात्रा कर पाती हैं। सरकार ने पहले से कह रखा है कि इस मामले में वह कोई जिम्मेदारी नहीं लेती। यह लालच और गुण्डागिरी नहीं, महज एक जरूरत की बात है। पश्चिमी पंजाब से पूर्वी अफ़ग़ानिस्तान तक औरतों की संख्या मर्दों से बहुत ही कम है। जिन के घर में औरतों की संख्या अधिक है उन्हीं को यहाँ आभिजात्य प्राप्त है। इन लोगों ने अपरिमित शक्तिशाली अँगरेजों के जगद्व्यापी सामरिक आयोजन से कभी हार नहीं मानी किन्तु घर के काम-काज में निपुण मृगनयनी के मधुर शासन के ये लोग क्रीतदास बने रहते हैं। जब ये लूटमार करते हैं तो सब से पहले औरतों पर नजर डालते हैं। स्वभावतः ये लोग 'कुलच्छन' हैं सो किसी तरह किसी की सुख-शान्तिमयी गिरस्ती सह नहीं पाते। शान्तिप्रिय नागरिकों की बस्तियों पर हमला कर ये उन के घर-द्वार जला डालते हैं और उन की बहू-बेटियों का अपहरण कर अपने यहाँ जन्म भर उन की क़दमबोसी करते रहते हैं। रावलपिण्डी से मरी पहाड़ के रास्ते में देखा था कि एक कटाक्षपात-निपुणा रमणी को खुश करने के लिए कम से कम सौ मर्दों के आँख-मुँह कैसे चमक रहे थे! मोटर-ड्राइवर ने किराया नहीं लिया। दूकानदार ने बिला क़ीमत खाना जुटा दिया, भिखारी ने खुशी-खुशी गाना सुनाया, कुलियों ने सामान ढो दिया, उस की थोड़ी भी सेवा कर पाने से मानो सब कृतार्थ हो रहे हैं। औरतें ही हैं, जो नहीं हैं उन के यहाँ।

औरतों की उन्हें बड़ी ज़रूरत जो है !

आधी रात गये कृष्णपक्ष का चाँद निकल आया। धुँधली किरण और धुँधलके से व्याप्त परिपार्श्व। किन्तु उस झुटपुटे में भी परछाइयाँ साफ़ नज़र पड़ती हैं। बालू और पत्थरों पर पर्वतश्रेणी अथवा बस्ती का कहीं नामोनिशाँ तक नहीं। पानी, मिट्टी, आशा-विश्वास, स्नेह की छाया—कहीं कुछ भी तो नहीं दीख पड़ता, कँटीली झाड़ियों में, जंगली खजूरों के झुरमुट में। घूम-घूम कर थकी-थकाई नज़रें फिर अपने पास ही लौट आती हैं। पता नहीं आज उस अंचल में कितने परिवर्तन हो चुके हैं।

गाड़ी अटक की ओर बढ़ी। यह गोरों की छावनी है लेकिन अँधेरे में खास कुछ दिखाई नहीं पड़ा। कान लगाते ही हथियारों की झनझनाहट, गोली-बारूद के बक्सों की खेंच-खाँच सुनायी दे जाती है, अथवा हुक्के की चिलम से बँधी जंजीर में लगे चिमटे की आवाज़। चारों ओर एक गन्ध फैली है जो हिन्दुस्तानियों के लिए बिलकुल अनजानी है। यह गन्ध उन के तम्बाकू में, स्वभाव में, जंगलीपन में, खूँख्वारी में और पहाड़ी रुक्षता में रम गयी है। हम लोग अटक की ओर आ गये हैं। इस के बाद ही सिन्धु नदी का पुल है। किन्तु रावलपिण्डी के ब्राउन स्ट्रीट वाले मेस के अड्डे पर और उस के बाद वेस्टरीज के पास ? रहते-रहते सुन चुका हूँ कि इस प्रदेश की सीमाएँ भी केवल अनियन्त्रित ही नहीं अपितु अचिह्नित भी हैं। कोहिस्तान के नीचे से हथियार-बन्द अफ़रीदी दस्यु काबुल पार कर अटक के पुल के चारों ओर लूट करने आते हैं। इतिहास कहता है, ठीक यहीं से यूनानी सम्राट् 'सिकन्दर' ने भारत पर हमला किया था। अफ़रीदो लूटते हैं ट्रेन, फ़सल और हथियार, द्रव्य और दयिता—अगर हाथ के नज़दीक हों। पर्वत-कन्दराओं में छिपे रहते हैं। झाड़ियों में पड़े रहते हैं। वहीं से राइफल चलाते हैं और कौन नहीं जानता कि उन के निशाने अचूक होते हैं। एक सौ वर्ष से उन्होंने अँगरेज़ों को परेशान किया है। तोप-बन्दूकों और हवाई जहाजों की ज़रा भी परवाह नहीं करते। उन के लिए मार-काट, खून-खच्चर की कोई क़ीमत नहीं। अशान्ति और आक्रमण उन के स्वभाव में आ गये हैं। हिमालय के पत्थरों से उन्हें कठिन स्वभाव मिला है। ऊसर-धूसर कँकरीले प्रदेशों की रुक्षता से पायी है बेरहमी। ये लोग मार खा कर मरे हैं या भाग गये हैं किन्तु हार कभी नहीं मानी। सगे भाई को गोली मार सकते हैं, सन्तान की हत्या कर सकते हैं, पिता के प्राण ले सकते हैं किन्तु स्वाधीनता का मर्यादा-बोध कभी नहीं छोड़ते। उच्छृंखलता के मज़े छोड़ कर नागरिक सभ्यता के सामने मुट्ठी भर भीख के लिए ये कभी हाथ नहीं बढ़ा पाते। हमेशा से ये यही सुनते आ रहे हैं कि ये बर्बर हैं, निर्दय हैं, सभ्य समाज के पास खड़े होने लायक़ नहीं, न इन का कोई अपना समाज है न संस्कृति। इस अपयश की कालिमा ये लोग अभी तक धारण किये चले आ रहे हैं, फिर भी अँगरेज़ों को आतम-विक्रय नहीं करते। भय से अश्रद्धा जन्मती है, कौन नहीं जानता। कोई भी अँगरेज टॉमी किसी भी विशाल-काय अफ़रीदी के सामने खड़ा हो कर काँप उठता है। इतना क्षुद्र है, इतना मामूली है

वह इन के सामने। अँगरेज़ इन से डरते थे इस लिए अश्रद्धेय प्रचार करते फिरते थे। अफ़ग़ानियों से उन्हें लड़ाने के लिए और सीमान्त पर पहरा देने के कूटनीतिक कारणों से अँगरेज़ों ने उन लोगों के बीच डूरेण्ड लाइन खींची थी। किन्तु इस से राजनीतिक, सांस्कृतिक, सामाजिक किसी भी प्रकार का विच्छेद नहीं हो सका। लैंडीकोटल की सराय में यदि आज भी कोई अफ़ग़ानी आ खड़ा हो तो उसे वहां के सभी अपने जान पड़ते हैं, बेगाने नहीं, जैसे आज कलकत्ते का आदमी रेडक्लिफ़ लाइन पार कर के ढाका में जा खड़ा हो तो वह अपनों को पहचान सकता है। आपस में फूट डालने की कुकीर्ति अँगरेज़ों के लिए नयी नहीं है—आयरलैंड, पैलेस्टाइन, स्वेज, बोर्नियो, कोरिया और अन्य कितनी ही जगह हैं जहां कि अँगरेज़ी साम्राज्य पर कभी सूर्यास्त नहीं होता।

कैम्पबेलपुर के बाद जब देखा कि डब्बे में और कोई नहीं है तो सारी देह सिहर उठी। गाड़ी सिन्धु-नदी पार कर पश्चिम की ओर बढ़ी। पीछे की ओर क्षय-क्षत धुंधली चाँदनी में हर पहाड़ पर एक तरह की मलिनता उभर आयी है। इस को स्वप्नोन्मीलित भाव कहना ग़लत नहीं होगा। लगता था, मौत की पाण्डुरता छा रही हो। हिमालय में और कहीं भी ऐसी निर्जीव जड़ता नज़र नहीं आती। पार्वत्य प्रकृति का ऐसा कुटिल विद्वेष, ऐसी हिंस्र भृकुटि और कहीं नहीं देखेंगे आप। मैं बहुत थका था। दुनिया भर की नींद मुझे घेरे थी। किन्तु आँख लगते ही तो दुर्भावनाओं का अन्त नहीं रहता। निद्रा का अर्थ ही पर-निर्भरता है जिसे कि आत्म-विलोप कहते हैं। अपने ऊपर काबू रखने के लिए ही तो जगा रहना ज़रूरी है। इसलिए दोनों आँखें फाड़-फाड़ कर मुझे वह सारी हिमावृत रात आँखों ही आँखों में काट देनी पड़ी। खिड़की से बाहर एकटक ताकते हुए मैं उस हिमावृत रात का मृत्यु-मलिन मुख निष्प्राण पार्वत्य प्रदेश के ऊपर से गुज़रता हुआ देखता रहा। शायद ही फिर कभी ऐसा अवास्तविक दृश्य मेरी नज़र में पड़ेगा।

रात के तीसरे प्रहर नौशेरा पार कर गयी गाड़ी। सोचने में बड़ा अच्छा लग रहा है। महाभारत के गान्धार राज्य को लांघता जा रहा हूं। चन्द्र-वंशियों का वह शासन स्मृति पटल पर उभर आया जब कि उन की राजधानी पुरुषपुर यानी आज का पेशावर थी। उस के बाद यहाँ बौद्ध-सभ्यता आयी, असंख्य बौद्ध-शास्त्रकारों की जन्म-भूमि बनी यह। पुरुषपुर उस ज़माने में आर्यावर्त और बौद्ध-सभ्यता का लीला-निकेतन था। सैकड़ों बौद्ध मठ और चैत्य सारे प्रदेश में छा गये और इसे तीर्थ-स्थान बना डाला। यूनानी और बौद्ध प्रस्तर-शिल्प का उदय इसी अंचल में हुआ था। भारत की मूर्तिकला का जन्म सब से पहली बार यहीं हुआ था।

पेशावर की गोरा-छावनी में गाड़ी पहुँची तो पौ फट चुकी थी। उषा की प्रथम रेखा तब तक मेरी निगाह में नहीं पड़ी थी। आँखें बन्द किये मेरा भूखा मन डेढ़ हज़ार मील दूर चला गया था, जहाँ कि मेरे शयन-गृह की खिड़की से चौधरी-घर के नारियल के दो पेड़ और उन का हरसिंगार दिखाई पड़ते थे। सुबह की पहली रोशनी उन्हीं से

छन-छन कर आती है। आश्चर्य, यात्रा में रहूँ तो घर की याद बरबस आ जाती है और घर बैठने पर यात्रा का आनन्द अस्थिर कर देता है।

जाड़े ने जकड़ लिया है। ओवर-कोट के नीचे अगर एक पुल-ओवर और होता तो यहाँ कितना काम देता। दोनों पैर संज्ञाहीन से हो गये हैं। कुछ हरकत नहीं की तो देह में गरमी नहीं आयेगी। बहुत कोशिश करने पर एक प्याला चाय जुटा पाया। गोरा-छावनी स्टेशन तो फिर भी कुछ साफ़-सुथरा है, सिटी स्टेशन तो जितना गन्दा है उतनी ही वहाँ मलिनों की भीड़ भी है। यहाँ के पुलिस साहब बंगाली हैं। इन का लड़का रावलपिण्डी में साथ रह चुका है। एक विख्यात बंगाली डॉक्टर भी हैं। बड़े ही अतिथि-वत्सल, नाम है चारुचन्द्र घोष। उन का प्रभाव, प्रताप और प्रतिष्ठा यहाँ सर्व-विदित है। सैन्य-विभाग और सामरिक हिसाब-विभाग में कुछ बंगाली वहाँ थे। उन्हीं की बस्ती को 'बाबू महल्ला' कहते हैं। बाबू माने बंगाली और बंगाली जहाँ होंगे वहाँ एक कालीबाड़ी अवश्य होगी। लाहौर, रावलपिण्डी, अमृतसर कहाँ नहीं है कालीबाड़ी ? बाद में पता चला कि इन कालीबाड़ियों के संस्थापक थे दिगम्बर मुखोपाध्याय, चौबीस-परगना ज़िला के निवासी। शायद ये प्रतिष्ठान आज भी खड़े हों किन्तु अब उन में न काली होगी, न बंगाली। सामरिक हिसाब-विभाग के कर्मचारी के नाम पर बनी शशिभूषण चटर्जी स्ट्रीट भी अब शायद ही वहाँ बाक़ी हो। पश्चिम पंजाब (आधुनिक पश्चिम पाकिस्तान) में बंगाली हिन्दुओं के कितने ही प्रतिष्ठान थे—स्कूल, पाठशाला, नाट्य-समिति, प्रसूतिगृह, शिवमन्दिर, जलाशय, दातव्य औषधालय। क्या आज वे हैं ? क्या पता ! शायद उन के नामोनिशाँ ढूँढ़ने पर भी न मिलें।

छावनी और सिटी दोनों में ज़मीन-आसमान का फ़र्क़ है। एक विलायती है तो दूसरा देशी। एक पाश्चात्य है तो दूसरा प्राच्य। कौन नहीं जानता कि पहाड़ी लोग कुछ गन्दे होते हैं, मैले-कुचैले, हाथ-पैरों पर मनों मैल जमा, मुँह और सिर भी साफ़ नहीं। सारे हिमालय में इस में कोई फ़र्क़ नहीं पड़ता। असम में जो देखिएगा वही गढ़वाल के पहाड़ी रास्तों पर भी। कुमायूनियों की देह पर जो मलिनता दीखेगी वही लद्दाख के पथ में भी। जिस्म में ताक़त की कमी नहीं है। जानवर की तरह मेहनत में जुट सकते हैं किन्तु चिरन्तन दारिद्र्य की छाप सर्वत्र लगी है। मसूरी में मेरा एक रसोइया था गोवर्धनसिंह। बहुत ही बढ़िया खाना बनाता था। उसे कलकत्ता आने के लिए कहा। कभी राज़ी नहीं हुआ। मसूरी के पहाड़ी रास्ते चलने पर देवप्रयाग की ओर अपने घर वह चार दिन में पहुँचता था, लेकिन हज़ार रुपये की तनख्वाह पर भी गरम मुल्क में आने को तैयार नहीं था। यही हाल पेशावरियों का भी है। गरमियों में प्रखर ताप से सारा उत्तर-पश्चिम सीमान्त, सुलेमान पहाड़ का पूर्वी हिस्सा, समग्र सिन्ध का और बिलोचिस्तान का रेतीला-पथरीला प्रदेश जल-भुन जाता है, किन्तु सन्ध्या के बाद इतनी ठंड पड़ती है कि कँपकँपी आ जाये। यह ठण्ड और हलकी हवा की पर्त ही उन्हें संजीवित रखती है। वे

तकलीफ़ पाते हैं, हाँफते नहीं। जाड़े की रातों में कड़ाके की सर्दी में पेड़ के परिन्दे, मैदान के दरिन्दे और घरों के बाशिन्दे मर ही क्यों न जायें, लेकिन गरम देश में नहीं जायेंगे।

सुबह की चढ़ती धूप। स्टेशन से बाहर आते ही टूटा-फूटा पेशावर दिखाई पड़ा। सब-कुछ बदल गया है। पश्चिम पंजाब के साथ सीमान्त का कोई मेल नहीं। सारा भारत एक तरफ़ और यह दूसरी तरफ़। ये लोग सिन्धु नदी के उस पार के प्रदेश को हिन्दुस्तान बोलते हैं। हज़ारों साल से यही बोलते आये हैं। आज ही नयी बात नहीं है कोई। पश्चिम पंजाब के मुसलमान भी उन के लिए भिन्न-देशी हैं। इन से उन का ज़रा भी नाड़ी-सम्बन्ध नहीं है। पाकिस्तान के मुसलमान भी इन के लिए हिन्दुस्तानी हैं, दुश्मन हैं, ज़बरदस्ती उन का इलाक़ा हथियाये बैठे हैं। पेशावर में उतरते ही ये बातें सुनाई पड़ेंगी। उन के चेहरे पर शक, अजीब-से व्यंग्य-कौतुक झलकते हैं। इन की मनोवृत्ति असहयोगी है। काफ़ीखाने के सामने खड़े होते ही उन की भवों पर उपेक्षा और बैर-भाव झलक पड़ते हैं। खाने की दुकान भी पूछिये तो कोई नहीं बतायेगा। ताँगेवाले को ठहराना चाहें तो सुनी-अनसुनी कर आगे बढ़ जायेगा। पुलिस से कुछ पूछिये तो वह भी नाराज़गी दिखाती है। हम हिन्दुस्तानी, हिन्दू हों या मुसलमान, उन के दुश्मन हैं। स्टेशन के बाहर आते ही एक हिन्दुस्तानी मुसलमान से यहाँ के हालचाल पूछे तो बोला, स्टेशन से शुरू होती यह सड़क आगे खजूरोंवाले मैदान तक जाती है। ख़बरदार ! उस के आस-पास न गुज़रियेगा। वह सरकारी इलाक़े से बाहर है (मानो चौरंगी तो सरकारी इलाक़ा है और मैदान की ओर क़दम बढ़ाये कि मुसीबतें टूटीं सिर पर) रेल और मोटर का रास्ता हमारा है, मैदान का उन का। वे असभ्य अफ़रीदी हैं, उन का यक़ीन न करियेगा !

उन की यह बात सुनते ही सहम गया था। क़दम-क़दम पर सन्देह। यहाँ ज़िन्दगी इतनी अविश्वासी है ! ऊँटों का काफ़िला चला आ रहा है। घिरी कनात के अन्दर और बाहर हर आदमी के हाथों में राइफ़ल है। कुली के हाथों में राइफ़ल, होटल वालों के हाथों में, चरवाहे के भी हाथों में। रास्ते में घोड़े और ऊँट चरते-फिरते हैं। घने रोयेंदार दुम्बा और बड़े-बड़े मुर्ग़। सड़क के किनारे ही खानाबदोश तुर्क-ईरानियों के तम्बू गड़े हैं। किसी औरत का सारा शरीर काले आलखल्ला से ढँका है, सिवा मुँह के और कोई भी तिरछी रेखाएँ या गोलाइयाँ नहीं दिखाई पड़ती हैं। इन्हीं में सुर्मा लगानेवाले काबुली आसानी से घुलमिल जाते हैं। उन के हाथों में भी दुनाली बन्दूक़ है। ये मुर्ग़ों को नाखूनों से चीरते हैं, बछड़ों को चाक़ू से काट डालते हैं। दाँतों से खाल उधेड़ते हैं और कच्चा मांस झोली में रोटियों के साथ बाँध कर ऊँट पर जा बैठते हैं। बस, चल दिये एक मुल्क से दूसरे मुल्क। हिन्दूकुश, पामीर और काराकोरम लाँघ कर इयारकन्द और खोताना नदी पार कर सीधा मध्य-एशिया को, ताकला-माकान का रास्ता पकड़ा और सीधे मंगोलिया पहुँच गये।

और कुछ नहीं तो जलालाबाद की सड़क पकड़ी और हेलमन्द नदी पार कर एक के बाद एक पहाड़ लाँघते हुए मझियारी शरीफ़ जा पहुँचे। उपत्यकाओं के पथरीले, कँकरीले, रेतीले दुर्गम पथ पार करना इन्हें अच्छा लगता है। ऐसे रास्तों पर दो-चार सौ मील की चढ़ाई-उतराई पैदल तय करना उन के लिए रोजमर्रा की आदत में शामिल है। सिर्फ़ रेगिस्तान में ही इन को मुसीबत जान पड़ती है। वहाँ का एकमात्र यान-वाहन ऊँट इन की बहुमूल्य सम्पत्ति है। जिस के पास ऊँटों की बड़ी संख्या है वही सब से बड़ा सौदागर माना जाता है। ऊँटों का कारवाँ हजार डेढ़ हजार मील तो यों ही चला जाता है—उन की पीठों पर सैकड़ों मन ऊन, तम्बाकू, लोहे की चीजें, हींग, चमड़ा, सूखा मांस, बेशक़ीमती चिड़ियाँ, सूती और रेशमी कपड़े लदे होते हैं। एक के बाद एक क़तार बाँधे चले जा रहे हैं। अगर नदी के पास आ गये तो मशकों में पानी भर कर ऊँटों पर लादा और रेगिस्तान के निर्जल प्रदेशों में बेच डाला। अनादि-अनन्त काल से उन की जीवन-पद्धति यही रही है। उन्हें न इस से ऊब होती है न प्रगति या उन्नति की इच्छा।............खजुरों के झुरमुट या जंगल उन्हें यत्र-तत्र मिल जाते हैं, उन्हीं के आस-पास रात में डेरा डालते हैं वे, उन्हीं के आस-पास की भली-बुरी जगहों पर दिन भर सफ़र करते हैं। इस से बाहर उन की ज़िन्दगी कभी नहीं दिखाई पड़ी।

पेशावर से रेल खैबर दर्रे के गहन लोक में चली जाती है। सिर्फ़ पैंतीस मील का टेढ़ा-मेढ़ा रास्ता है। ठीक तो याद नहीं, शायद साठ-सत्तर सुरंगें (टनेल) पड़ती हैं रास्ते में। कोई बड़ी है तो कोई छोटी। बंगाली इंजीनियरों की देख-रेख में बनी थीं ये सुरंगें। जब आर्यावर्त और दक्षिणात्य सो रहे थे तब बंगाल बृहत्तर हिन्दुस्तान की ओर अग्रसर हुआ और अफ़ग़ान, ईरान, बरमा और चीन देश तक जा पहुँचा। विद्याधर भट्टाचार्य राजपूताना पहुँचे तो श्री जीव गोस्वामी वृन्दावन तथा राममोहन और शरतदास तिब्बत। दीपंकर को तो आज भी नहीं भूला जा सकता। लैण्डकोटल में जा कर देखा कि हुगली के मिस्टर घोष खैबर दर्रे की सुरंगों के निरीक्षक हैं और अफ़रीदी मजूरों के मेट हैं चट्टग्राम (चटगाँव) के मि० मजूमदार। रावलपिण्डी से जो रास्ता अन्तहीन पर्वतमाला की ओर कश्मीर चला गया है, उस को एकांश छोड़ गल्ली पहाड़ पर देखा कि मि० चटर्जी सप्लाई डिपार्टमेंट के इंचार्ज हैं। उधर कश्मीर है, इधर उत्तर-पश्चिम सीमान्त प्रदेश के बीच जंगली प्रदेश में वितस्ता (जेहलम) की तेज धार है। वितस्ता के तट प्रान्त पर देवदार के वन में एक छोटा सा काष्ठ कुटीर कॉटेज गर्ल। उस में भी एक बंगाली को मौजूद देख कर अचरज हुआ। पठान और मुगल शासन-काल में बंगाली दिग्विजय के लिए निकलते थे किन्तु अँगरेज़ी राज के मध्यकाल में बंगालियों ने आरामदेह नौकरियाँ लेकर घर से निकलना नहीं चाहा। अँगरेज़ी के सिवा और कुछ नहीं सीखा, इसी लिए जीवन बहता पानी न रह सका। किन्तु, सुविधा मिलते ही बंगाली आगे नहीं बढ़ते, यह कहना ग़लत है। अभी-अभी तो उस दिन देख आया हूँ कि सिक्किम याने गंगटोक शहर में एक बंगाली

पान की दुकान सजाये बैठा है। बंगाली पोस्ट आफ़िस में हैं, पी० डब्ल्यू० डी० में हैं। और कुछ आगे बढ़ कर नायूला दर्रा पार करते ही तिब्बत के पास या तुंग में भी बंगाली सामरिक डेरा डाले पड़े थे। कर्नल सुरेश विश्वास को कौन नहीं जानता? बंगाली एम० एन० राय। बंगाली सुभाष बोस।

बंगाली मृत्यु से कभी नहीं डरता। अँगरेज़ी राज के अन्तिम दिनों में सीमान्त के खान—जिन्हें आज पखतून कहते हैं और जिन की भाषा पश्तो है—अच्छी तरह जान जाते हैं यह बात। वे सब से ज्यादा गुस्सा होते हैं पश्चिमी पाकिस्तान के मुसलमानों और सिखों पर। वे ही उन्हें परेशान करते हैं। उन्हीं से उन की लड़ाई है, प्रतिद्वन्द्विता है। अँगरेजी टॉमी तो उन के लिए बच्चे थे। जब चाहा उन्हें कैम्प से उठा ले गये। एक ही चपत में कितने ही टॉमी जान दे बैठते। तभी देखा गया था कि निरीह गढ़वाली पलटन सामने आने पर टॉमियों ने गोलियाँ बरसा दीं लेकिन अफ़रीदियों पर कभी 'बेनेट चार्ज' भी नहीं आजमाया। अकसर यही होता रहा है कि टॉमी के हाथों में राइफ़ल काँपती रही और पठान स्नाइपर की राइफ़ल का अचूक निशाना टॉमी का भेजा भेद कर के पार हो गया।

खैबर दर्रे में आगे बढ़ा तो पहला क़िला मिला जमरूद। गौतम बुद्ध के महा-परिनिर्वाण के बाद उन के भिक्षापात्र को समाधि दी गयी थी यहाँ, एक मठ में। उसी के खण्डहरों पर आज का यह क़िला खड़ा है। पास में ही पिकेट है। चारों ओर से दुश्मन घेरे हैं इसे। इस की आकृति पटना के 'मॉन्यूमेंट' आव फोली जैसी है। दिल्ली के मान-मन्दिर सा लगता है दूर से। चारों ओर छिपी खाइयों में गोलियाँ चलाने के लिए अनगिनत छेद हैं। दूसरों को दुश्मन समझते हैं इसी लिए तो हिंसा की इतनी तैयारी है। एक का हिंसा-बोध और विद्वेष-बुद्धि दूसरों की पशु-प्रकृति को जगा देती है। किन्तु अगर किसी को भी दुश्मन न माना जाये तो............? यदि हम मन-कर्म-वचन में अहिंसावादी हो जायें तो क्या अपने चारों ओर हिंसा की ये उन्मत्त तैयारियाँ की जायेंगी? ठीक यही मनोभाव लेकर पखतून समाज का एक सर्व-चित्तजयी वीर उठ खड़ा हुआ था। सवाल उठा, वीरता का श्रेष्ठ गौरव क्या है? एक के सिवा और कोई भी पखतून इस का जवाब नहीं दे पाया। मनुष्यता का श्रेष्ठ परिचय क्या है? यह सवाल इस रेतीले रास्ते और अंगारों वाले पहाड़ों पर उठ खड़ा हुआ, यह सवाल कुर्रम, मीरन-शाह, वज़ीरिस्तान, डेरा इस्माइल खाँ, दाऊदखेल हजारा और कोहाट में और पहाड़ों की हर गुफा में, अफ़रीदियों के हर महल्ले में उठ खड़ा हुआ, तब उन लोगों में सिर्फ़ वही एक महापुरुष सिर ऊँचा कर खड़े हुए। वे बोले मनुष्यता का श्रेष्ठ परिचय है—अहिंसा और प्रेम! उन का नाम है अब्दुल गफ्फार खाँ। उन के आविर्भाव से सारा पखतूनिस्तान एक नयी जीवन-धारा से भर उठा था।

सामने के मैदान क्षेत्रफल में शायद तीन सौ वर्गमील हैं। जहाँ तक दृष्टि जाती है, वहीं

पहाड़ी घेराव दीखता है। यहाँ हमेशा से लड़ाई होती चली आ रही है। सिकन्दर के ज़माने से शुरू हुई थी—उस के बाद शक, हूण, तातार-जयपाल-आनन्दपाल से लेकर मुहम्मद गोरी, महमूद गज़नवी और मुग़ल सम्राट् बाबर सभी ने लड़ाई क़ायम रखी। इस मैदान के पत्थरों की पर्त-पर्त पर ऐतिहासिक कंकाल पड़े हैं, हिमालय ने हमेशा इसी की गवाही दी है। इसी मैदान से जुड़ा है एक पैदल रास्ता और उस के पास ही पास गया है सीमान्त रेल-पथ। फिर दोनों ही खैबर की जटिलता में मिल जाते हैं। चारों ओर रूखे, ऊसर, घूसर पर्वत हैं, न छाया है न माया। आश्रय, आनन्द कहीं कुछ भी नहीं है। सिर्फ़ कारवाँओं में चलते ऊँटों के गले से बँधी घण्टियाँ टुनटुनाती हैं और यह आवाज़ दूर—और भी दूर कहीं खो जाती है। सारी चेतना पर ही जैसे हज़ारों साल पुरानी क्लान्त तन्द्रा छा जाती है—हवा की हू-हू में विगत इतिहास का हाहाकार सुनाई पड़ता है।

मैं अली मसजिद के इलाक़े में आ गया। मसजिद शायद किसी पहाड़ के तले बनी है किन्तु यहीं एक बड़ा सा विद्यायतन है—नाम है इसलामिया कॉलेज। असभ्य जाति को सुसभ्य करने का एक प्रयत्न है यह। कोई फ़ीस नहीं ली जाती, यहाँ तक कि अँगरेज़ मिशनरी तो बिना मूल्य पुस्तकें भी बाँटते फिरते हैं। जैसे अमरीकी मिशनरी जगह-जगह काग़ज़ में बँधा खाना और लिफ़ाफ़े में रखो करेन्सी नोटों को भेंट बाँटते फिरते हैं, वैसे ही यहाँ भी पठानों को आकर्षित करने के लिए तरह-तरह के उपहार वितरित होते हैं। फिर भी स्कूल-कॉलेजों में छात्र नहीं जुटते, जैसे खैबर रेलवे में सवारियों का जुगाड़ मुश्किल होता है। अफ़रीदी पठानों से कोई टिकट नहीं माँगता, फिर भी !····

सेब और अंगूरों की पोटली बाँध कर वे गाड़ी में चढ़ते हैं और उन्हें खाते-चबाते एक प्रान्त से दूसरे प्रान्त की ओर चल पड़ते हैं। कोई झुण्ड रास्ते में ही उतर गया और पहाड़ी सुरंगों के रास्ते ग़ायब हो गया। सारे पहाड़ों में एक के बाद एक गड्ढे खुदे हैं। पहाड़ी प्राचीर के पास ही उन के छोटे-छोटे घर हैं। न उन में खिड़कियाँ हैं, न दरवाज़े, सपाट दीवारें हैं सिर्फ़। कुछ हरियाली के चिह्न हैं, कहीं-कहीं घास या लताएँ भी दीखती हैं। उन के बीचोंबीच एक गुम्बद अवश्य बना होता है। वहीं से अचूक निशाने वाली बन्दूकें दुश्मनों पर बरस पड़ती हैं। इन का प्रत्येक घर दुर्ग है, प्रत्येक व्यक्ति योद्धा और प्रत्येक पहाड़ आत्मरक्षा का प्राचीर। चारों ओर देखो तो सुनसान पर वही नीरवता, निर्जनता, दिल में दहशत पैदा करती है। जलती धूप में पर्वतीय प्रान्तों की अंगारों सी धूसरता से क्लान्त दृष्टि प्रतिहत सी लौटेगी, लेकिन सांकेतिक आवाज़ करते ही उलका वेग से पहाड़ी गह्वरों में बसी हज़ारों दुर्धर्ष, हिंस्र, रणोन्मत्त असम साहसिक वज़ीरी-अफ़रीदी पठानों की कतारें निकल आयेंगी। दूर से तोप चलाओ, बन्दूकें दाग़ो, विमानों से बम बरसाओ, उन के ये अनगिनती मिट्टी के क़िले चूर-चूर कर दो, फिर भी देखोगे कि सौ में पाँच भी नहीं मरे वे। पहाड़ों की सुरंगों में, माँदों में छिपे गीदड़ों की तरह

ग़ायब हो गये। मौक़ा मिलते ही छपाका मारा और आदमी तक उठा—चुरा ले गये। सब की आँखों में धूल झोंक कर कोतवाली से, कैम्प से और पेरीमीटर के घेरे के अन्दर से समूचे सिपाही को कन्धे पर लाद कर भागने की घटनाएँ बहुत सी हो चुकी हैं। रॉयल बंगाल टाइगर जैसे बच्चों को दाढ़ में दबा कर जंगल में भाग जाते हैं वैसे ही ये लोग अँगरेज टॉमियों को पकड़ पहाड़ी सुरंगों की भूलभुलैया में खो जाते हैं।

पहाड़ी रास्ता एक लम्बे से चक्कर में घूम गया। मोड़ पर मिला सगई (शको ?) का क़िला। लाल पत्थर का विशाल दुर्ग। इस का तोरणद्वार भी खूब बड़ा है। लोहे की पत्तरें और सलाखें जड़ कर बनाया गया है। सामने हथियारबन्द सन्तरी है। साफ़ जाहिर है कि यह लाल पत्थर इस प्रदेश का नहीं है। या तो सुलेमान पर्वत की देन है अथवा अजमेर में दीख पड़ने वाले अरावली पहाड़ की। यहाँ खैबर का विस्तार भी खूब लम्बा हो गया है। चारों ओर गगनचुम्बी गिरि-श्रेणी है और बीच में लम्बी-सँकरी उपत्यका। इधर से उधर तक एक पथ-रेखा बहुत दूर-दूर तक चली गयी है। *यह स्थल खैबर दर्रे के बीचोंबीच पड़ता है। सगई क़िले से दोनों ओर की हिफ़ाजत की जाती है, अतः यहाँ का अस्त्रागार खूब बड़ा है। एक तरफ़ जमरूद है दूसरी तरफ़ लैण्डिकोटल। अगर सगई का क़िला* फतह हो जाये तो पेशावर-पतन में फिर क्या देर लगे। आज भी इसी लिए यहाँ पाकिस्तान को पहरा लगाना पड़ता है। अँगरेजों ने उन का कभी यक़ीन नहीं किया था। पाकिस्तान ने भी उन्हें घर बुला कर प्यार नहीं किया। जाहिर है कि सगई से रावलपिण्डी तक प्रतिरक्षा के व्यूहों की लम्बी-लम्बी कड़ियाँ आपस में अच्छेद्य रूप में जकड़ी गयी हैं।

मैं और आगे बढ़ा। भारत और भी पीछे छूट गया। सगई से लैण्डिकोटल लगभग बारह मील पड़ता है। नजर आ रहा है भारत पर हमला करने का दर्रा। तख्ते-ताऊस इसी रास्ते गया, इसी रास्ते से हजारों आर्य हिन्दू ललनाएँ लुटी चली गयीं। सैकड़ों-करोड़ों रुपयों के हीरे, पन्ने, सोना, मोती, लाल आदि से लदे ऊँटों के कारवाँ यहीं से गुजरते रहे। इसी रास्ते पर न जाने कितनी अशर्फ़ियाँ, जड़ाऊ नूपुर और हारों की टूटी लड़ियाँ, हृदय-विदारक अश्रुकण और क्षत-विक्षत वक्षों की रक्तधाराएँ गिरीं, बिखरीं और फैलती रहीं। इसी रास्ते घुड़सवार यूनानियों का दल सिन्ध जीतने आया था। आयी थी तुर्क-तातारों की भयावह बाढ़ और यूनानी-मुसलमानी तहजीब की भारत-विजयनी फ़ौजें। और इसी रास्ते गयी थी गौतम बुद्ध की कल्याणमयी वाणी। इसी पथ के अँधेरे से हाथों में दीपक लिये बुद्ध के अनुयायियों ने उच्चारा था : ऊँ मणिपद्मे हुम्। धर्मं शरणं गच्छामि। बुद्धं शरणं गच्छामि।....वे सीमान्त प्रदेश गये, अफ़ग़ा-निस्तान (गान्धार) गये, ईरान (पारस्य) गये और कश्यप सागर के किनारे-किनारे भी विचरते रहे।

इस रास्ते कोई पथिक नहीं आता। पेड़-पौधे भी नहीं हैं कहीं। कभी-कभी देखा जाता है कि दूर हिमालय से कोई मटमैला रीछ उतरा आ रहा है या एकाध हायना,

या कोई खतरनाक साँप—बस और किसी जानवर के भी दर्शन नहीं होते। पूर्वोत्तर हिमालय की ओर कितनी ही बार ताका है—भृकुटि-कराल, तृष्णा-लोलुप, भस्माच्छादित नंगा फ़क़ीर है, बस। बिजली की कड़क नहीं, मेघ-मेदुरता भी कल्पनातीत है, छायापथ की भी कोई तसवीर नहीं उभरती कहीं, नीलनयना गाँव की गोरी की बाँकी चितवन सरोवर की कमल-कली नहीं बनती कहीं। लेकिन हिमालय के अद्‌भुत परिवर्तन प्रायः दृष्टि-पथ में आते हैं। महाकाल के सजग प्रहरी की तरह खड़ा यह बार-बार नयी-नयी शक्लें बदलता रहता है—आदमी की, भाषा की, भाव की, कल्पना की, प्रकृति की और यहाँ तक कि पशु-पक्षी और जीव-जन्तुओं की हिमालयी आकृतियाँ अकसर देखी हैं यहाँ।

कहीं किसी सुरंग से सीमान्त रेल-पथ बाहर निकल पड़ा है। फिर रुक गया है। क़दम-क़दम पर एक-एक लूप लाइन मिलती है। इधर से जाती है, उधर से आती है, टेढ़ी-मेढ़ी भूलभुलैया जैसी। जगह-जगह सशस्त्र सन्तरी खड़े हैं, चौकियों पर बन्दूक उठाये पिकेट खड़ी है। *प्रत्येक पहाड़ अविश्वसनीय है, प्रत्येक मोड़ सन्देहजनक है। मुझे याद आ रहा है कि ठीक इसी जगह इसी दर्रे के आस-पास, सीमान्त के अँगरेज़-*गवर्नर सर ओल्फ़ कारो की शह पाकर एक खास श्रेणी के अफ़रीदी ने पण्डित नेहरू पर वार किया था। १९४६ के अक्तूबर के बीच की घटना है। पण्डित नेहरू तब बड़े लाट वेवेल द्वारा नियन्त्रित भारत सरकार के प्रधान मन्त्री थे। कांग्रेस के हाथों में ही तब स्वराष्ट्र विभाग की बागडोर थी। पण्डित नेहरू की हिफ़ाज़त के लिए लाखों आदमी आगे जा सकते थे। किन्तु उसी क्षण, जब कि उन की गाड़ी पर गोलियाँ बरस रही थीं, मृत्यु भयरहित कशमीरी पण्डित जवाहरलाल नेहरू गाड़ी से उतर मौत के सामने जा खड़े हुए। रूटर के विदेशी संवाददाता ने लिखा, "दि ब्रेवेस्ट मैन ऑव द वर्ल्ड बिफोर द ग्रेवेस्ट प्रोवोकेशन्स—दि ड्रैमिटिक सीन वाज द साइट फार ईविन दि गॉडस् टु सी।" (अति भीषण खतरों और उत्तेजनाओं के सामने दुनिया का वह वीरश्रेष्ठ व्यक्ति खड़ा था। और यह नाटकीय दृश्य देवताओं के लिए भी दर्शनीय बन गया)। उसी क्षण सीमान्त-केशरी डॉ० खान साहब ने उन को भेंटें भर ली थीं। इस के बाद १९४७ में पाकिस्तान-प्रतिष्ठाता मिस्टर जिन्ना की फूँक से डॉ० खान साहब का कांग्रेसी मन्त्रिमण्डल धूल की तरह उड़ गया और मुख्यमन्त्री होने पर भी उन्हें मि० जिन्ना के इशारों पर नज़रबन्द कर लिया गया।

लैंडिकोटल आ पहुँचा। दर्रे के मोड़ से ही नीचे की ओर ताकने पर लैण्डि-कोटल का कुछ हिस्सा एक उपत्यका में दिखाई पड़ रहा था। तीन ओर पहाड़ों का अवरोध और बीच में तम्बुओं का झुण्ड। सभी कुछ अस्थायी, चूँकि यही क्षेत्र असली फ़ौजी चौकी है। जलालाबाद हो कर काबुल जाने के लिए सिर्फ़ यही सीधी सड़क है। फ़ौजी चौकी है, अधिकार—रक्षा का पूरा इन्तज़ाम है—इसी से दुकान-बाज़ार भी अस्थायी हैं। औरतें और बच्चे शाम के चार बजे बाद इस क्षेत्र में नहीं ठहर सकते,

यही नियम है। शायद इसी लिए ये कहीं नहीं दीख पड़ते आस-पास। पास में ही एक तालाब है, यहीं बर्फ़ गल-गल कर जो पानी पहाड़ों से नीचे आता है इस में जमा हो जाता है, और कुछ बरसाती जल भी। लेकिन जाड़ों में यह भी सूख जाता है, तब पेशावर से पानी लाना पड़ता है। गोरा-छावनी से थोड़ी ही दूर पर अपेक्षाकृत छोटा सा एक और क़िला है, बहुत-कुछ जमरूद के भाई-बन्द जैसा। उस की तोप का मुँह दर्रे की ओर ही घुमाया हुआ है। आस-पास जो दीख पड़ते हैं वे कौन हैं? टके की गुलामी मंजूर करने वाले बहुत से पख़तून हैं—झाड़ूदार चपरासी, कुली, धोबी, मज़दूर। उन्हें पैसे मिलते हैं, माल के टुकड़े मिलते ही सलाम ठोकते हैं। फिर भी जाने-पहचाने नहीं लगते ये। इन के ख़ून में तुर्की-ईरानी मिलावट है। मैं बंगाली हूँ, लेकिन काठियावाड़ गया तो वहाँ के लोग पराये नहीं लगे, राजपूताना या ग्वालियर में अपने आप को परदेशी नहीं समझा कभी, हैदराबाद या मुन्दरा में अथवा कृष्णा-रेवा-वेत्रवती-तापती के किनारे-किनारे जिन्हें देखता फिरा हूँ—यही प्रतीति रही है कि जैसे ये मेरे अपने ही हैं, युग-युग से। उड़ीसा में, असम में, नेपाल के पहाड़ी इलाक़ों में, सिक्किम के उत्तरी अंचल में, भूटान की सीमा पर— स्थानीय अधिकारियों के साथ खप गया हूँ। गंगटोक में एक तिब्बती दम्पती के साथ लगातार तीन दिन काटे हैं—कोई किसी की भाषा नहीं समझता था, फिर भी कोई किसी को दुर्बोध्य नहीं लगा। किन्तु यहाँ की तो बात ही निराली है। ये लोग एकदम अनजाने-अनदेखे लगते हैं। इन के चेहरे की रेखाओं में, आँखों की चितवन में, भावभंगी में और चाल-चलन में विशाल भारत की कोई चेतना नहीं दिखाई पड़ती, आत्म-प्रकृति की कोई भी समगोत्रीयता इन में नहीं खोज पाया मैं।

यहाँ सिर्फ़ दो ही बंगाली थे। पहले ही उन के नाम बता चुका हूँ। मध्याह्न में मिस्टर घोष की मेहमानी ली। साथ में नये दोस्त मिश्र जी थे। श्रीयुत घोष ने बड़ी ख़ातिरदारी की। बाद में पता चला कि सब्जी और चावल सिन्धु के उस पार से आये हैं। यहाँ इस तरह के चावलों का भाव डेढ़ सौ रुपये मन से भी ज्यादा पड़ता है। कुलियों के मेट (सरदार) मजूमदार से भी मिला। नाम से बंगाली, घर चटगाँव में, लेकिन चाल-ढाल में एकदम पठान। बचपन में ही घर से भाग खड़े हुए थे। जहाज़ के ख़लासी बन कर सारे युरोप में घूमे, आस्ट्रेलिया और एशिया में भी। एकदम बेकौड़ी के थे, सो अमरीका में बन्दरगाह पर नहीं उतरने दिया गया। बाघ के शिकार में उस्ताद हैं, पर एक बार बाघ ने उन का भी शिकार किया था। नतीजा यह हुआ कि उस नरभक्षी के नख-क्षतों से उन का मुख-मण्डल अभी तक सुशोभित है। एक बार एक पठान सरदार ने उन्हें मल्लयुद्ध के लिए ललकारा तो उन्होंने उसे पछाड़ दिया। तभी से पठान सरदार ने सदल-बल उन की मातहती मंजूर कर ली। यह अमित बलशाली मजूमदार गप-शप में मशग़ूल थे कि देखा उन के मुँह में सामने के तीन दाँत नहीं हैं। मि० घोष ने हँस कर बताया कि इन तीनों की तीन तवारीखें हैं। उन सब बातों को सुनाऊँ तो आप का लैण्डिखाना-अभियान यहीं ख़त्म हो जायेगा।

सराय की ओर आगे बढ़ा तो देखा कि पीछे से ऊँटों का दल धूल उड़ाता आ रहा है। अलसायी दुपहरिया की धूप में डिं-डं-डिं-डं घण्टियाँ बज रही हैं। सुर बड़ा थका-हारा और उदास है। उस में कुछ सपने मिले हैं तो कुछ वैचित्र्य भी मिश्रित है। बुरक़े के अन्दर से अफ़ग़ानी औरतों की काली-काली सुरमा लगी आँखें झाँक रही हैं। ये लोग भी आज सराय में विश्राम करेंगे।

यह सराय उन्हीं के लिए है जो हिन्दुस्तान की ओर जा रहे हैं। हम सराय के दरवाज़े के सामने खड़े हुए तो यात्रियों की आँखों में अजीब से लगे। हम लोगों का जिस्म कोमल है, क़द छोटा है, चेहरे पर हिन्दुस्तानी कमनीय कोमलता की छाप है जिसे आप द्रविड़-मंगोलियाई कह सकते हैं। उन के एक ही झापड़ से हमारे हाथ-पैर टूट जायेंगे। जैसे गुलोवर लोग अजीब लिलिपुटियनो की ओर ताक रहे हों। हम लोग विचित्र जीव हैं। ये हमें मुट्ठी में ले कर पुतलियों की तरह घुमा-फिरा कर देख सकते हैं।

भीतर की ओर देखा तो देखा कि पठान और तुर्कियों की भीड़भाड़ है। ऊँटों का एक झुण्ड आसमान की ओर ताक रहा है। उधर बालू पर ख़ून से सनी मुरगी पड़ी है, मरे बछड़े का खाल समेत कंकाल पड़ा है। पोटली से मोटी-मोटी सख़्त रोटियाँ निकल रही हैं। कई लोग हुक़्क़ा-तम्बाकू लिये बैठे हैं। औरतें भी समरकन्द से लाये चरस की चिलमें पी रही हैं। लाल चेहरे वाली सुन्दरी के काले बुरक़े से सिर्फ़ दो आँखें ही दिखाई पड़ रही हैं। चरस के नशे से गुलाबी। इसी सराय को पार कर के मैं ने एक कविता लिखी थी :

पहाड़ की विशालकाय प्रेतात्माओं की
क़तारों पर क़तारें दुर्गम अप्राप्य की ओर बढ़ रही हैं
छिन्नमस्ता के बिखरे धूसर जटा-जाल सी।
सुर्ख़ कड़ी ईंटों और पत्थरों के स्तूपाकार बदरंग, गूँगे, तृष्णार्त
नीरव विभीषिका के संकेत से।
न छायापथ का स्वप्न
न कानन का नीलाभ स्नेह।
रेतीले पथ पर पड़ी, किसी प्रागैतिहासिक पिपासार्त जन्तु-की ठठरी—और
शायद किसी दुःखद हँसी की शोचनीय
जिन्दगी व मौत की
करुण-निशानी।
सिर्फ़ गरम हवा और रेत के कण-कण में
शत-शत मरु-प्रेतात्माओं की आर्त्त साँसें
चुपचाप हरम में घूमती फिरती हैं।

धूप से जले नुकीले पत्थर और
कंकड़ों की भीड़ पार करता
दूर-दूरान्तर में
पामीर और पूर्व तुर्किस्तान का रास्ता चला गया।
ताकला-माकान, खोतान और
यारकन्द नदी के अनजाने ही जो पथ
दिगन्तलीन मरु-प्रस्तरों की हर राशि में
अवसन्न है, मन्थर और त्रस्तगति है।
उसी पथ के ऊपर
अतिकाय नरभक्षी की मृत आँख-सा
बदरंग आकाश है।
भारत के छोर पर यह पहली सराय है
दुर्गम पथ पार कर आये कारवाँ हैं
अचानक उठी आँधी से पिटे
जंगली काबुलियों ने यहाँ शरण ली है।
वे पिंगल-नील नयनों से
इस अज्ञात की खोज में ताकते हैं।
जीभ लपलपाते इस मरुपथ में
बारह सूर्यों की जलती लपटें छा गयी हैं।
वे उद्‌भ्रान्त से भारत का पुरातन तोरण खोजते हैं।

लोहे की जंजीर से बँधे
चिमटे की झनझनाहट में
और काठ के हुक़्क़े की गड़गड़ाहट में—
कच्ची तम्बाकू के ज़हरीले धुएँ में
वे दिन ही में सपने सँजोते हैं
सुन्दर भारत के,
हरे-भरे हिन्दुस्तान के—
तन्द्रिल वन्य-नयनों से।

ऊँट के गले में लटकी घण्टी का करुण स्वर
दूर-दूर तक गूँजती है अलस और उदास
रेतीले रास्ते में सुहावना जादू है।
सराय में

चारों ओर बिखरे हैं मरे दुम्बे
और तीतर के चूज़ों का खून
बछड़े की रान,
जमे हुए खून से लिपड़ी
और किसी जानवर का
बन्द हृत्पिण्ड
जलते सूरज के चाटने से हवा कांप उठती है
रक्तिम रंग में कपिश-नीली रोशनी में।
उधर पड़े हैं बासी भुने मांस और हाड़
चमड़ा और हींग की गन्ध
कुण्डली मारते से।

और उसी के नज़दीक काले बुरक़े की आड़ में
लाल-गुलाब काबुली ललना का उज्ज्वल कौतूहल,
इधर छुरी की धार से बकरी का जिबह।
मैली जरी और रेशमी पगड़ी।
और सलवार पहने पठान जवान—
बर्बर हँसी से हिंस्र नयन।
इन्हीं नयनों में किसी दिन ये हिन्दुस्तान का माधुर्य भरेंगे
अभी तो इस नजर में अनदेखे-अनजाने देश की आदिम भाषा है।
उधर एक और खान गिन रहा है अफ़ग़ानी अशर्फ़ियां।

सभ्यता का स्वाद पाने के पहले
ये जंगली काबुली और असभ्य तातार
और बुरक़ा वाली रहस्यमयी—
ये सभी सुस्ताते हैं
कौतूहल और क्लान्ति से बेपरवाह इस सराय में
श्रान्त कारवां का मधुर अवसाद।

रेल-पथ लैण्डिखाना में खतम हो गया है। वहाँ से चार मील आगे होगा। किन्तु परमिट बिना वहाँ नहीं जा सकते। रास्ता बड़ा खराब है, न कहीं पानी न खाना! दोनों ओर इधर-उधर कँटीले पेड़ हैं। थोड़ी कहीं भी विश्राम लायक जगह नहीं है। कुछ ही दूर जा कर एक पहाड़ी मोड़ पर रेल-लाइन भी अदृश्य हो जाती है। उत्तर में बहुत दूर जाने पर काबुल नदी है, फिर काफ़िरिस्तान। हिमालय यहीं से दो भागों में

बँट जाता है—उत्तर से दक्षिण में। उत्तर का हिमालय बहुत सी शाखा-प्रशाखाओं में बँट गया है।

लैण्डिखाना में कुछ भी दर्शनीय नहीं है। यहाँ तक कि रेल-स्टेशन भी नहीं है। सिर्फ़ इधर-उधर कुछ सशस्त्र सिपाही खड़े हैं। बीच में एक नाली है, वही सीमान्त प्रदेश और अफ़ग़ानिस्तान की सीमा है डूरेण्ड लाइन का तथाकथित बँटवारा। दोनों के बीच में काठ का सीमा-स्तम्भ है—हदबन्दी का निशान।

किन्तु यहीं, ठीक यहीं, इस नाली के किनारे ही आधुनिक भारत ने पुनः अपने नाटकीय इतिहास की रचना की है। उस दिन वह लैण्डिखाना की सीमा-प्रणाली अखण्ड भारत का पुण्य-तीर्थ संगम क्षेत्र सा लगा था। कोई ज्यादा दिन नहीं हुए इसे। जनाब जियाउद्दीन नाम से एक सुदर्शन, खानदानी किन्तु बहरा तीर्थयात्री एक साथी के साथ इसी रास्ते को पार कर काबुल की ओर बढ़ गया था। उस दिन भारत का राजनीतिक इतिहास दो सौ बरस बाद फिर बदल गया था। वह तीर्थ-यात्री बहरा जियाउद्दीन नहीं, छद्मवेशी नेताजी सुभाषचन्द्र बोस था।

उपत्यका में और आस-पास की गुफाओं में अँधेरा छाया जा रहा है। हेमन्त के अन्तिम दिनों का यह आकाश साँझ की विदा होती धूप से रक्तिम हो उठा है। हाथ पैर ठण्ड से सिकुड़े जा रहे हैं। बन्दूक साथ रखने की मनाही नहीं है, फिर भी मेरे पास नहीं है। मौत या खून होने पर इधर की पुलिस कोई खास तहक़ीक़ात या छान-बीन नहीं करती। यहाँ खून का बदला खून है। इस पर भला मुक़दमा कैसा? किन्तु खून करने की अपेक्षा खून होना इस अंचल में शायद ज्यादा आसान है। पेशावर के बाद से यही रीति प्रचलित है। इसलिए दिन मुँदने से पहले ही सन्तरियों की मदद से दोस्तों ने मुझे लैण्डीकोटल से रेल में चढ़ा दिया और सलाम कर ली। अँधेरी सुरंग पार कर पहाड़ी जटिलता लाँघ कर गाड़ी ने सगई और जमरूत पीछे छोड़ दिये और पेशावर की ओर रवाना हो ली।

[३]

घूमते-घूमते फिर वही हरिद्वार! वही तीन हज़ार बरस पहले का हरिद्वार। परिव्राजक ह्वेनत्सांग हरिद्वार को देखते ही मुग्ध हो गये थे। यहाँ वे बहुत दिन रहे। यही मेरा भी विश्रान्ति-स्थल है। यहाँ आने पर देह में हवा लगती है, धीरे-धीरे दोनों आँखें तन्द्रालु हो जाती हैं। सारे भारत में घूमो, आत्म-ताड़ना के लिए समग्र हिमालय पर भटकते

फिरो, माथे से पसीना बहता रहे, मुँह से झाग निकलते रहे, किन्तु लौट कर फिर हरिद्वार आ जाओ। यहाँ के सुशीतल जल में नव-जन्म है, मधुर हवा से देह-मन स्निग्ध हो उठते हैं। यह हरिद्वार बड़ा पुराना है किन्तु इस की नूतनता अक्षय है। मानो मैं ही उसे हजारों बरस से देख रहा हूँ। एक देश से एक जन्म से दूसरा जन्म पा जाता हूँ। फिर भी यह नया लगता है। अत्यन्त निविड भाव में नूतन! मृत-संजीवनी जैसा है इस के नीले जल का स्वाद। यह जादू जानता है।

जादू जानता है इसलिए इस का नाम पड़ा है 'माया'। शक्ति है उस की मोहिनी, इसी लिए यह हर मन में इन्द्र-जाल बुन देता है। वही इन्द्र-जाल जिसे 'इल्यूशन' कहते हैं—उस का आकर्षण काटे नहीं कटता कभी। एक बार जो भी हरिद्वार हो आया, दुबारा वहाँ जाने को उस की व्याकुलता देखी है? इसी को तो 'माया' का खेल कहते हैं। भक्तों ने इसी लिए यहाँ मायादेवी की प्रतिष्ठा की है—इस से एकाध मील की दूरी पर ही तो मायापुरी का सन्धि-स्थल है। कितनी ही बार सोचा कि हरिद्वार को अच्छी तरह देखूँगा। किन्तु ३२ बरस से यहाँ आते रहने पर भी यह नहीं हो पाया। कलकत्ता में कालीघाट कितना पास है पर उसे देखने का उत्साह उतना ही कम है। काशी गये तो बस बैठकबाजी शुरू हो गयी—अन्नपूर्णा और विश्वनाथ को कब से नहीं देखा, याद नहीं आ रहा है। इलाहाबाद भी जब-तब पहुँच जाता हूँ, पर भारद्वाज़ मुनि के आश्रम जा ही नहीं पाता। त्रिवेणी छूट जाती है, क़िले का अक्षयवट भी यों ही पड़ा रहता है और प्रयाग के पथ के एक ओर कौशाम्बी भी यों ही रह जाती है। हरिद्वार में भी ठीक यही होता है। जब अँधियारे पक्ष में उस के रास्तों और घाटों पर लालटेनें जलती थीं और अँधेरे में इधर-उधर घूमने जाने पर साधु-संन्यासियों के ऊपर ठोकर खा कर गिर पड़ता था, तब यह माया-पुरी बहुत ही रोमांचकारी लगती थी। लोग कहते हैं, कपिल मुनि यहाँ तपस्या करते थे—इसी गंगा के तट पर, बड़ी ही कठिन तपस्या। इसलिए मायापुरी के साथ हरिद्वार का और भी एक नाम जुड़ा है, और वह है कपिल-स्थान। यहाँ परदेशियों की भीड़ लगी रहती है। वे सूर्य-कुण्ड और सप्त-धारा, गौरी-कुण्ड और पिछोड़नाथ, भैरव और नारायण-शिला देखते फिरते हैं। घाट के किनारे पर ही जो मन्दिर इतने दिनों से देखता आ रहा हूँ उस में लोग श्री विष्णु के चरण-चिह्न बताते हैं। और मायादेवी का मन्दिर—वह भी तो दर्शनीय है। देवी हैं चतुर्भुजा दुर्गा, त्रिमुण्ड कराल मूर्ति। उन के एक हाथ में मानव जाति के लिए अभय आशीर्वाद है तो दूसरे में महाचक्र, तीसरे में नर-कपाल, और चौथे में त्रिशूल। इन की व्याख्या नहीं जानता—जानने की चेष्टा भी नहीं की कभी, किन्तु इतना ज्ञात है कि सारी मूर्ति अर्थहीन नहीं है—उस में तत्त्व है, रहस्य है, उस की अपनी बातें हैं। अनेक बार जंगल की छाया में छिपे विल्लकेश्वर को भी देख आया हूँ किन्तु यह कभी नहीं पूछा कि उन का असली नाम विल्लोकेश्वर है या विल्लकेशर। पथ-घाट के कोलाहल से दूर, इस मन्दिर के परिपार्श्व में, पीपल के तले उगती लताओं, गेंदा और सन्ध्या-मणि के पौधों से

सटा है यह प्राचीन शिवमन्दिर। उसी के पास पत्थर की शिला पर बैठे-बैठे मेरे कितने ही प्रभात दोपहर में मिल गये, कितने ही अपराह्ण अपनी साँसें सन्ध्या की गोद में डाल गये। यात्री आते ही या तो विल्लोकेश्वर की ओर चल पड़ते हैं या कनखल, अथवा पंचमुख अष्टबाहु सर्वनाथ शिव के दर्शन को। कितनी ही बार सोचा है कि माया-मन्दिर के बाहर यह जो महासिद्ध बोधिसत्व की मूर्ति है, शायद उसी का नाम विशाल भारत है। वही निमीलित नेत्र, वही तपस्वी, वही जरा-व्याधि-विकारहीन अनन्त काल का भारत—कल्प-कल्पान्तर के समस्त पतन-उत्थान का आदि-साक्षी भारत।

किन्तु मुझे तो कोई जल्दी नहीं पड़ी रहती थी, हरिद्वार आते ही मुझे नींद आने लगती। यहाँ अत्यन्त अवकाश रहता सो गहरी उदासीनता छा जाती। यहाँ तो हर वक़्त काम का घनचक्कर नहीं चलता था, सिर्फ़ पूजा के प्रहर का गम्भीर, मधुर घण्टा बजता-बजता थम जाता। वही आवाज़ इस वेगवती नील धारा के ऊपर से गुज़रती दूर-दूर तक करती रहती हिन्दू-दर्शन की यह घोषणा—जहाँ मर्त्यलोक है, वहाँ देवता से अधिक मूल्य है मानवता का, ज्ञान से विज्ञान का, आनन्द से आह्लाद का। वह आवाज़ एक पहाड़ से दूसरे पहाड़, मनसा से चण्डी और मायावती से कनखल तथा लाल-बाज़ार से गुरुकुल चली जाती है। मैं श्रवणनाथ घाट के पास अश्वत्थ के तले लाल घाट की पथरीली सीढ़ी पर थका-माँदा-सा लेट जाता। यहाँ जल की धार के किनारे कम्बल बिछा कर सोने से दुनिया भर की नींद जैसे मेरी इन दो आँखों की पलकों में ही आ बसती। इस जलस्रोत के अन्तःस्थल में भी कोई भाषा है, किसी काव्य की व्यंजना है—जिसे मैं आज तक नहीं समझ पाया। आज तक नहीं जान पाया मैं कि उस का मन्त्र मेरे रक्त में इस तरह क्यों तैरने लगता था।

लेकिन वह हरिद्वार तो अब रहा नहीं। वह पत्थरों से ठोकरें मारने वाला रास्ता, वही छोटा सा खुला स्टेशन, आस-पास की पहाड़ियों और गुहागह्वरों में लोगों की बस्तियाँ, चारों ओर अनगिनत गेरुआधारी साधु-संन्यासियों की वे धूनियाँ। तब के हरिद्वार के असली रूप के साथ ग़रीबी भी घुल-मिल जाती। एक-दो पैसे में ही काफ़ी सुयोग-सुविधा मिल जाते। आहार-आश्रय सभी कुछ मुफ़्त जुट जाते। कौन खिलाता, कौन जगह देता, तम्बाकू पीने को कौन बुला लेता, कैसे मैं कथावाचक की सभा में रम जाता, किसी-किसी साधु के हाथ भस्म-तिलक लगवाने को हनुमान सा उस के पैरों के पास जा बैठता—पर ये सब बातें तो अब बेकार हैं। न वह मन है, न वह आबोहवा और न ही रहा है वह हरिद्वार। अब वहाँ जाओ तो सब से पहले नज़र पड़ेगा बिड़ला जी का ऊँचा घण्टाघर, ब्रह्म-कुण्ड के रास्ते में बीचोंबीच खड़ी नेताजी सुभाष की प्रस्तर-प्रतिमा। रास्ता-घाट पर कोलतार बिछ गया है। बिजली की तो जैसे बाढ़ ही आ गयी हो—महादेव की जटाओं से विनिःसृत गंगा की आलोकित फव्वारे वाली मूर्ति भी चौराहे पर मौजूद है। हिन्दुस्तान के बहुत से लखपतियों के सैकड़ों महल खड़े हैं, नये ज़माने के स्नानागार हैं; संगमर्मर के दालान, अनगिनत मोटरें सिनेमा हाउस और

रेडियो से प्रसारित बम्बइया प्रेम की रस-तरंगें। साधु-संन्यासी बहुत से भाग गये हैं और उन की भूमियों पर अब पंजाबी कामिनी-कंचन विराजते हैं। गाँजा-चरस का धुआँ नहीं है कहीं भी, उस की जगह बोतलों में भरा अस्वच्छ पानी है। कथाएँ नहीं बैठतीं अब, दर्शन-तत्त्व की विचार-सभाएँ भी अलक्षित हो चली हैं। भेंट-भोजन का रिवाज़ ही उठा जा रहा है—सब के सब जैसे राजनीति के धक्कों से स्थान-च्युत हो गये हैं। दूध-मलाई की बात छोड़िए, अब तो उन्हीं दुकानों के आस-पास चाय-कॉफ़ी का बोलबाला है। ठाकुरद्वारों और मन्दिरों के पट-चित्र कब के उठ गये, उन की जगह अब कोट-पैण्ट और ढीला पाजामा या चूड़ीदार पहने परदेशी औरतें कैमरा लटकाये घूमती और तसवीरें उतारती फिरती हैं। अब तो यहाँ तीर्थयात्रियों के बजाय स्वास्थ्यान्वेषियों की भीड़ लगी रहती है। पहले खूब बढ़िया घी में पकी पूड़ियाँ और पकवान मिलते थे तो अब दालदार चॉप और कट्लेट। मांस-मछली-अण्डे हरिद्वार में कोई नहीं खाता। लेकिन प्याज़ चलता है। और ज्वालापुर जब पास ही में बसा है तो वहाँ से छिपा कर मांस-मछली और अण्डे ला कर किसी भी कर्मशाला की बन्द कोठरी में बिना प्याज़ के पकाने पर किस को पता चलता है भला? हरिद्वार की हवा में चन्दन की गन्ध नहीं बगराती अब!

यह अच्छा है या बुरा, यह सवाल न उठाइए। ये तो वक़्त की खूबियाँ हैं सो माननी ही पड़ेंगी। आदमी ही बदल गया तो हरिद्वार नहीं बदलेगा क्या? शायद प्रशासक लोग अब यह भी सोचने लगें कि मनसा पहाड़ उड़ा दिया जाये तो बरसात में हरिद्वार निरापद हो जायेगा। और एक दिन लोगों के दिमाग़ में यह बात भी अवश्य आ घुसेगी कि यहाँ के घाटों पर जो लाखों मछलियाँ तैरती फिरती हैं उन का चालान करने पर आमदनी खूब बढ़ सकती है। शायद तब बेकार साधु-संन्यासियों को भी काम मिल जायेगा। मन्दिरों में तब वेतनभोगी पुजारी बैठेंगे, धर्मशालाएँ मेहनतकश जनता के क्वार्टर बन जायेंगी। अभी उस दिन देखा था न कनखल में दक्षघाट का सर्वनाश। बट और अश्वत्थ के तले-तले जो नीली जलधार बहती थी मदमाते तुरंग-दल सी उस का नामोनिशान भी नहीं है। घाट सूखा है। तल के पत्थर बाहर निकले पड़े हैं। सामने सड़ता हुआ बँधा पानी भर रहा है। उस पार भी बालू और पत्थर के टीले हैं। पण्डे सिर हाथों से पकड़े बैठे हैं। यात्री मुँह फिरा कर चले जाते हैं—न रही दक्षघाट की महिमा, न वह बीते दिनों वाली उदासी की हवा। अच्छी तक़दीर थी कि दाक्षायणी ज़िन्दा नहीं है अब। अगर होती तो पैतृक सम्पत्ति की यह दुर्दशा देख कर वह फिर एक बार देहत्याग करती। पण्डे बोले हरिद्वार की गंगा बाँध दी गयी है सो अब इधर की धार छोड़ना हाकिमों के हाथ में है। इसलिए कनखला का प्राणरस भी सूख गया है। जल के साथ ही तो ज़िन्दगी की चहल-पहल आती है। इसी से प्रवाहवती धारा के किनारे-किनारे शहर और बस्तियाँ बस जाती हैं, मन्दिरों में लोग चढ़ावा चढ़ाते हैं, दुनियादारी चलने लगती है। आज भी घने पेड़ों की छाँह वाले तपोवन में दक्ष प्रजापति

का वही मन्दिर खड़ा है; किले के परकोटे के खण्डहर भी मौजूद हैं, अभी और उसी पथ में बंगाली परिचालित नागेश्वर मन्दिर भी ज्यों का त्यों है—किन्तु घाट पर जल नहीं रहा सो कहीं रस भी नहीं है। लगता है, सारी दुनिया पर हावी हुआ जा रहा है लम्बे-चौड़े डीलडौल का एक वैज्ञानिक राक्षस, जिस का नाम 'आधुनिक' है, दिग्दिगन्त में फैलता हुआ यह आगे बढ़ा आ रहा है। यह सब को निगल जायेगा। विज्ञान के शासन से सारी मानव-जाति नियन्त्रित होगी।

मोती बाज़ार हो कर भीमगोड़ा की ओर से सांझ के वक़्त अकेले जाने में डर लगा करता था, लालतारा बाग के उस अश्वत्थ के नीचे की धार पकड़ कर निरंजनी अखाड़े के पास से गुज़रते हुए अकेले-अकेले मायापुरी की मंज़िल पूरी करने की हिम्मत नहीं होती थी। किन्तु अब नहीं रहे वे दिन। अब तो सभी कुछ सरल है, आलोकमाला से सुसज्जित है। हृषीकेश के रास्ते देहरादून की घाटी का घना जंगल पड़ता था—आज भी अधिकांश है—जिस में से दिन के उजाले में भी गुज़रने पर देह सिहर उठती थी। कोई कहता, नरभक्षी बाघ रहता है इस में, तो कोई बोलता, डाकू लूट-मार तक करते हैं यहां। अब इन रास्तों में ऐसा कोई डर नहीं रहा। पहले लोग इन्हें पैदल तय करते थे फिर चले तांगे और अब मोटरें दौड़ती हैं। मोटरें अनवरत धूल उड़ाती इधर से उधर आती-जाती हैं और साधु-संन्यासी अवाक् विस्मित ताकते रह जाते हैं। दुस्साध्य पथ अब सहज-साध्य हो गया है, अगम्य अंचल ही अब बहुतेरों का गन्तव्य स्थल बन गया है। पहले पैदल हृषीकेश से केदारनाथ हो कर चमोली पहुँचने में करीब बाईस दिन लगते थे, अब बस से जाने में एक दिन और एक बेला लगती है। केदारनाथ छोड़ कर कोशिश की जाये तो रेलवे-स्टेशन से बदरीनाथ अब सिर्फ़ पांच दिनों में पहुँचा जा सकता है।

कोशिश की है कि आधुनिक मन ले कर हरिद्वार में बैठा ही रहूँगा किन्तु सम्भव नहीं हुआ। हिन्दू-रक्त की एक भी बूँद देह में हो तो मानो वह भूत की तरह सिर पर चढ़ बैठती है। कैसा ही शक्की हो उसे चौंक कर रुकना होगा, कैसा ही अश्रद्धालु हो, उसे एक बार सोचना होगा। सारे साज़-सरंजाम ले कर हरिद्वार या हृषीकेश पहुँच जाओ तो भी धीरे-धीरे यही महसूस होगा कि ये सब बेकार हैं। वेश-भूषा की तड़क-भड़क या बहुलता इस परिवेश में नहीं जँचती, साज-सिंगार भी नहीं फबता और भोजन के विस्तृत आयोजन में अरुचि हो जाती है। मांस के प्रति भी आकर्षण कम हो रहा है। मिल जाये तो खाता हूँ, न मिले तो कोई नुक़सान नहीं है। सब कुछ छोड़-छाड़ कर यदि तुम अत्यन्त दीन-दरिद्र की तरह जहां-तहां घोसला बांधते फिरो तो कोई पूछता नहीं कुछ भी। चूँकि तब तुम्हारी हुलिया यहां की हालतों में खप जायेगी। मुश्किल तो विपरीत को मिलाने में पड़ती है। अनेक रंगपुती, पाउडर-लिपी रेशमी स्त्रियों को देखा है कि इधर-उधर बैठी हँसी-खुशी बर्तन मांज रही हैं, जरा भी नहीं झिझकतीं। इस परिवेश से संगत मिलाने में उन्हें देर नहीं लगती। मुझे श्रीमती कृष्णादेवी याद आ रही

हैं। वे एक विदुषी लेखिका हैं, कविता और कहानी लिखने में कभी काफ़ी प्रसिद्धि मिली थी उन्हें। अत्यन्त शिष्ट और संयत स्वभाव की महिला हैं। पर इसी कारण बात-बात में ठाकुरजी के चरणों में सिर पटकने की आदत नहीं थी उन-में। दिल्ली से हरिद्वार स्टेशन पर आते ही श्रीमती कृष्णादेवी ने पैरों से चप्पलें विदा कर दीं। हरिद्वार के रास्ते-घाटों पर उन के पैरों में कभी पत्थर, कंकर चुभे तो कभी खून निकल पड़ा, ठण्ड से भी अकसर सिकुड़ते रहे ये पैर, पर उन्होंने जो कई दिन यहाँ बिताये, कभी नाक-भौं नहीं चढ़ायी। कोई कुछ कहता भी तो हँस कर कहतीं, चप्पलें पहनने में खुद ही शर्म लगती है यहाँ। अनभ्यस्त हाथों से खाना पकाया, साबुन और 'शावर-बॉथ' छोड़ कर सांकल पकड़-पकड़ कर गंगा में डुबकियाँ लगायीं, एक बार भी कभी अपनी हिम्मत पस्त महसूस नहीं की, सिर्फ़ कभी-कभी सानन्द इतना ही बोलती थीं कि दिल्ली-कलकत्ता हो तो ये सब काम मैं सोच भी नहीं सकती थी पर यहाँ आने पर तो कोई भी आदत चिपकी नहीं रह पाती।

मिथ्या नहीं, श्मशान वैराग्य ही यहाँ छा जाता है तन-मन पर। यह अद्वैतवाद का प्रभाव है या नहीं, ठीक नहीं मालूम। पर हरिद्वार की हवा उत्तर की है—देवतात्मा हिमालय की हवा। यश, प्रतिष्ठा, प्रतिपत्ति और सम्पत्ति इन सब की कामना तो प्रत्येक व्यक्ति करता है। पर यहाँ आने पर इन की क़ीमत घटने लगती है। वे द्वार के बाहर पड़े रहते हैं, कारण यह तो हरिद्वार ठहरा। जो रोज़मर्रा की हायतौबा मचती है, यहाँ आते ही वह सब तुच्छ और शान्त हो जाती है। जो बहुत ज़रूरी था वह यहाँ अच्छा-खासा मज़ाक़ लगता है। जिस चीज़ के बिना कलकत्ते में काम ही नहीं चल सकता उस को यहाँ याद भी नहीं आती। हरिद्वार से दिल्ली जाते ही इच्छा होती है कि मन्दोदरी के पास सीता आ बैठे, लंका सोने की हो जाये, त्रिलोकी पर दबदबा छा जाये, स्वर्ग के देवता भी मुझ से डरें—मेरी सारी साधें पूरी हो जायें। हरिद्वार में कोई साध-आह्लाद नहीं रहता, होता है केवल निष्क्रिय शान्त ध्यान-मौन-आनन्द। यहाँ सब कुछ मिल-मिला कर मानो एक स्तुति बन गयी हो, एक ओंकार-ध्वनि, एक अखण्ड महाकाव्य। सारी पौराणिक कहानियाँ कहे जाओ—उन पर विश्वास होगा। देवी-देवताओं की अयथार्थ, अजीब रोमांचकारी रूप-कथाएँ भी मान लूँगा सारी। उन्हें जैसे यहाँ आँखों से देख पाता हूँ। यही तो उन का लीला-धाम है, यह देवतात्मा हिमालय का पादमूल है। देख पा रहा हूँ कि भागीरथ इसी पथ से गये थे और इसी पथ से आगे बढ़ने पर कर्णप्रयाग में दाताकर्ण का संगम है। इसी से सूर्यवंशाधिप ने यात्रा की, और इसी से पाण्डवों ने। कुछ भी अविश्वस्त नहीं लगेगा यहाँ, यही तो मायापुरी का मायाजाल है।

कभी बेवक़्त हरिद्वार पहुँचा हूँ तो चौंकना पड़ा है। चारों ओर निस्तब्धता छायी है। सुबह, दोपहरी, रात-सिर्फ़ गंगा की तेज धार की आवाज़। हर रास्ते पर घूम-घूम कर

देखा है कि सारा हरिद्वार तन्द्राच्छन्न है। धर्मशाला की सीढ़ियों के तले से गुजरता गंगा आ पहुँचा हूँ, निर्जन मन्दिर के चबूतरे पर पत्थर का तकिया बना आँखें मूँद ली हैं—पत्थर—पत्थर में जाने कैसी निगूढ़ अजीब सी गन्ध भरी है। जाने कौन कानों ही कानों में बात कर रहा है, जाने कौन बीज-मन्त्र जपता है। पहाड़ के ऊपरी भाग की ओर ताक कर देखा है, प्राणि-जगत् में जैसे कोई गतिवेग नहीं है, चक्र नहीं घूम रहा, घड़ी की सूई नहीं चल रही। जहाँ तक निगाह जाती है—एक उदासीन अध्यात्म-शान्ति छायी है। कहीं भी चंचलता नहीं है। शायद यही भारत का असली परिचय है। इस शान्ति को कितने ही युगों की कितनी ही जातियों ने, सभ्यताओं ने, दस्युताओं ने नष्ट करना चाहा है। सामयिक तरंगाघातों से शायद इस महाप्राचीन इतिहास की तन्द्रा टूटी है, दोनों आँखों में भयंकर आग जल उठी है, शायद उस के ताण्डव-नृत्य से असुरों का भी हृदय काँप उठा है। पर उस के बाद महास्थविर के निमीलित नेत्रों में शान्ति आयी है, ध्यानी बुद्ध के अधरों पर प्रसन्नता संयुक्त मुसकान छायी है। धीरे-धीरे फिर वही अनादि प्राचीन की चिर-नवीन धारावाहिकता आ गयी है। इस पहाड़ के शिखर पर खड़े हो कर अनुभव किया है कि मेरी शिराओं के रक्त में वही तीन हज़ार बरसों का इतिहास बहता जा रहा है। आँधी-तूफ़ानों में मुँह के बल गिरा हूँ, मस्तक अपमान-लुण्ठित हुआ है, हिंस्र असुरों के दंष्ट्राघात से कितनी ही खून की धारें फूट निकली हैं, वेदना से सारा अंग आच्छन्न हो गया है, कष्ट के मारे सदियों तक न जाने कितने आँसू गिराये हैं—किन्तु आघात के बदले प्रत्याघात नहीं किया, मनुष्य बोध के आदर्श से विच्युति नहीं होने दी। आज तीन हज़ार बरसों बाद भी यह हम सब की सब से बड़ी सान्त्वना है।

वह वेदवती के किनारे-किनारे चला गया है। रामगिरि, मध्यगिरि और कृष्ण-गिरि पार कर कावेरी द्वारा सिंचे प्रदेश से गुज़रता सेतुबन्ध की भारत की आदि सभ्यता के चिह्न की ओर पहुँचा है। वह कहीं स्थिर नहीं हुआ, फिर भी नित्य चंचलता के बीच शान्त है, उदासीन है, योगासीन है। सारी मारकाट, इनक़लाब, महामारी दुश्मनों का डर और अराजकता के बीच रह कर भी वह इन सब से दूर बना रहा है सारी अस्थिरता से अलग सारे उत्थान-पतन के सीमान्त पर।

मैं पहाड़ से उतर आया। कम से कम इस बार तो बस विदा ही ले लूँगा। योग-तन्द्रा में डूबा रहने दो हरिद्वार को। मेरे पैरों की आहट से कहीं उस की नींद न टूट जाये। हर मन्दिर में कबूतरों की गुटूर-गूँ में वैराग्य-बोध अटूट बना रहे, नदी-निर्झर के प्रत्येक भँवर में उस का मूल मन्त्र नित्य बना रहे। हमारे उन्हीं प्राचीन वट और अश्वत्थ के कोटरों में, हिमालय के गुहा-गह्वरों में, सुविशाल मैदानों के प्रान्तों में, नगरों में, जनपदों में, नदी-पथ और सागर की रेती में, जंगलों की नीरव भयंकरता में अनगिनत सभ्यताओं ने अपने-अपने छोटे-छोटे आवास बना लिये हैं। युग-युग से वे हमारे प्राण-रस से

संजीवित होते रहे हैं।

इस चण्डी पहाड़ के शिखरस्थ मन्दिर के चबूतरे पर खड़ा हो कर इस विशाल भारत को कितनी ही बार देखा है, दूर दक्षिण तक दृष्टि गयी है, मेरा प्राण-पथिक गया है। इस में मैं ने उस 'मैं' को खड़े हो कर देखा है। वह सारे भारत की परिक्रमा के लिए निकल पड़ा है। मान-सरोवर से वह सिन्धु-नद गया है—सतद्रु के किनारे-किनारे भटका है, ब्रह्मपुत्र की राहों पर घूमा है, गोदावरी, वेत्रवती और रेवा के उपकूलों में शिलासनों पर बैठ-बैठ कर जप करता-फिरता है। दृषद्वती से चन्द्रभागा, विपाशा से यमुना-गंगा-आर्यावर्त का उस ने कितनी ही बार आलिंगन किया है। फिर वह पूर्ण मंजिरा, भीमा, कृष्णा और उच्चरित हो! सामगान से मुखरित मुनि रेती में स्थित तपोवन में, ऋषि के आश्रम के पास वन्य-मयूरों के कैकारव संगिनियों को आह्वान करें—मैं तो इस बार विदा लेता हूँ।

यह गंगा मेरे साथ-साथ चले, इस की पहचान कर के ही मैं फिर लौटूँगा। मैं गांगेय हूँ। यह हरिहर का द्वार खुला रहे। यहाँ से सब मुझे फिर पुकारेंगे। ये नील धारा, मनसा चण्डी उस पार का जंगल, मायापुरी का आश्रम, पीपल के नीचे की वह लाल पत्तरवाली सीढ़ियाँ, हृषीकेश, चन्द्रभागा और स्वर्गाश्रम, वह अन्तहीन टेहरी-गढ़वाल, ब्रह्मपुरा का पार्वत्य रहस्यलोक—ये सभी मुझे पुकारेंगे। अब तो झोली कन्धे पर डाल कर विदा ले लूँ।

[४]

श्रावणी पूर्णिमा के अब कुल चार दिन बचे हैं। परन्तु कल शाम से ही पहलगाँव का आकाश यहाँ-वहाँ मेघमय दीख रहा है, सारे कशमीर में अब भी वर्षा की सम्भावना बनी है, मगर वर्षा तो दूर की बात है, आकाश में कहीं भी बादल का टुकड़ा देखते ही अमरनाथ तीर्थ के पण्डे मन ही मन आतंकित हो उठते हैं। बादल का छोटा टुकड़ा ही यात्रियों की सब परेशानियाँ हैं—यह वे जानते हैं।

सरदारों द्वारा संचालित पहलगाँव होटल में प्रायः स्वर्गीय, सुख से हूँ। कलकत्ते के ग्रांड होटल में कभी भी नहीं रहा, किन्तु उस का परिवेश इस से अच्छा क्या होगा? ऐसा अपने क़ब्ज़े में सजा-सजाया और कमरों की प्रत्येक खिड़की में, और बरामदे में अपने ही क़ब्ज़े में ऐसा हिमालय, धत्धत् ग्रांड होटल! हम लोगों के बरामदे के सामने लॉन के नीचे से हो कर बह चली है नील गंगा जिस का बेढंगा नाम रखा गया

है लिद्दर। कल से ही नील गंगा के उस पार देख रहा हूँ—जिधर निरुद्देश्य पथ मेरा हृदय अपने साथ ले चला है। उस छोटे मन्दिर के पीछे साधुओं के आश्रम को छूता हुआ चीड़ का घनघोर जंगल नौ हज़ार फ़ुट ऊँचे पहाड़ पर उठ गया है उसी के अंचल में, यहाँ-वहाँ शिशुमेघों ने डेरा डाला है मानो माँ की छाती से लगे हों। विगत कल भी देखा था उस की गगनस्पर्शी चोटी से सहस्र धाराओं में स्वर्णिम रश्मि दल नील गंगा में उतर आया था, तब सूर्य भगवान् पश्चिमी पहाड़ की ओट में उतर गये थे, लग्न बेला की गोधूलि, कम दूर वाले किशनजी के मन्दिर में आरती का घण्टा बज उठा था और सनातन धर्म मन्दिर में तब वेदमन्त्र उच्चरित हो रहा था—'शृण्वन्तु विश्वे अमृतस्य पुत्राः'। इस के बाद हो आयी धीरे-धीरे साँझ की गहराई छाया मानो विराट् एक शतदल सिमट गया। देखते-देखते अस्थिर मेघों के बीच दरार में आ घुसी शुक्ला-दशमी की दिग्दिगन्त व्यापी हिमालय जुड़ी चाँदनी। इतर जनों की कहीं भी, अगल-बग़ल, भीड़ नहीं। चारों दिशाओं में व्याप्त पर्वतमालाओं के बीच में पहलगाँव अंचल है एक घाटी। पहाड़ी नदियाँ विभिन्न अनेक धाराओं में उतर कर एक धारा के संग यहाँ मिलती हैं और उसे प्रशस्त करती हैं। चीड़ वन का इतना दीर्घ विस्तार हिमालय में कहीं भी सहसा नहीं दीखता। दार्जिलिंग, शिलांग याद है। गुलमर्ग या कूलू उपत्यका नहीं भूला हूँ, भूला नहीं हूँ मरी पहाड़ और कोहला की राह। परन्तु यहाँ के चीड़ वन की विशालता से एक प्रकार की राजमहिमा जुड़ी है जैसे मन को यह केवल भाता है, इतना ही नहीं, श्रद्धा और संभ्रम से भर देता है। शुक्लपक्ष की भरी उजली हिमालय में सैकड़ों बार देखा है, इस उजलेपन को कितनी बार पकड़े बैठा रहा हूँ—हृषिकेश में, वहीं जहाँ चक्राकार हो कर हरहराती हुई नील धारा घुम गयी है, जिस के किनारे-किनारे है ऋषिकुल का तपोवन। यहाँ तपोवन नजर नहीं आता, मगर उजली रात का जादू-मन्त्र गिरिश्रेणी और नील गंगा के आँचल पर बिखरा है। दिन केवल पहलगाँव की शोभा और सौन्दर्य से स्पष्ट थे। पानी के किनारे से उठ कर घाटी पार कर जैसे चीड़-वन पर्वत पर बहुत दूर-दूर तक चला गया है; वैसे ही उस के साथ चली जा रही है दिग्भ्रान्त नील गंगा—अनुपम है वह दृश्य। परन्तु चाँदनी लोक में समग्र विश्वप्रकृति जादूनगरी हो उठी है। मैं जो धरती की ठोस पथरीली ज़मीन पर खड़ा हूँ, यह मैं स्वयं ही भूल बैठा हूँ। मेरे सम्पूर्ण अस्तित्व का विलोप इस स्वप्नलोक में हो गया हो जैसे चेतना-बिन्दु एकदम निश्चिह्न! आश्चर्यमुखर है वह ज्योत्स्ना शक्ति।

मैं जा रहा था अमरनाथ। मन में हिमालय के अभिनवत्व का लोभ था। मन्दिरों की जगह इस बार गुफ़ा। न विग्रह, न प्रस्तर शिला, एक हिम-आयतन! धीरे-धीरे जो चान्द्रमास के योगानुसार शिवलिंग का आकार धारण करता है। स्वामी विवेकानन्द उस लिंग का दर्शन करने गये एक बार तो ऐसे समाधिस्थ हुए कि बहुत से तीर्थ यात्रियों ने उन्हीं को अमरनाथ समझ लिया। तब महाराजा प्रतापसिंह का राज था। और एक बड़ा लोभ है—इधर के हिमालय की आकृति और प्रकृति की विचि-

म्रता। हिमालय कहीं धूसर-उसर है तो कहीं बर्बर और कठोर! कभी-कभी वह रुद्रलोचन और निमीलित नेत्र हो उठता है। उसे देखने पर कभी आँखें जलने लगती हैं, तो कभी दोनों आँखें मधुर तन्द्रा से झपकने लगती हैं। कभी वह हिंसक-बाघ तो कभी भयावह भालू अथवा उन्मत्त हाथी की भीषणता और कभी वह गैरिकवासी संन्यासी समुदाय के तपोवन-प्रान्त में सामगान में मुखर। यहाँ हिमालय का रूप ही विचित्र है और समग्र कश्मीर और उसे चारों ओर से घेरे पर्वतमालाओं में अधिकांश मृण्मय है, प्रस्तरमय नहीं। यह रूप मेरे निकट नया है। कश्मीर है बड़ा कोमल—पहले इतना कोमल नहीं था। पर यह बात अभी छोड़ दी जाये। यहाँ से हिमालय के उत्तरी भाग का विस्तार शुरू हुआ सीधे उत्तर में। तिब्बत की दाहिनो ओर छोड़ उत्तर हिमालय चला गया है, कृष्ण गंगा पार कर काराकोरम पर्वत-श्रृंखला अर्थात् कृष्णगिरि के अन्त तक। अगल-बग़ल, उत्तर और पूर्व में, अनगिनत पगडण्डियाँ नज़र आ रही हैं। कोई तो चली गयी है कोल्हाई हिमवाह की ओर, कोई लद्दाख में, कोई लिद्दरवत से भी आगे सिन्धु घाटी में, तो कोई तिब्बत में, तो कोई दक्षिण लद्दाख में हैमिस गुफा की ओर जहाँ गुफा में ईसा के भारतभ्रमण के समस्त तथ्य और प्रमाण आज भी सयत्न सुरक्षित हैं। अनेक पथ अप्रत्यक्ष हैं, वे सब पहाड़ी गूजरों की मुट्ठी में हैं। हम जिन सभी अंचलों को अपने अभ्यस्त सरकार की वजह से दुःसाध्य और अगम्य कहते हैं, वहाँ का एक चरवाहा ऐसा नहीं मानता। वे अनायास ही आते-जाते हैं, इस पहाड़ को पार कर उस पहाड़ पर तिब्बत में, लद्दाख में, पामीर में, काराकोरम के दर्रे में अथवा मध्य एशिया में। मगर इसी पहलगाँव से प्रत्यक्ष एक पथ नील गंगा के किनारे-किनारे चला गया है—शेषनाग का विशाल सरोवर जैसे शतद्रु (सतलज) या सिन्धुनद का किनारा पकड़ कर जाने से मिलेगा मानसरोवर। लेकिन किसी के लिए उस नदी पथ से जाना सम्भव नहीं है। हम चलेंगे शेषनाग की ओर। शेषनाग का रास्ता पकड़ पहाड़ी दर्रे के भीतर से अमरनाथ, वही हमारा मंज़िले-मक़सूद है। बहुत से कहते हैं, यहाँ से अमरनाथ सिर्फ़ तीस मील है, बहुतेरे कहते हैं इस से भी कम। अर्थात् मोटे तौर पर तीन पर्वत श्रेणियाँ पार कर के हम अमरनाथ पहुँच सकेंगे। हम चलेंगे उत्तर-पर्वत पथ से। मेरे हिसाब से डेढ़ या दो दिन लगेंगे लेकिन मेरे पण्डा पण्डित बदरीनाथ कहते हैं, नहीं आप लोग चार दिनों में पहुँचेंगे। इस से पहले नहीं पहुँच सकेंगे। उन के कहने पर अचम्भा हुआ था। तब समझ नहीं पाया था कि इस पथ में क्षेप है, अनिवार्य विराम है, यानी पथ का अनुशासन मान कर चलने में हम बाध्य हैं।

नौका-यात्रा में श्रीकृष्ण ने अपनी गोपियों से प्रश्न किया था, उन में किस का वजन कितना है। गोपिकाओं के मन में हुआ कि जो जितनी भारी होगी उस की प्रीति उतनी ही और होगी। इस लिए कोई बोली डेढ़ मन, कोई दो मन बोली और कोई ढाई मन। अन्त में जीत हुई श्रीमती की यानी राधाजी की। वे बोलीं, "मेरा वज़न है एक मन! एक मन हो तुम्हें देखती हूँ मैं एकाग्र-एकान्त हूँ।"

अतएव पहलगांव अभी पड़ा रहे, हमारा एकमात्र लक्ष्य है अमरनाथ। मैं एक-मन हूँ।

होटल में हम लोगों के जिम्मे दो कमरे हैं लेकिन बाहर जाने के लिए मेरे कमरे से हो कर जाना पड़ता है। रहने की व्यवस्था ढंग की है। बाँथ रूम, ड्रेसिंग रूम अलग। दोनों कमरों का रोजाना चार रुपये। बग़ल के कमरे में हैं हमारे तात्कालिक समय के साथी हिमांशु बसु। कलकत्ते के इम्पीरियल बैंक में यानी आजकल के स्टेट बैंक के प्रधान कार्यालय में नौकरी करते हैं और अवसर मिलते ही तीर्थाटन के लिए चल पड़ते हैं। खूब बैठक बाज और मिठबोल आदमी हैं वे, उत्साही और कर्मठ। मगर ज़रा अधिक वय तक अविवाहित रहने से जो होता है, यानी मठ और आश्रमों के साधु-संन्यासियों के जैसे वे भी स्वास्थ्य रक्षा के प्रति दृष्टि उन की सजग है। यह सब लक्षण अच्छा है, घर से बाहर में ज़रूरी भी। और फिर उन का शरीर भी मज़े का हलका है, पहाड़-पर्वतों पर यह काम आता है। यहाँ ज़रा अवान्तर ज़िक्र कर दूँ। सफ़र में अपना सामान्य आत्मपरिचय हमेशा से मैं छिपा ही लेता हूँ, खास कर प्रवासी बंगाली सामाज में। इस से मेरी स्वच्छन्द स्वाधीनता अखण्डित रहती है। परन्तु तीनेक दिन पहले श्रीनगर होटल के खाते पर मेरा दस्तखत देख कर ही हिमांशु बाबू हो तिमंज़िले से उतर आये। भले मनुष्य के मुँह पर झूठ बोलने में घबरा गया था मैं। तभी से परिचय है। पहलगांव आया तो दूसरी विपत्ति सामने! कॉलेज स्ट्रीट के दो नौजवान जा रहे थे अमरनाथ। उन्होंने मुझे रास्ते में ही ढूँढ़ निकाला। फलस्वरूप दूसरे दिन कुण्डु स्पेशल के बंगाली यात्रियों की दावत में शरीक़ होना पड़ा था। भाटपाड़ा से आया है रेल कम्पनी के बाबू भट्टाचार्यजी का दल—बहुत ही निश्छल लोग ठहरे वे। वे भी आ जुटे तन मन से। इन के अलावा भी देखा कि अपने होटल के मालिक का भतीजा सिख छोकरा बहादुर सिंह भी है। वह इतना सिरफिरा कि आसानी से पिण्ड छुड़ा नहीं पाया। रात के खाने पर पहुँचा तो देखा कि कई पंजाबी तरुण-तरुणियों के साथ बहादुर सिंह उन से मेरा परिचय कराने के लिए बैठा है। इधर हिमांशु बाबू मोहमग्न। समझ गया ज़मीन पहले से ही तैयार की गयी है। सहसा उन में से एक लड़की उठ कर आयी, लम्बी छरहरी बंगाली लड़की। बौने हंसों में राजहंस की तरफ़ अब तक निगाह नहीं गयी थी। युवती ने विनत नमस्कार कर स्थिर स्वर में परिचय दिया। आँखें उठीं, देखा। रूप-प्रसाधन, वेश-भूषा और वैनिटी बैग से लगा कि यह फबेगी चौरंगी या सिनेमा में। उँगलियों की कोर पर नेल पॉलिश से रंगे प्रत्येक नाखून के ऊपर मानो रक्तिम हीरे की आभा चमक रही हो, सुरूप चेहरे के साथ की परिपाटी के साथ उस आभा का तालमेल बैठ गया है।

भोजन वग़ैरह के बाद हिमांशु बाबू पान खिलाने अपनी दीदी के बंगले में ले गये। दीदी! जी हाँ—मेरी यह अजीब आदत है महिलाओं से ज़रा भी परिचय होते ही मैं उन्हें बहन मान लेता हूँ और दीदी कहने लगता हूँ। वे हैं श्रीनगर स्थित इम्पी-

रियल बैंक के एजेंट श्री राय की पत्नी। वे भी अमरनाथ जा रही हैं। साथ में हैं एक पंजाबी गबरू। महिला खूब सामाजिक हैं, इस में ज़रा भी सन्देह नहीं।

चाँदनी में रास्ता पहचानते हुए हम एक फुलवारी वाले होटल में आ गये। नीचे ही नदी की तेज़ धारा बह रही है। मिसेज़ राय ने मुसकराहट के साथ हमारा स्वागत किया। सामने पान ला कर दिया। पलकें उठा कर देखा, उन की दोनों आँखों में सुरमे की हलकी रेखा है। उमर छोड़ो भी, स्त्रियों की उमर के बारे में सिर खपाना नहीं चाहिए। उन्होंने बताया, पहलगाँव में बहुसत से निवासी और दुकानदार उन्हें बहनजी कह कर पुकारते हैं। यहाँ आने पर उन का कुछ नक़द खर्च नहीं होता। श्रीनगर में उन के पति के पास बिल चला जाता है—रुपये जमा हो जाते हैं बैंक में पाने वालों में से एक के एकाउण्ट में। यहाँ वे जब-तब आती रहती हैं। जहाँ ज़रूरत हो हम लोग वहाँ यह कहें कि हम श्रीनगर की बहनजी के लोग हैं—बस हम लोगों को कोई असुविधा नहीं होगी और यह जो है मोहन, मेरा पंजाबी भाई, मैं ने ही उसे बंगला सिखायी है—बहुत कोशिश से।

पान खा कर हम खुशी-खुशी होटल लौट आये। कल दोपहर के बाद खा-पी कर यात्रा पर निकल पड़ेंगे, यह तय हुआ।

जो कुछ अब तक कहा उसे पहले ही कह लेना ठीक है इस से हमारी यात्रा का सुख समझा जा सकता है। आज हिमांशु बाबू के दिन भर के प्रयत्न से यात्रा की लगभग सारी व्यवस्था हो गयी है। खासतौर पर दो व्यक्तियों के लिए चार घोड़े, दो तम्बू, फोल्डिंग खाटें, इस के अलावा छोटी-मोटी बहुत सी ज़रूरी चीज़ें। जिस रास्ते जा रहे हैं उस पर लोकालय, भोजनालय मनुष्य कुछ भी नहीं है। कहते हैं पशु-पक्षी भी नहीं मिलते। पण्डों ने कह दिया है, चन्दनबाड़ी छोड़े कि मनुष्य का चिह्न नहीं मिलेगा। जास्कर पर्वत-शृंखला से सट कर हमें जाना होगा जोजिला के दर्रे की ओर। उस के बाद ही है सिन्धुनद से घिरी कैलाश पर्वत-शृंखला का उत्तर-विस्तार। उस के अगल-बग़ल भारत के मानचित्र में राजनीतिक सीमा बिलकुल स्पष्ट और निर्दिष्ट नहीं है।

हम लोग हैं लिद्दर घाटी के मध्य केन्द्र में। स्वर्गलोक से उतर आयी हैं पर्वतीय नदियाँ, इस पहलगाँव में ही उन का प्रथम अवतरण है, यहीं से वे चली हैं समग्र कश्मीर घाटी में। इसी से इस नदी का नाम पड़ा है 'लिद्दर' नदी उर्फ़ नीलगंगा। दो पहाड़ों को लाँघने पर मिलेगी सिन्धु घाटी, वहाँ दुर्गम पर्वत-माला पर से सिन्धुनदी पहली बार उतरी है। उस के इस ओर है आरूबस्ती, उस के आगे लिद्दरवत और उस ओर है लदा हिमाच्छादित कोलाहाई हिमवाह। यहाँ से आरू का पथ है वनमय और जनशून्य। जैसा कि पहलगाँव के दक्षिण-पूर्व अंचल का गहन चीड़ वन है। आरू पहुँच कर लिद्दरनदी एक समय पहाड़ों के नीचे कुछ क्षण अदृश्य हो जाती है। उस स्थल का नाम है 'गुरुगुफा'। पहलगाँव टिका है दो नदियों के संगम-स्थल पर। एक नदी-पथ के बग़ल से गयी है शेषनाग की चढ़ाई पर, दूसरा नदी-पथ चला गया है लिद्दरवत और कोला-

हाई हिमवाह की ओर। प्रयाण करेंगे शेषनाग की ओर। शेषनाग का असली नाम श्रीशनाग, शीर्षनाग या शेषनाग है या नहीं मैं नहीं जानता। रात को इस बारे में हम लोगों में खूब चर्चा की है।

सबेरे पहली खबर मिली, आसमान साफ़ है। इस जैसी अच्छी खबर उस दिन सुबह और कुछ नहीं थी। कल रात की चाँदनी जितनी बार धूमिल हुई थी, उतनी बार यात्रियों का चेहरा उतरते देखा था। हिमालय के और किसी दुस्तर तीर्थ में इस प्रकार का आतंक नहीं नज़र आता पर केदार-बदरी के पथ चलो—आश्रम की असुविधा कहीं भी नहीं। कैलाश के अधिकांश पथ—अर्थात् लिपुलेक दर्रे तक चुटकी बजायी कि पड़ाव आया। इस लिए प्राकृतिक दुर्योग जब जिस रूप में क्यों ही दीखे, दो चार मील की फ़ासले पर सिर छिपाने की जगह मिल जाती है। सब उलटा है। यात्रियों की संख्या के अनुसार खाने की चीज़ों की दुकानें दो-चार साथ जायेंगी—'फ़र्स्ट-एड' यानी डॉक्टरी के सामान साथ-साथ चलेंगे, इन के साथ चलेगी अस्त्र-शस्त्रधारी पुलिस। अगल-बग़ल कुछ बिसाती और पान-सिगार बेचने वाले होंगे। बग़ल के कमरे से हिमांशु बाबू 'चाय आ रही है अभी'—यह समाचार ले कर जब मेरे सामने आये ठीक उसी क्षण दरवाज़े के बाहर से नारी कण्ठ सुनाई पड़ा—अन्दर आ सकती हूँ क्या ?

आइए-आइए—कहते हुए बड़े उत्साह से हिमांशु बाबू ने कल रात वाली उस चौरंगिनी वाली का स्वागत किया। उस लड़की ने सीधे सामने आ कर प्रश्न किया—आप को कोई दिक़्क़त तो नहीं हुई ?—वाह, बैठिए न, कम्बल सरका कर उठ बैठा। इसी समय चाय आयी। हिमांशु बाबू ने उसे भी चाय के लिए पूछा। मुझे कुछ परेशानी सी हुई तो ज़रूर। नींद टूटने के साथ-साथ इस के लिए तैयार नहीं था। फिर भी ऐसे क्षण को अपने-आप सँभाल लेना पड़ा। हिमालय आने पर मैं साफ़-सुथरा नहीं रह पाता।

युवती बोली—पहलगाँव कुछ दिन घूमने के इरादे से आयी थी मगर आज ही श्रीनगर लौटना पड़ रहा है। मेरे पति दक्षिण भारत में हैं। आज पहुँचने पर उन के खत की उम्मीद है।

हिमांशु बाबू ने पूछा—क्या करते हैं आप के पति ?

शरीर पर पड़े ओवरकोट को सँभाल कर वह बोली—वे कश्मीर की मिलिटरी में हैं। हवाई अड्डे के ग्राउण्ड इंजीनियर। परन्तु तरक़्क़ी के लिए वहाँ एक परीक्षा देने गये हैं। हम लोग श्रीनगर के क़रीब ही रहते हैं। लाइए, मैं आप लोगों को चाय सर्व कर दूँ।

अब उस महिला ने दोनों हाथ बाहर निकाले। वही नेशपॉलिश। किन्तु उँगलियाँ लम्बी-लम्बी। बहुत ही सहज शीघ्रता से उन्होंने चाय का प्याला बढ़ा दिया। हिमांशु बाबू की ज़रूरी बुलाहट पर बॉय एक केतली चाय और दे गया।

एक बार चाय पीने के बाद कुछ वे हिल-डुल बैठ गयीं, बोलीं—लेखकों की रचनाएँ बड़े मन से पढ़ती हूँ, कितने ही प्रश्न भी उठते हैं, मगर लेखकों को देखा अपने जीवन में यह पहली बार हो। आप से इसी लिए कुछ पूछूँगी, साहस कर के आयी हूँ। यदि आप बुरा न मानें।

हँसता हुआ बोला—जरा डर लग रहा है····

हिमांशु बाबू के साथ वे भी हँस पड़ीं—डर क्यों ?

बोला—पूछने वाले सामने नहीं होते, इस से बहुत से लेखक बच जाते हैं। आप के प्रश्नों का ठीक अनुमान नहीं लगा पा रहा हूँ। और फिर लेखकीय परिचय तो बंगाल में ही छोड़ आया हूँ, यहाँ तो मैं हिमालय-यात्री हूँ।

युवती ने पूछा—मेरे प्रश्न हिमालय-भ्रमण के बारे में ही हैं।

उस के मुँह की ओर देखा। कल रात भूल हो गयी थी। अत्यन्त आधुनिक प्रसाधन साज-सज्जा के पीछे एक अति भद्र एवं विनयी लड़की छिपी है। ऐसी स्वस्थ छरहरी एवं खुले वास्तव को लड़की इस यात्रा में और नहीं दीखी। परन्तु मन में भय था कि इस अति आधुनिक साज-सज्जा के पीछे क्या अनुरूपा देवी है ? हिमांशु बाबू की दीदी के आँचल में क्या 'दीदी-मा' नानी बँधी हैं ? और इतनी मधुर भूमिका के बाद उन्होंने जो प्रश्न किया, उस ने मुझे उबा दिया। पिछले बाईस वर्ष से इस एक ही प्रश्न का उत्तर देते-देते हैरान हो उठा हूँ। 'महा प्रस्थानेर पथे' (महाप्रस्थान के पथ पर) की 'रानी' कौन हैं ? आजकल वे कहाँ हैं ? आप से क्या वह कभी मिलती हैं ? उन का असली परिचय क्या है ?

मेरा उत्तर कुछ रूढ़ और परिहासपूर्ण था। दोनों श्रोता और श्रोत्री कुछ क्षण हँसते रहे। पुनः कुछ क्षण प्यालों में चाय उड़ेलते बीते। इस के बाद वह बोली—आप लोग अमरनाथ से लौट कर क्या श्रीनगर ठहरेंगे कुछ दिन ?

इच्छा तो है। घूमना-फिरना तो अभी बाक़ी ही है।

उन्होंने ससंकोच कहा—कहने का साहस तो नहीं होता, आप लोगों को यदि कोई असुविधा न हो तो मेरे यहाँ ठहरें, मुझे खुशी होगी।

हिमांशु बाबू ने कहा—मगर, दीदी, मैं ने बोट हाउस में रहना तय कर लिया है। मुझे माफ़ करें।

अतएव मेरी ओर वे मुड़ीं। बोलीं—आप की नाहीं मुझे मंजूर नहीं होगी। कम से कम दो-एक दिन तो मेरे यहाँ आप को ठहरना ही होगा, बस अब 'हाँ' कह डालिए। मेरे पति आप के ठहरने की बात सुन कर इतने खुश होंगे कि क्या कहूँ।

कहा—अमरनाथ से जीवित लौटने के बाद ही यह आतिथ्य स्वीकारने की बात उठती है।

वे सोत्साह परिचय देने लगीं—उन का नाम है श्रीमती माया गुप्ता और पति

है सर्जेंट के० सी० गुप्त। इस के बाद श्रीनगर का अपना ठिकाना देती हुई बोली—आप को किसी प्रकार की असुविधा न हो, इस का इन्तज़ाम मैं कर लूँगी। अब मैं चलूँ। दिन के दस बजे वाली बस से ही जाऊँगी, तैयारी बाक़ी है। बहुत परेशान किया, कुछ ख़याल न करें। आज ही मैं अपने पति, मित्र सभी को पत्र लिखूँगी कि आप से मेरा परिचय हुआ है और आप मेरे यहाँ ठहरेंगे।

यह कह नत-नमस्कार कर वह विदा हुई।

इस परिचय के दस-एक दिन बाद श्रीमती गुप्ता का मैं ने आतिथ्य स्वीकार किया था ज़रूर मगर जन्माष्टमी के दिन श्रीनगर के सतह-अंचल में उसी समय आकस्मिक रूप से आयी बाढ़ की वजह से महोदया को अपना निवास छोड़ कर मेरे साथ श्रीनगर त्यागना पड़ा था। यह नाटकीय कहानी कश्मीर के ज़िक्र के साथ सुनाऊँगा।

आज २१ अगस्त, १९५३ है। हमें जल्दी थी। चार घोड़े ठेकेदार के ज़िम्मे पड़े हैं। दो लद्दू घोड़े अड़तीस रुपये भाड़े पर मिले हैं और दो सवारी वाले चालीस रुपयों में। प्रति व्यक्ति छोलदारी (छोटा-सा तम्बू) छह रुपये में। खाट दो रुपये, तोशक एक रुपया। घोड़ों के रखवाले घोड़ों के लगाम पकड़े संग-संग पैदल चलेंगे। ये सभी कश्मीर के गँवई मुसलमान हैं। इधर हमें सामान सहेजते-सँभालते ग्यारह बज गये। आज यात्रियों का गन्तव्य होगा चन्दनबाड़ी। चन्दनबाड़ी तक जा कर आज की यात्रा समाप्त हो जायेगी।

घोड़ों के लिए इतनी छीना-झपटी होगी, यह मालूम नहीं था। दोपहर के ठीक बाद ही यात्रा के समय पता चला कि दोनों घोड़े हम लोगों के खो गये हैं। फ़ौरन दौड़-धूप होने लगी। एक ही दिन को एक ही समय में सैकड़ों यात्रियों का एकत्र बिना यात्रा किये, नियत श्रावणी पूर्णिमा को किसी तरह भी अमरनाथ पहुँचा नहीं जा सकता। अजाने पथ के यात्री ठहरे हम सभी। किसी व्यक्ति के पिछड़ जाने या एक वक़्त के लिए यात्रा स्थगित करने से उसे अकेला ही जनशून्य बर्फ़ीले प्रदेश में आतंक का निर्वासन करना होगा। यह रूप भी देखा है, फिर आगे कहूँगा। इस लिए हम उस पहलगाँव घाटी के मैदानों में इधर-उधर दौड़-धूप करने लगे। ठेकेदार, तहसीलदार, पुलिस कोतवाल इत्यादि विभिन्न स्थलों में सिफ़ारिश करते-कराते दो घण्टे बाद कहीं हमें राहत मिली। अब चारों ओर घोड़ों को इस बार मुस्तैदी से जकड़े रहा। दुर्गम तीर्थ पथ के इन सच्चे साथियों को सबेरे से ही नगर के सामने बाँधे रखना ही अच्छा होता। हम सभी जैसे स्वार्थी हो उठे हैं।

'कुण्डू स्पेशल' के लगभग डेढ़ सौ यात्री आगे-पीछे निकल गये हैं। उन में बहुत सी सम्भ्रान्त मध्यवित्त बंगाली महिलाएँ और पुरुष हैं। बहुत से गये हैं पैदल ही। अधिकांश घोड़े पर, कई लोग ऊँचे दर की डांडी से। इन के अलावा पंजाबी स्त्री-पुरुषों की संख्या भी कम नहीं है। इस बार राजनीतिक कारणों से यात्रियों की संख्या

कम है। फिर भी सब मिला कर अन्दाज़न सात-आठ सौ हैं। इन में हैं साधू-संन्यासी, योगी-फ़क़ीर। केदार-बदरी या कैलाश की यात्रा अवधि जितनी लम्बी है, यहाँ वह गुंजायश नहीं। पर्व का सिर्फ़ एक दिन है श्रावणी पूर्णिमा। उस दिन पहुँच सको तो जाओ, वरना फिर अगले साल। इस यात्रा में सब से आगे गयी है अमरनाथ के पुजारियों की टोली। वे हैं प्रथम श्रेष्ठ यात्री, गये हैं पैदल। उन के पास है अमरनाथ का आसासोंटा और राजछत्र और हैं पूजा के उपकरण आदि, है शंख-घण्टा-घड़ियाल। ये हर वर्ष सभी यात्रियों से आगे गुफा में जा पहुँचते हैं। मार्तण्ड शहर से रवाना होते हैं। राज्य सरकार से ये सहायता पाते हैं।

हम प्रायः सभी से पिछड़े गये हैं। फिर भी अभी तीसरे पहर का ढाई नहीं बजा है। धूप चिलचिलाती हुई। अगर बादल नहीं घिरे हों तो हमें कोई दिक़्क़त नहीं, आगे का पथ चौड़ा नहीं है, अगल-बग़ल दो घोड़ों का चलना मुश्किल है। घीरजवान पहाड़ी घोड़े बहुत कुछ अपनी मरज़ी से धीरे-धीरे हमें उत्तर की ओर ले चले। कभी-कभी दीखता है, किसी-किसी मोड़ से ख़ूब लम्बी राह पर पंक्तिबद्ध घोड़ों को कारवाँ छोड़ते ही लिद्दर नदी की आड़ी-टेढ़ी पुलिया मिलती है, इस के बाद ही सरकारी टोल वग़ैरह के ऑफ़िस हैं। बहुत खेद के साथ कहना पड़ रहा है घोड़ों के ग़रीब रखवालों से यहाँ आश्चर्य से ज़्यादा कर उगाहा जाता है। तीर्थ-पथ में किसी प्रकार का कर लगा देख कर मन मसोस जाता है। ग़रीब होने पर भी कोई रिहाई नहीं पाता। दोहन से ही दाहन की उत्पत्ति है, इस का खयाल अधिकारी वर्ग रखें तो अच्छा हो।

पथ क्रमशः संकीर्ण होता जा रहा है। हमारे घोड़े क़तार बना कर चल रहे हैं। कोई-कोई बग़ल काट कर घोड़ा आगे बढ़ा ले जाना चाहता है। चौड़ी घाटी क्रमशः संकीर्ण और संकटग्रस्त हो उठी। धीरे-धीरे नागाधिराज का रहस्य द्वार हमारे सामने आभासित होने लगा है। आकाश सिमटता जा रहा है। नदी की झर्र-झर्र आवाज़ बढ़ गयी है। हम नरलोक से देवलोक जा रहे हैं। यहाँ पथ अन्दाजन चार फ़ुट से छह फ़ुट चौड़ा है। मगर बहुत ही ऊँचा-नीचा है। जो आदमी घोड़े का रखवाला है उस का नाम गनी शेर। जाति का कश्मीरी किन्तु चेहरे से आर्य। विरासत में मिली दो खिंची-खिंची नीलाम आँखें। विशालकाय, स्वस्थ, उजला गौर वर्ण। आदमी जितना निरीह है, उतना ही भला। कश्मीर के मुसलमान अमूमन दाढ़ी-मूँछ नहीं रखते। बरताव में अशिष्टता, यात्रियों के प्रति अवहेलना या उदासीनता यह सब इन में नहीं है। इन में से किसी व्यक्ति को नमाज़ पढ़ते नहीं देखा कभी भी। सदा मित्रता का भाव, निरन्तर स्नेह और सहयोग की भावना। अनेक बार वे परम आत्मीय से लगे हैं। ये हैं पहाड़ की सन्तान, पहाड़ों की कठोरता एवं सौन्दर्य से इन का तन-मन बना है, उदार पर्वत-श्रृंखलाओं से इन्होंने अपने स्वभाव का निर्माण किया है। गढ़वाल में ठीक यही देखा—वही स्नेह, वही सज्जनता, वैसी ही सहयोगिता। यही सीमान्त के पठानों में, नेपाल में, भीमताल में, कामरूप में और कौशल्यानदी के पार सोमेश्वर में, देखा। समग्र हिमालय से ये

वर्ण्य सज्जनता और सरलता पाते रहे हैं ।

चढ़ाई पथ से चल रहा हूँ—कभी उतरता, कभी चढ़ता । बीच-बीच में कशमीरी औरतें सामने आ भीख माँगती हैं । वही वनहरिणी काली-काली आँखें, घाघरा पहने सिर पर कपड़े का टुकड़ा बाँधे दूध और रक्त में घुला-मिला वर्ण । ये हैं गृहस्थ घरों की औरतें, ग़रीब हैं । मुसलमान लेकिन परदा नहीं । बंगाल के गाँवों में जैसी ग़रीबी है वही यहाँ वर्ण-वर्ण में मिलता । फिर भी फ़र्क़ यह है बंगाल में अर्धनग्न या नग्न रहने में सहज संकोच नहीं है और यहाँ नंगा नहीं रहा जा सकता । इन के चेहरे देख हम विस्मित होते हैं, कारण अखण्ड भारत के किसी भी मुसलमान से इन के चेहरे का मेल नहीं है । तुर्क, ईरानी रक्त नहीं है । ये शुरू से अन्त तक आर्य हैं । रक्त में हिंसा और बर्बरता ला नहीं पाये । इसी कारण सीमान्त से जब पठान दस्युओं ने अभी उस दिन कशमीर पर आक्रमण किया, कशमीर के आर्य मुसलमानों ने उन से हाथ नहीं मिलाया । रक्त में मूलतः पार्थक्य है तभी तो पूर्व पाकिस्तान से पश्चिम पाकिस्तान का मेल किसी भी तरह सम्भव नहीं हो पा रहा । ऐसी सुन्दर औरतों की आँखों में, भय मगर करुणा और विनती स्पष्ट है । सौ-सौ वर्षों से इन की यह ग़रीबी मिटी नहीं । पीरपंजाल पर्वत-शृंखला के बाहर जो भारत वर्ष नाम का एक देश है, यह पृथ्वी बहुत बड़ी है—यह वे जानते नहीं । वे जानते हैं, जो आते हैं कशमीर, वे धनी हैं, वे हैं दाता । वे रोते रहे हैं बहुत दिनों से, मार खाते आ रहे हैं सैकड़ों वर्षों से । अफ़ग़ानियों ने मारा है, अफ़रीदी पठानों ने मारा है, तुर्कियों ने मारा है । हूणों के हाथों मार खायी, तातारों ने मारा है बार-बार । यहाँ तक कि अभी उस दिन के सिख राजत्व के हाथों भी इन के अस्थि-पंजर चूर-चूर हुए हैं । मुगल या अँगरेज़ों ने उन्हें मारा नहीं । राजा गुलाब सिंह के राजकाल से वे और मार नहीं खाये । इस सैकड़ों-हज़ारों साल के अपमानजनक इतिहास को ताक पर रख वे आज भी घर सँवार नहीं पाये, आज भी कर्मठ पुरुषों को इनसान बना नहीं पाये । तभी वे रास्ते के बीच आ कर सौ-सौ हाथ फैला कर खड़े होते हैं, सभ्य जातियों के निकट जीवन के लिए प्रार्थना करते हैं । हमारे निकट कशमीर है भू-स्वर्ग, उन के निकट कशमीर है ग़रीबी का नरक-कुण्ड ।

पथ क्रमशः विपत्तिपूर्ण हो उठी है । पहाड़ी चट्टानों से सट कर चल रहा हूँ । बग़ल में ही है नीलगंगा की गहरी खाई । दोनों ओर है पर्वतमालाओं की वन्य छटा । बीच-बीच में जल-प्रपात यहाँ-वहाँ गर्व से उतर रहे हैं । अब भी लोकालय मिल रहे हैं, अब भी स्वस्थ बलिष्ठ आर्य-नासिका और चक्षुयुक्त पहाड़ी स्त्री-पुरुषों को कहीं-कहीं देख पा रहा हूँ । इस पार और उस पार एक-आध गाँवों का चिह्न है । कहीं लकड़ी का काम होता, कहीं दर्जियों का घर । इन के मध्य दीर्घ-विलम्बित विराट्काय प्रागैतिहासिक सरीसृप जैसा हमारा खूब लम्बा कारवाँ चला जा रहा है । नीलगंगा की अविश्रान्त हर-हर आवाज़ सुनते हुए घुड़सवार यात्रियों का जत्था शान्त मन से पहाड़ी पथ को अतिक्रम कर चल रहा है । डांडी जा रहा है बंगाली महिला को लिए । भाठपाड़ा चल रहा है

नौजवानों के जत्थे के साथ। पंजाबी स्त्रियाँ और बच्चे चल रहे हैं—घोड़ों पर। इन्हीं के साथ-साथ चल रहा है लद्दू घोड़ों की टोली। पेड़ों की टहनी हाथ में लिये हम घुड़सवार चल रहे हैं आशंका में डूबे, कमर के दर्द से परेशान। कभी अजस्र भिन्न-भिन्न रंगों के जंगली फूलों की गन्ध कभी झुण्ड के झुण्ड पतंगों से रंगीन पंख मारने की आवाज़। निस्तब्ध पहाड़ी पथ शब्दहीन वनलोक। सभी के चेहरों पर अबोला विस्मय। एक पथ से दूसरे पथ में मानो एक के बाद एक अजाने लोक हमारी नज़रों में अपना सही परिचय उद्घाटित कर रहे हैं। हम चल रहे हैं भू-स्वर्ग में।

सहसा सामने की ओर से एक मधुर ध्वनि पीछे से तैरती आयी। हम एक निर्झरिणी को पार कर आगे बढ़ आये। क़रीब जा कर देखा एक दुर्घटना हो गयी है। एक पंजाबी स्त्री-पुरुषों की छोटी सी टोली जा रही थी। उन में से एक स्त्री नदी के खन्दक में गिर पड़ी थी, सिर के बल गिरी थी इसी से कान फट कर ख़ून बह रहा है, पूरी देह में चोट के निशान ख़ून से तर है। कुछेक मिनट के लिए ज्ञानहीन हो गयी थी। अभी पड़ी है पथ पर। अपने लोग अगल-बग़ल खड़े हैं। 'फर्स्ट-एड' दिया जा रहा है। कारण था सँकरे पथ पर घोड़े का घोड़े से लगा धक्का। वे छिटक कर खंदक में लुढ़क पड़ीं। ज़रा से के लिए बच गयी, नदी में लुढ़की नहीं। कहने की ज़रूरत नहीं कि इस घटना से सभी ने सीख ली।

बीच-बीच में तो पथ नहीं है, पैरों के निशान हैं बड़े-बड़े पेड़ों के दर्रे। उसे ही पथ कहा जाये, मान लूँगा! कहीं सिर झुका कर घोड़े की पीठ पर उकड़ूँ होना पड़ता है, सिर पेड़ की टहनियों या चट्टानों से टकरा सकता है। कभी घोड़े की पीठ पर बैठे रहने पर भी घुटने पत्थरों से रगड़ खाते हैं, मगर पैर उठाने की गुंजाइश नहीं है, सन्तुलन बिगड़ जायेगा। आँखें दोनों लगी हैं रास्ते की रेखाओं की ओर, पर्वतीय सौन्दर्य के उपभोग का अवसर ही नहीं है। नीचे से ऊपर चढ़ रहा हूँ ऊपर से उतर रहा हूँ नीचे। जो डांडी से चल रहे हैं, चार आदमियों के कन्धे पर, उन के पैर दोनों, कभी ऊपर हो जाते हैं और सिर नीचे की ओर, कभी-कभी पैर दोनों इतने नीचे झूलने लगते हैं कि कहीं डंडी से सरक कर गिर न पड़े। बीच-बीच में नदी के नीचे की ओर घास और झाड़-झंखाड़ से घिरे गुहा-गहरों में घना अन्धकार। चट्टानों के ऊपर दुग्ध फेनिल हहराता हुआ जलप्रवाह पछाड़ खा-खा कर धूमिल फुहारों में इधर-उधर बिखर रहा है। छायादार जंगली झाड़ियों के नीचे उन्मत्त तरंगों का यह उद्दाम मतवालापन देख कर मन विभ्रमी हो उठता है। जैसा कितनी बार देख चुका हूँ अलकनन्दा और कोशी में, बाग्मती और तिस्ता में, विपासा और चन्द्रभागा में और नीलधारा तथा मन्दाकिनी में। उन के तट पर से कितने ही दिन कितने ही पक्षी मेरे मन का सन्देश ले कर उड़ गये हैं। कितने ही तीर्थपथ के प्यासे पथिक प्यास मिटा कर अपनी अनजानी मंज़िल की ओर चले पड़े हैं। कितने ही जन्तु और सरीसृप उन के किनारे से मुझे देख मेरे ही अन्तर के उद्ग्रीव रहस्यबोध की तड़प ले कर गुहा-गह्वर में समा गये हैं। लगता है, मेरे भीतर एक कीट

बैठा है, वह कीट सिर्फ़ ढूँढ़ता है इस हिमालय के पथ और पत्थर। उस का जंगली स्वभाव नगाधिराज के प्रत्येक पत्थरों के टुकड़ों को खरोंचता रहता है। निर्झरिणी तटों के शैवाल-मूल में हर वृक्ष के कोटरों में हर लता-गुल्मों में, तुषार बिन्दुओं और बर्फ़ीली नदी पथों में, हर तीर्थ में, हर पथिक के पावों के नीचे, वह अपना डेरा डाले आनन्द से रह रहा है। वह बसा है हिमालय के हर धूल-कणों में और गुफ़ाओं में, हर मन्दिर के प्राचीन पत्थरों में और प्रत्येक वृक्षों की शाखा-प्रशाखाओं में। अमृत-युग में, समुद्र-मन्थन में, देवासुर में, त्रेतायुग में, बाल्मीकि-वेदव्यास में, भारत की आदिम सभ्यता में, आर्य-अनार्य के संघर्ष में, वेद-उपनिषद्, पुराण इतिहास में, मनुष्य की वंशपरम्परा में, अस्तित्व के पर्त-पर्त में कल्प-कल्पान्त युग से युगान्तर में चला आ रहा है और हिमालय सभ्यता के क्रमिक विकास में वही कीटानुकीट हूँ मैं।

बस, हमारा आज का पथ समाप्तप्राय है। उत्तुंग पर्वतमाला के शिखरों पर साँझ की रक्तिम धूप नज़र आ रही है। दूर से चन्दनबाड़ी का पहाड़ दीखने लगी है। लगभग आठ से नौ मील पथ पार कर आया। साढ़े नौ हज़ार फ़ुट की ऊँचाई पर पहुँचने पर अब खूब ठण्ड लगने लगी है।

चन्दनबाड़ी पहुँचने में प्राय: चार घण्टे लगे ही। सड़क का आखिरी हिस्सा बहुत ही ऊँचा-नीचा था। जो बराबर पैदल चलते रहे हैं उन के पैरों की हालत मेरा जाना हुआ है। तभी मन ही मन सहानुभूति का बोध मुझे होता है। हम घोड़े पर आये हैं, इस से पैरों को तो राहत मिली पर मेरुदण्ड को नहीं। जम कर बैठे रहने से पीठ में दर्द हो रहा है। और फिर घोड़े के पैरों पर विश्वास नहीं होता। खड्ड के किनारे छूते हुए चलने से आतंकित देह क्षण-क्षण चौंक उठता है। सर्वाधिक निरापद है पैदल चलना, क्योंकि वह अपने वश में है।

चन्दनबाड़ी घाटी है ज़रा सी जगह। चारों ओर से पहाड़ों का अवरोध और बीच में हत्ता सा हिस्सा। सामने कई लाल रंग के छज्जे लोहे के फ्रेम पर टिके हुए हैं। पूरे वर्ष में एक-दो दिन ग़रीब तीर्थयात्री सर्दी और वर्षा से बचाव के लिए यहाँ ठहर जाते हैं, इस के बाद पूरा वर्ष बाद सुनसान छज्जा एकदम रिक्त रहता है। खूब बर्फ़ पड़ती तो पहाड़ी भालू या उपत्यका के अन्यान्य जन्तु यहाँ आते हैं। बग़ल से, बहुत नीचे की ओर तेज़ धारा में नीलगंगा या लिद्दर नदी बह चली है। यहाँ पहुँच कर जब घोड़े से उतरा, साँझ की ठण्ढी हवा हमें कँपा गयी। घोड़े का रखवाला गनी शेर और उस के सहयोगी ने मिलजुल कर तम्बू गाड़ मुझे और हिमांशु बाबू को दो खाट दिये। उन्हें साधारण ज्वर होते हुए भी उत्साह में कमी नहीं थी। सिहरती साँझ में इधर-उधर घूम कर देखा, लगभग सभी लोग हम से पहले पहुँच गये हैं और घाटी तम्बुओं से भर गयी है और तरह-तरह की चीज़ों की दुकानें लग गयी हैं। तम्बू के बाद तम्बू—पैर रखने की जगह नहीं। कहीं कोई लकड़ी, कोई मटमैला लालटेन, तो कोई मोमबत्ती जलाये है। जाड़े से सभी परेशान हैं। बहुत से तो कई कम्बल ओढ़े सिकुड़े

हैं। साधु, महन्त, संन्यासी, नागा, फ़क़ीर यहाँ तक की कुछ गृहस्थ, पति-पत्नी, गोद में बच्चे और लड़के-लड़कियों को साथ ले कर आये हैं। देखते-देखते अँधेरा हो आया है और उस पार की पहाड़ी के बग़ल से निकले चाँद ने अपनी चाँदनी से इस पार के पहाड़ों की चोटियों को तनिक उजला कर दिया है हमारा छोटा सा ऊँचा-नीचा ढलवाँ अँधेरे से ढक गया है। सैकड़ों लोग सिर्फ़ अपनी एक रात का जीवन निर्वाह के लिए घुप्प अँधेरे में डूब गये हैं। राह-रास्ते के नाम पर कुछ कहीं नहीं, वर्षा के बहाव से जो कुछ जितना टूट गया है वही आने-जाने की राह बन गयी है। अगल-बग़ल घना घोर जंगल, इधर-उधर एकाध घर। पुराने ज़माने में तीर्थ यात्रा में वे ही आते थे, जो संसार से एक तरह से विमुख थे। कम उमर के स्त्री-पुरुष बहुत नहीं दीखते थे। आज-कल तो सब उलट गया है। कच्ची उमर के यात्री सभी जगह पहुँचते सभी अध्यात्म-पिपासु के लिए नहीं, कुछ तो दुर्गम और दुःसाध्य पथ के खिचाव में, कुछ अभिनव जीवन-यात्रा के आकर्षण में, कुछ तो सहज आनन्द उद्घाटन के लिए आते हैं। सामाजिक जीवन से कुछ समय के लिए ज़रा उन्मुक्ता भी कम लोभनीय नहीं है। हम ने आते समय अनगिनत कम उमर के स्त्री-पुरुषों को देखा है। उन में बंगाली, पंजाबी, मराठी, मद्रासी—सभी हैं। एक दम्पति तो छह महीने के शिशु के साथ है।

जाड़े से काँप रहे हैं बहुत से लोग। बहुत से लोग तो खौलती हुई चाय घोट रहे हैं मिलिटरी का एक दल आया है, पुलिस वाले कई आये हैं। ज़रा हट कर ही एक सिक्ख दुकानदार रोटी सेंक रहा है परांठा बना रहा है—चाय दे रहा है। भीड़ लगी है वहाँ। गनी शेर और उस के साथ वाले पीठ पर लाद कर भात और सब्ज़ी लाये हैं। सामने ही लकड़ी जला कर वे बैठ गये हैं। हिमांशु बाबू उस सिक्ख दुकानदार के यहाँ जमे हैं। वे गप-शप्प के प्रेमी हैं, अतएव मजलिस जमाये बेंच पर बैठे हैं दुकान की बेंच पर। सामने लालटेन जल रही है।

मैं अँधेरे रोशनी बेंच के एक कोने आ बैठा। हिमांशु की बग़ल में दो फ़ौजी नौजवान खाना खा रहे हैं। बातचीत के दौरान पता चला, उन में एक बंगाली है। यह जगह और बंगाली मिलिटरी। हिमांशु बाबू गद्गद हो कर उन से उमंग के साथ बात-चीत करने लगे। कश्मीर के भारतीय सैनिक विभाग की मेडिकल यूनिट में सौ में साठ बंगाली अफ़सर हैं। यह नौजवान कई दिन की छुट्टी ले कर अमरनाथ के दर्शन को जा रहा है। तीर्थ मोह में नहीं, बल्कि बीहड़ता उस का आकर्षण है। हिमांशु बाबू ने उस से परिचय कराया। सहसा लालटेन की उस रोशनी में युवक के चेहरे पर अजब सा भाव दीखा। मेरे अजाने ही वह बारम्बार मुझे नीचे से ऊपर तक घूरने लगे। पता चला, उस का नाम है मिस्टर मजूमदार। चेहरा-मोहरा फ़ौजी के लायक़ ही है। जो भी हो, किसी तरह खाना खा ज्यादा बातचीत किये बिना ही चला गया। परिचय घनिष्ठ नहीं हो सका।

हमारे पण्डे बदरीनाथ बड़े बुद्धिमान् हैं। उन्होंने अपने भाई शिवजी की देख-रेख

में हमें छोड़ दिया है। वह घूम-घूम कर हमारे तम्बू की रखवाली करता है। इसी तरह और भी बहुत से यजमानों को उन्होंने नजरबन्द कर रखा है। हम दोनों के तम्बू नदी से सटे हुए हैं, जिस से कुछ आशंका भी है, यानी जीव-जानवर या साँप का डर। आराम जो कुछ था वह यही कि जगह एकान्त है। गनी शेर और उस के साथी ने घोड़ों के पैर बाँध कर उन्हें यहाँ-वहाँ छोड़ दिया है—वे सारी रात भचक-भचक कर घास चरते रहेंगे। लोई कम्बल से मुँह ढक कर अगल-बग़ल वे सो गये। हम लोग भी अपने-अपने तम्बू में जा घुसे।

इस के पहले पिकनिक अवसर पर तम्बू निवास का अनुभव मेरा था किन्तु इस प्रकार अकेले तम्बू में रात कभी नहीं बितायी। हमारा तम्बू छह फ़ुट की लम्बाई-चौड़ाई वाला है। खींच-खींच कर बाँधने पर चारों ओर से एक फ़ुट और बढ़ सकता है। इतनी ही है मेरी रात की दुनिया की सीमा। फोल्डिंग खाट के ऊपर किराये की एक तोशक है, तकिया मेरा अपना है। चीजें इस बार कुछ कम नहीं हैं, बल्कि अधिक ही। एक फोल्डिंग चेयर भाड़े पर ले आया हूँ, उस के हत्थे पर मोमबत्ती रख कर डायरी लिख लिया है। रात गहरी होती गयी।

दो-एक लोगों की बातचीत का स्वर कुछ समय तक आता रहा। इस के बाद सब चुप्प। उस चुप्पी का अन्दाज लगाना कठिन है। रात को निस्तब्धता में उल्लू और सियार-कुत्तों की आवाज सुनने का हमें अभ्यास है। झींगुर और मेंढक टर्राते हैं। जंगल का किनारा होने से कितनी बार 'फाऊम' बोलता है।

पेड़-पौधों का घनत्व। कभी-कभी सरीसृप की ध्वनि भी सुनाई पड़ती है। मगर यहाँ जनहीन जगत् में चेतना का चिह्न कहीं नहीं है। एकदम मौत की तरह खामोशी है। रह-रह कर आती हैं सिर्फ़ बग़ल से बहती हुई नीलगंगा की टूटती हुई लहरों की आर्त पुकारें और उसी के बीच सुनाई पड़ती हैं भूखे और शीत त्रस्त चरते हुए घोड़ों की अजब सी हिनहिनाहटें। देखते-देखते इस अवरुधित घाटी में भी चाँदनी उतर आयी। उस चाँदनी का आश्चर्य रूप से हमारा परिचय नहीं है। गांगेय के समतल भू-भाग की चाँदनी यह नहीं है, यह चाँदनी हिमालय के गहन रहस्यलोक की है। सहसा यदि देह का विलोप रूप हो जाये और उस के बाद भी जीवन की कल्पना रह जाये तो हम सोच लेंगे, कोई अवास्तविक मायालोक है। वह स्वप्न में, रंग में, कल्पना में, तन्द्रा की धूप-छाँह में, जैसी हो अवास्तव है, वैसी ही अप्राकृत भी। आँखें फाड़ कर देखता हूँ, रात का कोई अदृश्य रखवाला आया है और सौरलोक एवं मर्त्यलोक का मध्य द्वार खोल गया है। नीचे, प्राणहीन प्रान्त भूमि के ऊपर मृत्यु की जड़ता है और ऊपर स्तब्ध अप्सरालोक कभी किसी मनुष्य की आँखें भी जो देख नहीं पातीं, जो जान नहीं पातीं, उपलब्धि से परे हैं—उसे ही जैसे साफ़ देख रहा हूँ, अनायास गहराई से महसूस कर रहा हूँ। लोगों की भीड़ में जो सारी जिन्दगी बिता डालते हैं, वे कहेंगे—'सबार ऊपरे मानुष सत्य, ताहार ऊपरे नाई।' सब से बड़ा सत्य मनुष्य है, उस से

ऊँचा कोई नहीं ! मगर क्या सचमुच मनुष्य से ऊँचा कोई नहीं है। तब जो हम लोगों के संस्कार के, बुद्धि के, धारणा के, ज्ञान के अतीत में है, वह ? वह जो भूख-प्यास को भुलाता है, बुद्धिजीवी को दिग्भ्रान्त करता है, फूँक-फूँक कर क़दम रखने वालों को भी घर-गिरस्ती से छुड़वाता है, ज्ञानी को भी पागल बनाता है—वह क्या है ? वह कैसा है ?

छोड़िए, आज बस आराम से सोने के सिवा और कुछ नहीं करना है। रात भर तम्बू का परदा खुला रहे ताकि इस का उत्तर पा सकूँ। इस की व्याख्या, इस की भाषा, इस के चरम अर्थ को जानना होगा—देवतात्मा हिमालय अपनी शेष बातें सहज ही अब कह डाले चुपके से कानों में।

सबेरे हिमांशु बाबू का आभास मिला। उन को तबीयत कुछ ठीक नहीं है, फिर भी वे प्रभात-फेरी लगा गये। यह पड़ाव बहुत कम समय का है। यथासम्भव सब कुछ सँभाल-सहेज लेना होगा। सबेरे का आकाश प्रसन्न था इसी से बहुत से साधु-संन्यासी और माने-जाने तीर्थयात्रियों का जत्था आगे-पीछे पैदल सड़क से निकल गये हैं। पण्डा शिवजी आ कर कह गये—यहाँ से कुछ दूर चलने पर भयानक चढ़ाई है, वह चढ़ाई देख कर बहुत से यात्री डर कर भाग जाते हैं।

चाय पीने के लिए निकल रहा था कि इसी समय साहबी पोशाक में कई बंगाली युवकों ने सामने आ नमस्कार किया। वे भी चल रहे हैं। उन के साथ एक स्वीडेन निवासी छात्र है। स्वीडिश युवक संसार भ्रमण के उद्देश्य से निकला है। भारत पहुँच कर उस ने तुषार-लिंग अमरनाथ का नाम दिल्ली में सुना। उसे बड़ी उत्सुकता हुई—कैसे प्रकृति की इच्छा मात्र से ऐसा अद्भुत तुषार-शिव लिंग का आकार बन जाता है। उस ने एक अन्तरंग मित्र की तरह बातें की टूटी-फूटी अँगरेज़ी में। युवक के साथ हैं यहीं का स्थानीय मज़दूर। और एक रसोइया, चार-पाँच घोड़े हैं। दो तम्बू हैं। ओढ़ने-बिछाने तथा और सामान खूब है। उन के पास दो बढ़िया कैमरे हैं। परिचय के दौरान में ही तम्बू के सामने हम लोगों के फोटो लिये गये। बंगाली युवक सभी मेडिकल कॉलेज के छात्र हैं। सेहत, खूबसूरती और बल की आभा सभी के चेहरे पर।

सब से पहले 'कुण्डू स्पेशल' के यात्री निकल गये। लड़की, लड़के, बूढ़े, बुज़ुर्ग, प्रौढ़ सब मिल कर प्रायः डेढ़ सौ होंगे। उन के खाने-पीने का और यातायात का इन्तज़ाम खूब है।

उन के पास कोई चार सौ घोड़े हैं। पन्द्रह-बीस डाँडी, कम से कम पचास तम्बू और ढेर सी खाने-पीने की चीज़ें। दल-संचालन की विधि-व्यवस्था देख कर मेरा तो सिर चकरा गया।

धीरे-धीरे दुकान वग़ैरह लोप हो गयीं। यात्रियों के जत्था को ले पंक्तिबद्ध घोड़े स्थिरगति में दूर पहाड़ के अन्तराल में खो गये। एक-एक कर तम्बू उखड़ गये, पुलिस और मिलिटरी की टोली आगे बढ़ी। देखते ही देखते उस पर्वतश्रेणि की दीवारों से

घिरी वह क्रीड़ाभूमि फिर सुनसान हो गयी। हम पड़ गये हैं पीछे। क्योंकि हमें सब कुछ देखते चलना है ! पता चला कि पहलगाँव से आज भी दोपहर तक कुछ यात्री आने वाले हैं, वे आज शाम को हवाई जहाज़ से श्रीनगर पहुँचेंगे। इस लिए चन्दनबाड़ी में खाने-पीने की दो एक दुकानें रह जायेंगी ही। आज हमारा गन्तव्य है वायु यान, आज हम शेषनाग का हिमवाह पार करेंगे। जब हम चन्दनबाड़ी से घोड़े पर सवार हो कर चले तब बजा होगा नौ। धूप आज प्रखर नहीं हो पा रही, कभी-कभी एकाध टुकड़े मेघों की छाया हो जाती है, ठण्डक खूब लग रही है जो पैदल चलने वाले हैं ठण्डक उन के लिए लाभप्रद है। जिस ओर पर्वत की छाँव है, ठण्ड उधर अधिक है। आज का पथ जंगली है। कहीं कुछ दूर तक सड़क अच्छी है, कहीं कुछ दूर पहाड़ों के टूटने से विघ्न-बाधा है। ढलान की ओर देवदार का घनघोर जंगल है; बीच-बीच में चीड़ और शीशम, भूर्जपत्र और अखरोट के जंगल। अगल-बग़ल से पहाड़ की देह से निकली निर्झर की झर-झर आवाज़ आती हुई, यहीं तक न कि जीव-जन्तु का आखिरी पड़ाव है, इस से आगे उन की संख्या कम है। कल की धूप और रात की बर्फ़ीली ठण्डक से, किसी भी कारण से हमारी राह में खूब बर्फ़ जमी है। सारे रास्ते में इसी लिए फिसलन है। हम धीरे-धीरे चढ़ रहे हैं ऊपर। पैदल चलने वालों को चाल धीमी पड़ गयी है। वे लाठी के सहारे ठक-ठक हाँफते-काँपते चल रहे हैं। उन के साथ घोड़े पर चढ़ कर पार होने में कुण्ठा होती है। यानी मन ही मन जैसे ये अकर्मण्य तो और पराजय का अनुभव होता है। चारा नहीं है, आगे बढ़ना ही पड़ता है।

कोई मील डेढ़-एक पार करने पर हमें वही सुप्रसिद्ध चढ़ाई पथ मिला है। इस का नाम है 'पिस्सू' चढ़ाई—चन्दनबाड़ी इलाक़े में यह बहुत बदनाम है। बहुतों का कहना है, यही है पहली और प्रमुख अग्नि-परीक्षा। नीचे की ओर घनघोर जंगल है। आहिस्ते-आहिस्ते चढ़ने से जंगली इलाक़ा हलका होता है। पथ के शुरू में चट्टानों की इतनी जटिलता है कि एक-दूसरे से कोई लगाव नहीं। अगर दैव-दुर्योग से एक भी अपनी जगह से खिसकी तब नाश निश्चित है। नीचे से जाते हुए असंख्य यात्रियों की जान चली जायेगी। नागा, साधु-संन्यासी और महन्त-महाराज आदि मन्त्र जपते हुए आगे बढ़ रहे हैं। उठता हुआ हर क़दम थकान से चूर है। लाठी पर भार दे कर क़दम उठाओ, फिर रुको, साँस लो, फिर बढ़ो। पथ में फ़िसलन संकटप्रद है। नीचे से गरदन ऊपर उठाने से भी पहाड़ों की चोटी नहीं दिखती। घोड़े चढ़ाई चढ़ रहे हैं—आगे के दोनों पैर ऊपर, पीछे के नीचे। मनुष्य की तरह घोड़े भी सँभल-सँभल कर क़दम उठाते हैं। कहीं फिसल न जायें, कहीं गिर न जायें। उन्हें अभ्यास है, यह विश्वास है। कुछ दिनों पहले भूटान स्थित बक्सा दुर्ग गया था। बीच में आधा मील तक सड़क ऐसी ही थी। किन्तु उस के घुमाव चौड़े थे, इस लिए इतना अखरता नहीं था। यहाँ पेचदार पथ पर घोड़े जब मोड़ लेते हैं, तब उन के शरीर का अगला हिस्सा ऊपर उठ जाता है और आगे की मोड़ में पिछला हिस्सा

नज़र नहीं आता है—अर्थात् रास्तों की चौड़ाई बहुत कम है। दिल्ली की कुतुबमीनार ढाई सौ फ़ुट और कलकत्ते का मॉनूमेंट डेढ़ सौ फ़ुट ऊँचा है। यदि उन के भीतर बनी घुमावदार सीढ़ी की ऊँचाई चार मील होती, तो····? कुतुबमीनार के अन्दर की सीढ़ी कहीं-कहीं सीधी खड़ी है, वहाँ रुका जा सकता है, यहाँ सीढ़ी नहीं है, पहाड़ों की खोज नहीं है, रुक कर सुस्ताने की जगह नहीं है। सब से ज़्यादा मुश्किल उन को होती है, जो नीचे से ऊपर चढ़ रहे हैं। घोड़ों की ठोकरों से अगर एक भी चट्टान गिरी तो वह दूसरी किसी चट्टान से जा टकरायेगी और दोनों पत्थर किसी चट्टान को धक्का मारेंगे और उस के बाद····? उस के बाद नीचे के यात्रियों की अकाल मृत्यु के बारे में सोचा भी नहीं जा सकता। बग़ल से गुज़री डांडी पर चढ़ी बंगाली महिला। भय से उन की अब आँखें डबडबा आयी हैं। वे बुदबुदा रही हैं, जय अमरनाथ! संकटहारी मधुसूदन! आँखें आँचल से वे ढक लेती हैं।

औंधे हो हम घोड़े के गले को दोनों बाँहों से पकड़े हैं। खन्दकों की तरफ़ ताकते तक नहीं, हृदय की धड़कन रुक सकती है! ऊपर नज़र उठा कर देख नहीं सकते, सिर चकरा जायेगा। सुना है, जो आत्महत्या करने को तैयार होते हैं उन्हें भी अकाल-मृत्यु से डर लगता है। नीचे की ओर जाने कहाँ चन्दनबाड़ी सूनी घाटी खो गयी है, जंगलों के छोर अब ढूँढ़े से नहीं मिलते, ज़मीन हम से बहुत नीचे है, बहुत पीछे छूट गयी। तेरह-चौदह वर्ष पहले पण्डित नेहरू यहाँ आये थे, शेषनाग की तुषार नदी देखने की उन की इच्छा थी—परन्तु यह पिस्सू की चढ़ाई उन की राह की बाधा बनी। उन के साथ थे अब्दुल गफ़्फ़ार ख़ाँ और शेख मुहम्मद अब्दुल्ला। पण्डित नेहरू को उन्होंने यहाँ से लौटा लिया था।

ऐसा एक-एक घुमाव मिलने लगा कि हम घोड़े की पीठ से उतरने को तैयार हो गये। सब से ज़्यादा संकटप्रद है इन अद्भुत पहाड़ों के बीच किसी-किसी जगह में कीचड़-दार फ़िसलन और कहीं-कहीं नुकीली चट्टानों की फाँक में पैर रखने भर की एक फ़ुट या छह इंच की जगह, पैर रखने में भूल-चूक हुई, ज़रा अनमना हुए—मौत! कभी-कभी घोड़ों की पीठ पर से यात्रियों का माल आदि गिर कर लुढ़कता चला है; थके घोड़े अपनी पीठ से सवार और माल फेंकने की चेष्टा करते हैं—यह है उन की आत्मरक्षा की सहज वृत्ति का बोध। कभी-कभी उन का अड़ जाना। ग़नी मेरे घोड़े की लगाम कस कर पकड़े है। उस की दृष्टि सतर्क है, रखवाली में मुस्तैदी है। हमें वह निर्भय करता है, सान्त्वना देता है, ढाढ़स बँधाता है। ग़नी ख़ुद हाँफता है। चलते-चलते कभी-कभी कुछ बुदबुदा लेता है, कभी घोड़े को टिटकारी मारता है, कभी निढाल पहाड़ों में चिल्लाता है—'हो हुस्स—शाब्बाश! हो हुस्स—शाब्बाश।' यह उन की बोली है, घोड़े समझते हैं। जो दो घोड़े आगे-पीछे चलते हैं वे एक-दूसरे का मन जानते हैं। एक को धकिया दूसरा आगे नहीं बढ़ता। दोनों एक-दूसरे से कभी अलग हो जाते हैं तो राह में अड़ जाते हैं, चिल्लाते हैं, वे एक हो जाते हैं। उन का यह

स्वभाव रखवाले जानते हैं और वे उन के साथ वैसा ही व्यवहार करते हैं। इस पथ के विषय में वायुयान के तम्बू में बैठ कर अपनी नोट बुक में जो कुछ लिखा रखा है, यों है :

"सर्वापेक्षा ऊँचा चढ़ाई-पथ पार कर रहा हूँ। साढ़े तीन मील से ज्यादा भयावह है। अपने जीवन में ऐसी संकटप्रद चढ़ाई से बहुत कम ही गुजर रहे होंगे। पथ में अत्यधिक फिसलन है, दुस्साध्य और लम्बी दूरियों वाला। न हिलने-डुलने लायक जगह है, न अवसर ही। बड़ी-बड़ी चट्टानें सम्पूर्ण पथ में बिखरी पड़ी हैं। माल-असबाब घोड़े गिरा देते हैं। महिलाएँ घोड़ों पर से गिर-गिर पड़ती हैं। जरा सी चूक का अर्थ है—मौत। अगल-बग़ल हैं डरावने खन्दक, पिघली बर्फ़ का प्रपात, ठोस बर्फ़ से ढकी नदी, बर्फ़ से आच्छन्न उत्तुंग पर्वत तथा सम्पूर्ण पथ के दोनों ओर है शरद् ऋतु के रंग-बिरंगे वर्णों के अनगिनत प्रकार के फूलों की छटा। कदम-क़दम पर साधु-संन्यासी, स्त्री, युवक, प्रौढ़, वृद्धा बालक-बालिकाओं व घोड़ों के रखवालों और कुलियों का जत्था। हर कोई रह-रह कर साँस लेने की चेष्टा में मुँह खोलता है—इस प्रकार के मर्मस्पर्शी दृश्य के अन्दर से गुज़रते हुए हम कोई पाँच हज़ार फ़ुट ऊपर आ गये हैं।

नीचे की मंज़िल से ऊपर की छत पर खुले आसमान के नीचे आ खड़ा हुआ हूँ। यह है घाटी। चन्दनबाड़ी की अपेक्षा संकीर्ण मगर कुछ लम्बी। सामने खूब समतल देख कर हमारे चेहरे पर प्रसन्नता छा गयी। जो लोग अभी पीछे हैं उन के सम्बन्ध में सोचने में डर लगता है। उन के लिए मंगल कामना करता हूँ कि वे कुशल-पूर्वक आ जायें। हम लगभग साढ़े चौदह हज़ार फ़ुट ऊँचाई पर आ पहुँचे हैं—पर्वत-श्रेणियों की तीसरी तह पर। चौथी तह है—ग्लैशियर हिमवाह अर्थात् बर्फ़ से जमी नदी, नीचे-ऊपर चारों तरफ़। वहाँ नदियाँ हमारी दृष्टि के आगे ही झूलती रहेंगी। अगल-बग़ल देखा, किसी की आँखों से खुशी के आँसू बह रहे हैं तो कोई हाँफ़ रहा है और कोई है कि चुप है। बहुतों को यह विश्वास नहीं था कि वे सही-सलामत चढ़ाई पार कर लेंगे। ऐसा सुना कि आठेक बंगाली पुरुष और चार-पाँच मद्रासी स्त्री-पुरुष डर के मारे वापस लौट गये। 'कुण्डू स्पेशल' के संचालक श्री शंकर कुण्डू ने इस पर मुझ से बहुत खेद प्रकट किया था। बंगालियों में उत्साह है, परन्तु अन्त तक पहुँचने के पहले वे पीछे हट जाते हैं। मगर जातिगत चरित्र पर विचार करने का समय वह नहीं था। कण्ठ, तालू, जबड़े सभी सूखे। घूँटभर चाय मिले तो प्राण बचे। चाय-नाश्ते की एक छोटी दुकान हम लोगों के पहले आ पहुँची है। इस घाटी का नाम है—यशपाल। कोई-कोई कहता है—योजपाल। इतनी देर बाद हिमांशु बाबू के मुँह से बोली फूटी। घोड़े से उतरीं कई बंगाली अधेड़ और बूढ़ी महिलाएँ। इस दुस्साध्य तीर्थ यात्रा में इसी बीच हम एक-दूसरे के मित्र और हितैषी हो गये हैं। अगल-बग़ल पेड़-पौधे कम होते गये हैं फिर भी देवदार और रुद्राक्ष के कई पेड़ दीख रहे हैं। घास और लताएँ ऊँचे-नीचे प्रान्तों में मिलती हैं।

वर्षा के दिन प्रायः शेष हो आये हैं। हमारे सम्पूर्ण परिश्रम और कष्ट की स्वीकारोक्ति से परे है पार्वत्य प्रकृति की उन्मुक्त छटा। तृण-तृण में अजस्र फूल खिले हैं। जितनी दूर निगाह जाती है, लगता है, फूलों की सेज बिछी है। एक ही वृत्त में पाँच-सात रंगों के नन्हे-नन्हे अंचल में डालने वाले फूल हैं। पंखुरियों के रंग अलग-अलग, एक फुनगी से दूसरे के रंग का मेल नहीं। किसी फूल का नाम नहीं मालूम, किसी फल की पहचान नहीं। तभी इतनी खुशी है। पहले ही कह चुका हूँ कि समग्र कशमीर माटीमय है। उस के पहाड़, उस के प्रान्त, उस के जंगल, नदी-पथ, उस की घाटी सभी मिट्टी हैं। इस मिट्टी का क्षय युग-युग से होता आ रहा है। अगल-बग़ल पर्वत-शृंखलाओं में अनगिनत क्लीफ़—क़लम की नोक जैसा एक की बग़ल में दूसरा खड़ा है। वे चोटियाँ भी सभी मृण्मय हैं—बहुत समय पहले से ही उन्हें क्षय ग्रसे है, बहुत काल से। कोई यदि ऐसा कहे कि आने वाले पाँच हज़ार वर्षों में कशमीर की पर्वत-शृंखलाओं की यह ऊँचाई नहीं रह जायेगी, मैं बिना संकोच मान लूँगा। कशमीर का इतना फलन है मात्र उस की मृण्मयता के लिए ही।

यशपाल से निकल कर जितनी दूर बढ़ रहा हूँ, सर्वत्र इन क्षय होते पहाड़ों का रूप एक ही है। और किसी पर्वतीय देश में, विशेष रूप से उच्चता में ऐसा फल नहीं होता। सम्पूर्ण गढ़वाल में नहीं, कुमायूँ में नहीं, हिमांचल प्रदेश में नहीं, नेपाल या सर-हदी इलाक़ों में नहीं। वहाँ सर्वत्र ग्रैनाइट पत्थरों का अंबार है। दस हज़ार फ़ुट तक वहाँ फलन है। उन अंचलों में जाने से कशमीर के रूप पर विश्वास नहीं होता। मगर कशमीर की तरह भू-स्वर्ग सारे हिमालय पर सैकड़ों की संख्या में हैं। हिमालय आदि-अन्त में यहाँ-वहाँ का भू-स्वर्ग है। ब्रह्मपुत्र में, सूरमा में, तिस्ता में, बागमती में, कौशल्या में, शारदा में, गोमती और राप्ती में, ब्रह्मपुरा और सारे कुमायूँ में, विपाशा और चन्द्र-भागा में—जहाँ भी जंगल समाहित दुर्गम पर्वत शृंखला की अगल-बग़ल से पहाड़ी नदियाँ गुज़रती हैं, वहीं भू-स्वर्ग बन गया है। किन्तु कशमीर की बात और है! यहाँ सब तरह के खाद्य, सब्जी और फल-फूल हैं। यहाँ के गाँवों में पैर रखते ही लगेगा बंगाल का कोई गाँव है। वही कच्चे केले, वही खीरे, भिण्डी-तरोई, वही बैंगन-परवर और लौकी—सब कुछ वैसा ही। अदरक-मिर्चा, इमली-सहजन और हरे साग। नदियों में हैं सब मछलियाँ, लॉन की मचानों पर लौकी और कुम्हड़े की बेलें। वही आँगन और मिट्टी के घर, वही धनकुटी और खलिहान। वही मारी फूल और कच्चे अनारों की सुबास। वही दरिद्रता, रुग्णता और नग्नता, वही बीमारी। और सब की बग़ल में देख लीजिए अंगूर और सेब के बाग, गांसा, खूबानी, बादाम और तरह-तरह के फूल, तरह-तरह के मेवे, विशुद्ध घी-दूध, सुन्दर-सुगन्धित चावल। मछली-मांस, मक्खन, अण्डों की चारों तरफ़ बहुतायत। लेकिन पैसा है नहीं समग्र देश में। रोग भोगता है, गरीबी से मरता है कशमीर। बाहर से जो बहुत से रुपये ले कर घूमने जाते हैं वे लौट कर कहते हैं धरती का स्वर्ग।

और भी चार मील आगे बढ़ रहा हूँ। आकाश पर एकाध टुकड़ा काले बादलों का आभास मिल रहा है। दाहिनी ओर विराट् पहाड़ पंक्तिबद्ध हमारे साथ-साथ चल रहे हैं। रूप सभी का वही एक क्षयग्रस्त, मृण्मय! बीच में पड़ती है प्रायः प्राणलेवा चढ़ाई सात-आठ सौ फ़ुट की। बहुत से लोग हम से आगे बढ़ गये हैं। बीच-बीच में बर्फ़ से ढकी चोटियाँ दीखी हैं। दक्षिण में बहुत नीचे से बह रही है वही नील गंगा। वह शेषनाग नदी से जा मिली है जिस से उस का नाम पड़ गया है दूधगंगा। चढ़ना-उतरना लगा हुआ है। मगर चढ़ाई बराबर है। इधर रास्ते बहुत अच्छे हैं, कुछ क़ायदे के, मगर घोड़े के ऊपर से नीचे ताकने में डर लगता है। बीच-बीच के एकाध जगह खानाबदोश गूजरों की एकाध बस्ती थी। उस के बाद और कुछ नहीं। आसमान पर जहाँ तक देखा, सिर्फ़ महाशून्य ही। जानवर, मनुष्य, पेड़-पौधे—कुछ भी कहीं नज़र नहीं आते। एकाध बादल का टुकड़ा देख कर सभी व्याकुल हो उठे हैं। संकटग्रस्त पर्वत-शृंखला की पतली पगडण्डियों पर से हमारा काफ़िला बढ़ रहा है—विराट् हर्ष की तरह।

शेषनाग आया। सहसा मानो क्षितिज का पूर्व द्वार खुल गया। पशुराज सिंह मानो उत्तर-पूर्व क्षितिज घेरे बैठा है। सारे शरीर पर उजली बर्फ़ीली घटा उसी के नीचे है। विशाल सरोवर इतना चौड़ा और फैला है कि उस सरोवर के सहसा आयतन का अन्दाज़ लगाना मुश्किल है। स्थिर गहरा नीलाभ स्थल। एक बर्फ़ीली नदी उस सरोवर में आ उतरी है और एक नदी इस सरोवर से निकल गयी है। जैसे कैलास की चोटी के निकट मानसरोवर और रावण सरोवर हैं। शेषनाग सरोवर के उस पार खड़ी है कोहनूर पर्वत-शृंखला और हिमवाह, इस पार है बालुकापाट। बहुत से यात्री कोई एक मील के ढलान में पहाड़ के नीचे स्नान के लिए उतर गये हैं। हमारे पथ से अन्दाज़न वह तालाब पाँच सौ फ़ुट नीचे है। उस का पानी छू आना कठिन नहीं है। बहुत सी पंजाबी स्त्रियाँ और उत्साही युवक भी उतर गये हैं। अचम्भित सौन्दर्य है, तभी इतना आकर्षण है। उस पार के बहुत सारे पहाड़ों से तुषार-नदियाँ उतर आयी हैं। सरोवर के पानी में तरह-तरह के धातुतत्त्व मिले हैं—जो स्नान करते हैं उन्हें इस जीवन में कभी चर्मरोग नहीं हो सकता। बर्फ़ से पिघले पानी में डुबकी लगाने से सारा शरीर सुन्न हो जाता है। मगर बहुतों को कहते पाया है कि नहाने के बाद सभी आश्चर्यजनक रूप में होने से स्वस्थता महसूस करते हैं। उन पर जाड़े का असर नहीं होता।

यदि कल्पना की जाये कि इस के स्वच्छ नीले पानी में नहाने के लिए स्वर्ग से किन्नरियाँ और अप्सराएँ उतरती हैं तो यह सच लगेगा। विश्वास और अविश्वास की कोई निर्दिष्ट रेखा सचमुच यहाँ खोजे नहीं मिलती। ऐसे एक विशाल साम्राज्य से हम गुज़र रहे हैं जहाँ मेरे सिवा और किसी प्राणी का चिह्न नहीं मिलता। वे जो यहाँ अशरीरी होंगे, जिन्हें मेरी दृष्टि देख नहीं पाती। हम उन्हें ध्यान में धारणा पाते हैं। हो सकता है, वे हमें देख रहे हों। मगर हम जिसे देख नहीं पाते, वह नहीं है—यह

किस ने कहा। थर्ड डाइमेंशन में कैसे देख लिया ? टेलीविजन में कैसे देखा ? हो सकता है, हम लोग एक नयी तरह का लैंस भी आविष्कार कर लें और उस की सहायता से उसे देख सकें, जिसे देखने के लिए आदमी इतना आकुल-व्याकुल है; दार्शनिकों का इतना अन्वेषण है। तपस्वी बहुत दिनों आँखें मूँदे रहे, अनेक साधुओं ने घर छोड़ कर योगासन में ही जीवन बिता दिया, बहुतों ने पहाड़ों की चोटी पर पहुँच सब से छिप कर अपने-आप को विलीन कर दिया। शायद ईश्वर दीख जायें। उन्हें दृष्टि में न पा कर इन लोगों ने तय किया, ठीक है, मन में ढूँढ़ें। अँगरेज़, हिन्दू, मुसलमान, बौद्ध सभी की यही एक चेष्टा रही। तो क्या विज्ञान ईश्वर का दर्शन करा देगा ? ऐसा लैंस आविष्कार कर सकेगा—कभी जिसे आँखों पर चढ़ाते ही देख लूँगा कि वह जिसे इतने दिनों से आँखों के सामने होते हुए भी देख नहीं सका। यन्त्र की सहायता से यदि आदमी के असली कण्ठ-स्वर को पकड़ सकता है तो जो शरीर से परे हैं, उसे यन्त्र के द्वारा देखा क्यों नहीं जा सकता !

ऊपर से 'वायुयान' का शून्य हिम-प्रिय प्रान्त नज़र आ रहा है। दोपहर बीत चली है मगर जाड़ा ख़ूब पड़ रहा है। तुहिन-वायु चल रही है, ठण्ड से हाथ सुन्न हो गये हैं। हम वायुयान आ पहुँचे हैं।

शेषनाग से वायुयान करीब डेढ़-एक मील होगा। इसे रास्ता नहीं कहूँगा—मात्र पथ का निशान है। रास्ते के नाम पर कुछ भी नहीं है। एक पहाड़ से दूसरे पहाड़ पर चढ़ना या उतरना, चट्टान लांघते हुए जाना यानी किसी तरह जीवित रह कर आगे चलते जाना है। शेषनाग तक हम पन्द्रह हज़ार फ़ुट ऊपर चढ़ आये थे। अब पाँच-सात सौ फुट नीचे उतर आये हैं। आसमान पर बादल घिरा है, इस लिए हम लोग बहुत आतंकित हैं। यहाँ बादल का अर्थ है—भय, हज़ारों मनुष्यों के चेहरे उतर जाना ! मुझे याद है सन् १९२४ की बात। उस दफ़े भी इसी तरह वायुयान में बादल घिर आया था। देखते-देखते वर्षा, देखते-देखते तुषार, नदी मूल पहाड़ से पंचरणी में उतर आयी। तुषार प्रपात बह चला ऊपर से नीचे। चारों ओर दस फ़ुट ऊँची बर्फ़ जम गयी। फिर इस के बाद की घटनाओं की जानकारी तो समाचार-पत्रों के पाठकों को भी मालूम है। सरकारी रिपोर्ट के अनुसार लगभग डेढ़ हज़ार लोग बर्फ़ीली चट्टानों के नीचे सदा के लिए सो गये। सैकड़ों लोग भाग निकलने के प्रयत्न से असफल हो ठण्ड में जम कर मर गये। प्राण बचाने के लिए जो वृक्षों पर चढ़ गये थे, वे डालों में ही अटके रह गये, अनेक भूख-प्यास से मरे। और १९२८ के बाद की बात अभी हम किसी को सुना नहीं सकते, हिमांशु बाबू को भी नहीं। सुनते ही सब डर जायेंगे। ख़ूब याद है, उस बार छह सौ घोड़ों पर पहलगाँव से एक हज़ार मन रसद यहाँ भेजी गयी थी। मिलिटरी सैपर्स और माइनर्स वग़ैरह सैकड़ों स्वयं-सेवक यहाँ आये थे। लेकिन सहायता पहुँचने के पहले ही मृत्यु और महानाश का साम्राज्य छा चुका था। उसी समय से पुलिस और मिलिटरी के कुछ लोग हर साल यात्रियों के साथ आते हैं। उस समय मैं कशमीर की

सरहद पर भारतीय सैन्य के यातायात-विभाग में नियुक्त था, तभी यह खबर मैं जान पाया था। इस विषय पर मेरी एक कहानी भी 'भारतवर्ष' में छपी थी।

उसी वायुयान को घेर कर सम्पूर्ण आकाश धीरे-धीरे घिर आया। दोपहर में ही इतनी सर्दी है कि दोनों हाथ की दसों उँगलियों से घोड़े की गरदन में लगे लोहे के पट्टे को भी नहीं पकड़ा जा सकता। उँगलियाँ सुन्न, नीली हो गयी हैं। भूखे सभी हैं मगर आसमान का हाल देख कर बहुतों की भूख मर सी गयी है। वायुयान पहुँचते ही हम तम्बू लगा कर अपने-अपने तम्बू में जा घुसे। शेषनाग से यह इलाक़ा पाँच-सात सौ फ़ुट नीचे है और यहाँ की घाटी, लगता है, चन्दनबाड़ी की अपेक्षा चौड़ी है। घाटी या हिमलोक या तुहिन प्रान्त—ठीक क्या कहा जाये, सोच नहीं पाता। ठण्ड के मारे दाँत किट-किटा रहे हैं। बिस्तर बिछा चुका हूँ लेकिन वह बिस्तर इतना ठण्डा हो गया है कि किस की मजाल है जो उसे छुए। बादल के साथ-साथ ही बर्फ़ीली हवा बह रही है वह हवा कभी-कभी भँवर में बदल कर इस तुहिन घाटी में चक्कर काटती है और हम लोगों के तम्बुओं की खूँटी पकड़ कर कभी-कभी झकझोर जाती है। कई बच्चे आये हैं। घोड़े पर सवार हो कर उन्हें भयानक जाड़े से रोते हुए देखता आया हूँ। कोई-कोई ले कर आया है ऐसा तम्बू, जो रबड़ का है। जिस में हवा और वर्षा का पानी किसी भी तरह घुस नहीं सकता। ऐसे ही एक तम्बू में माँ-बाप के साथ वह छह माह का बच्चा सो रहा है। आज सबेरे से उस की रुलाई रुकी नहीं किसी भी तरह।

बूँदा-बाँदी हो रही है। हमारा तम्बू था एक सूखे झरने के पास, पुलिस और मिलिटरी का तम्बू उस पार है। उन के पास कुछ रसद है, कई भाले और बन्दूक, कुछ जलावन, थोड़ी शराब और दूध का चूर्ण और अतिरिक्त गरम ओढ़ना है। वर्षा के शुरू होते ही उन के दो आदमी 'परचा' ले कर यहाँ-वहाँ दौड़ पड़े। यह कह कर यात्रियों को सावधान कर आये कि अपनी जगह से कोई भी न हटे। यदि कोई विशेष बात हुई तो पहलगाँव को फ़ौरन एलर्ट कर दिया जायेगा।

हिमांशु बाबू की देह में तपन खूब है। लगता है, बुखार और बढ़ा है। तम्बू में घुसने के बाद से कोई आवाज़ नहीं आयी। खाना-पीना तो बिलकुल अनिश्चित सा है। हमारे पास कुछ रोटियाँ थीं, लेकिन हाथ-पैर के सुन्न होने के बाद उन्हें निकालने का संकट है। वर्षा खूब होने लगी। एक-एक बूँद एक-एक कोड़े की तरह। आग सुलगाने की चेष्टा बहुत से लोग कर रहे हैं। लेकिन जितना ताप उस लकड़ी की आग में बनी उस से चारों तरफ़ की बर्फ़ीली ठण्ड में पानी गरम ही है या रोटी सेंकी जाये, इतनी गरमी उस आग से नहीं मिली। लकड़ी जल कर खत्म हो आयी, मगर अन्दाजन आधा सेर पानी गरम नहीं हुआ। आठ आने से भी अधिक की लकड़ी जल गयी। शिवजी ने अन्त में मुँह ढक लिया हिमांशु बाबू की खोज-खबर ली गयी, वे बग़ल के तम्बू में रज़ाई में पड़े थे—काँपते-ठिठुरते उन्होंने—'हाँ-हाँ' किया।

मैं बिलकुल स्वस्थ हूँ पर मैं भी खाट पर लेटा-लेटा काँप रहा था। सिर बैला-

कलावा से ढका था। सब से मोटे पट्टू का कोट, उस के नीचे स्वेटर, उस के नीचे तीन-तीन सूती कुरते और खूब मोटे ब्रेजर का पैंट, उस के नीचे पशम का ड्रॉयर, हाथों में दस्ताना था और फिर नीचे से ऊपर तक, मोटा ओवरकोट—और इन के ऊपर से ओढ़े था दो मोटे कम्बल फिर भी जाड़े से मैं कांप रहा था। कांप रहे हैं हज़ारों लोग, ग़नी शेर कांप रहा है, घोड़े कांप रहे हैं।

दोपहर के बाद वर्षा ज़ोरों से आयी। मैं उठ बैठा। मेरा तम्बू बहुत कमज़ोर है, ऊपर के दोनों ओर का कपड़ा पतला है, रह-रह कर टप-टप पानी चूने लगा है। हवा के झोंके से परदा स्थिर नहीं रह पाता। खूँटों से बँधे होने पर भी नीचे से हवा घुस आती है, परन्तु लाचार और विवश चुप बैठा रहा। वहीं बैठ कर नोट-बुक में जो लिखा था, उस की कुछ पंक्तियाँ यहाँ उद्‌धृत करता हूँ :

"पेंसिल ठण्ड में चलती ही नहीं है। तम्बू के बाहर किसी भी तरह जा नहीं पाता। गरम कपड़े और बिस्तर आदि आवश्यकता को देखते हुए कम लगते हैं। पहलगाँव के बाद से ठीक-ठिकाने का खाना भी नहीं मिल रहा है। कभी-कभी तो रोटी के गन्दे टुकड़े भी खाने पड़ते हैं। यह इलाक़ा जनहीन है, तृणविहीन है—न पानी, न चाय। दो चलती दुकानें हैं। उन में खाने के नाम पर अखाद्य मिल रहा है। तम्बू में दिन कट रहा है बड़े कष्ट में ठण्ड से जाड़े में ठिठुर कर। आकाश पीला है। तेज़ बर्फ़ीली झोंकों के साथ बादल का दृश्य डरावना लगता है। इसी बीच वर्षा की झड़ी लगी। रात की बात सोच कर हम व्याकुल हो उठे हैं। कई लोगों को पेंचिश हो गया है, क़रीब पचीस व्यक्ति होंगे स्त्री और पुरुष मिला कर। अधिकतर बंगाली हैं। बादल और वर्षा से घबरा कर वे पहलगाँव लौट गये हैं। मैं कुछ करने लायक़ नहीं हूँ। लाचार सिर्फ़ कलाई में बँधी घड़ी बार-बार देखता हूँ। वर्षा में दोपहर ढल रही है।"

तम्बू के बाहर से आवाज़ आती है ! मुझे पुकार रहा है : वर्षा अब भी हो रही है। कोई दुःखद समाचार है क्या पहाड़ की ओर से ? कम्बल और ओवरकोट हटा कर ठण्डे जूते में यानी बर्फ़ की गढ़ ही में पैर डाल कर तम्बू से बाहर निकल आया।

देखा, ऐसी वर्षा की झड़ी में मेरा वही नवपरिचित सैनिक मित्र सामने खड़ा है। वही मिस्टर मजुमदार, चन्दनबाड़ी में कल की रात जिस से परिचय हुआ था। और उस की बग़ल में मोटा चश्मा लगाये नाटे क़द की मगर स्वस्थ एक युवती खड़ी है। मजुमदार ने कहा, "कल रात को आप से बिना बातें किये चला गया था, आप को देख कर मैं हतप्रभ सा हो गया था। ये हैं मिस मुखर्जी, मेरे साथ ही चल रही हैं। ये भी आर्मी-मेडिकल यूनिट में हैं। ये हैं एम० बी०, बी० एस०। मिस मुखर्जी को कल रात जब मैं ने बताया तो इन्हें विश्वास ही नहीं हुआ कि आप आये हैं।"

नमस्ते के प्रति उत्तर के बाद मैं ने कहा, "आप का घर अवश्य बंगाल में नहीं होगा ?"

मिस मुखर्जी ने हँसते हुए कहा, "आप ने जाना कैसे ?"

"कहीं बंगालवासी स्त्रियों के चेहरे पर यह विवर्ण आभा देखने में आती है !"

दोनों हँस पड़े। बाद को उत्साह के साथ उस ने कहा, "चलिए, मेरे तम्बू में, आप को चाय पिलाऊँ।"

मैं उन के साथ चल दिया। अन्दाज़ लगाया लड़की की उमर पचीस के क़रीब होगी, चेहरे पर एकदम विवर्ण। दार्जिलिंग के भूटिया लड़के-लड़कियों की तरह दोनों गाल लाल-लाल। तम्बू में पहुँच, वह लड़की बोली, "आप ने ठीक ही कहा, मेरा घर शिमला है—पिताजी वहीं रहते हैं। आर्मी-मेडिकल में काम करूँ, पिताजी चाहते नहीं।"

मैं मुसकरा कर बोला, "पिताजी की इच्छा क्या है, यह मैं सहज ही समझता हूँ।"

हम तीनों हँस पड़े। फ्लास्क से उस ने गरम चाय उड़ेली। मजुमदार ने कहा, "हम लोग ऑफ़-ड्यूटी में हैं, तभी श्रीनगर से इस बार चल पड़े। हमारे साथ बहुत से लोग हैं, मगर बंगाली हम दो ही हैं।"

लड़की ने कहा, "हम तो पहाड़ के रहने वाले हैं, मगर यह तीस मील इतना बीहड़ है, ऐसा पहले कभी नहीं लगा। आप के केदार-बदरी का पथ भी क्या ऐसा ही है ?"

मैं बोला, "कुल तीस मील की परिधि में इतने दुर्लंघ्य पहाड़ केदार-बदरी में कहीं भी नहीं हैं। वहाँ भी दुस्तर और दुरारोह है। बहुत से क्षेत्र पर वे दो सौ मील बिखरे हैं, इतनी ठण्ड केदारनाथ में तो है मगर बदरी में नहीं।"

मजुमदार ने कहा, "सिर्फ़ चढ़ाई अभी और बाक़ी है।"

लड़की बोली, "और ?"

हाँ मोटे तौर पर साढ़े सत्तरह हज़ार फ़ुट तक चढ़ना है, हो सकता है, अठारह हो। इस के बाद उतरेंगे पन्दरह में और फिर चढ़ेंगे सोलह में।

लड़की बोली, "हमारे पास हर तरह का सामान है, आप को कुछ चाहिए तो दे सकूँगी।

उन के तम्बू के फ़र्श पर मोटी सी चटाई बिछी है। बिछावन आदि का इन्तज़ाम मोटे तौर पर ठीक ही है। खाने-पीने का प्रबन्ध सन्तोषजनक। उन दोनों के बीच सम्पर्क के बारे में मेरे चेहरे पर कुछ जिज्ञासा के चिह्न उभरे थे मगर कहीं अशिष्टता न हो जाये, इस के लिए सतर्क था। उन से मिल कर तीर्थयात्रा की मन ही मन उस दिन प्रशंसा की थी—इस में सन्देह नहीं। मजुमदार बोला, पुलिस रिपोर्ट से पता चला है कि कोई दुर्घटना हो गयी है। आज सवेरे एक आदमी हृदयगति रुक जाने से घोड़े से गिर पड़ा। लगता है, वह नीचे की ओर देखता आ रहा था। जवान था। घोड़े की पीठ पर बैठा-बैठा ही मर गया।

बाहर वर्षा खूब मजे में उतर आयी है। गहरी घनघोर साँझ सिहरी-सिहरी उतर रही है। कुछ देर बातचीत करने के बाद मैं चल पड़ा। मगर तम्बू में न जा कर आगे बढ़ गया। तापमान ३० डिग्री से बहुत नीचे है, ऐसा सुना। उस तम्बू में उस बच्चे की रुलाई अभी भी नहीं रुकी है। कहीं भी कोई आदमी नजर नहीं आता। सभी तम्बू में घुस, चारों ओर से बन्द कर के चुपचाप पड़े हैं। दोपहर वर्षा हो रही है। पैर के मोजे और जूते भीग गये हैं। मटमैला उतर आया बादल घाटी पर है। प्रचण्ड पवन घूम रहा है चारों ओर। अब कहीं चारों ओर के पहाड़ों की तरफ़ नजर गयी। दोपहर को पहाड़ की तराई में बहुत बर्फ़ गिरी है, इतनी देर तक उधर निगाह नहीं गयी थी। कहीं-कहीं पहाड़ों से सट कर गली बर्फ़ की धारा बह रही है। खूब वर्षा होने से कोई तम्बू सुरक्षित रहता नहीं है। आसमान की भयानक भृकुटी देख, मैं एक दूकान में जा घुसा। वहाँ सुना कि मिलिटरी के आदमी परचा जारी कर यात्रियों को दोबारा होशि-यार कर गये हैं।

दुकान में चटाई पर बैठने से आग की सिकावट मिली। मुझे प्यास लगी है, यह सुन कर सिख दुकानदार भौचक्का हो उठा। आज सवेरे से किसी ने पानी छुआ तक नहीं। नाश्ता कर के कोई ठण्डा पानी पियेगा। यहाँ कोई सोच भी नहीं सकता। चाय और रोटियाँ मिलती हैं, गरम चपाती का दाम बहुत है। चपाती के साथ मिलता है जरा सा आलू का शोरबा। और अन्त में खौलती हुई चाय। गले के नीचे वह चाय खौलती हुई उतरती है।

दुकान से निकल कर तम्बू की ओर चला। तम्बू के बाहर मेडिकल के छात्रों ने घेर लिया। वे मेरी कुशलक्षेम पूछने के लिए निकले हैं। मगर वर्षा की झड़ी की वजह से वहाँ खड़े होना सम्भव नहीं था। जैसे-तैसे मित्रता का निर्वाह कर सभी अपने-अपने तम्बू में चले गये। झाँक कर हिमांशु बाबू की ओर देखा, उन की तबीयत कुछ ठीक हुई है। मैं ने उन्हें दुकान में मिली खबरों के विषय में बताया।

तम्बू के अन्दर सर्दी मानो जमी है, जैसे बर्फ़ से ढकी गुफा हो। बाहर चलने-फिरने से शरीर में हरकत आती है, माँसपेशियों में गरमी रहती है। यहाँ स्थिरता है इस लिए रक्त में गति नहीं है। सिर तम्बू की छाजन से टकराता है, उस के ऊपर सपा-सप पानी पड़ रहा है। पानी अन्दर चू-चू कर फैल रहा है। दियासलाई जला कर मोमबत्ती जलायी। ठण्डी मोमबत्ती हाथ में लगती है। यहाँ तक कि सिगरेट का पैकट, लोटा, प्याले, कुरसी के हत्थे, तकिया और मेरी नाक की फुनगी ठंड से छुई नहीं जा सकती। दियासलाई से मोमबत्ती का पलीता जलाने में देर लगी। हिम गुफा जैसे जूते को खोलकर बिस्तर के नीचे रखना पड़ा।

रस्सी से तम्बू का परदा जब बाँधने लगा, तो लगा कि उँगलियाँ किसी प्रकार भी आज मेरे वश में नहीं होंगी। बाहर की तेज बर्फ़ीली हवा के झोंकों से कभी तम्बू हिलने लगता है। रात को कभी-कभी अगर तम्बू गिरा तो अच्छी तरह घायल हो सकता

हूँ या नहीं, इस का अन्दाज लगा लिया। इधर, पीछे के पहाड़ से वर्षा के पानी की धारा उतर रही है। तम्बू के तीन ओर तीन इंच पतली नाली बनी है। पानी उस नाली में से बह जाता है। अन्दर पानी नहीं आ पाता। पण्डा शिवजी लापता हैं। ग़नी शेर और उस के साथियों की बातें करने की आवाज़ें अब नहीं आतीं। इसी तरह उस दिन की सन्ध्या बीती और इसी तरह उस दिन रात गहरा आयी। बाहर वर्षा हो रही थी।

तम्बू के बाहर गहरोता अँधेरा है। पंचांग के अनुसार आज शुक्ल त्रयोदशी है। बाहर उस मौत की घाटी में एक तरह की रोशनी दीख रही है, जो नैसर्गिक नहीं है। ऐसी रोशनी केदारनाथ के तुषार प्रस्तर में थी। कुछ रोशनी घिरे बादलों से आ रही थी और कुछ बर्फ़ीली चोटियों से। घुटा-घुटा अँधेरा बयाबान जंगलों में होता है या जंगली गाँवों में, लेकिन अमावस के दिन भी खुली जगह में भरपूर अँधेरा नहीं घिरता। यहाँ वर्षा और दुर्भाग्य में भी रोशनी की आभा नज़र आ रही है, परन्तु दस हाथ दूर की चीज़ें पहचान के परे हैं। एक बार झाँसी में रानी लक्ष्मीबाई के दुर्ग के भीतर बने हमाम देखने गया था। चारों तरफ़ अँधेरी घटा लेकिन स्फटिक से एक आभा विकीर्ण हो रही थी। उसी रोशनी में हमाम दीख पड़ा। यहाँ के आकाश से बिखरी रोशनी और बर्फ़ से फूटी रोशनी मुझे दीखती है—प्रान्तर पर छाया हुआ मौत का पीलापन। देख कर डर महसूस होता है। पृथ्वी यहाँ से बहुत दूर है। उस पृथ्वी को कब कहाँ पीछे छोड़ आया हूँ, इस की याद गुम हो गयी। शायद, वहाँ अभी आकाश पर भरपूर चाँदनी की रोमांचित सिहरन हो, शायद वहाँ हो शरद की मीठी मादकता।

कम्बल में बहुत देर तक गोता मार कर दोनों हाथों की दसों उँगलियों को ऐंठ कर रक्त का संचार किया। इस के बाद नोटबुक के पन्ने पर किसी तरह पेंसिल चलाने लगा।

अब कुछ करना सम्भव नहीं है। लाचार की तरह घड़ियाँ गिन रहा हूँ। तेज़ हवा बह रही है। वर्षा हो रही है। ठण्ड में किसी तरह भी शरीर में गरमी पैदा नहीं कर पा रहा हूँ। कब तक नोटबुक रोशनी के सामने रख सकूँगा, नहीं जानता। कारण, हर क्षण हाथ सुन्न होते जा रहे हैं। सिगरेट सुलगायी नहीं जा सकती। इस के लिए हाथ और मुँह—दोनों खुले रखने होंगे—बिस्तर पर एकदम निश्चल पड़े रहने के सिवा कोई चारा नहीं क्योंकि जितनी सी जगह में शरीर स्थिर है उस के एक इंच इधर-उधर हिलने-डुलने पर बर्फ़ की ठण्ड छवक से लगती है। ऊपर से रह-रह कर बिस्तरे पर रिस-रिस कर बर्फ़ की पानी की बूंदें चू रही हैं। रात को सोने लायक़ गरमी बिस्तर में आ पायेगी, या नहीं—कहना मुश्किल है। सारा शरीर टूट रहा है ठण्ड की वजह से। रात के अभी बारह बजे हैं। मोमबत्ती बुझने लगी है।

अचानक बाहर यह कैसी आवाज़ है। क्षीण रुलाई, ध्यान लगाने पर समझ में आया कि उस बच्चे का रोना, अब तक रुका नहीं है। प्रकृति उसे इस तरह दिन-रात

रुला रही है। जाड़े के मारे वह जितना रोयेगा, शरीर में गरमी उतनी ही बढ़ेगी। इस के सिवा उस के बचने का कोई उपाय नहीं।

नहीं, यह ग़लत है। किसी बच्चे की रुलाई नहीं है—कुछ और है! भूखे, सब कुछ दर्द में खोये, तड़पते हुए लोगों को, मरने के पहले की रुलाई है। बिस्तर से उठ कर बाहर जाने के लिए तैयार हो रहा था कि वह स्वर सहसा तम्बू के निकट से आने लगा। तब कहीं समझा, यह आदमी को रुलाई नहीं है, अपने घोड़ों की है। एक टूटी-फटी तड़पती एक आवाज़ उन के भीतर से निकल रही है—जो आवाज़ पहले कभी हम ने ऐसे सुनी नहीं। दिन में उन के लायक़ खाना उन्हें नहीं मिल पाता और शक्ति से अधिक बोझ ढोते रहते हैं। चन्दनबाड़ी के बाद घास कहीं खोजे नहीं मिलती, ठण्ड में आश्रय नहीं है कहीं, बर्फ़ीली हवा और वर्षा से पैर ठिठुरने लगे हैं और इतने पर दोनों पैर रस्सी से कस कर बँधे हैं। वे तभी ऐसी दर्द भरी आवाज़ में अपने भाग्य विधाता के प्रति प्रतिवाद प्रदर्शित कर रहे हैं। सारे सौर-जगत् की ओर ऊँची गरदन कर चिल्ला उठते हैं। दर्द-भरी आवाज़ में अपनी घृणा व्यक्त करते हैं। मेरा आरामदेह बिस्तर देखते-देखते जैसे काँटों से भर गया।

बाबू!

तम्बू के बाहर ग़नी शेर और उस के साथियों की आहट मिली। क्षीण होती हुई मोमबत्ती।

उस समय तक बुझी नहीं थी। उत्तर देते हुए उसे निकाल कर कहा—क्या है?

परदे से लगी गाँठ खोल कर वे भीतर आये। वर्षा से तरबतर वे अपनी भाषा में बोले—ग़ज़ब हो गया। शाम के बाद से अपना एक घोड़ा नहीं मिल रहा है। इस पहाड़ के ढलान पर घास खाने को चढ़ा था। अहमद मियाँ उसे ढूँढ़ते-ढूँढ़ते इस तम्बू के बग़ल वाली पहाड़ी पर बहुत ऊपर गया था। पहाड़ पर बहुत ज़ोर से बारिश हो रही है।

—कहाँ? तो क्या घोड़ा मिला?

— नहीं, ग़नी कहने लगा, पहाड़ के ऊपर बहुत सी गुफाएँ हैं। उन में घुस गया हो शायद, यह देखने जाने पर आफ़त में फँस गया। घोड़ा तो नहीं मिला मगर एक काला सा जानवर गुफा से निकल कर अहमद के ऊपर झपटा—अहमद डर कर भागा।

—कैसा जानवर?

—मालूम नहीं, बाघ तो इधर नहीं मिलता, रीछ हो सकता है। बस, यहाँ से दो रस्सी ऊपर! वही तो है वहाँ!

ज़रा विचलित हो कर पूछा—वह रीछ हमारे तम्बू की ओर आ सकता है,

सोचते हो ?

ग़नी शेर बोला—मालूम होता है, इतनी बारिस में कोई जानवर नीचे उतरेगा नहीं।

—पर घोड़े को यदि वह मार डाले तब कल हम लोगों की दशा क्या होगी ? कैसे पहुँचेंगे ?

ग़नी शेर और अहमद कुछ क्षण चुप रहे फिर जाते समय कह गये सवेरा होते ही हथियार ले कर घोड़े को ढूंढ़ने जायेगा।

उन के चले जाने के बाद मोमबत्ती अन्तिम लौ में जल कर बुझ गयी। इस के बाद तम्बू के अन्दर खामोशी, कड़कड़ाती ठण्ड अँधेरे में फैल गयी। सारे तम्बू का बोझ मानो छाती पर आ पड़ा हो। ओवरकोट और कम्बल में सिर छिपा कर चुप प्रतीक्षा में बैठा रहा, जाने कब वह काला भयानक जानवर पहाड़ की बग़ल से उतर सब से पहले मेरे तम्बू में आ जाये और अपने बड़े-बड़े नाखूनों वाले दोनों पंजों से मेरे पैर पकड़ कर खींच ले।

दोनों पैर बर्फ़ होते जा रहे हैं। घोड़े की रुलाई—वही हृदयविदारक रुलाई एक सुर में जारी है। सवेरे की प्रतीक्षा कर रहा हूँ।

नींद के लायक़ गरमी किसी तरह पा नहीं सका और चार-पाँच घण्टे बाद मुँह पर से कम्बल हटा कर देखा, बाहर सवेरे की किरण परदे के बीच में से हो कर आ रही है। बस जल्दी से उठ कर खड़ा हुआ। नींद के न आने पर भी कोई थकावट या कोई जड़ता बोध नहीं हुआ है। मुझे सिर्फ़ चाहिए थी थोड़ी सी गरमी। थोड़ी सी आग, एक कप चाय, एक लोटा गरम पानी। उठ कर बाहर आया तो देखा, दो-एक यात्री और बैरागी इधर से उधर ठिठुरते हुए दौड़े जा रहे हैं। बारिश की बूँदा-बाँदी लगी है। पहाड़-पर्वतों की ओर सुबह के समय आफ़त कम रहती है। जितना समय बढ़ता है, उतनी ही हालत बदलती है। अमूमन बर्फ़ पड़ने लगती है नौ-दस बजे के बाद से ही। जो भी हो, बीते कल की साँझ के मुक़ाबले अभी आकाश की दशा अच्छी है। सन् १९२८ की याद कर के कब जाने मृत्यु-भय मन में समा गया था—जैसे करैत साँप बिल में घुस जाता है। अब से और नहीं डरूँगा।

डर का अर्थ है मृत्यु। चाहे भालू ही पहाड़ की चोटी पर हो या आकाश घिरा हो, चाहे हमारी राह बर्फ़ से ढकी हो, डरूँगा नहीं। और एक के बाद एक, दो सिगरेटों का कश खींच कर रूमाल से एलमिनियम के भयानक ठण्डे लोटे का कनखा पकड़ सीधा जा पहुँचा उस सिख सरदार की चाय की दुकान पर। अभी-अभी उस ने अंगीठी में जलावन दिया है। मैं उस का पहला ग्राहक हूँ। परसों चन्दनबाड़ी से सरदार दूध ले आया था, उसी दूध से चाय बनी रखी है दो दिनों से वही चाय हमें गरम कर के देगा। उस बदरंग पानी की क़ीमत चार आने है। चार आने सही, कोई बात नहीं। मगर उस के साथ एक लोटा खौलता हुआ गरम पानी के बिना मेरा काम नहीं चल सकता। कल

एक रुपये की लकड़ी जल गयी थी मगर एक लोटा पानी गरम नहीं हुआ। शिवजी ने कहा है, अब पाँच रुपये खर्च करने पर भी एक भी पेड़ का तना नहीं मिल सकता। इलाक़े में लकड़ी नहीं है कहीं।

सवेरे ही हिमांशु बाबू कुछ स्वस्थ दीखे। उन के पास मोटी रज़ाई थी, इस लिए रात को वे सो सके थे। पता चला कि मिलिटरी आदेश फिर जारी हुआ है कि बिना उस की आज्ञा से कोई भी आगे नहीं जा सकता। अगर कोई जाना चाहता है तो अपनी ज़िम्मेदारी पर जा सकता है, राज्य सरकार उत्तरदायी नहीं है। आज मौसम की खबर अच्छी नहीं है। हमें अभी यहाँ गुनश का दर्रा पार करना है। इस के बाद पंच-तरणी उस पथ में पड़ने पर एक से अधिक नदियों को पार कर के कहीं पहुँचना पड़ेगा। पंचतरणी से अमरनाथ पाँच मील है।

झर-झर वर्षा हो रही है। हमें बेवक़ूफ़ बना कर प्रकृति अपनी तरह-तरह की लीला दिखा रही है। डरा रही है, चिन्ता में डाल रही है। दिखाती है कभी ऊसर-अनुर्वर दिग्-दिगन्त, ले चल रही है कभी रंग-बिरंगे सहस्र फूलों से भरी घाटी के रास्ते, कभी पहाड़ों में से बहती निर्झरिणी के अगल-बग़ल से, कभी बयाबान के शून्य में बिचरने वाली राक्षसी रूपी बर्फ़ीली झंझा में उन्मत्त रणक्षेत्र के बीच। तभी तो विकट हालत में कभी-कभी धैर्य टूट जाने पर भी आनन्द आता है, वे आनन्दस्वरूपा है ईश्वर का अंश आनन्द में है, तब तो कोई बात नहीं। आनन्द ही है अमरनाथ। वरना गुफा और बर्फ़ के सिवा क्या है। ऐसा यात्री नहीं दीखा—वृद्ध-वृद्धा तक, जो तीर्थ यात्रा के मध्य पथ से लौटने का पश्चात्ताप कर रहे हैं। आनन्द आता है, तभी तो वह तीर्थ है। वह आनन्द रूप है। वह आनन्द मय है। उस आनन्द-रस में मधुमक्खियों की तरह लिपट-चिपट कर तीर्थयात्री मरण भी स्वीकारते हैं। हमें दुर्गम में रस मिलता है, रस मिलता है दुस्साध्य पथों में। मृत्यु को अँगूठा दिखा कर कन्नी करने में रस मिलता है अवश्यम्भावी आत्मनिग्रह में। वरना कालीघाट छोड़ कर कामाख्या दौड़े जाते हैं क्यों? काशी के केदार को छोड़ कर क्यों दौड़े जाते हैं केदारनाथ और पशुपतिनाथ? यदि कोई अभी सवाल करे, ईश्वर को चाहते हो या अमरनाथ जाना चाहते हो तो फ़ौरन जवाब दूँगा—अमरनाथ जाना चाहता हूँ। आनन्द है बिना सोये रात काटने में। भालू के भय से आनन्द है, आनन्द है उपवास में और विपत्ति की आशंका में। चारों ओर की गगनचुम्बी पर्वतशृंखलाओं को रात भर में बर्फ़ से धवल-नवल होते देख आश्चर्यचकित होने में ही आनन्द आता है।

उस समय डायरी के पन्नों पर लिख ली थीं ये कुछ पक्तियाँ: सवेरे न चाय, न खाना, न जल के अभाव में शौचादि। हर कोई अपने-अपने तम्बू में कुण्डली मारे पड़ा है। बाहर की भीगी हवा में, ठण्ड में और वर्षा में निकलने का साहस किसी में नहीं है। पहाड़ के ऊपर बर्फ़ गिर रही है। हम लोगों के तम्बुओं पर। दल बना-बना कर बादल उतर रहा है नीचे हमारे तम्बुओं पर। कभी-कभी बादल में डूब जाता हूँ। आशा-भरोसा अब ढूंढ़े नहीं मिलता। हमारे तम्बू भीग-भीग कर नम होते जा रहे हैं। घोड़ों की

दर्दीली हिनहिनाहट अब भी रुकी नहीं है न ऐसे में आकाश जरा देर को थोड़ा साफ़ हुआ है। वर्षा अन्त में रुक गयी। पुलिस तम्बू से खबर आयी, हम पंचतरणी की ओर रवाना हो सकते हैं। इस समय नौ बज चुके हैं। झटपट तम्बुओं को उखाड़ कर जब हम जाने को तैयार हुए, तब ग़नी शेर के आदमी ने आ कर खबर दी, खोया हुआ घोड़ा लगभग दो मील की दूरी पर पहाड़ी पथ पर मिला है। हम ने शुभ समाचार पा कर नये उत्साह के साथ यात्रा शुरू की।

आज का पथ खूब फिसलता हुआ और संकटों वाला है। पंक्तिबद्ध घोड़े जब माल-असबाब तथा सवार को ले कर रवाना हुए तब फिर खबर मिली, लगभग तीस यात्री वर्षा-बादल से भयभीत हो कर पहलगाँव लौट गये हैं। उन में 'कुण्डू स्पेशल' के कई यात्री भी थे। राह में देखा, पंजाबी महिलाएँ काफ़ी साहसी हैं। उन में अध्यव-साय अथक है। लाठी ठकठकाती हुई एक साथ वे जा पहुँचती हैं। शारीरिक शक्ति में पुरुष प्रमुख है कारण, वह जन्मदाता है, सृष्टिकर्ता है। परिश्रम के क्षेत्र में महिलाएँ प्रमुख हैं, क्योंकि धीरज वाली हैं। कोमल अंग वाली ये महिलाएँ असीम परिश्रम करती हैं। ऊपर से कैसी सुकोमल किन्तु भीतर से ठोस। कैसी लचीली, कैसी कोमल संसार में बलिष्ठ पुरुष जन्म लेते हैं उसी मक्खन सी कोमलांगी की कोख से, इसी लिए पुरुष उन्हें प्रिय हैं। दिग्विजय की ईश्वरीय शक्ति पुरुष पाता है उसी लावण्यमयी प्राणदायिनी के स्तनपान से, इसी लिए पुरुष उन्हें प्रिय हैं। प्रतिभावान् पुरुषों को देख वे आनन्दित होती हैं। वे जानती हैं कि वे उन्हीं को देह से प्रसूत हैं, बर्बर पुरुषों को देख वे अचम्भित होती हैं। जानती हैं, अपने ही स्तनपायी के रणरसरंग। वे किसी भी रूप में पुरुष को पा कर डरती नहीं हैं। क्योंकि वे शक्तिरूपिणी हैं। इसी कारण से महाशक्ति का दूसरा नाम अभया है। अभया एक ही कोख में देव और दानव को धारण करती है। इस देव-दानव के नित्य द्वन्द्व में वह मतवाली है। कभी वह जगद्धात्री है, कभी महाकाली। शक्ति एक है, किन्तु अभिव्यक्ति अलग-अलग।

धीरे-धीरे हमारा काफ़िला पर्वत की चोटी पर चढ़ रहा है। अब बढ़ रहे हैं पूरब की ओर। पथ कष्टसाध्य है—बेहद पथरीला, बड़ा खतरनाक। ग़नीशेर लगाम थामें चल रहा है। कभी-कभी सवारों को मित्रवत् अभयदान देता है। डरो मत, आगे और पीछे के लोगों में बहुत से डर गये हैं। ठण्ड के मारे काँप रहे हैं परन्तु हम लापरवाह हैं। जितने ऊपर चढ़ रहे हैं, उतनी ही एक के बाद एक धवल चोटियाँ नजर आ रही हैं। पर्वत-शृंखलाओं पर बर्फ़ अब भी पड़ रही है। दीखता है उसका अस्पष्ट धूम्रजाल। शिशु, नारी, पण्डित, मुसलमान, मिलिटरी—सभी चल रहे हैं उसी एक लक्ष्य की ओर। चल रहे हैं सभी घोड़े, डाण्डी म्यूल, खच्चर, भाँट् पाड़ाका दल, कुण्डू-स्पेशल, पंजाब, महाराष्ट्र, तमिल, बिहार और बम्बई।

वायुयान में जितना उतरना पड़ा और फिर चढ़ाई पथ पर चढ़ना पड़ा, अन्दाज़न हज़ार फ़ुट। श्वास का कष्ट अनेक को हो रहा है, अनेक को मितली आ रही है। देखते-

देखते सोलह हज़ार फ़ुट की घाटी में आ पहुँचा। आकाश बड़ा विशाल हो आया है, सामने मिला ऊँचा-नीचा मैदान। अगल-बग़ल जमी बर्फ़ के भीतर से पानी की धारा बह रही है, दीख रही है बर्फ़ से ढँकी नदी और हिमवाह! दीख रहे हैं विचित्र बहुरंग के पुष्पों वाले लता-बल्लरी से ढँके अजाने रास्ते। पेड़-पौधे कहीं भी नहीं हैं। सृष्टि का चिह्न नहीं, दूर-दूर तक आदमी की छाया तक नहीं। कहीं-कहीं सूखा हुआ सफ़ेद कंकाल कहीं विगत वर्ष के यात्री समागम का निशान का बिखराव है। हम पंक्तिबद्ध चल रहे हैं। बीच-बीच में घोड़ों के रखवालों की आवाज़—हुई, हिस्स शाब्बास—मैदान और पहाड़ों में प्रतिध्वनित हो रही है। कभी चलते-चलते कहीं देखता हूँ कि एक ही चट्टान में अनेक रंगों का समन्वय, कहीं नीले फूलों के फैलाव, कहीं जल-प्रपात के साथ मिले गन्धक की तेज़ गन्ध है। अनुर्वर पार्वत्यराज्य के सिरे पर हैं सैकड़ों क्षय होते हुए मिट्टी के क्लिफ़। सामने से अगम पैदल पथ चला गया है जो गिरिसंकट की ओर लद्दाख का पथ चक्कर खाता हुआ दृष्टि से परे जा कर खो गया। पूरब की ओर तिब्बत की अमर, अनादि, अनन्त, अजर, दूर पर्वत शृंखलाएँ सीमा के प्रहरी जैसी स्थित हैं।

हम कभी उतर रहे हैं, नदी-झरना पार कर रहे हैं और कभी चढ़ रहे हैं ऊपर चारों ओर की पार्वत्य प्रकृति की मध्य से महागुनस दर्रे को पार कर बढ़ रहे हैं। नदी की गति अब तक थी हमारे पीछे की ओर, अब उस की विपरीत गति है। हम चल रहे हैं नदी की धारा के संग-संग।

सहसा हम सब की गति रुद्ध हो गयी। हिमालय के किसी कोने से छह हज़ार वर्ष पूर्व यहाँ कोई संन्यासी आये थे। वे महागुनस की नैसर्गिक छटा देख कर रोह के किनारे ठहर गये और कालक्रम में वे फ़ॉसिल में परिणत हो गये। राह पर बायीं ओर तनिक बग़ल में उसी संन्यासी का आकार पहाड़ से मिल कर एक हो गया है। हम सभी ठगे से रह गये। रवीन्द्रनाथ की चित्र-कृतियों में ऐसी ही एक आदमी के आकार-प्रकार की कल्पना मिलती है। हम बहुत कुछ मोहावेश दृष्टि से उस आकार को एक ज़माने का ऋषि मान कर सोचने लगे। झाँझर पत्थर से अंकित एक अद्भुत मनुष्य की कल्पना सहसा मन में होगी ही क्यों! विचित्र वर्ण के पत्थरों से विविध रंगों के फूलों-लताओं विभिन्न गुल्मों से और लत्तरों और सब के अन्त में मानव की कल्पनाओं से दृश्य अभिनव लगा, इस में शक नहीं। पता चला कि सैकड़ों वर्ष से भिन्न-भिन्न जातियों के लोग इन के सम्मुख श्रद्धा-निवेदित करते रहे हैं।

सुदूर आकाश में सहसा इसी बीच गड़गड़ाहट सुनाई पड़ी। आँखें फाड़ कर देखता हूँ दूधिया पर्वत श्रेणियों के ऊपर से फिर मलिनमेघ खण्डों का षड्यन्त्र शुरू हो गया है। फिर देखते-देखते यात्रियों की आँखों में त्रास दीखा। बीच पथ में आत्मरक्षा का कोई उपाय नहीं है। अभी भी बहुत पथ बाक़ी है। पैदल चलना सब से सुरक्षित है। क्योंकि मौत होगी तो श्वास-प्रश्वास की गड़बड़ी से, अन्यथा किसी और दुर्घटना की सम्भावना नहीं रहती। घोड़े और डाण्डी से चलना बहुत कुछ अंशों में सुविधाजनक है।

मगर ये दोनों भयानक भी हैं। हिमांशु बाबू ने कहा—कई यात्री डाण्डी से चल रहे थे, किन्तु चार घण्टे बाद डाण्डी वालों ने मालूम किया तो वे यात्री मर चुके थे। भय और ठण्ड से कब मरे, पता नहीं चला।

ग़नीशेर लगाम कस कर पकड़े है। पथ नहीं है, यों ही किसी प्रकार जाने लायक़ पगडण्डी है। घोड़े की पीठ पर काठ सा बैठा हूँ। दोनों ही हाथ सुन्न ! सख्त मुट्ठी से पकड़े हूँ घोड़े की पीठ, यह मुट्ठी मौत के बाद भी अलग नहीं होगी। कसी हुई यह मुट्ठी पथरा जायेगी। दाहिना घुटना पहाड़ से घिसट रहा है, बाएँ घुटने की बग़ल में है भयंकर खड्ड। हज़ार फ़ुट गहरा, जरा चूक हुई कि बस मौत। ग़नीशेर बीच-बीच में यह कह कर भरोसा देता है, डरो मत। बूंदी-बाँदी शुरू हुई। तुहिन झंझा आयी फिर वही १९२८ की सम्भावना। आये, पर यह कहना ही पड़ेगा जो कुछ देखा, वह अतुलनीय है। नीलगंगा और अमरावती के किनारे-किनारे कश्मीर की अमृत आत्मा का दर्शन कर लिया। जान लिया है इसी पथ में जीवन का श्रेष्ठ समय बिताया जा सकता है। मनुष्य की जो कुछ श्रेष्ठ चिन्तना, श्रेष्ठ समृद्धि कल्पना, श्रेष्ठ काव्य और साहित्य की परम मधुर भावना है, मानवात्मा के निगूढ़ रहस्यलोक से जो कुछ निर्गमित होती है, इसी पथ में उस की श्रेष्ठ अभिव्यक्ति है।

वर्षा की धारा उतर रही है। मोटे गरम कपड़ों से सम्पूर्ण शरीर ढका है, सिर्फ़ खुली है नाक। कल उस के चारों ओर को चमड़ी फट गयी है। हाथों पर से दस्ताना उतार लिया है। वर्षा में चेहरा और हाथ भीग रहे हैं। देखते ही देखते वर्षा तेज़ हो आयी। पर हम सभी शान्त हैं—यही है हमारे धैर्य, साहस और सहनशीलता की परीक्षा। अब चोटी से एड़ी तक बाक़ी पगडण्डी से उतर रहा हूँ। ज़रा सी भूल से तनिक भी पैर चूका, मामूली भ्रम में पड़े, थोड़ी सी चाल में तेजी लाये कि निश्चित है मौत। एक गठीले शरीर की युवती अपने संगी के साथ दौड़ने की चेष्टा कर रही थी। देखा था—बाद में हिमांशु बाबू से सुना अपने को वह संभाल नहीं पायी और गिर कर घायल हो गयी। खून से लथपथ। हिमालय कभी बदमिज़ाजियों को माफ़ नहीं करता।

अमरावती नदी की ओर उतर रहा हूँ। इस नदी को कुछ लोग अमर गंगा कहते हैं। अमर गंगा की यहाँ से अगल-बग़ल से पाँच धाराएँ बह रही हैं और इन्हीं पाँच धाराओं को पार करने के बाद हम पंचतरणी के विस्तृत मैदान में जा पहुँचेंगे। सुनते हैं, ये मूल सिन्धु की शाखा-प्रशाखाएँ हैं। इस गंगा के चारों तरफ़ स्थित तुषारवृत पहाड़ अपरूप हैं। पहाड़ों की तरह है तभी हर तरफ़ से पहाड़ी नदियाँ उतर पड़ी हैं। कोई गिरि पर्वत श्रेणी में खो गयी है, कोई सिन्धु की अन्य किसी उपनदी से जा मिली है। हमारे सामने है विराट् भैरवघाटी, पर्वत की चोटी और उसी की बग़ल में अमरनाथ पर्वत की तुषारशृंग। गुफा कहाँ है, पता नहीं। जानता हूँ सिर्फ़ भैरवघाटी पर्वत का अतिक्रम कर हमें चढ़ना होगा अमरनाथ पर्वत पर मटमैले अँधेरे में दिग्-दिगन्त को घेर

कर मूसलाधार वर्षा आ उतरी है। ठीक पचीस वर्ष पूर्व यहाँ ऐसी ही वर्षा से उतर आयी थी मूल पहाड़ों से विच्छिन्न हो कर विराट्काय तुषार नदी, उस के बाद के वर्षों में यहाँ सैकड़ों मनुष्यों के कंकाल ढूंढ़ने पर मिले थे। परन्तु इस भयानक वर्षा और बर्फ़ीले तूफ़ान में हम लोग किसी प्रकार की घबराहट जाहिर नहीं कर पा रहे हैं। हम एकदम निरुपाय। कदम-कदम नदी की तरफ़ बढ़ रहे हैं। वर्षा की भयंकर बौछारों के मारे हम दिशा भ्रम में पड़ गये। यह हमारे भाग्य में बदा था। भाग्य देवता ने कानों-कान कहा—डरो नहीं; तुम्हें मारूंगा नहीं, सिर्फ़ सर्दी के थपेड़े लगाऊँगा। देख, यह रही मूसलाधार वर्षा। बताओ अब ईश्वर को मानते हो, या नहीं?

सुनी हुई बातें हैं। दुनिया के बहुत से ईश्वर भक्तों की आँखों से दिन-रात आँसू क्यों बहते हैं? मार खा-खा कर उन की हड्डी-पसलियाँ टूट क्यों जाती हैं? होम करते हाथ क्यों जलता है? भक्तिन विधवा की, एकमात्र सहारा सन्तान को क्यों मरना है अकाल मृत्यु से?

फिर तर्क? अरे, तर्क से कुछ हाथ लगेगा? तब तो मर!

मन ही मन कहा—जाते वक़्त मत मारो, दुहाई है, वापसी में एवालांस, भेज देना—एकदम ठण्डा हो जाऊँगा। यही अच्छा होगा। बाल-बच्चेदार आदमी हूँ। अपने देश में दुःख भोगना नहीं पड़ेगा मर कर तर जाऊँगा। पीछे से हिमांशु बाबू चिल्ला उठे —ऐ जनाब, यह क्या हुआ? तेज़ वर्षा के मारे हमारे घोड़े सन्न हो गये। ग़नीशेर के पास था मेरा छाता। घोड़े पर बैठे-बैठे ही उस से बायें हाथ से छाता लिया। मगर एक हाथ से घोड़े पर बैठे रहना बड़ी मुश्किल है। उत्तर की ओर से बहती चली आयी नदी पूरब की ओर भागी जा रही है। यह बड़ी नदी हमें पार करना होगा। ठण्ड से सुन्न होता जा रहा हूँ हर क्षण। मगर ऐसे में ही छाता बायें हाथ में सँभालना पड़ा। नदी का कुछ हिस्सा पैदल चलने का है, कुछ कच्चे पुल का। आगे-पीछे-बग़ल में हम डूब रहे हैं। उस के ऊपर से वर्षा की तेज़ धारा के कारण एक मटमैला परदा पड़ा है। दक्षिण में आँखें जहाँ तक जा सकी हैं, दीखता है पर्वत-दर-पर्वत की चोटी का सिर्फ़ तुषार-मुकुट नजर आ रहा है। एक तरफ़ लद्दाख, एक ओर तिब्बत, उत्तर-पश्चिम में जोजिला गिरिपथ और उत्तर-पूर्व में भैरवघाट पार करने के बाद है अमरनाथ पर्वत चोटी। नीचे है यह तीव्र वेगवती अमरावती नदी, जिसे अमरगंगा कहा जाता है। हम फिर सोलह से पन्दरह हज़ार फुट उतर आये।

वर्षा के साथ ही तूफ़ान हमें धक्के देता है। हिमांशु बाबू ने पूरी देह पतले प्लास्टिक के वाटरप्रूफ़ से ढक ली है। मैं मोटी क़मीज और पैण्ट के साथ भीग रहा हूँ। पानी पड़ रहा है हाथ-पैर और पीठ पर। छाते से सिर्फ़ सिर की रक्षा हो रही है। जब कि सिर भींगता और बाक़ी शरीर बच जाता तो कुछ काम बनता। हम लकड़ी और पत्थर जुड़े किसी तरह से बने पुल पार करते रहे हैं। विधाता की चेष्टा थी घोड़े सहित धक्का दे कर नदी-गड्ढे में गिरा देने की, ताकि सब खेल ख़त्म हो जाये। मगर

ग़नीशेर से वे भी पनाह माँगते हैं । उन की लीलाक्रम ग़नीशेर का समझा-बूझा है, इस-लिए, वह हर परिस्थिति के लिए प्रस्तुत रहता है । धीरे-धीरे हम उसी प्रचण्ड वर्षा के बीच पुल पार कर के उस पार जा पहुँचे । उधर है बालू और पत्थरों का द्वीप । उस के पीछे है पंचतरणी तुहिन घाटी । घाटी के पीछे है भैरवघाट के विशाल पर्वत की तुषार मण्डित चोटी । निगाह भर देख लेता हूँ सब कुछ । कहीं खो न जाये कुछ । यहाँ अपनी डायरी से ही कुछ पंक्तियाँ उद्धृत करूँ ।

"धीरे-धीरे तीन मील बर्फ़ीली हवा के अन्दर से नदी गह्वर में जा उतरा । वर्षा और तूफ़ान की बौछार में कुछ देख नहीं पाया । कौन कहाँ है, किस की क्या गति हुई, कौन जाने । घोड़े पर बैठे-बैठे पूरा शरीर ऐंठ गया है । यहाँ ताप नाम मात्र को भी नहीं है । डर है, कपड़े और बिछावन सब भीग जाने का । हम हैरान हैं, परेशान हैं और अस्त-व्यस्त हैं । ठण्ड में मानो जमते जा रहे हैं । नदी पार कर इस पार आ गया हूँ । सिर पर बर्फ़ जमी है । बर्फ़ानी हवा सायँ-सायँ चल रही है, बर्फ़ की बौछार जैसी । परन्तु सब कुछ कितना अपरूप और हमारे लिए कितना नया है । सभी तरह की आफ़तों के बावजूद यहाँ पार्वत्य प्रकृति की स्वाभाविक छटा देखने को मिली—यही तो है हमारा परम पुरस्कार । उसे ही तो अन्तर में पालता रहूँगा हमेशा ।" खैर थोड़ी चढ़ाई चढ़ कर पंचतरणी की फैली उपत्यका मिली । वहीं पहुँच, उस वर्षा में धीरज से ग़नीशेर ने हमारे तम्बू खड़े किये । उस वक़्त करीब दो बजे होंगे । हिमांशु बाबू तम्बू में जा कर जो आराम फ़र्माने लगे, तो उन के दर्शन ही दुर्लभ हो गये । हमारी हड्डियाँ जाड़े से काँप रही हैं । तकलीफ़ होती है, कराहता हूँ । जेब में सीलन भरे दो पैकेट बिस्कुट के अलावा इस कुसमय में और कुछ भोजन का सवाल ही नहीं उठता । गरम चाय सपना है । तम्बू से किसी के निकलने की हिम्मत नहीं । कैसे भोजन का जुगाड़ होगा, कोई कुछ नहीं जानता । नीचे की ओर नदी बह रही है, उस के किनारे है यह बर्फ़ीला मैदान । कहीं-कहीं ज़रा-ज़रा घास नज़र आ रही है । इस के अलावा सब कुछ है ? नया, धूसर जनहीन पार्वत्य-प्रकृति । तम्बू में बैठ कर जब यह सब कुछ किसी तरह लिख रहा हूँ, उस समय शाम के सात बजे हैं । शरीर का निचला हिस्सा वर्षा की वजह से सुन्न हो गया है ।

धूसर अँधेरे में वेगवती नदी बह रही है । उस के चारों ओर ऐसी भीषण पेड़-पौधों से हीन अनुर्वर तराई है जो प्रायः कहीं नहीं दीखती । अनुमान कर सकता हूँ, बाद में पहाड़ों के बाद पहाड़ उतरे हैं । बादल और ग्लैशियर, प्रत्येक पहाड़ों की गोद में झूल रहे हैं । बीते कल की तरह दुर्योग पूर्ण हवा कभी नहीं है । इस बीच कुछ खाने को और एक कप गरम चाय मिली । अब यह अहसास हुआ, अगर अड़तालीस घण्टे में किसी तरह कुछ मन पसन्द भोजन का जुगाड़ कर पायें ।

आज पहलगाँव से चले तीन दिन हुए । तीन दिन या तीन वर्ष, यह कहना

मुश्किल है। भूल गया हूँ, सब याददाश्त बहुत कुछ खो सी गयी है। प्रत्येक घण्टे में पता लगा है एक नये स्वप्नलोक का, नयी सृष्टि तथा नयी प्रकृति का। पथ का प्रत्येक मील हमारे जीवन-इतिहास का एक-एक परिच्छेद सा बन गया। इतनी कम दूरी में इतना दुस्तर गिरिलोक पहले कभी देखा नहीं था। बीते कल वायुयान स्थित तेलनाड़ इलाक़े के क़रीब सवेरे के भेड़ों को चराते हुए एक चरवाहे को देखा था। इस के बाद यात्रियों के अतिरिक्त पहाड़-दर-पहाड़ों में एक भी आदमी नहीं दीखा। यह एक नयापन है। मानस सरोवर, केदार, बदरी, यमुनोत्री, गंगोत्री, पशुपतिनाथ कहीं भी ऐसा नहीं है। यानी यह समझ में आता है कि मध्य एशिया की ओर जाने का यह एक दूसरा रास्ता है। मैं यदि इस जगह से निकटवर्ती पहाड़ पार कर पश्चिम तिब्बत में घुस जाऊँ तो रोकने वाला कोई नहीं है। हमारे इसी पहाड़ के पीछे ही भारत की सीमा है। कुल नौ मील लगभग। एक घोड़ा और रसद लेकर यदि बलतलि की तरफ़ चला जाऊँ तो कौन देखता है। कौन जानेगा यदि सिन्धु घाटी के किनारे से जोजिला पार कर जाऊँ? लद्दाख तो अतिनिकट है, अमरगंगा पकड़ कर चले कि तिब्बत! मेरे लिए हो सकता है यह सहज-साध्य नहीं है, मगर तेनजिंग के लिए क्या मुश्किल है। स्वेन केडिन को कितना समय लगेगा? साथ में दो आदमी हों तो चौबीस घण्टे से अधिक लगेगा क्या? पश्चिम पर्वत की तराई से जास्करा गिरिश्रेणी के भीतर से जितनी चाहूँ, दूर खुशी से चला जाऊँ। भारत की सीमा का संकेत कहीं भी नहीं है।

ठीक वायुयान के जैसा ही सारी रात वहीं नदी के किनारे बर्फ़ीली हवा के झोंके से तन हिल रहा है। कम्बल में छिप कर प्रचण्ड ठण्ड में वैसी ही उनींदी रात। आँखें बन्द किये अवश्य रहा, परन्तु हड्डी-पसली में ऐंठन की वजह किसी तरह भी नींद नहीं आयी। रात होते-होते ही हिमांशु बाबू मुझे एक कम्बल दे गये थे, लेकिन उस से भी कोई लाभ नहीं हुआ। तम्बू की छाजन पर वर्षा की बूँदों का शब्द कभी रुका नहीं। कौन जाने, कल भाग्य में क्या बदा है। यहाँ से अमरनाथ कुल चार-पाँच मील है। ऐसी अनिश्चितता, इतना संशय, इतनी आशंका—फिर भी मन में उमंग है। क्योंकि अपने बहुत वर्षों के बहुत अप्रत्याशित स्थान में पहुँच पाऊँगा। बचपन से केवल चित्र देखता रहा, कहानियाँ सुनता रहा, दु:साध्य पथों का इतिहास पढ़ता रहा, मानचित्रों में सांकेतिक चिह्नों के आधार पर कितना और क्या-क्या कल्पना करता रहा, कल सारी उत्सुकता का अन्त हो जायेगा। मौत के सीमान्त में खड़े हो कर अमरलोक का द्वार-पट खोल डालूँगा। कल हमारी यात्रा पूरी होगी। परन्तु आज सारी रात को अनागत इतिहास को अब भी समझ नहीं पा रहा हूँ। बारिश पूरी तरह नहीं थमी है। जानता हूँ, हमारा पथ बर्फ़ से ढका होगा। पर क्या इस घाटी से ग्लैशियर उतर आयेगा। क्या इस अमरगंगा में एवालांश भागता-दौड़ता आयेगा? हज़ारों मनुष्यों में कब किस ने ऐसी भयानक रात देखी है? मौत की सम्भावना के सामने खड़े हो कर इन की तरह कौन पल-छिन गिन पाया है?

ठीक याद नहीं। लगता है, नींद में नहीं हूँ। हिमांशु बाबू की आवाज़ सुन कर कम्बलों की तहों के भीतर से मैं ने मुँह बाहर निकाला। विश्वास नहीं हुआ था कि सवेरा इतनी जल्दी होगा। जानता था कि दुःख और यन्त्रणा की रात बहुत लम्बी होती है। विश्वास नहीं हुआ, इस अचरज भरे सवेरे का। कब वर्षा हुई थी, कोई चिह्न उस का नहीं। कब मृत्यु-भय सभी को हुआ, इस का कुछ खयाल नहीं। सारा आकाश मानो नीलोज्ज्वल एक महाकाव्य हो। अमरावती की जल-लहरी के ऊपर मधुरिम सूर्य-किरणें आ पड़ी हैं। प्रभात मधुर स्निग्ध समीर सिहरन दूर-दूर तक अभय वरदान फैला रही है। दूधिया तुषार आवरण से सम्पूर्ण पर्वत समूह सूर्य रश्मि के जाल में झिलमिला रहा है। अभिमान हुआ। तब क्या यही हो तुम? तब क्यों कल इतना रुद्र, प्रचण्ड रूप धारण किया था? क्यों मत्त महाकाल के जटा-जाल में नटराज के नृत्य के लय-ताल में शिशु मानवों के हृदय में आतंक का संचार किया था? इतने सुन्दर हो तुम, फिर क्यों इतने भयंकर हो। आँसू आँखों में भर आया।

'तमसो मा ज्योतिर्गमय—मृत्योर्मामृतं गमय'—अन्धकार से प्रकाश में ले चलो मृत्यु से ले चलो अमृत लोक में। शायद यही है वह अमृत लोक। पीछे थी मृत्यु, सामने है अमरावती। असत्य से सत्य, भय से जय। जयवाणी का उद्घोष हो रहा है हमारे सम्मुख पथ में। प्रसन्न प्रभात के सूर्य ने सौंपा है मधुरतम मोदमग्न रूप, आनन्द में फिर विहँस उठी है वही प्राचीन पृथ्वी। देवतात्मा हिमालय अपने रत्नगिरि का द्वार खोल रहा है। पिछले दो दिनों का इतिहास दुःस्वप्नों की स्मृति धो-पोंछ गया।

हमारे पीछे करीब आधे मील पर कुण्डूस्पेशल का तम्बू था। वहाँ सरकारी कैम्प है। वहाँ से यात्रा के समय फिर एक दुःखद समाचार आया। एक बाबाजी कल श्वास-प्रश्वास के कष्ट से मर गये और आज पेट दर्द से कोई एक मृत्युशय्या पर पड़ा है। शंकर कुण्डू ने कहा—और कई लोग मौत के डर से भाग गये हैं। औरतें तो बादल का रूप देख कर रोने-धोने लगी हैं। उन में से अनेक निराश हो कर चली गयी हैं। कितने ही स्त्री-पुरुष घोड़े से गिर कर घायल हो गये हैं, कई थक कर गिर पड़े हैं।

अन्दाजन साढ़े सात बजे हम ने यात्रा शुरू की। तम्बू और माल-असबाब घोड़े के साईस के ज़िम्मे, अहमद की देखरेख में, यहीं छोड़ा। अविश्वास का कोई कारण नहीं है। आज है पूर्णमासी, हिन्दू मत से आज उपवास का दिन है। दर्शन के बाद सैकड़ों लोग जल ग्रहण करेंगे, उस के पहले नहीं। ठण्डी हवा में और धूप में आज की यात्रा बड़ी सुखद है। आकाश की उज्ज्वल नीलाभ आभा बहती है। इस वर्ष और वर्षा नहीं होगी। निश्चिन्त रहो। यानी पुनर्जीवन लाभ किया।

मगर आज के पथ पर बहुत फिसलन है। सभी खूब सतर्क हैं। ऊपर चढ़ रहे हैं, ऊपर से भी और ऊपर। ठीक जैसे किसी विराट् प्रासाद के छज्जे के ऊपर से चलने जैसा। सिर हिला कि मौत। घोड़े का पैर डगमगाया कि बस घोड़े सहित लुढ़के। पथ

का अर्थ पथ नहीं है। आँखों में भरा है आतंक, शरीर में रक्त संचार रह-रह कर रु जाता है। आज संकट से परे कोई भी अपनेआप को नहीं मानता। एक के बाद एक घाटी। घोड़ों को कहीं-कहीं खींच कर चढ़ाना पड़ रहा है। हर क्षण शंका, त्रस्तता और सावधानी। परन्तु ग़नीशेर हमारा रक्षक है, जानता हूँ, उस के हाथों हम एकदम संकट से दूर हैं। उस की नीली आँखों में कितना स्नेह है, मृण्मय कश्मीर की सारी कोमलता उतर आयी है उस के व्यवहार में। लेकिन कितना दरिद्र है वह। फटे-पुराने कपड़े, फटा कम्बल। पैरों में फटे जूते और फटी शेरवानी। उस का खाना देख कर आँख भर आती हैं। चार दिनों की बासी जला हुआ भात और वही पहलगाँव से लायी हुई कद्दू की सूखी भाजी—बस ! हम ने जबरदस्ती उसे कुछ रोटी दी। पहले तो वह लेने से इनकार करता रहा, कहीं उस की जात चली गयी तो····। इधर के गँवई मुसलमानों की धारणा है कि हिन्दू के हाथ से बनी हुई कोई चीज़ मुँह में डालने से समाज से निकाल दिया जायेगा। यह है जातिगत अभिमान। एक ही इतिहास है आसमुद्र हिमांचल का। एक रक्त, एक प्रकृति, एक संस्कृति। तुर्क अफ़ग़ानों ने कभी इन्हें पकड़ कर इसलाम धर्म में दीक्षित किया था। इस के बाद ये लौट कर आये कश्मीरी पण्डितों के पास। पण्डितों ने इन्हें नहीं स्वीकारा। पहाड़ों, पर्वतों, देहातों, घाटियों में मजबूर हो कर जा बसे हैं ये।

पहाड़ दर पहाड़ में झूल रही है नदी—तुषार-मण्डित। जल-प्रपात नीचे उतरते हुए, बर्फ़ में जम कर स्थिर हो गया है। उस के भीतर से रिस-रिस कर जल धार उतर रही है। पथ पर बर्फ़ीली नदियाँ और निर्झरिणी। कहीं भी हरियाली नहीं, तृणचिह्न-हीन। पथ के किनारे-किनारे फिर वही फूलों के रंग वैसे ही विविध वर्ण। वैसा ही मृत्यु पत्थरों के भीतर प्राण संचार। ये फूल-पत्थर कश्मीर के हार्दिक अर्घ्य हैं। धीरे-धीरे हम मज़बूत क़दम, दृढ़ संकल्प और मनोयोग से ऊपर चढ़ रहे हैं। उदार भावना, मधुर स्वप्न और महान् विचार इन के साथ ही भय और अनिश्चितता, रीढ़ में तनाव। हम सिर्फ़ बढ़ रहे हैं। आगे और आगे। इस राह आते थे शक और हूण, आये तुर्क-तातार। आता रहा है मध्य एशिया के अनाम-अजान खानाबदोश डकैतों का दल। इस के बाद बढ़ते हुए जहाँ पहुँच कर सर्वप्रथम उन्हें खाने और रहने की सुविधाएँ मिलतीं। पहली बार जहाँ इनसानों का समूह मिला, उस इलाक़े का नाम रखा पहलगाँव यानी पहला गाँव।

मीलों चढ़ना और उतरना। वायु क्षीणता के कारण हमें कष्ट हो रहा है। इस यात्रा में लगभग सत्तर हज़ार फ़ुट ऊँचा चढ़ पाया था। अब बारी ढलान पर उतरने की है। धीरे-धीरे पथ और मुड़ रहा है पूरब की ओर। भैरवघाट की सीमा समाप्त हो रही है। लौट रहा हूँ दाहिनी ओर। अगल-बग़ल साधु-संन्यासी चल रहे हैं। बाबाजी बैरागी। धीरे-धीरे उतर रहा हूँ। जली हुई मिट्टी जैसी सड़क मगर वर्षा से भींगी फिसलनदार। लौट रहा हूँ दाहिनी ओर भैरवघाट के पीछे—फिर उतर रहा हूँ।

उतरता हुआ आ पहुँचा नदी के मैदान में। बर्फ़ से ढँकी राहों और घाटियों से गुज़रा बहुत बार पर इस बार नया ज्ञान हो रहा है। बर्फ़ीली नदी के ऊपर घोड़े से उतर आया। पैरों के नीचे बर्फ़। उस के नीचे से बहती हुई वेगवती नदी। उस के ऊपर से बढ़ चला बर्फ़ की पपड़ी पर से घोड़े पर सवार। हम चले जा रहे हैं। यदि बर्फ़ फट गयी, कहीं कोई पपड़ी नरम हुई, तब भगवान् ही बचायेगा।

घुमाव नाके से सीधे उत्तर में चली गयी है एक नदी तिब्बत की ओर। मगर यही है अमरगंगा का मूल प्रवाह। इस पार भैरवघाट है, उस पार अमरनाथ की चोटी। कुछ दूर और जा कर ग़नीशेर ने कहा, 'उतरिए !' हो सकता है मन में दुर्भावना हो कि दुर्भाग्य से यदि हमारे पाँवों के नीचे की बर्फ़ हट जाये। तुषार नदी के ऊपर हम उतर पड़े। पैरों के नीचे बर्फ़ कसमसा उठी। ऐसी बर्फ़ कलकत्ते के बाज़ारों में सर्वत्र ख़रीदी जा सकती है। इतने बड़े ढेले कि मुट्ठियों की पकड़ में नहीं आते। रंग उजला सफ़ेद, कहीं कुछ मटमैला सा है। पैरों के नीचे तेज़ प्रवाहित नदी। यहाँ-वहाँ छोटे-बड़े गड्ढे हैं। उन में डरता-डरता झाँकता हूँ। मथा हुआ काला पानी जमा है। ख़ूब सतर्कता से क़दम बढ़ाता चल रहा हूँ। क़दम-क़दम पर सिहरन। कुछ क्षण नदी की राह पकड़े चला। एक समय ग़नीशेर ने फिर घोड़े की पीठ पर बैठाया। कुछ दूर जा कर ही नदी फिर उत्ताल-उद्दाम जल धारा में प्रकट हुई। हम आये पुल के पास। यह अमरगंगा का ही पुल है। वह छोटा पुल पार हो कर और उस पार में अमरनाथ पर्वत की तराई में पहुँच हम घोड़े से अब फिर उतरे। इस के और आगे घोड़े से नहीं जा सकता। सामने कम से कम पाँच सौ फ़ुट की खड़ी चढ़ाई पर पहुँचने पर अमरनाथ का गुफ़ा-द्वार मिलेगा।

प्रसन्न नीली आँखें फैला कर ख़तरों से बचाने वाले सौम्यमूर्ति मुसलमान ग़नीशेर हमारे सामने हँसता हुआ खड़ा हो गया। हम ने भी देखा उस की ओर। अन्तर्यामी ने हमारे कानों में कहा, छोड़ो अमरनाथ, सब से पहले इस मुसलमान को पैर छू कर साष्टांग नमन करो। तुम्हारे पंचपिताओं में यह एक है ग़रीब, अभागा सदा-सदा का भूखा नंगा यह ग़नीशेर। कारण, वह तुम्हारा भयत्राता रक्षक है। अभिमान त्यागो, प्राचीन ब्राह्मण के संस्कार से कुछ क्षण के लिए पिण्ड छुड़ाओ, मनुष्य के अन्तर्निहित नारायण को स्वीकार कर लो। इस परमात्मीय मुसलमान की चरण-धूलि उठा लो।

सम्भव नहीं हुआ। सैकड़ों-हज़ारों वर्षों की परम्परागत संस्कार रुकावट बना। वंश परम्परागत जातीय अभिमान पर्वत की तरह बाधा बन कर बीच में उठ खड़ा हुआ। कितना छोटा हूँ मैं ! कैसा क्षुद्र विचारों वाला कितना हीन ! स्वयं को सैकड़ों बार थप्पड़ मारा। आँखें भर आयीं। अन्त में दोनों अचेत बाँहें बढ़ा कर ग़नीशेर को सहसा छाती से लगा लिया। किन्तु इस से अधिक अपमान कर बैठा ख़ुद का, जब जल्दी-जल्दी पर्स से कुछेक पत्ते निकाल कर उसे दिये। उस का बक़ाया कानी कौड़ी भी नहीं थी, इस लिए ग़नीशेर की आँखों में और चेहरे पर कुछ आश्चर्य दीखा। किन्तु

मैं पीछे मुड़ कर किसी तरह भी नहीं देख सका।

चिलचिलाती धूप। अमरगंगा की सरहद से यह पथ चला गया है सीधा गुफा में। हिम्मत कर के कुछ लोग बर्फ़ीली ठण्डी नदी में स्नान करने गये हैं। यह नदी तिब्बत की तरफ़ चली गयी है। अगल-बग़ल, आगे-पीछे पहाड़ों के ऊपर बर्फ़ीली नदियाँ झूल रही हैं। ये सदा स्थिर हैं, सहज में पिघलती नहीं। मई-जून के महीने में क्या होता होगा, नहीं जानता, धूप इतनी तेज़ है कि बर्फ़ीली हवा के होते हुए भी कोई कष्ट हमें नहीं हो रहा। बल्कि ढेर सारे गर्म कपड़े पहने रहने से अब असुविधा महसूस हो रही है। अब यह अन्दाज़ लगाया जा सकता है कि इस वर्ष यात्रियों की संख्या कितनी है। पूरा एक हज़ार क्या होगी ? लगता नहीं। वह स्वीडिश विद्यार्थी भी आ पहुँचा है, एक बूढ़े फ्रांसीसी भी आये हैं। थोड़ी दूर पर देखा उस मिलिटरी का जवान—मिस्टर मजुमदार और उस की संगिनी श्रीमती मुखोपाध्याय को। इधर भाटपाड़ा के एन० पी० भट्टाचार्य साहब का जत्था है और कुण्डू स्पेशल के लोग। अपनी माँ को लिये हुए घोष साहब ऊपर चढ़ रहे हैं। चन्दनबाड़ी के पथ जो पंजाबी महिला पहाड़ के किनारे घोड़े से गिर कर घायल हो गयी थीं वे भी आ पहुँची हैं, पर सिर में पट्टी बँधी है और भी बहुत से लोग आ गये हैं जिन के देखादेखी का परिचय पाँच-छह दिनों का है। आ गयी है वे भी मिसेज़ राय—श्रीनगर इम्पीरियल बैंक के एजेंट की पत्नी हिमांशु बाबू की मानी मुँहबोली बहन। पुलिस और मिलिटरी सभी आज आ गये हैं।

यह आख़िरी चढ़ाई अखर रही है। हवा हलकी होने की वजह से मेहनत अधिक महसूस होती है। धीरे-धीरे लगभग ऊपर चढ़ आया। अब और पचीस फ़ुट गुफा द्वार अब तक पहुँचने में बाक़ी है।

घोष महोदय की वृद्धा माँ लेट गयी हैं अब और ऊपर चढ़ने की शक्ति नहीं है। लगता है, बेहोशी की हालत में आ गयी हैं वे। सिर चकरा रहा होगा, मितली आती होगी। घोष साहब राह भूल कर नीचे दौड़े जा रहे थे। माँ की शायद यह अन्तिम घड़ी है ? अभी तो दर्शन हुआ ही नहीं। डॉक्टर क्या यहाँ नहीं मिलते ? ठहरिए घोष साहब को रोक लिया—माँ ठीक बची रहेंगी, अगर आप मुँह के बल आगे गिर पड़े तो नहीं बचेंगे। आप को जाने नहीं दूँगा।

—माँ बच जायेंगी कैसे ? मगर····

—कोई डर नहीं। जी तोड़ मेहनत के बाद अमरनाथ निकट आये हैं। इसी से उत्तेजना में पड़ गयी हैं। आराम करने दीजिए, साँस लेने दीजिए वे ख़ुद चढ़ेंगी ऊपर।

—आप को क्या पता है ? यानी तीन दिनों से कुछ खाया नहीं ! और आज पूर्णमासी·····।

मैं भी उत्तेजित हुआ। कहा—ऐसे कई केस देख चुका हूँ तभी कहा। आप की माँ अगर उठ कर धूल भरे पैरों से अपनी शक्ति से दर्शन न कर सकीं तो अमरनाथ के

दर्शन किये बिना ही मैं भी कलकत्ता लौट जाऊँगा। घोष साहब ठिठक गये। पन्द्रह-एक मिनट के बाद उन की माँ खुद ही देह झाड़ती हुई धीरे-धीरे फिर गुफा-द्वार की ओर चलने लगीं। घोष साहब चले माँ के पीछे-पीछे। कैमरा हाथ में झुलाते, हँसते हुए। हिमांशु बाबू चल दिये। बहुत से यात्री मन्त्र जपते हुए ऊपर चढ़ रहे हैं। कोई-कोई उतर भी रहे हैं। सभी के चेहरे पर आनन्द और उत्साह की चमक है। आज सभी की यात्रा सार्थक हुई है। सूर्य की तेज रोशनी मानो सभी के लिए अप्रत्याशित आशीर्वाद ले कर आयी है।

थका पैर खींच-खींच ऊपर की ओर रख रहा हूँ। घोड़े की पीठ पर बैठे-बैठे रीढ़ की हड्डी अकड़ गयी है। दोनों पैर भर आये हैं—न सोना, न खाना। अब कई क़दमों का फ़ासला है। वह रहा गुफा का बरामदा। मगर एकदम से रुका।

नहीं, आगे दर्शन नहीं, यहाँ एक बार रुको, साँस लो, पहले यहाँ खड़े हो कर एक बार मातृ-मन्त्र जप लो। वही है माँ, जो कुछ ही देर पहले धराशायी हो गयी थीं। उसी माँ के माध्यम से स्मरण करो, उस स्वर्गता जननी को, जो तुम्हारी माँ है। देवी विश्वेश्वरी—आज जो देवतात्मा हिमालय में परिव्याप्त हैं! छोड़ो अमरनाथ, पहले स्मरण करो। उन्हें जो इस रास्ते पर मरे हैं, जो किसी भी तरह पहुँच नहीं पाये। जो देवतात्मा के चरणों में अपनी अन्तिम साँस समर्पित नहीं कर सके! यहाँ खड़े हो कर पहले उन का स्मरण करो, जिन के माता-पिता, सन्तान, परिजन—कहीं कोई नहीं है। जिन की प्यासी आत्मा नित्य प्रेतलोक का चक्कर काटती हैं! जिन्हें किसी ने कभी स्मरण नहीं किया।

धीरे-धीरे चढ़ा गुफा के सामने वाले छज्जे पर। सामने गुफा का भीतरी हिस्सा लाल रेलिंग से घिरा है। पन्द्रह हज़ार फ़ुट के ऊपर छज्जे पर खड़ा हूँ। गुफा का मुँह उत्तर-पश्चिम में पड़ता है। गुफा के प्रायः तीन हज़ार फ़ुट की ऊँचाई पर है पर्वत की चोटी। वहाँ से झूल रही है बर्फ़ की नदी। चारों दिशाओं में, जहाँ तक दृष्टि जाती है, वहाँ तक है भयंकर, ऊबड़-खाबड़ पेड़-पौधे, दूब-लता गुल्म। गुफा कहीं कुछ नहीं है। हर पहाड़ से पिघलती बर्फ़ की जलधाराएँ हर पर्वत से उतर रही है। क्षार, गन्धक आदि बहुत से पदार्थ और बहुरंगी मृत्यु पत्थर चारों दिशाओं के पहाड़ों में फैले हैं।

जहाँ खड़ा हूँ, पथरीली काली मिट्टी मसमसा रही है। गुफा की छाजन से पानी चू कर गिर रहा है। आगे तीन-चार सीढ़ियों का फ़ासला तय कर रेलिंग का दरवाज़ा पार कर भीतर घुस आया। गुफा की परिधि अन्दाज़न डेढ़ सौ फ़ुट होगा। भीतर का स्थान कमोबेश चालीस फ़ुट में फैला है। अन्दर घुसते ही देखा कि ऊपर की बहुत से दरारों से पानी टप-टप चू रहा है। गुफा की चौहद्दी खड़िया पत्थर की है। चाकू से खरोंचने से मुट्ठी भर चूने पत्थर का चूरा मिलेगा। घुसने के समय सीढ़ियों को दाहिनी ओर छोड़ सीधे बायीं ओर के कोने के क़रीब आते हो दीख पड़ेगा—एक गड्ढा उसी के भीतर बन गया है बर्फ़ का एक आकार। यही है अमरनाथ। पक्का

चहबच्चा जैसा गड्ढा, बीच में बर्फ़ का एक ढेर सपाट और कड़ा। ऊपर से दरारों से चूने वाला बर्फ़ का गला पानी रिस-रिस कर चू रहा है। बर्फ़ के इस ढेर का ऊपरी हिस्सा कछुए की पीठ जैसा है; बीच का तनिक ऊँचा है और चारों ओर ज़रा ढाल। इतने दिनों तक सुनता रहा हूँ कि चन्द्रमा के घटने-बढ़ने के साथ-साथ यह बर्फ़ का आकार भी घटता-बढ़ता रहता है। आज श्रावणी पूर्णिमा में शिवलिंग का आकार कम से कम चार-पाँच फ़ुट ऊँचा होने की बात है। किन्तु हुआ नहीं, इस लिए तीर्थ-यात्रियों को प्राचीन विश्वास सच नहीं लगता। बिगत माह की पूर्णिमा के दिन जब युवराज कर्णसिंह सपत्नीक यहाँ आये, तब यह लिंग पूर्ण प्राप्त था। इस तरह की मटमैला उजली बर्फ़ की सिल्लियाँ कलकत्ते में गुज़रती हुई ट्रकों में कभी-कभी देखा है। मगर घटना-बढ़ना ही इस की विचित्रता है। बहुत से लोग कहते हैं, ऊपर की दरारों से जो पानी की बूँदें टपकती हैं, वह पानी बहुत बार झूलते हुए रस्सी के आकार में जम जाता है, और चमच्च के भीतर प्रकृति का वैचित्र्य के हेतु अमरनाथ का लिंग क्रमशः चौड़ाई-ऊँचाई धारण कर के धीरे-धीरे एक में मिल जाते हैं। भू-तत्त्व में इस की कैफ़ियत पाना और अर्थ खोज निकालना मुश्किल है। तभी इस का परमार्थी पक्ष तीर्थ-यात्रियों को आकर्षित करता है। प्रचलित है कि लगभग चार सौ वर्ष पहले मुसलमान चरवाहों के एक दल ने उस पार के पहाड़ से आ कर इस गुफा का पता लगाया। और कुछ लोगों के साथ आ कर अमरनाथ के पूर्णलिंग का दर्शन किया। लगता है, शायद सारे भारत में वही ऐसा तीर्थ है, जहाँ ईसाई, मुसलमान, हरिजन आदि जाति वर्ग के किस रुकावट के प्रवेशाधिकार पाते देखा जाता है। हम सभी के पैरों में था घास का जूता क़ीमत एक आना। वरना एक भयानक ठण्डक में हमारे खड़े होने का उपाय नहीं था। भेदभाव के होते हुए बिना अमरनाथ लिंग के ऊपर एक घण्टा लटका है। यात्री लिंग का स्पर्श करते हैं। अपने हिमांशु बाबू ने उस लिंग में से एक टुकड़ा बर्फ़ तोड़ कर अपनी शीशी में भर ली। अनेक ने गुफा की दीवाल से भुरभुरी सफ़ेद मिट्टी ले ली है। चहबच्चा दूर-दूर से लाये हुए भिन्न-भिन्न फूल और बेलपत्र से भर गया है। अगल-बग़ल दीये जल रहे हैं। बहुत से लोग प्रसाद ले रहे हैं। कोई मन्त्र और स्तव पाठ कर रहा है। कोई फफक-फफक कर रो रहा है। कोई सिर ठोक रहा है और कोई सिसक-सिसक कर विकृत ध्वनि में अधीरता व्यक्त कर रहा है। अत्यन्त दुर्गम और संकटसंकुल तीर्थ स्थान में गये बिना ऐसे आत्मविस्मृत भावों को कल्पना नहीं की जा सकती। मूल अमरनाथ लिंग से कई फ़ुट दूर-दूर गणेश, भैरव और पार्वती के वैसे ही तुषार पिण्ड हैं। उन का रूप कब और कैसे घटता-बढ़ता है, इस बात पर उस समय किसी ने कोई चर्चा नहीं की। जो लोग अमरनाथ के पण्डा-पुजारी हैं, वे सभी मार्तण्ड शहर में रहते हैं, जो पहलगाँव से निकलने वाली की सड़क में पड़ता है। इतनी देर बाद निगाह गयी गुफा की भीतरी सिलिंग में दो कबूतरों ने डेरा बना लिया है। सुनते हैं, ये आदि काल से यहीं हैं। प्राणी-विहीन पर्वतमालाओं में दैवी कबूतर। दैव सन्देश के वाहक हो कर

विचरते हैं। इन का दर्शन करना पुण्य है। इन दोनों हिम कपोतों को लोग भक्ति विह्वल हो कर देखने लगे।

अन्दर घूम-फिर कर फिर बाहर बारजे में आ गया। ग़नी शेर सामने खड़ा है। वह हम लोगों के लाठी, जूते, छाते और गरम कोटों को रखवाली में तैनात था। दृष्टि दौड़ती है नीचे की ओर, काफ़ी दूर अमरगंगा के उस पार। लोग उस पार जा कर इस पार को, इस गुफा के फ़ोटो उतारते हैं। इस लिए फ़ोटों में चढ़ाई पथ नज़र नहीं आता। बर्फ़ गले पानी में शरीर नीला पड़ जाता है मगर नग्न नहाना यहाँ विधि है। बहुत सी स्त्रियाँ बिलकुल नंगी हो कर नहाने को उतर गयी हैं—यदि इस दुर्गम में आप पहुँचे हों तब इस ब्रह्मलोक के तट पर खड़े हो कर सम्पूर्ण आत्म-समर्पण करो। कोई लज्जा न करो, सभी आवरण से मुक्ति कर लो, सारे आभरण बहा दो। यहाँ पृथ्वी नहीं है। समाज नहीं है, लौकिक संस्कार नहीं है। मैं ने देखा है किसी उमर के लोग छूटे नहीं हैं। पंजाबी, मराठी, गुजराती, दक्षिणी, बंगाली, बिहारी और उत्तर प्रदेशीय—नग्न नर-नारियों के दल के दल उतर गये हैं। लगा, अचानक स्वर्ग लोक में देवराज इन्द्र की नृत्य सभा में अप्सरा उर्वशी, मेनका, रम्भा नाचने के लिए पुकारी गयी हैं। वहाँ जाने से पहले लज्जा, मान, भय त्याग कर वे उतर आयी हैं। इस अमरावती के शिला तले अवगाहन स्नान की ख़ातिर अस्त-व्यस्त केश राशि में है उन के उल्लास के आनन्द। बर्फ़ीली नदी के ऊपर बह रही है बौराती हवा। तेज़ धूप में चारों ओर आनन्द में विभोर हो कर। लेकिन कुछ नहीं है यहाँ। न भोजन, न रहने का ठिकाना। ऊपर से तीन सौ फ़ुट नीचे उतरें बिना पीने का पानी भी नहीं। सभी तीर्थों में कहीं न कहीं खड़े होने लायक़ जगह मिलती है। तुंगशीर्ष केदारनाथ जाओ या हिन्द महासागर के किनारे कन्या कुमारी की सैकत भूमि की ओर जाओ। भोजन और पड़ाव दोनों मिलते हैं। यहाँ बिलकुल वीरान है। मीलों के बाद मील—अन्तहीन, सख्त ऊबड़-खाबड़ तरु-तृण-हीन भीषण आकार की पर्वत मालाएँ और बर्फ़ीली नदियों का छोर। कहीं कुछ नहीं।

आश्चर्य की बात यह है, अमरनाथ गुफा एक नहीं है। अमरावती नदी के पथ पर आगे बढ़ते समय और भी कई एक छोटी-बड़ी गुफाएँ दीखती हैं; वे सभी बर्फ़ से ढँकी हैं। और कोई-कोई शिवलिंग के आकार की मालूम पड़ती हैं। उत्तर पथ में और भी एक नदी की धारा जा कर जाने कहाँ खो गयी है। सुनते हैं, वही ज्ञानगंगा है। अमरावती पार कर के अमरनाथ पर्वत शिखर पर चढ़ते हुए जो जनहीन तुषार घाटी दीखती है, उस जगह के बीचोंबीच अगल-बग़ल अब स्थित जो दो नील वर्ण स्वच्छ सलिल सरोवर दीखते हैं उन में एक का नाम है ज्ञानसायर, दूसरी का सोमसायर है। किन्तु इस दुःसाध्य पहाड़ी पथ की दिशा में अभियान करने का किसी में विशेष उत्साह नहीं दीख पड़ता। अमरनाथ पर्वत से सट कर जो पथ जोजिला की ओर चला गया है, उसे पकड़ लद्दाख तक पहुँच सकता है।

मित्रों ने कितने ही फ़ोटो खींचे। इस के बाद दोपहर से पहले फिर हम ने गुफा-द्वार से विदा ले कर यात्रा शुरू की। ग़नी शेर घोड़ा लिये मौजूद था। हम लोग फिर पंक्तिबद्ध हो कर बर्फ़ीली नदी में उतर पड़े। वही रास्ता, कोई ख़ासियत नहीं। वही भीषण आकार, पिशाच प्रकृति की पर्वत शृंखलाओं की चढ़ाई, वही घोड़े की पीठ पर चलना। जानवर और आदमी—दोनों भूखे। सूर्य किरणों से आलोकित तुषार किरीटों के नीचे से रास्ता निकला है। नदी अब दायें ओर है। हम लोगों का खूब सतर्क अकड़ी हुई देह, आँखों में वही गिर पड़ने की शंका—मगर उत्साह और कठोर अध्यवसाय के बाद—अब नींद में आतुर सुस्ती। हमारी समस्त प्रेरणा का हो चुका अवसान।

दो-एक घण्टों में हम आ पहुँचे पंचतरणी। सब से पहले ही नजर नदी किनारे खुलने वाली पूरी की दुकान पर गयी। घोड़े पर से कूद कर कौन पहले वहाँ पहुँचता है दूकान पर, होड़ लग गयी घोड़े और इनसान में। बाबा अमरनाथ रहे सिर पर लेकिन गुफा मुख वाले तो हम सभी हैं। अस्तु सभी मुँह बाये आ खड़े हुए दुकान पर। पुण्य संचय हम सभी ने किया—सन्देह नहीं लेकिन भूख संचित किया है उस से कहीं अधिक। सभी एक-दूसरे पर टूट पड़े। भाटपाड़ा, मानिक तल्ला, हवड़ा, अमृतसर, जम्मू, बम्बई, मद्रास, पटना सभी ललचाये हुए हैं।

पंचतरणी पार कर महागुन से गिरि संकट का पथ पार कर के हम वायुयान की ओर बढ़ रहे हैं। कुण्डू स्पेशल के शंकर कुण्डू पंचतरणी में ही अपने यहाँ निमन्त्रित कर गये थे। लेकिन पूरी की दुकान देख कर उतनी दूर जाने का धीरज हम लोगों में नहीं रहा। हिमांशु बाबू को ज्वर नहीं है मगर मुझे जरा ने आ घेरा है। अतः अब कहीं रुकना नहीं है। अब अधिकांश पथ ढलान है। घोड़े पर से झटका खा कर पहाड़ की तराई में छिटक न जाऊँ—यह डर था। देखते ही देखते आ पहुँचा वायुयान। विश्वास नहीं होता, पहचान भी नहीं आता। बर्फ़ीली बयाबान सायँ-सायँ कर रहा है। रात यहाँ काट चुके हैं हम—इस का कोई निशान कहीं नहीं। फिर पड़ा रहेगा तीन सौ चौसठ दिनों तक यह मैदान ऐसे ही। दिन-रात यहाँ तिब्बती भालुओं का जत्था चक्कर काटा करेगा और छोटे जानवरों की खोज में हो सकता है बड़े-बड़े इगल पक्षी उतरा करें; अथवा और कोई अजाना विचित्र विशालकाय जानवर, जो हो सकता है आज भी अज्ञात है।

शेषनाग से आगे बढ़ने पर दो पहर बाद सड़क के किनारे मिली—गरम चाय। वर्षा के बादल नहीं हैं अर्थात् सब कुछ सहज है। जनहीन पहाड़ी दुनिया में तीर्थ यात्रियों की राह में बैठ कर कुछ कमा लेने में नुक़सान क्या है? इस लिए सिख सरदार की चाय पी कर फिर हम आगे बढ़े। पथ ढाल का है। यानी गति तनिक तेज़ है। बात थी यशपाल में रात बिताने की। और जब यशपाल पहुँचा तो उस समय दोपहर खत्म हो चुका था। छह बज रहे थे। आश्चर्य कि यह भी वैसी ही सूनसान भूमि मगर

सिर छिपाने लायक कहीं भी कोई ठौर नहीं है। और थोड़ा आगे बढ़ने पर मिलेगी पिस्सू की भयानक चढ़ाई। लगभग हम लोग पन्द्रह मील आगे चले आये हैं अमरनाथ से।

हिमांशु बाबू ने कहा, लगता है, दो घण्टे में चन्दनबाड़ी पहुँच पायेंगे। बादल साफ़ है, पूर्णिमा है आज।

नीचे विस्तृत वन है। संकटापन्न उतराई पथ की फिसलन वैसी ही है। अँधियारे में वही भयावह टेढ़ो-मेढ़ी ढलान। पथ पर घोड़े से उतरा नहीं जा सकता है। यदि पीछे आ रहे हैं बहुत से लोग। चन्दनबाड़ी पहुँचने की चेष्टा सब की है। वरना रात बीते कहाँ? यानी जय दुर्गा कह कर गहरे कुएँ में उतर पड़ने के सिवा कोई उपाय नहीं।

घोड़े से उतर रबर के जूते पैर में डाल आगे बढ़ा। शाम हो चली है। अगल-बगल झरने की ध्वनि सुनाई पड़ रही है। बायीं ओर तीन हज़ार फ़ुट गहरी खाई है। नीचे की तरफ़ जंगल है। आसमान पर पूनम का चाँद है। हवा में बर्फ़ की ठण्डक है। जन-हीन, शब्द-विहीन पहाड़ी प्रदेश। हम ने उसी मटमैले अँधेरे में पगडण्डिया पकड़े नीचे की तरफ़ क़दम बढ़ा दिया।

रुकेंगे नहीं, आराम कहीं नहीं करेंगे। अन्दाज़ से सतर्क क़दमों से सिर्फ़ नीचे की तरफ़ चला जा रहा हूँ। सिर्फ़ चक्कर खाते हुए नीचे की ओर और भी नीचे। एक आदमी दूसरे को देख नहीं पाते। यानी शेर घोड़ा ले कर उतर रहा है। एक के बाद एक घोड़े यात्री जंगल में उतर आये। चाँदनी के टुकड़े उतर आ रहे हैं—लता-गुल्म के भीतर से। कुछ समझ में नहीं आता मगर पैर रुकते नहीं। चार मील उतरना पड़ेगा ऐसे ही। न पथ का निशान, न कोई इशारा और न खड़े होने का सहारा। पीछे घोड़ों की टापों की आवाज़ से उन के पैरों की ठोकरों से कहीं टिका हुआ चट्टान लुढ़का तो सर्वनाश। मगर कोई दुर्घटना घट नहीं रही है। कौन बचाता है, आफ़त में क्यों पड़ते नहीं—सब कुछ अचरज है! हिमांशु बाबू तेज़ चाल से बहुत आगे बढ़ गये हैं। मैं बहुतों को पीछे छोड़ आया हूँ, लेकिन नीचे के घने अन्धकार के बीच प्रेतों की हँसी जैसी चाँदनी की झलक मेरी सहायता कर रही है। कौन सा निश्चित पथ है, पता नहीं। फिर भी दोनों पैर रुकते नहीं। परन्तु चार मील की कहीं इतनी लम्बाई होती है! चार नहीं, चार सौ नीचे की तरफ़ से प्रचण्ड जल-धाराओं की ध्वनि आ रही है। वह ध्वनि क्रमशः क़रीब आती गयी है। अँधेरा जंगल के पथ संकीर्ण से विस्तृत होने लगा है। क्रमशः नदियों की आगे-पीछे से ध्वनि सुनाई पड़ने लगी है। इस बार उस खुले जग में पहुँच एक बार अच्छी तरह साँस लूँगा। चार मील पार हो गये।

चाँदनी अब फैली है। अप्सरा लोक की अमरावती का द्वार फिर खुल गया है। और एक मील बढ़ आने पर उसी सिख सरदार की दुकान के सामने देखा, हिमांशु बाबू खड़े हँस रहे हैं। रात के लगभग सवा आठ बजे होंगे उस समय। हम दोनों निर्विघ्न

लौट आये हैं, हम दोनों अचम्भे में डूब गये।

अविस्मरणीय वह अमर्त्यलोक की चाँदनी रात कटी चन्दनबाड़ी की उसी तेज नील गंगा के किनारे, तम्बू में। इसे ठण्ड नहीं कहा जा सकता, बंगाल के दिसम्बर का अन्त। अब हमारे लगाये बृहस्पति सब कुछ को सहज लाभ कर रहा है—बढ़िया चाय, चुपड़ी चपातियाँ, गाढ़ा गरम दूध, मसालेदार तरकारी, सुशीतल जल, क़ीमती सिगरेटें और फिर तुषारलिंग की कृपा से खर्राटों की गहरी नींद भी।

दूसरे दिन सबेरे घाटी के जंगली पक्षियों की चहचहाहट के बीच से घोड़े पर सवार हो हमारी यात्रा शुरू हुई। सबेरे के सात बजे हैं। नीचे उषा काल है। ऊपर नवोदित सूर्य की वन्दना सभा हो रही है और किनारे-किनारे नील गंगा की नीलाभ तरंगों की अठखेलियाँ हैं। पहाड़ों की देह पर प्रभात-किरणें ओस कणों की रंगारंग से समृद्ध कर हवा, भय, क्षेम, पीड़ा, दुश्चिन्ता और उद्वेग—देवतात्मा हिमालय का प्रसन्न आशीर्वाद से सब घुल गया है। वसन्त के पुष्पवन की राह से, स्वर्गलोक से उतर कर मृत्यु के मानव संसार की ओर चला जा रहा हूँ। अमरावती का परम आशीर्वाद ले कर हम चल रहे हैं।

हमारे पहले अनेक जत्थों के लोग हैं। संग-संग चल रहे हैं भाटपाड़ा और कुण्डू-दल। पीछे आ रही हैं कोट-पैंट पहने मिसेज़ राय, साथ-साथ मजुमदार सहित श्रीमती मुखोपाध्याय। चौड़े पथ पर घोड़े थोड़ा-बहुत दौड़ने लगते हैं। पीछे-पीछे चले आ रहे हैं—बम्बई और पंजाब। गाँव छोड़ आये हम! हम झरना पार कर रहे हैं। कशमीरी महिलाओं का भीख माँगना जारी है। यहाँ-वहाँ पथ के किनारे बैठा है एक वृद्ध कशमीरी झोला ले कर। धूप तेज़ हो चली है। साढ़े नौ बजे होंगे।

देखते ही देखते आ पहुँचे टोला तक। दफ़्तर के किनारे वहाँ घोड़े वालों से चुंगी वसूली जा रही है। सामने है लिद्दर नदी का पुल। अगल-बग़ल की घाटियों पर वायु विलासियों के तम्बू ताने गये हैं। पीछे की ओर है कोलाहाई, हिमवाह की पहाड़ी राह। इधर-उधर देवदार का घनघोर वन दूर-दूर तक फैला है। पहाड़ी लोग जा रहे हैं हाट की ओर। पाँव की स्त्रियाँ बच्चों के साथ ही मैले-फटे बिछौने को भी धूप दिखा रही हैं।

पड़ा रहा पीछे एक जीवन उस तीर्थ यात्री का। इस बार मानो फिर एक नया जन्म ग्रहण किया हो। दुनिया वैसी ही प्राचीन है, सुन्दरता की वैसी ही घटा छायी है चारों दिशाओं में। धीरे-धीरे आ पहुँचा अपनी परिचित नदी के किनारे। सनातन मन्दिर की बग़ल से साधु-संन्यासियों के आश्रम को पीछे छोड़ कर अपने पुराने मित्र पहलगाँव में। घोड़े से उतर कर समझा कि हम अकर्मण्य हैं—कल रात उसी पिस्सू का उतार एक सुर में उतर आने से शरीर अब थक गया है। भटकता हुआ होटल की तरफ़ चला। यहाँ ठहरूँगा कुछेक दिन।

[९]

जेठ महीने के अन्तिम सप्ताह में लाहौर का पथ बहुत आरामदेह नहीं होता, यह पहले जानता ही था। मगर जाड़े में भी तो देख चुका हूँ लाहौर—इतनी ठण्ड पड़ती है कि बंगाली की चमड़ी को सहने में कुछ देर लगती है। उस की बर्फ़, उस की वर्षा, उस के नुकीले बर्फ़ के कण और दिसम्बर के आखिरी दिनों में आकाश का तनी भौंहों वाला वह रूप। घर के भीतर अँगीठी जलाओ, और दिन-रात हवा से बचने के लिए दरवाज़े बन्द रखो। यही लाहौर जल-भुन उठता है जून के पहले सप्ताह में। जनवरी में लाहौर के ग़रीब लोग जाड़े से सिकुड़ कर सड़कों के किनारे ऐंठे पड़े रहते हैं। और फिर वे ही मरते हैं जून महीने की सर्दी-गरमी से।

मुझे जाना है लाहौर से आगे। दोनों ओर सड़कें और मैदान धू-धू लहक रहे हैं। सुनता हूँ, वर्षा हो सकती है और एक माह बाद। मगर आश्चर्य है, इनसान जो पहले का अभ्यास करता है, वही वह सहता है। जो मैदान दहक रहा है, उस मैदान में इनसान ऐसी धूप में काम भी कर रहा है। सिख किसान सिर पर पगड़ी बाँध, तन में कुरता डाल, पैरों में जूता पहन हल चला रहा है। पाजामा पहने गाँव की बहुएँ कुएँ से पानी खींच रही हैं। बूढ़ी औरतें बैलों को चारा डाल रही हैं। छोटे-छोटे सिख लड़के हाथों में छड़ियाँ लिये भेड़ों के पीछे भागे जा रहे हैं। ऊँचा-नीचा मैदान। कहीं पहाड़ी टीले, कहीं हैं कंकड़-पत्थर। अचानक आ गया कमनीय हरे-भरे पेड़-पौधों वाला गाँव। इसी तरह उन की साया में झल-मल किसानों का घर। किसी एकान्त आँगन में थोड़ी सी कविता, थोड़ी सी व्यंजना। बीच-बीच में मिलती है हरी-भरी घाटियाँ, कहीं नदी का पुल, कभी सुरंग-पथ, कभी गहरी-नीली पार्वत्य छटाओं के संग-संग वैरागिनी नदी का शान्त रूप। झेलम के तीर पर सुन आया हूँ, देवमन्दिरों में शंख-घण्टे की ध्वनि। याद हो आया था काशी का मणिकर्णिका। इस के बाद यह सब फिर खो जाता है आँखें झुलसाने वाले मैदानों में। कड़ा, पथरीला असमतल। हिमालय से असंख्य छोटी-बड़ी नदियाँ पूर्व और पश्चिम पंजाब में उतर आयी हैं, मगर उन का पानी बहुत टिकता नहीं। वह कहीं भी गया-बँधा नहीं रहता। 'सक्खर बैरेज' नहीं होता तो पंजाब इतने दिनों में खत्म हो जाता।

कई बलूचिस्तानी सैनिक भी मेरे कमरे में थे। उन पर सर्दी, गरमी कुछ भी असर नहीं करता। सुरमा लगी आँखें, देह का रंग ताँबे-जैसा। नाक-नक़्शे में कोई

सुन्दरता नहीं। पतले-पतले हाथ-पैर किन्तु लम्बाई सभी की प्रायः छह फ़ुट से अधिक। इस तुलना के लिए क्षमा चाहता हूँ, ग्रेहाउंड कुत्ते के साथ उन का कहीं कोई मेल है। वे जलीय देश में नहीं रहते, इसी से आदमीको जलपान कराना जानते नहीं, बहुत हुआ तो बर्फ़ वाला सोडा-लेमनेड, और नहीं तो वही लम्बी ककड़ियाँ चबाते रहते हैं।

पश्चिम पंजाब दुर्गों का देश है। टीलों पर बसे छोटे-छोटे गाँव या चहारदीवारी से घिरे जमींदारों के मकान और उन के चारों ओर नाले तथा अगल-बग़ल कँटीले झाड़-झंखाड़ों से भरे मैदान। अतीत काल से उन्नीसवीं सदी के प्रारम्भ तक पश्चिम पंजाब युग-युगों से प्रताड़ित होता आया है। स्थायी निवास किसी को कभी भी नहीं मिला। एक इलाक़े से दूसरे इलाक़े में सिर्फ़ भागता फिरा है। इसी से ऊँची-नीची घाटियों जैसे मैदानों में सभी गाँव और बस्तियाँ दीखती हैं। उन में से अधिकतर चहार-दीवारी से घिरे और ऊँचे टीलों पर बसे हैं—नाले खुदे हैं उन के चारों ओर। कंकर-पत्थर-युक्त मिट्टी से दुमंजिलें-तिमंजिले बाहर से पलस्तर चढ़े मकान प्रायः नहीं दीखते। बचपन से ही औरतें पाजामा पहनती हैं, खास कर सिख औरतें, क्योंकि वे वंश-परम्परा से जानती आयी हैं, एक स्थान से दूसरे स्थान में भागना पड़ेगा। पूर्वी पंजाब की औरतें, जो अधिकांश हिन्दू हैं, साड़ियाँ पहनती हैं। किन्तु सिख प्रधान पश्चिम पंजाबी औरतों के लिए साड़ियों का जुगाड़ नहीं हो सका। और जो भी कारण रहा हो, पश्चिमी पंजाब में सिख और मुसलमानोंमें चरित्रगत पार्थक्य बहुत ही कम है। इतना कि शरीर की बनावट भी प्रायः एक सी। खान-पान की सूची में भेद नहीं है, ऐसा कहा जा सकता है। दोनों की पूज्य वस्तुएँ भी एक सी ही यानी दो पवित्र ग्रन्थ। भोजन की महफ़िल में दोनों एक आसन पर बैठते हैं और मन-मिजाज में कोई किसी से कम नहीं। भाषा, संस्कृति, जीवन पद्धति, आचार-व्यवहार सभी एक। दोनों की धमनियों में भी आर्य रक्त प्रवाहित है—मगर धर्म भिन्न हैं। बहुतों की धारणा है, तुर्क-इरानी तातार रक्त पश्चिम पंजाब में खूब जमा है। शायद उसी का एक हिस्सा सन् १९४७ में बहा।

शाम से पहले रावलपिण्डी छावनी स्टेशन पर आ पहुँचा। यह सिख प्रधान शहर है। जैसा है लाहौर और अमृतसर, जैसा है जालन्धर और लुधियाना, जैसा है लायलपुर, स्यालकोट और लालामूसा। ये इलाक़े आज पाकिस्तान के अधीन हैं, लेकिन तब के पश्चिम पंजाब में संख्या में मुसलमान बहुत अधिक होते हुए भी सम्पदा की प्रचुरता थी सिख और हिन्दुओं के हाथों। सिन्धु में भी यही बात थी। लेकिन वहाँ हिन्दू प्रधान थे। यहाँ तक कि सीमान्त और बलूचिस्तान में जितने लखपति थे, उन में अधिकांश हिन्दू और सिख थे। क्वेटा भूकम्प में जो क्षतिग्रस्त हुए थे, उन में अस्सी प्रतिशत हिन्दू थे। बलूचिस्तान के खलात् शिवि, हिन्दूबाग़ आदि इलाक़ों में केवल हिन्दुओं का प्रभाव अधिकार था, ऐसा नहीं। शिक्षा-दीक्षा में, मान-मर्यादा में, वैभव-विलास में, वे समस्त सीमान्त के लोगों में विस्मय के आधार थे। मगर मजे की बात यह थी कि प्रत्येक का

नाम जाने बिना—चाहे वह स्त्री हो या पुरुष—किसी प्रकार यह नहीं जाना जा सकता था कि यह हिन्दू है अथवा मुसलमान। सिन्ध में भी बहुत कुछ ऐसा ही था, हिन्दू मुसलमानों के चेहरे लगभग एक से थे। आचार्य कृपलानी को देख कर सिन्ध को पहचाना नहीं जा सकता—कारण उन के घर में बंगाली जा घुसी है, जिस ने उन्हें बंगाली बना कर ही छोड़ा।

मुझे धोती-कुरता पहने देख कर सड़क पर चलते लोग चकित थे। बहुत खोज-बीन के बाद मिला बंगाली दवाखाना। नाम से बंगाली, चेहरे में, भाषा में पंजाबी। वे मुझे आश्रय देते हुए पहले ज़रा अगर-मगर हुए। बंगाली सन्तान का परिचय इधर कुछ दूसरी तरह से है। वे क्रान्तिकारी हैं, वे पुलिस और सी० आई० डी० को चकमा दे कर भागते हैं, वे रिवॉल्वर ले कर सड़कों पर घूमते-फिरते हैं। उन्हें ठहराना बरों के छत्ते में हाथ डालना है। इसलिए परिवार वाले मकान के बदले उन के ही दवा-दारू के गोदाम के दूसरे मंज़िले में, किसी तरह जगह मिली। सड़क के नल में उस दिन शाम को नहाया खूब मज़े में। लेकिन सारी रात उस घर की मिश्रित दवा की विचित्र गन्ध में मुझे बड़ी बेचैनी से काटनी पड़ी थी। यह कहानी पहले भी कह चुका हूँ—फिर कहता हूँ। इस दिन की यह कहानी मेरे मन से किसी प्रकार मिटना नहीं चाहती।

दूसरे दिन पिण्डी से हिमालय की ओर यात्रा थी। धूप कड़ी होने से पहले हम लोगों की मोटर-बस छूटी। आनन्द के मारे हृदय का उछलना भूला नहीं हूँ, उस दिन कि उत्कण्ठा की अवस्था। जब भी हिमालय की तरफ़ बढ़ता हूँ, पीछे का पथ याद नहीं रह जाता। मुझे समतल सोहता नहीं, हिमालय ही मेरा सही परिचय है। घर में मैं परदेशी हूँ। मगर हरिद्वार से ऋषिकेश के पथ पर उतरने पर मैं मनमुताबिक घर पा लेता हूँ। कलकत्ते के अवर्ट हॉल में जाने पर कुछ पहचान नहीं पाता, लेकिन नेपाल की भीम पैंड़ी धर्मशाला मेरी अनजानी नहीं है। शिलांग की हिन्दू बोर्डिंग या दार्जिलिंग की पाषांग बिल्डिंग मेरा जैसा सदा का पहचाना है। इस लिए पिण्डी से पहाड़ की तराई की तरफ़ आगे बढ़ता हूँ, उतना ही मेरा समग्र चेतन-लोक जैसे उग्र पुलक में थरथर काँप रहा था। लम्बा रस्सी का पथ कहाँ तक चला गया है, कुछ पता नहीं चलता। अगल-बग़ल चट्टानों से भरी सूखी नदी का पथ है। दोनों ओर लम्बे-लम्बे साखू के पेड़ों की कतारें हैं। चारों तरफ़ उस के पत्ते ढेर से बिखरे हैं। पथ का रंग रक्तिम है। जहाँ है शाल-वन, वहीं है ललछाह मिट्टी। मेदनीपुर, बाँकुड़ा, बर्धवान के किसी-किसी इलाक़े में, सन्थाल परगना में, दुमका में, मुंगेर में—जिधर जाओ, नज़र आयेगा ललछाह मिट्टी के पथ पर मेहनती इन्सान चला जा रहा है और उन के पथ के दोनों ओर शाल का वन है। कहीं की मिट्टी गुलाबी और कहीं की घोर रक्तिम है। यहाँ भी ऐसा ही है। पहाड़ों की तराई घनघोर जंगलों से भरी है। बीच-बीच में नज़र आता है बड़े-बड़े पेड़ों के तने की चिराई के गोले—कशमीरी क़ुली वहाँ काम कर रहे हैं। पूरे इलाक़े में फैली है कच्ची लकड़ी की महक, जो जिस की भ्रम में डालने वाली

मस्ती समग्र हिमालय के घन गूढ़ रहस्य को मन में उद्‌घाटित करती है। भूटान की तरफ़ जाओ वहीं, जिधर दर्लिशग पाड़ा की सड़क अलीपुर दुआर को काटती चली गयी है—वहाँ भी लकड़ी के कारखाने में भी ऐसी महक मिली थी। और यही महक पा कर एक बार मस्त हो उठा था—कश्मीर के चन्द्रभागा नदी के तट स्थित रामबान इलाक़े के पहाड़ी रास्ते में। उस दिन चन्द्रभागा में चाँदनी छिटकी थी।

धूप का रूप देख कर इस जेठ माह में दिनों में अब डर नहीं लगता, शहरों की व्यग्रता, शोरगुल और धूप से तपती सड़कों को धूल-धूसरित—सब कुछ पीछे छोड़ आया हूँ। रावलपिण्डी ज़िले के बहुत से इलाक़ों में जैसे देखा काली मन्दिर, शिवस्थान, गुरु-द्वारा, वैसे ही देखा समग्र पंजाब में काली की स्थापना और शक्ति की पूजा—वैसा ही है रावलपिण्डी का यह इलाक़ा भी। इस पर्वतलोक में भी वैसी ही शंख और घण्टों की ध्वनियाँ वनभूमि को कहीं-कहीं मुखरित कर रही हैं। पंजाबी सिख शक्ति के पुजारी हैं—समस्त उत्तर-पश्चिम भारत में यह बात लागू होती है।

कालका में, कांगड़ा में, चम्बा में, यह बात लागू होती है। धरमपुर में, जालन्धर में, ज्वालामुखी में, और सिन्धू पंचनद के इस पार और उस पार यही बात लागू होती है। उन्होंने इतने दिनों से शक्ति प्राप्त करना चाहा है, शक्ति की आराधना करते आये—शक्ति के द्वारा उन्होंने अपने अस्तित्व की रक्षा की है, शक्ति के द्वारा विजयी हुए हैं। पेप्सू में यह बात विदित है, हिमाचल प्रदेश में यह बात स्वीकृत है और पटियाला में यह बात प्रचारित है, मगर लज्जा होती है तब, जब सिखों की एक श्रेणी को यह कहते सुनता हूँ कि वे हिन्दू नहीं हैं। नवद्वीप के वैष्णव लोग अगर यह कहते फिरें, वे हिन्दू नहीं हैं—कैसा लगेगा ? अहमेदिया अगर यह कहते फिरें, हम मुसलमान नहीं हैं—कैसा लगेगा ? भारत के बौद्ध अगर कहते फिरें, हम हिन्दू नहीं हैं—क्या कहने की इच्छा होगी ? स्थिर मन से वे यह विचार करना नहीं चाहते कि हिंन्दू का अर्थ है वनस्पति। उस की बहुत सारी शाखा-प्रशाखाओं में भिन्न-भिन्न सम्प्रदाय हैं। विशेष प्रतिज्ञाओं में प्रतिबद्ध हो कर एक श्रेणी के आर्य हिन्दू गुरुनानक से दीक्षा ले कर उन के शिष्य हुए थे। वे शिष्य यानी सिख हैं, संस्कृत के अपभ्रंश मगर पंजाब में सर्वत्र हिन्दू सिख-विवाह प्रचलित है। हिन्दू पंजाब यह नहीं मानता कि सिख पंजाब से वह अपरिचित है। चचेरे, ममेरे, फुफेरे भाई, ससुर-जमाई, साले-बहनोई में कोई पंजाबी सिख है, कोई पंजाबी हिन्दू। भिन्न-धर्मी नहीं, भिन्न मत मानने वाले हैं। किसी का नाम है तारा सिंह, कोई है नानक चन्द।

गाड़ी हाँफती सशब्द चली जा रही है—कभी सेकेंड गीयर में तो कभी थर्ड गीयर में। समतल हिन्दुस्तान बहुत नीचे रह गया है। चुपचाप हैं सब। चुप्पी का ध्यान भंग होता ही नहीं। शोर मचाते हैं हम बाहर, मगर भीतर पहुँच कर चुप हो जाते हैं। हिमालय की आत्मा को जब देखता हूँ आमने-सामने, तब मुँह से बोल नहीं फूटते। शब्द खो जाते हैं। ताजमहल के गुम्बद के भीतर जा कर भी हम बातें करते हैं लेकिन खास

समाधि की गुफा में जब उतरते हैं, तब सब चुप हो जाते हैं। यहाँ किसी के मुँह से बोल नहीं फूटते क्योंकि यह हिमालय के गहन लोक के बहुत क़रीब है। अवरोध सामने से हट गया है, महामहीधर का विशाल विस्तार दीखता है। ऊपर का गगनलोक अभी भी बहुत कुछ संकीर्ण है मगर निर्जल नीलाभ स्वरूप जैसे अमृत से भरा हो। अचानक चिड़िया चहचहा गयी। चौंक कर देखा, हम ही चुप हैं, पहाड़ी प्रकृति नित्य मुखर है। निरन्तर सुन पा रहा हूँ झींगुर के शब्द, लताओं में, पत्तों में, शाखा-प्रशाखाओं में सर्पों की आवाज़। गुंजन ने वसन्त के पंछियों की वनभूमि को मुखर बना रखा है, अगल-बग़ल जंगली मुर्ग़ियों और खरगोशों की दौड़-धूप मची है। उन के राज्य में हम लोग ग़ैर कानूनी ढंग से घुसते जा रहे हैं।

छोटे-छोटे पहाड़ी गाँव भागे जा रहे हैं। घने देवदार के झर गये पत्ते शीतल बयार में उड़ रहे हैं। चारों ओर के जंगलों में वसन्त का समारोह सा है। यहाँ इस समय जंगली फूलों का मौसम है। तरह-तरह फूल घास पर, लताओं में, फुनगियों में, डालियों पर निहारता चला जा रहा हूँ। नाम किसी फूल का नहीं जानता। जैसे किसी पक्षी का, किसी फल का, तरह-तरह के पेड़ों, लताओं का नहीं जानता। कितने दिनों से सोचे बैठा हूँ कि सत्य लाहा से मिल कर पंछियों को पहचान लूँ। विभूति बनर्जी से मिल कर पेड़-पौधों को जान लूँ, राखाल बनर्जी से पूछ कर स्थापत्य की जानकारी कर लूँ। और एण्टी के एरियन बीरेन राय को पकड़ कर पत्थरों को पहचान लूँ मगर कुछ हुआ नहीं। इसी हिमालय के गहनलोक में प्राचीनतम मन्दिरों के बीच, वहाँ अलकनन्दा नदी के किनारे गोपेश्वर या गोमती के तट पर बैजनाथ आज भी महाकाल के पूरे साम्राज्य की उपेक्षा कर के जो खड़ा है, उस के जरा-जीर्ण पत्थरों के कोने-कोने में आज भी जो प्राचीन भारत की उदास हवा बहती है उन्हें क्या जाना है ? पहचाना है ? जान पाया सिर्फ़ एक साधारण पत्थर की आदि कहानी ? वह जो गया, काशी, प्रयाग, मथुरा, या वृन्दावन की सड़कों में, घाटों पर देव-मूर्ति खुदे उपेक्षित प्रस्तर खण्ड बिखरे पड़े हैं, उस का सही परिचय क्या कभी जान पाया ? वह जो दक्षिण के अन्त में अजन्ता गुफा में जिस दिन महाभिक्षु की अन्तिम शयन मूर्ति के सामने सजल नयनों से जा खड़ा हुआ, तब क्या देखा ? किसे देखा ? क्या ढूँढ़ा, वह जो कोणार्क जा कर सात घोड़ों वाले रथ के पहिये पर बने सूर्य मन्दिर के सामने आँखें मूँद कर जा खड़ा हुआ, वहाँ क्या देखा सिर्फ़ पत्थरों पर खुदे हुए नर-नारियों के नग्न मैथुन की लीलाएँ। उस में क्या किसी परम आश्चर्य को ढूँढ़ा ? उस में कुछ जाना ऐसा जो जाना नहीं जा सकता था ? साधारण दोनों आँखें क्या धारण कर सकीं, हज़ारों वर्षों की प्राचीन और सर्वकालजयी सभ्यता का ? नहीं। कोई रहस्य ही जान नहीं सका। केवल मूढ़ों की तरह देखता रहा। जैसे विस्मय आहत हो पाताल गंगा में अन्धेरे से घिरे दुर्गा के मन्दिर को देखता रह गया था। वहाँ संस्कृति की बहती हवा के हर झोंके में मेरी समग्र सत्ता हाहाकार कर उठी थी। यथार्थ की दीवार लाँघ कर अपने अस्तित्व को ऊपर उठाना चाहा।

मानवीय परिधि से परे मैं देव-सत्ता की उपलब्धि को सहज मान बैठा। मैं विरही नदी के किनारे व्यास गुफा को देखता रह गया। विपाशा तट पर अवस्थित त्रिलोकीनाथ का मन्दिर अपलक दृष्टि से निहारता रहा।

मैं मात्र एक निःसंग विमूढ़ दर्शक हूँ—भारत की आत्मा को हिमालय की पत्तों से, मन्दिरों, पणिगह्वरों से, छाया में छिपे गुफाओं के भीतर से, नील नयन वाली पहाड़ी ढलान पर की नदियों से और श्रृंखलाबद्ध पर्वतों की स्तुति करती हुई बर्फ़ीली चोटियों से अवगत होना चाहा है। लेकिन मैं मूढ़ हूँ, मैं जानता हूँ मेरी यह उदासीनता व्यर्थ है। परिव्रज्या निष्फल आत्मानुसन्धान में ही समाप्त हो गयी है।

किसी-किसी कहवाखाने के सामने गाड़ी रोकनी पड़ती थी। कहीं चपाती की दुकानें थीं, कहीं दूसरे प्रकार के नाश्ते की व्यवस्था। यह बस जायेगी कश्मीर की झेलम नदी को पार करती हुई। मगर सनी बैंक तक जा कर मारी पहाड़ की ओर यह बस मुड़ जायेगी। इस के बाद मुसाफ़िरों को बटोर कर ले जायेगी कोहला। कोहला से नदी पार करने पर उधर जाने वाली सड़क है। शाम के बाद किसी समय भी यह बस जा पहुँचेगी श्रीनगर।

देवदार की छाया के नीचे कहीं-कहीं फौजी पड़ाव है। सम्पूर्ण सड़क लड़ाई के सरो-सामान से भरी है। सीमान्त इलाक़ा अधिक दूर नहीं है। हज़ारा ज़िले में जाने के लिए कई पहाड़ी पथ अगल-बग़ल से चले गये हैं। जंगली स्वभाव के उग्र पठानों पर आधिपत्य जमाये रखने के लिए हेवेलियन में एक विशाल फौजी अड्डा है। यहीं से उस दिन कश्मीर पर आक्रमण किया गया था और इसी पथ पर खड़े हो कर कई वर्ष पहले मिस्टर जिन्ना सर उल्फ़े कारो, सीमान्त के प्रधान मन्त्री कैय्यूम और अँगरेज़ सेनापति, पाकिस्तानी सेना सामन्तों एवं रूसी कारगिज कजाक-निवासी ने हज़ारों-हज़ार जंगली खानाबदोश मुसलमानों को—जो कई वर्षों से हज़ारा ज़िले में आश्रित थे, उन्हें और पठान डाकुओं को वश में किया था।

मैं धोती, कुरता और चप्पल पहने था। इस लिए हर मुसाफ़िर के लिए देखने की चीज़ मैं था। वे बंगाली का नाम जानते हैं, उन का पहनावा नहीं जानते। उन के लिए बंगाली मुंशी या क्लर्क है। जैसे अब मद्रासी हैं, जैसे हैं आधुनिक पंजाबी, जैसे हैं नये युग के बिहारी और उत्तर प्रदेश के निवासी, तभी बंगाली उन की निगाह में बाबू है। बाबू यानी मिस्टर नहीं, यहाँ बाबू का मतलब है क्लर्क, अँगरेज़ कह गये हैं। लेकिन बंकिम बाबू, रवीन्द्र बाबू, क्या यही थे? अँगरेज़ इस सवाल का जवाब नहीं दे गये हैं। यहाँ-वहाँ उधर, सब जगह है बाबू महल्ला यानी क्लर्क-महल्ला। पेशावर, पिण्डी, लाहौर, चकलाला, कोहाट, बन्नू, डेराइसमाइल खाँ—जहाँ भी मिलीटरी एकाउण्टस् है—वहाँ है बाबू महल्ला। गिनती में जहाँ आठ बंगाली अगल-बग़ल अगर रहते हों—वहीं बाबू महल्ला है। जहाँ काली मन्दिर है, वहाँ बाबू मोहल्ला। बंगालियों का दिमाग़

ठण्डा है, हिसाब-किताब अच्छा जानते हैं, अच्छी अँगरेजी बोल सकते हैं—लिख सकते हैं—सलाह-मशविरा अच्छा देते हैं, नियम कानून मान कर चलते हैं—इस लिए वे बाबू हैं। लेकिन वही बाबू सड़कों पर धोती—पंजाबी पहन कर नहीं घूमते—उन की पेशागत एक पोशाक़ भी है। इस लिए मैं यहाँ मैं एक अद्भुत् जीव हूँ। मैं बंगाली हूँ, मगर मैं हूँ कौन ? घर कहाँ है ? बाप का नाम क्या है ? काम-धाम क्या करता हूँ ? नाम क्या है ? इधर आने का मक़सद ?

चारों ओर की ढेर-ढेर सी गन्दी उत्सुकता मुझे जैसे हर क्षण बेंधने लगी। इतनी परेशानी इस से पहले कभी नहीं हुई थी। स्वयं को मैं इतना बेवक़ूफ़ कभी नहीं लगा था।

बहुत ऊपर चढ़ आया हूँ, हवा हलकी हो गयी है तभी कानों पर पर्दा पड़ गया हैं। जैसे हवाई जहाज पर चढ़ने से कुछ ऊपर उठते ही कान झनझना उठते हैं फिर कान का परदा एकदम बन्द हो जाता है। उस वक़्त रुई चाहिए, रुई कानों में ठूँसो। अच्छी कम्पनी के जहाज़ पर चढ़ने से होस्टेस रुई फ़ौरन दे जाती है। कानों में रुई ठूँसने के बाद राहत मिलती है। जहाज़ की भयानक कानों के परदे फाड़ने वाली आवाज धीरे-धीरे सह्य हो जाती है। खैर छोड़िए। नीचे का जंगली नीलाभ प्रकृति ऊपर चढ़ कर हलकी पड़ गयी है। यहाँ जंगल की घटा फीकी पड़ गयी है। पहाड़ पर्वत में रूक्षता नजर आती है, नीचे की तरफ़ अब निगाह नहीं जाती। खन्दक की ओर ताकने पर हृदय काँप जाता है। चारों ओर फैलाव बढ़ गया है। पहाड़ों के नाकों पर की बस्तियों को पार किये बड़का गाँव, बर्त्त, दुस्तर नालीपन्थ पीछे छूट गये हैं। दूर के पहाड़ों के ढलान पर किसानों का घर है। मगर घरों को दूर से देखने पर लगता है जैसे छोटे-छोटे कीड़ों की तरह वे धरती को जकड़ कर पकड़े खड़े हों जैसे। वे सदा-सदा से ऐसे ही हैं वंश-परम्परा से। युग-युगों से राष्ट्र के शासन का भार एक हाथ से दूसरे हाथों में गया है, एक जाति के हाथों से दूसरी जाति के हाथों में, एक सभ्यता के बाद आयी है दूसरी सभ्यता—किन्तु वे हिमालय को ही जकड़े पड़े हैं। वे चलते नहीं, कहीं टलते नहीं। वे हैं हिमालयकी आदि सन्तान—युग-युगान्त से हृदय से चिपके हुए हैं, गहरे आलिंगन की सुरक्षा में शान्ति से सोये हैं। कोई फ़रमान, कोई आन्दोलन, कोई क्रान्ति या अराजकता उन्हें आन्दोलित नहीं करता।

'सानी बैंक' में जब गाड़ी आ खड़ी हुई, उस का इंजन गरम हो उठा था। लगभग छह हज़ार फुट की चढ़ाई तोड़नी पड़ी है। दोपहर पार कर शाम की ओर बढ़ा जा रहा हूँ। हवा थोड़ी स्निग्ध जरूर है, मगर फिर भी धूप चिलचिला रही है। 'सानी बैंक' एक छोटा सा शहर है। मोटर-बस का स्टैंड ख़ूब बड़ा है। फ़ौजी कैम्प और स्टार ऑफ़िस की वजह से यहाँ एक बाज़ार खुल गया है। पास में ही एक यात्री निवास है। कसाइयों की दुकानों पर गाय-बछड़ों की हड्डी वग़ैरह झूल रही है, उस का रंग कुछ लाल लिये हुए हरा है। स्थानीय लोग उमड़े पड़े हैं। फल वाले, कपड़े वाले, मोटर-ड्राइवर, रोटी-मांस बेचने वाले, कशमीरी मेवे के व्यापारी, पलटन के सिपाही, मिलि-

टरी अफ़सरों के संग एंग्लो-इंडियन औरतें, तुर्क, पठान या कशमीरी क़ुली, हज़ारा ज़िले के गँवार-गँवई आदि मिले-जुले लोगों से यह 'सानी बैंक' भरा हुआ है। कशमीरी क़ुली गले में मोटे-मोटे रस्से डाले या हाथों में झुलाये सड़क के किनारे बैठे हैं। मोटे ताज़े, दुबले-पतले चाल, गोरे, कटी-छँटी दाढ़ी-मूछों वाले, सिर पर चाँद जैसी गन्दी टोपी, पैरों में चप्पल और फटी-पुरानी गन्दी पोशाक, उन में से कोई पठान है या फिर कशमीरी। वे आदमी के रूप में जनमते हैं और क़ुली हो कर मरते हैं।

वर्ष भर में कुल आठ या दस महीने वे पहाड़ी शहरों के अगल-बग़ल रोटी खा कर बोझ ढोते फिरते हैं, कन्धे पर झूलते हुए फटे कम्बलों को सिर के नीचे रख सड़कों के किनारे सो कर वे रात काटते हैं। रोटी और सब्ज़ी की पोटली वे साथ रखते हैं, शायद कहीं थोड़ा बादाम या फल, या सौभाग्य से मांस के दो टुकड़े मिल जायें। यही है उन का जीवनक्रम। चेहरे पर गँवई सहजता की छाप, भाषा पस्तो और कश-मीरी है, जाति गोत्र एक ही है मगर खून अलग है। ऐसे भी सैकड़ों पठान और कशमीरी क़ुली मिलते हैं जो बचपन से ही गाँव-देहात छोड़ कर चले आये हैं। और आज तक घर नहीं लौटे हैं। अपना नाम भर जानते हैं, बस। न जानते हैं पिता का नाम न उम्र और न अपना गाँव। ऐसा भी देखा है कि दो सहोदर भाई, वर्षों से साथ-साथ क़ुलीगीरी कर रहे हैं, बाप और बेटे एक ही औरत को ले कर तू-तू मैं-मैं करते हैं लेकिन कोई किसी को पहचानता तक नहीं। फिर भी वे शान्त मन से बोझ ढोते हैं, दो दिनों में चालीस-पचास मील पहाड़ का चक्कर लगाते हैं। कुबड़े हो कर वे बोझा ढोते हैं—पीठ पर लाद कर दोनों बग़ल से रस्सी बाँध कर पीठ के बोझ को पहाड़ से टिका कर ज़रा सुस्ता लेते हैं। सिर से चूते पसीने को हाथ से पोंछ लेते हैं, इस के बाद फिर मोटे-मोटे बेडौल पैरों से धीरे-धीरे पहाड़ की चढ़ाई तय करते हैं।

इस जगह मोटर की सड़क दो तरफ़ बँट गयी है। एक चली गयी है कोहला, और दूसरी मारी की तरफ़। मारी यहाँ से क़रीब पाँच मील होगी। उत्तर भारत के फ़ौजी अड्डे का प्रधान कार्यालय है। 'सानी बैंक' से फिर मारी जाने के लिए चढ़ाई शुरू होती है मारी पहाड़ की तरफ़।

अब सड़क सुहानी है—देवदार की छाया और कोमलता से हवा के झोंकों से तथा विशाल पेड़ों की पंक्तियों की सूखे पत्ते में मानो गीतिकाव्य की व्यंजना इठला रही है। बस के पहियों से दब-मसल कर झरे पत्तों के ढेर की कसमसाहट सुन पा रहा हूँ। इधर दूर और दूरी के अन्त में क्षितिज की सीमा में उत्तुंग पर्वत-शृंखलाएँ नज़र आ रही हैं। दीख रहा है काराकोरम, दीख रही है गंगा की चोटी और दीख रही है हर-मुख का धुँधला शिखर। वे सदा बर्फ़ से ढँके रहते हैं—वे सदा से नवल-धवल हैं। इन सब के परे और भी दूर आकाश रेखा के पार किसी एक अन्य पृथ्वी के कोने में देखता हूँ अपना वही छोटा सा घर, खुली खिड़की के नीचे-ऊपर आने वाली जूही की लताएँ,

उस की बग़ल में संध्यामणि का छोटा सा पौधा—कुछ पल के बाद ही माँ सन्ध्यादीप ले कर पूजा-घर की ओर जायेंगी; उस मलिन प्रकाश की मृदु आभा में जैसे दीखता है बहुत दूर से विषण्ण जननी का चेहरा।

दोपहर की धूप पहाड़ों पर अभी चिलचिला रही है। अभी समय चार बजे का है। साढ़े आठ बजे इधर बत्तियाँ जलती हैं। रात के चार बजे सवेरा होता है। हम कश्मीर के पश्चिम सीमान्त में आ पहुँचे हैं। यह पहाड़ उत्तर की ओर गया है झेलम नदी में। झेलम पार किया कि कश्मीर। हमारा सूना रास्ता मोड़ और पथों के निशान पार कर भारी पहाड़ की ओर बढ़ गया है। छोटे से शहर के बिलकुल नीचे ही मोटर स्टैण्ड है, वहाँ से थोड़ी चढ़ाई पर मारी के लिए मेल मिलती है। इस इलाक़े का नाम है मारीबाज़ार। यह शहर दार्जिलिंग की तरह नहीं है। किसी तरफ़ भी पहाड़ों की दीवाल नहीं है। यहाँ आने पर लैंसडाउन की याद आती है, याद आता है शिमला। मारी-शहर खड़ा है पहाड़ की नुक़ीली चोटी पर। कालिम्पोंग जैसा यहाँ एक बड़ा गिरजा है—उसके घण्टे की ध्वनि दूर-दूर तक पहाड़ दर-पहाड़ों में प्रतिध्वनित होती है। हिन्दुओं का मन्दिर है, सिखों का गुरुद्वारा है। मगर आश्चर्य है, इस मुसलमान प्रधान शहर में एकबारगी मसजिदें नज़र नहीं आतीं। कश्मीर में जैसे सारे देश में ही राजा ललितादित्य की कीर्ति फैली है—अनगिनत मन्दिर और हिन्दू-स्थापत्य हैं, आर्य ग्रीक समय की विविध बौद्ध कीर्तियाँ—मगर मस्जिदों की संख्या नगण्य है। जैसा है जम्मू, वैसा ही कश्मीर—कोई फ़र्क़ नहीं। इस पहाड़ से कभी पाँच-पाण्डव गुज़रे थे उन के पथ के निशान का संकेत अँगरेज़ी में लिखे नेम प्लेट से मिलता है।

ठिठक कर वहाँ पथ के निशान के क़रीब कितनी बार खड़ा हुआ हूँ। सर्पिल रास्ता सिमटता हुआ बहुत दूर जाकर वहाँ से, नीचे की ओर मुड़ कर जाने कहाँ खो गया है। लता-पत्रों से घिरे सुनसान पथ में बड़े-बड़े गिरगिट अगल-बग़ल चढ़ कर चक्कर काटते रहते हैं, उन के डर से घने जंगल में जा नहीं पाता था। इसी पथ से लकड़हारे लकड़ी काट कर ले जाते हैं—उन के साथ, कच्चे देवदार या पाईन की लकड़ियों की गन्ध भी आती है। एक ऐसी गन्ध जो हिमालय के अनन्त रहस्य-लोक में मिलती है। उस पथ और मैदान में खड़े हो कर महाभारत के सूत्रपात का अनुभव किया है। भारत की प्रथम सभ्यता का जन्म इसी इलाक़े में हुआ—इसी उत्तर-पश्चिम में। कुषाण नहीं, कनिष्क भी नहीं। उस से भी बहुत पहले, चार हज़ार वर्ष से भी पहले। महाजनों के प्रवेश से नहीं, गौतम बुद्ध या अजातशत्रु के समय से नहीं। वह जो आये थे प्रथम आर्य—कौन जानता है वे पमीर से आये या मध्य एशिया से या काराकोरम के उस पार से। इसी इलाक़े ने उन्हें भारत प्रवेश का पथ दिया था। यह कौन कह सकता है कि वे कौरव-पाण्डवों के पूर्वपुरुष नहीं थे! हिमालय से जैसे सिन्धु की धारा उतर गयी है, उतर गयी हैं जैसे वितस्ता, विपाशा, शतद्रू, इरावती और चन्द्रभागा की धाराएँ, जैसे उतर गयी हैं गंगा-यमुना, कालिशारदा की धाराएँ—

वैसे ही भारत की सभ्यता की धारा भी बहती रही है, इसी जल-प्रवाह के साथ-साथ। देवादिदेव की जटा से जैसे गंगा निकली, वैसे ही भारत की सभ्यता भी हिमालय से निकली है। समग्र भारत की एकसूत्रता के आदिमन्त्र को रचना आर्य कर गये हैं, प्रत्येक मनुष्य की जयमाला के साथ वह आचमनी मन्त्र ही तो ध्वनित होती है; गंगे च, यमुनेचैव, गोदावरि, सरस्वति, नर्मदे, सिन्धु, कावेरीति ! सात नदियों को जोड़ कर ही भारत अखण्ड है, सात नदियों की सभ्यता सहित ही तो भारत की संस्कृति है।

माल के उत्तरांश में है कशमीर (प्वाइंट) उसी प्वाइंट पर बैठ कर कशमीर की पहाड़ी घटा कितनी बार देख चुका हूँ। वहाँ से मेरा मन खो जाता पहाड़ों में—पाइन वन के नीचे से, घाटी के किनारे-किनारे पगडंडी के निशानों में। मन लगाया कितने दिनों तक गुहा द्वार के कोने-कोने में, जंगली फूलों की सुगन्ध में, बादल के एक टुकड़े के स्वर्ण-सुनहले रंग में। हर महेश और कृष्णगिरि की तुषार किरीट से। कितने ही मित्रों से जानकारी प्राप्त की है, वे मित्र हैं—लेखराज, रूपलाल, अज़ीज़ अहमद, मोतीसिंह, पंडित सदानन्द, जगदीशचन्द्र ! पता नहीं आज कौन कहाँ है ! एक बूढ़े नौकरी-पेशा बंगाली थे गुप्ता साहब। वे ज़रूर ही आज जीवित नहीं होंगे। उन्हें साथ ले कर चला जाता था छोकागल्ली और फिर पिनाकल और कॉन्वेंट। घोड़े पर सवार हो कर पिण्डी प्वाइंट के आगे लारेंस कॉलेज की ओर चला जाता था, वहाँ एक और बंगाली सज्जन थे मिस्टर चटर्जी। 'को' माने जैसे पहाड़ होता है, उसी तरह गली का मतलब है पहाड़ी इलाका। बांसरा गली है हज़ारा के पठानों की राह। इस के बाद है छांगला गली, घोड़ा गली वग़ैरह। मारी के दक्षिण में है पिण्डी प्वाइंट। यहाँ पर खड़े होने से दीखती है दूर पर धूमिल विराट् हिन्दुस्तान की समतल। असीम दिगन्त तक पहुँच कर वह समतल धुँधलके में छिप गया है। चेरापूँजी में खड़े होने पर जैसे सूरमा घाटी नज़र आती है, कर्सियंग से तिस्ता घाटी जैसी दीखती है, मसूरी से देहरादून घाटी और उत्तर प्रदेश का समतल जैसा नज़र आता है यहाँ भी वैसा ही। एकान्त एकाग्र बृहदाकार वह तारा,—अपलक दृष्टि से कितने ही दिनों से वह मुझे देख रहा है।

इस हिमालय पर नयी-नवेली वर्षा आयी है। बादल नीचे से आये हैं, उस में डूब चुका हूँ कितनी ही बार। दैत्य-दानव की तरह इस पहाड़ से उस पहाड़ पर वे डकैती कर गये हैं। जीव-जन्तु और मनुष्य वर्षा का रूप देख कर भाग खड़े हुए हैं। ओला गिरने से कितने ही पहाड़ी मुसाफ़िर घायल हो चुके हैं। वृक्ष टूट गये हैं, चट्टानें लुढ़क पड़ी हैं। चौंकने वाली वज्रपात की आवाज़ से मनुष्य की चेतना लुप्त हो गयी है। देखते ही देखते महारुद्र का कालकटाक्ष पुनः शान्त निर्मीलित हो गया है। देवतात्मा हिमालय फिर योगासन में स्थिर हुए—महाभारत के अनादि अनन्त काल के महामौन प्रहरी के समान देवतात्मा हिमालय फिर से योगासन पर जा बैठे हैं। इस के बाद फिर ये मेघ मेरे सामने से होते हुए पंजाब, सिन्धु में सीमान्त और उत्तर प्रदेश में

धीरे-धीरे उतर गये हैं। विशाल हिन्दुस्तान के समतल भू-भाग में विरही यक्ष की भाँति उन्हें मैं ने भेजा है।

पूर्व हिमालय की वर्षा लम्बी अवधि तक स्थायी होती है। मध्य हिमालय का एक हिस्सा—जो नेपाल का प्रान्तवर्ती भू-भाग है, वहाँ भी वर्षा का रूप यही है, किन्तु उत्तर-पश्चिम में वर्षा की अवधि बहुत लम्बी और स्थायी नहीं होती। वर्षा के थपेड़े आते हैं, मगर ठहरते नहीं। पठानकोट, सियालकोट, लालामूसा और पिण्डी ज़िला तक वर्षा के वेग में प्रबलता रहती है। मगर बहुत कुछ वह बाढ़ जैसी। बाढ़ जब आती है, तब वन-जंगल, पहाड़, जनपद, सब बहा ले जाती है। मगर उत्तर-पश्चिम में वर्षा जब-तब होती रहती है। वर्षा खूब हो रही है लेकिन दस मिनिट में ही बादल साफ़ हो गया। कहीं आसमान पर वर्षा का निशान तक नहीं है। इसी कारण बहुत स्थलों में पानी जमा करने की व्यवस्था भी है और पन्द्रह बीस मील के बीच नदी हुई तो पम्प से पानी लाया भी जाता है। जैसे मारी पहाड़ पर दो रिज़र्वर हैं।

'सानी बैंक' होती हुई बस की सड़क चली गयी है कोहला तक। झेलम के किनारे सितम्बर के एक सवेरे हम कोहला को चल पड़े। मगर सानी बैंक वाली सड़क से नहीं; मारी पहाड़ से एक लाल कंकड़ी वाली कच्ची सड़क सीधी कोहला की ओर उतर गयी है, उसी सड़क पर हम आगे बढ़े। कहीं-कहीं मामूली चढ़ाई है, मगर उतराई बहुत ज्यादा है। यह सड़क सुनसान है। पता चला कि यहाँ तीन हज़ार फुट नीचे जीव-जानवर मिलते हैं। बीच-बीच में घाटियाँ मिलेंगी, वहाँ कश्मीर के तरह-तरह के विविधवर्णी अजाने पंछी भी मिलेंगे। दुम्बा भेड़ और पहाड़ी बकरियों का जत्था हाँकते चले जा रहे हैं पहाड़ी चरवाहे। इतने लम्बे बालों वाली बकरियाँ कम मिलती हैं। उन के गले में घण्टियाँ बँधी हैं। कुली पैदल बोझ लिये कश्मीर से पिण्डी शहर जा रहे हैं। कहा जाता है, पुंचेर की तलहटी भयानक है, इस वजह से इधर से ही जाना अच्छा है। जिन्होंने दुनिया का पर्यटन किया है, उन्होंने प्राकृतिक सौन्दर्य के शत-सहस्र पीठ स्थान देखे होंगे, इस में शक नहीं। मगर इस पथ से जब कुमायूँ, आसाम, गढ़वाल, दून की उपत्यका, कुल्लू कांगड़ा या जम्मू से कश्मीर गया। तब बार-बार यह विचार मन में उठा कि दुनिया की और जगहें बिना देखे भी काम चल सकता है। इतनी मौज, इतना मज़ा, ऐसी रंगीनी, ऐसी सौन्दर्य-सुषमा, जंगल और पहाड़ों की आँख-मिचौनी—सब कुछ अचरज से भरा हुआ। ऐसी गहन आनन्दोपलब्धि सम्भवतया समग्र भारत में कहीं नहीं होती। इस शिवालिक पर्वत श्रृंखला के प्रान्तर में कितने दिनों विमूढ़ सा खड़ा रहा हूँ। खड़ा रहा हूँ, कालदंड पर्वत की चोटी पर। कमलनयन और पुण्यगिरि के चारों ओर चक्कर काटता रहा हूँ, सब कुछ अचरज से भरा प्रतीत हुआ है। हृदय एक अजानी पीड़ा से भर आया है। अपना अस्तित्व ही अवास्तविक लगने लगा है।

यह भी वैसा ही पथ है, शाल, सखुआ, पाइन, चीड़, झाऊ और देवदारु में छिपा

हुआ। धरती चुप और गम्भीर है, जैसे हम आदिकाल के क्षुद्र मानव हैं—खन्ना, रूपलाल और मैं। मानो यहाँ इनसान का पहला पदचिह्न अंकित हुआ हो। मानो हम जीव-दृष्टि के प्रथम अभिव्यक्ति हों। अपने क़दमों को आहट से हम स्वयं रह-रह कर चिहुँक उठते हैं, कहीं जंगल का सपना टूट न जाये। महामौनी हिमालय की योग तन्द्रा में खलल न पड़े, और कहीं जंगल में विचरने वाले प्राणी चौकस न हो जायें। इस लिए हाथ की लाठी बिना ठोके किड्स के जूते से शब्द न निकाल हौले-हौले क़दमों से हम शान्त मन से बढ़ते जा रहे हैं। तय यह है कि आज हम गन्तव्य पर पहुँच कर रात वहीं बितायेंगे। और पूर्णिमा तिथि झेलम के किनारे। कल अगर तबीयत ठीक रही तो हम पैदल ही लौटेंगे। हम लोगों में से जो पैदल लौटना नहीं चाहेंगे वे कशमीर की बस से 'सानी बैंक' लौट जायेंगे। हम लोगों ने निश्चय किया कि कोहला के डाक-बंगले में रात भर रहेंगे।

पथ में बहुत सारी छोटी और मध्यम श्रेणियों की नदियाँ पार कर आया हूँ। ये हैं पहाड़ी सोते, वर्षा की ढल उन में पहाड़ों से टकराती हुई चट्टानों के टुकड़े लुढ़काती बहती हैं। सोते बड़ी तेज़ धारा में बहते रहते हैं, पहाड़ों के पेड़-पौधों को बहा ले जाती हैं, गाँवों को प्लावित कर देती हैं, मगर जाड़े में सूख जाती हैं। उन नदियों में सिर्फ़ नीरस पत्थर जमे रह जाते हैं। सम्पूर्ण पहाड़ी इलाक़े का यही एक नियम है। वर्षा में हाथी बह जाता है और जाड़े में चिड़ियाँ तक स्नान नहीं कर पातीं।

कोहला आने पर लक्ष्मण झूला की याद हो आती है। याद हो आती है हिमांचल प्रदेश के मण्डी शहर के इलाक़े में स्थित विपाशा का पुल और तिस्ता का सेवकपुल। दोनों तरफ़ है पर्वत-शृंखला, बीच में स्वच्छ-साफ़ नीली नदी। किन्तु यहाँ इस में कुछ फ़र्क़ है। वह यह कि धारा तो तेज़ है, मगर चन्द्रभागा को तरह पानी कुछ ललछाह। इस झेलम को श्रीनगर, सोपोर, बारमूला, भेरीनाग में देखा है—कहीं भी पानी स्वच्छ नहीं है, जाड़ा, बरसात, गरमी किसी भी मौसम में नहीं। समूचे कशमीर की घाटी और पहाड़ी इलाक़ों का चट्टानमय न हो कर मिट्टी-प्रधान होना इस का कारण है। कशमीर की हर नदी गेरूई मिट्टी पश्चिम पंजाब में ले जाती है। पश्चिम पंजाब खाद्य पाता है कशमीर को समृद्धि से। नदी का पानी ही पंजाब की सम्पदा है।

समुद्र की सतह से कोहला डेढ़ हज़ार फुट ऊँचाई पर स्थित होने पर भी गरमी से तपता रहता है। हवा यहाँ कम होती है। क्योंकि पहाड़ों से घिरा है। नदियों में यहाँ नहाना बहुत आरामदेह है। क्योंकि पानी हर समय ठण्डा रहता है। नदी और पहाड़ों पर जहाँ तक दृष्टि जाती है वहाँ तक नज़र आती है—घने नीले जंगलों के नीचे लाल-माटी देखता हूँ। सृष्टि के रहस्य की ओर केवल एकटक देखते रहो जैसे भूटान और भारत की तराई-सीमा की ओर सिक्किम के पथ पर रंगपो के नीचे रुद्रप्रयाग में मन्दाकिनी के तट, जैसे धवली गंगा के आरपार, बाग्मती और त्रिसोता के किनारे-किनारे टकटकी लगाये देखते हो, वैसे ही देखते रहो।

कोहला का पुल ही है कशमीर और भारत का संयोग स्थल। जैसे पठानकोट से जम्मू आते समय माधोपुर में इरावती का पुल है। वहाँ भी कशमीर और भारत का संयोग हुआ है। कशमीर भारत के इन दोनों संयोगस्थल में ही आधुनिक भारत के दल सर्वदल श्रद्धेय दो नेताओं को गिरफ़्तार किया गया था। एक कांग्रेस के नेता थे इसलिए उन्हें मुक्त कर दिया गया। दूसरे थे हिन्दू भारत के नेता, अतएव उन्होंने मृत्यु वरण किया। एक हैं पण्डित नेहरू दूसरे डॉक्टर श्यामाप्रसाद। यह पुल पार करने के बाद 'दुलाई' और 'दो मेल का पथ' है। 'दो मेल' में मिली है कृष्णगंगा और वितस्ता। बहुतों का मत है कि यह वितस्ता की ही एक शाखा है, जो मूल धारा से हट कर फिर आ मिली है। किसी का कहना है कि टिटवाल के पास कृष्णगंगा की मूल धारा ही दीखती है। और कोई कहता है मूल टिटवाल की धारा आ मिली है उलार सरोवर में। यही पुल पार कर पठान और पाकिस्तान ने अभी उस दिन कशमीर पर हमला किया था और इसी के ही पुराने पुल को पार कर कभी इसी शताब्दी के प्रारम्भ में सिक्खों ने भी कशमीर पर हमला किया था। थोड़ा और आगे बढ़ने पर मिलते हैं सिक्ख दुर्ग और देव मन्दिर। सिखों ने उस दिन सोपोर इलाक़ा पर विजय कर के राज की नींव डाली थी। सोपोर इलाक़ा दखल कर राजपाट कर रहे थे। और अभी उसी दिन पाकिस्तानी पठानों ने सोपोर में वितस्ता के किनारे सिक्ख आदिवासियों को हर तरह से मटियामेट करने की चेष्टा की थी। किन्तु ध्वंस के पूर्व ही कशमीर की भारतीय सेनाओं ने उन्हें रोक लिया था। यहाँ से शुरू होते हैं कशमीर के देव मन्दिर, विग्रह स्थान और प्राचीन आर्य, ग्रीक और बौद्ध हिन्दू स्थापत्य की भाँति-भाँति के प्राचीन कीर्तिकलाप।

अब वर्षा का शेषान्त है, अगर धूप बहुत तीखी है, उस के साथ ही नदी का प्रवाह भी तेज है। चारों दिशाएँ हवा-हीन हैं, हम लोग थकावट से चूर, शरीर पसीने से लथपथ हैं। डाक-बंगला का पता लगाने से पहले हम लोग नदी के क़रीब एक पेड़ की छाया में आ बैठे। रह-रह कर धूल उड़ाती हुई श्रीनगर को जाने वाली बसें गुजर रही हैं। श्रीनगर शाम को वह पहुँचेगी। आज-कल कशमीर में शरद् की मृदु स्निग्धता व्याप्त है, साथ ही असंख्य फल-फूलों का मौसम है।

देखते ही देखते दुपहरी पार हो गयी। डाक बंगला के लिए न खन्ना और न रूपलाल, कोई भी विशेष उत्साहित नजर नहीं आते। हम ठहरे उन के अतिथि यानी मेरे निर्णय का महत्त्व कम है। राह के किनारे नाश्ता और चाय से निपट लिया गया। इस के बाद खन्ना किसी विशेष काम से चले गये। फिर आधे घण्टे में खुशी-खुशी लौटे और हम लोगों को संग ले गये। घाट से थोड़ा ऊपर सामने ही एक काठ गोला है और चारों ओर सखुआ और देवदारू का जंगल। फलों से यह इलाक़ा भरा है। कारखाने में कुली-मजदूर सिख और मुसलमान एवं कशमीरी हैं। बिलकुल अजाना और अपरिचित है यह समाज, मगर मित्रों से मजदूरों की भाषागत एकता होने के कारण

सहज ही आत्मीयता हो गयी। हम स्तूपाकार पेड़ों के तने के ढेर पार कर एक छोटे से लकड़ी के अंधेरे मकान में जा पहुँचे। हम लोगों की सम्मिलित पैरों की आहट पा कर बाहर निकल आयी, एक प्रौढ़ा मजदूरिन। जाति में कशमीरी मुसलमान। गले से पैर तक कशमीरी लबादा। सिर पर रूमाल बाँधे और कानों में मोटी-मोटी बालियाँ, रंग गोरा चिट्टा। उस के हँसते हुए आ कर खड़े होते ही अन्दर से जो व्यक्ति खुशी से भरे हुए निकले, वे थे खन्ना के घनिष्ठ मित्र रूपलाल। सम्भवतः ज़रा देर पहले हमारे आने की खबर उन्हें मिली थी। अब तो बिलकुल निकट आ कर वे मित्र प्रवर हम से टूटी-फूटी बँगला में बातें कर रहे थे। मान लिया जाये उन का नाम है मिस्टर चौधरी। हम लोगों के आश्चर्य का ठिकाना नहीं रहा क्योंकि यहाँ बंगाली हिन्दू का होना केवल अप्रत्याशा ही नहीं असम्भव भी है।

बहुत देर तक हँसी मज़ाक होती रही। आज पहली बार यह जाना कि इसे कॉटेज कहते हैं। ऐसे कॉटेज इस इलाके में बहुत हैं। यहाँ भोजन और निवास की व्यवस्था मूल्य चुकाने पर हो जाती है और कॉटेज का संचालन करने वाली कोई स्त्री ही होती है। चौधरी दफ़्तर से छुट्टी ले कर कल यहाँ आये हैं। ये सभी एक ही दफ़्तर में काम करने वाले आदमी हैं। चौधरी शुरू से ही उत्तर-पश्चिम के हैं, बंगाल से उन का कोई सम्बन्ध नहीं रहा। और बंगला भाषा से भी वे अपरिचित ही हैं।

प्रौढ़ा महिला में उत्साह की कमी नहीं है। एल्युमिनियम के मग में चाय और दो रेड़ों बिस्कुट वह दे गयी। पता लग गया कि हम लोगों के आगमन के उपलक्ष्य में आयोजन पहले ही हो चुका है। यहाँ तक कि मुँह धोने के लिए पानी और साबुन तक ला कर रख दिया गया है। घर-दरवाज़े एकदम छोटे-छोटे। अन्दर के हिस्सों में घुटन सी है। कमरे के भीतर मक्का, मदीना की एक रंगीन तसवीर टँगी है। हुक़्क़े-गुड़गुड़े भी हैं, बरतन सारे चाँदी के हैं। रोटी के टुकड़े के संग मुर्गी के पंख बिखरे हैं, कच्ची लकड़ी के बेंच, स्टूल और चौकी। गन्दा तकिया और मैला फटा कम्बल। और पीने के लिए भी बहुत कुछ यहाँ है, जिस की चर्चा न करूँ तो कोई हर्ज नहीं। मुझे चक्कर में पड़े देख कर चौधरी ने कहा, रात किसी तरह कट ही जायेगी, चिन्ता की कोई बात नहीं है, आइये।

खन्ना और रूपलाल हमें यहाँ छोड़ कर बाज़ार गये हैं। थोड़ी देर में ही लौटेंगे। चौधरी मुझे अन्दर के एक और कमरे में ले गये। एक ही छत के नीचे छोटे-छोटे दरबे, उसे ही हम कमरा कहने को बाध्य हैं। लेकिन टूटे-पुराने असबाबों के पास ले जा कर चौधरी ने मुझे कई स्त्रियों के सामने खड़ा कर दिया। ये कमसिन थीं। सिर पर रूमाल नहीं बँधा था, लबादा बिलकुल गन्दा और सिर तेल से तर तथा वेणी में बँधे हुए बाल; जैसी कशमीरी मुसलमान औरतें होती हैं। कानों में चाँदी के छल्लों में लटकते हुए लाल मूँगे, पीठ पर दो-तीन वेणियाँ लटकी हुई हैं। आँखों में सुरमा। नाक और आँखें दोनों ही तीखे। चौधरी ने सामने खड़े रह कर केवल अपनी

हँसी के ज़रिए सब कुछ कह दिया। यानी समझने में कुछ बाक़ी न रहा! स्त्रियों ने तपाक से मेरी ओर सिगरेट बढ़ा दिया और ख़ुद भी पीने लगीं।

चाय का प्याला मेरे एक हाथ में था, दूसरे हाथ में सिगरेट। सिगरेट का कश लेता हुआ मैं एक क़दम में बाहर आ खड़ा हुआ। सखुआ और देवदारू के नीचे इठलाती हुई शाम उतर आयी है। मगर खान के मज़दूर बहुत पहले ही छुट्टी पा कर चले गये हैं। इस लिए एकान्त में एक पेड़ के तने पर बैठ कर चाय पीने लगा। हवा ख़ूब सुहानी है।

इतनी दूर और दुरूह स्थान में बंगाली के मिलने के बावजूद चौधरी से मेरी दूरी कमी नहीं हुई। केवल इतना ही नहीं, कॉटेज और कॉटेज गर्ल्स के सम्बन्ध में मुझे दिलचस्पी लेते न देख कर वे ज़रा उदास भी हुए। फलस्वरूप दूरी और भी बढ़ गयी। मुझे इस बात का डर था कि कहीं मेरे इस भाव से मित्रों को कष्ट न पहुँचे; मेरे किसी व्यवहार अथवा भावभंगिमा की विलक्षणता ताड़ कर उन्हें मुझ में नैतिक रूढ़िता की गन्ध कहीं न मिले! इस लिए एक ओर जहाँ अन्यमनस्क रहा, दूसरी ओर वहीं यह तय कर लिया कि हँसी-मज़ाक में सब को उलझाये रखूँगा।

जहाँ तक याद है उस औरत का नाम था मुसम्मात मश्नी। लगता है मशानी से मश्नी की उत्पत्ति हुई है। उस का देश बारामूला से आगे किसी पहाड़ पर है। वर्षा के अन्तिम दिनों में अपनी माँ के साथ यह इधर आती है, शरद् और जाड़े तक यहाँ रहती है, इस के बाद गरमी और बरसात से पहले वह अपने गाँव चली जाती है। माँ काठगोलों में काम करती है। ख़ुद वह कॉटेज चलाती है। माँ काम करती है इस काठ-गोले में और यह कॉटेज भी चलाती है। फिर कॉटेज से होने वाली आय ले कर वह गाँव लौट जाती है।

मौज़-मज़ा से जब छुट्टी मिली, उस समय रात के लगभग बारह बज रहे थे। मित्र कुछ अनमने हो गये थे। मश्नी भी ख़ूब मज़े में नहीं थी। मैं बाहर आया। विशाल देवदारु के पार पूर्णिमा का चाँद दीख रहा है, जैसे वह सिर पर ही हो। पहाड़ की तराई से, उधर से, रह-रह कर जानवरों की आवाज़ आ रही है। मैं अपने मन-भावन लकड़ी के तने पर कुछ क्षण के लिए जा बैठा। ऐसी घनी चाँदनी, चारों तरफ़ का सब कुछ देख रहा हूँ, लेकिन फिर भी कुछ स्पष्ट नहीं लगता। एक प्रकार का अयथार्थ और भ्रान्तिपूर्ण सपने जैसा सब कुछ मालूम होता है। हवा अत्यन्त मधुर है, लेकिन शारदीय स्निग्धता आसमान पर छायी चाँदनी से उतर आयी है। निकट ही आँखमिचौनी करती हुई, पहाड़ ऊपर उठ गया है, उस की विशालता देख कर शरीर सिहर उठता है। उस पर चढ़ कर इस चाँदनी में कहीं चल पड़ने पर किसी एक परी-कथा के राज्य का द्वार खोज सकता हूँ, या हो सकता है पर्वतशृंखला पार कर पहुँच सकता हूँ किसी एक विचित्र लोक में। इस वितस्ता के किनारे बैठ कर जिस का अनुमान लगा

सकता हूँ। इतना तन्मय था मैं कि मुझे अपने अस्तित्व का बोध तक नहीं रहा।

एक छाया बिलकुल निकट आ कर खड़ी हो गयी। ग़ौर से देखा वह उसी प्रौढ़ा महिला की थी। उस ने अपनी भाषा में कहा—मैं ने अब तक रोटी नहीं खायी है। मेरी इन्तज़ारी में वह बैठी रही। बेटा, भूखे रहोगे क्यों ? कुछ खा लो !

लगभग सभी दरबे सुनसान हो चुके हैं। मित्र अपनी भरपूर मस्ती में यह भूल ही बैठे हैं कि उन का अतिथि भूखा है। यह स्वाभाविक ही है, ग़लत नहीं है कुछ भी।

लेकिन उस रात की उस प्रौढ़ा महिला की सद्भावना शायद कभी न भूल सकूँ। जब कि भोजन करने के बाद कम्बल में मुँह छिपा कर बाहर पड़ा रहा, मगर मुझे कोई कष्ट नहीं हुआ। गन्दा तकिया भी क़िस्मत से मिल गया था।

दूसरे दिन दोपहर को बहुत दौड़-धूप के बाद पिण्डी जाने के लिए एक बस मिली। मैं अकेला ही उस में जा बैठा। क्योंकि मेरे पास समय कम था। लगता है, मित्र सभी आज रात भी यहीं टिके रहेंगे। हमें 'सानी बैंक' हो कर मारी जाना है। वहाँ से शीघ्र ही पिण्डी होता हुआ लौटूँगा।

[६]

समग्र हिमालय है शैव और शाक्तों की क्रीड़ा-भूमि। जितने ही दुर्गम में जाइये महादेव और पार्वती के मन्दिर सर्वत्र मिलेंगे। जितनी दूर जाओ, जहाँ मन चाहे जाओ, महाकाली स्थापित हैं ! शक्ति की आराधना आदिम काल से चली आ रही है। उत्तर-पश्चिम सीमान्त से शुरू कर पेशावर से रावलपिण्डी, झेलम, सियालकोट, जम्मू, पठानकोट; इस के आगे पंजाब आ जाओ, हिमांचल प्रदेश में कांगड़ोंकुल में आ जाओ शिमला में, गढ़वाल में, कुमायूँ में सिर्फ़ शिव और दुर्गा, चण्डी महाकाली महिषमर्दिनी। इस के बाद उत्तर की ओर बढ़े, समग्र कशमीर में शिव और शक्ति की पूजा। उत्तर आओ, नीचे कुमायूँ में, फिर पूर्व की ओर तिब्बत में प्रवेश करो, मानसरोवर के पथ पर पाओगे, शक्ति की आराधना। तिब्बत में खोचरनाथ, गुफा के भीतर महाकाली की मूर्ति प्रस्थापित है। अमावस में पशु-वलि वहाँ का विधान है। हिन्दू दर्शन की वनस्पतियों से ही विभिन्न शाखा-प्रशाखाएँ निकलती हैं—कौन शैव है, कौन शाक्त, कौन है बौद्ध। भारतीय धार्मिक संस्कृति युगों से परस्पर में एकता की सृष्टि कर रही है। यह संस्कृति राष्ट्र की किसी सोमा-रेखा को नहीं मानती, राजनीति के नाप-जोख को

नहीं स्वीकारा। तुषारावृत सैकड़ों गिरिशृंखलाओं ने अवरोध की परवा नहीं की। मात्र आन्तरिक धर्म-विश्वास की शक्ति से सदा-सदा से यह हिमालय को आर-पार करती आयी है। ठीक इसी कारण से ही सिक्किम पहुँच कर मुझे लगा यह तिब्बत का हिस्सा है, नेपाल में खड़े हो कर सोचो, यह भारत का हिस्सा है। जिन्होंने कुमायूँ, काँगड़ा, हिमालय प्रदेश, लद्दाख अथवा इस के आस-पास उत्तर बिहार के किसी-किसी उत्तरांचल में भ्रमण किया है, या जिन्होंने शिमला से तिब्बत हो कर हिन्दुस्तान रोड हो कर किन्नर देश गये हैं, वे जानते हैं, टुकड़ों में तिब्बत इसी भारत में बिखरा पड़ा है। फिर देखता हूँ कि तिब्बत की अनगिनत गुफाओं में हिन्दू देव-देवियों का पूजा-पाठ होता है, तब समझ में आता है कि टुकड़ों में भारत ही तिब्बत के मर्म में अनादि काल से डेरा डाले है।

उत्तर बिहार पार कर जब सगौली से रक्सौल स्टेशन पर गाड़ी से उतरा, तब ऐसे बहुत सारे तर्क मेरे मन को घेरे रहे। मैं नेपाल जा रहा था। पालित साहब साथ थे। उन की चाल कुछ धीमी थी। यहाँ यह कह रखना ठीक है; इस बार की यात्रा में कुछ रुपये-पैसे की कमी थी, इस लिए पालित साहब ने सोने का एक हार अपने पास रख लिया था। यह है किस का, यह सवाल ही अप्रासंगिक है। लेकिन यह सवाल आगे उठ सकता है, इस लिए पहले से ही कह रखना ठीक है।

उस समय रक्सौल में शाम छपछपा रही थी। अगल-बग़ल दो स्टेशन हैं, उन में एक है भारतीय रक्सौल, दूसरा नेपाली। पार-पत्र के लिए कोई असुविधा नहीं थी, फिर भी दो पैसे लग ही गये और दोनों के नाश्ते में लग गया चारेक आने। दोनों देश के पहरेदार थे अगल-बग़ल। यह शिवरात्रि का अवसर था। पशुपतिनाथ का मेला लगता है, भिन्न-भिन्न यात्रियों की आवाज़ ही थी। इस समय किसी बंगाली क्रान्तिकारी युवक का पुलिस को धोखा दे कर नेपाल में चले जाना असम्भव नहीं, या नेपाल से अस्त्र-शस्त्र भी लाना सम्भव है। जो भी हो, यहाँ से अमलेकगंज अन्दाज़न तीस मील होगा। उस समय दो व्यक्तियों का रेल किराया दस आने से अधिक नहीं था। तीसरे दर्जे की दो टिकटें ले कर हम दोनों अमलेकगंज की गाड़ी पर जा बैठे। पालित साहब, पता नहीं कहाँ से भर मुँह पान पा गये थे, साथ ही जर्दा भी। निश्चिन्त मन उन्होंने बीड़ी का कश लगा लेने के बाद कहीं कहा, "सेकण्ड क्लास की टिकटें ले लेते तो कुछ खास ज्यादा तो लगता नहीं। इस गाड़ी में भीड़ बहुत है।"

इस बार की तीर्थ यात्रा के मद में उन्होंने कुछ चन्दा भी दिया था, लेकिन उतने चन्दे से तो हवड़ा से मोकामा घाट तक ही तीसरे दर्जे में आया जा सकता था। मगर मुझे खुशी थी कि इस यात्रा में एक हँस-बोला साथी मिला। अप्रासंगिक बात कहने की गुंजायश यहाँ है। लम्बे दिनों के भ्रमण से मुझे यह ज्ञान था कि हिमालय में बहुत से स्थान ऐसे हैं जहाँ अभ्यास का भोजन, पीने का पानी और तरह-तरह की विलास की चीजें दुष्प्राप्य हैं।

इस कारण दैनिक जीवन के तरह-तरह के अभ्यास त्याग, बहुत से उपकरणों पर से मन हटाये बिना पग-पग पर मन खराब होगा ही। अभाव के काँटे चुभेंगे ही।

हमारी खिलौने जैसी ट्रेन गाड़ी गाँव के बीच से गुजरती है और हम अंधेरे में से देखते रहते हैं कि गाँव के लिए यह कोई खास बातें नहीं हैं। बहुत से यात्री पैदल ही जा रहे हैं, उन का तम्बू सड़क के इधर-उधर तना हुआ है। इस रेल सड़क के अलावा पूरे नेपाल में यातायात का कोई दूसरा जरिया नहीं है। उस समय नेपाल के राजा त्रिभुवन विक्रम को नेपाल की त्रिसीमा के बाहर जाने का हुक्म नहीं मिला था, और त्रिभुवन विजय विक्रम को बड़े गर्व से महाराजा या प्रधान मन्त्री या प्रधान सेनापति ने एक प्रकार से नज़रबन्दी बना रखा था।

यह है हिमालय का तराई इलाक़ा। सभी नदी-नाले, झरने और जल-प्रपात की गति इधर ही है। वर्षा इधर अधिक है; और इधर जैसे ख़ूब फ़सल होती है, वैसे ही लोग मलेरिया से परेशान भी ख़ूब रहते हैं। यह तराई इलाक़ा यहीं ख़त्म नहीं हुआ। दक्षिण कुमायूँ से शुरू हो समग्र उत्तर प्रदेश, बिहार, बंगाल, सिक्किम, दक्षिण भूटान और उत्तर-पूर्व आसाम तक फैला है। इस की लम्बाई हज़ार मील न सही, लगभग इतनी ही जरूर है। समग्र हिमालय से तुषार विगलित धाराएँ उतरती हैं। मिट्टी वग़ैरह वर्षा और आँधी तूफ़ान से बहती हुई वन-जंगलों को उखाड़-पछाड़ कर इस विशाल तराई इलाक़े में फैल जाती है। इस इलाक़े के घने घुप्प जंगलों की तुलना मात्र पहले के सुन्दरवन से ही की जा सकती है। कुमायूँ के पूर्व प्रान्त शिलगढ़ पर्वत से कालगिरि, टनकपुर, पीलीभीत, मोइलनी, कौड़ी बाज़ार हो कर जोगबानी की ओर से होते हुए ज़लपाइगुड़ी, शुक्ना, अलीपुरदुआर और दक्षिण सिक्किम पार कर आसाम तक जाया जा सकता है। इस हिमालय की तराई इलाक़ों में जिस प्रकार सैकड़ों पुराने स्थापत्य, मन्दिर, देवालय तथा वहुत सारे ऐतिहासिक तत्त्व मिलते हैं, वैसे ही इस के भयानक जंगलों में हाथी, बाघ, रीछ, चिता, गेंडे विभिन्न जातियों के हरिण, सैकड़ों वर्णों के पंछो और ज़हरीले सर्प आदि इस विशाल भू-भाग के चप्पे-चप्पे में सदा से बिना बाधा-विघ्न के बास करते आ रहे हैं। हिमालय में सर्वत्र फैली ओषध-वन भूमि और खनिज-सम्पदा आज भी अज्ञात है, जिन्हें ढूँढ़ निकाल कर रासायनिक परीक्षणगृहों में परीक्षा करने के बाद करोड़ों रुपयों की सिर्फ़ आय ही नहीं हो सकती है, बल्कि इस विशाल अरण्य की विचित्र ओषध-लताओं से इस आणविक युग में मनुष्य-अनुपलब्ध मृतसंजीवनी भी मिल सकती है। इस जमाने में अविश्वसनीय कुछ भी नहीं है।

वीरगंज के विशाल जंगल के एक हिस्से में हमारी गाड़ी बहुत ही धीमी चाल से गुज़र रही है। पता चला है कि महाराजा हाथी पर सवार हो कर आज इधर शिकार खेलने आये हैं। जंगल के किनारे-किनारे उन के लोगों के तम्बू ताने गये हैं। रात में कुछ नज़र नहीं आता, क्योंकि किसी प्रकार की सरकारी बत्ती का कोई इन्तज़ाम नहीं है। मिट्टी का तेल भारतवर्ष से आता है जिस का मूल्य अधिक पड़ता

है। नेपाल को अँधेरे में ही रखना ठीक है। क्योंकि सभ्यता के प्रकाश में ही राज्य के निवासी अपनी दुर्दशा देख कर स्वयं सिहर उठेंगे और फिर महाराजा के हाथ से शासन की लगाम छूट जायेगी! इस के अलावा जातिगत बौद्ध होने पर भी उन्हें शक्ति पूजा के द्वारा उत्साहित किया जाता है। क्योंकि लड़ाई में अँगरेज़ों की सहायता के लिए गोरखा सैनिक बिना भेजे राज्य का आय-व्यय सन्तुलित नहीं हो सकता। बिलकुल निर्भय शीत-रक्त वाले गोरखों के सिवा और कोई दुश्मन पक्ष पर हमला नहीं बोल सकता। यहाँ तक कि सीमान्त के पठान, बलूचिस्तानी, राजपूत, जाट तक गोरखा सेना को देख कर पीछे हट जाते हैं। समग्र भारत, दक्षिण-पूर्व एशिया, सुदूर पश्चिम, अरब और उत्तरी अफ़्रीका में, युरॅप के बहुत सारे हिस्सों में अपनी निर्भीकता, तेजस्विता और निर्दयता के लिए ये गोरखे प्रसिद्ध हैं। इन्हें बचपन से यही शिक्षा मिलती है कि दुश्मन के लिए निर्दयी बनो। इतने विवश और अनुशासित, कष्ट-सहिष्णु और बलिष्ठ सरल स्वभाव के तथा इन के जैसा विश्वसनीय कहीं कोई नहीं मिलता। अँगरेज़ों के मन्दभाग्य-काल में प्रायः सभी श्रेणियों के फ़ौजी जत्थे बाग़ी हो उठे थे मगर गोरखा फ़ौज की विद्रोह की चर्चा कभी सुनी नहीं गयी।

अमलेकगंज आख़िरी स्टेशन है। हम जब उतरे, उस समय रात हो चली थी। स्टेशन है पहाड़ की गोद में। चारों ओर अँधेरा। मिट्टी के तेल की बत्तियों में इधर-उधर मारवाड़ियों की कई दुकानें दिखीं। उतने में ही उन्होंने डण्डी-पल्ला लटका लिया है। कैंची और कटपोस के कपड़े रख छोड़े हैं और वहीं डालडा के जले हुए घी में पूरियाँ बनाते हैं। किसी ज़माने में जयपुर, उदयपुर, चित्तौड़, बीकानेर और जैसलमेर के वे अधिपति थे। इसे वे और हम सभी आज भूल गये हैं। व्यापार के साथ वीरता को क़ायम वे नहीं रख सके।

गाड़ी से उतर कर रात बिताने को ठौर ढूँढ़ने के पहले ही पालित साहब ज़िद कर बैठे कि गरम चाय पीऊँगा।

इस बीच लोगों की भीड़ बहुत बढ़ गयी है। रात काटने को जगह हो सकता है मिल सकती थी मगर स्वयं मुझे कभी नरककुण्ड अच्छा नहीं लगा। फलस्वरूप तरह-तरह के कच्चे मालों से भरी दुकान घर में रात कटने लायक़ जगह मिल गयी। चारों ओर जंगल और पहाड़ों की तराई के घुप्प अँधेरे के सिवा और कहीं भी कुछ नहीं दीखता। लेकिन इस दुकान से जुड़े घर की फ़र्श पर कम्बल लपेट कर जब लेटा रहा, तब मुझे रावलपिण्डी की वही दवाओं के गोदाम की याद हो आयी। सैकड़ों प्रकार की दवाओं की मिश्रित तेज गन्ध से सारी रात मैं टहलने को मजबूर हुआ था। सी० आई० डी० की निगाहों में कोप-भाजन बनने के भय से उस जेठ की रात को घर से निकल नहीं सका, और यहाँ भी इस कच्चे माल की आढ़त से और कच्ची लकड़ी के बने घर के बाहर निकल कर एक बार भी साँस नहीं ले सका। कारण, इस अमलेकगंज के बाज़ार में कल रात भी एक नरभक्षी बाघ एक औरत को उठा ले गया है।

नतीजा यह कि हम लोगों के घर को चारों तरफ़ से एकदम बन्द कर दिया गया। अन्दर जाड़े में कांप रहे थे सभी।

पालित साहब अपने साथ बिस्तर का एक गट्ठर लेते आये थे। उस पर मजे से सो कर जर्दे वाला पान चबा, बीड़ी सुलगा, नसवार ठूँस कर बोले, "आप का हिमालय आप का हो रहे। आप के साथ जुड़ने के बाद और क्या बढ़ा है, पता नहीं।"

उन्हें लाया मैं अपनी ग़रज से था, इस लिए डरा-डरा सा रहता था। उन के आराम और सुख-सुविधा की तरफ़ मेरी नजर लगी रहती। वे तनिक ऊब के साथ बोले, मुँह ठण्ड से फट गया है। बाजार में चक्कर काट रहा था वैसलिन खरीदने के लिए। जंगली लोग उस का नाम ही नहीं जानते! अजब-ग़ज़ब देश है यह।

पतली रज़ाई मजे से ओढ़ कर करवट फेर कर वे सो गये। इस के बाद चैन से सोने के पहले एक बार बोले, बाघ अगर दरवाजे पर हमला करे तो मुझे उठा दीजियेगा। अमलेकगंज से भीमपैड़ी है चौबीस-एक मील पहाड़ी पथ। सवेरे के समय जाड़ा पड़ा है, हवा बह रही है ठण्डी। पूरा जंगल ठण्ड से अन्यमनस्क हो उठा है। जाड़े की मीठी धूप अभी भी अमलेकगंज में नहीं उतरी है। पूरब की पर्वत श्रृंखलाओं ने धूप को रोक रखा है बहुत दूर तक। उत्तर और पश्चिम में अँधेरे से ढँके जंगलों में खास कुछ दीखता नहीं। पहाड़ के नीचे से बागमती नदी बह रही है। यह नदी नेपाल से बिहार उतर कर लगता है मुगेर की ओर से हो कर गंगा में मिली है। ठीक मैं नहीं जानता। मगर उत्तर प्रदेश और बिहार को जल देती चली है नेपाल की ही नदी। सारदा मेरी, राप्ती, कालीगंडक, त्रिशूलगंगा और गंडक—ये सभी उतर आयी हैं नेपाल से। नेपाल और उत्तर बिहार का पानी पा कर गंगा गौरवगर्विता हुई है।

मोटर गुजर रही है पहाड़ी पथ से। यह पथ अनजान नहीं है। शुक्ना से तिनधरिया, गौहाटी से शिलांग, कालका से शिमला, पिण्डी से मारी, जम्मू से बनिहाल, कोट द्वार से लैन्सडाउन, तिस्ता से दार्जिलिंग, ज्वालामुखी से कांगड़ा या रंगपो से गैंटॉक—ये मेरे सब जाने हुए पथ हैं। मगर फिर भी लगता है, ये मेरे लिए हमेशा से आश्चर्यजनक हैं। उन के एक-एक पत्थर ने मुझे जैसे युग-युगों से मोह मन्दिर बना रखा है। वे मुझे खींच लाये हैं बार-बार अपने बीच। यहीं मैं मानव-समुदाय की परम्परागत वंशानुक्रमिक देश-देशांतर के भीतर से हजारों वर्षों से उन्हें देखता आ रहा हूँ। हर चट्टान ने बात की है मेरे कानों में, इतिहास सुनाया है। उस का रहस्योद्-घाटन किया है। बहुत कुछ ज्ञापित कराया है, उस से भी अधिक दिखाया। पहाड़ों की सूनी कन्दराओं में शैवाल से भरी प्राचीन चट्टानों की गन्ध से मेरा मन कितने दिनों तक अमर्त्य लोक में खोया रहा है। सृष्टि के आदि में जिन दिनों गलित अग्नि-कुण्ड जमने लगा था, उन दिनों का मैं प्रथम जीव हूँ, जैसे कीट-कीटाणु उस के बाद सरिसृप में मैं हूँ; उस के भी बाद मत्स्य, कूर्म, वराह, नृसिंह, वामन आदि अवतारों के मध्य विवर्तन से चला आ रहा हूँ मैं युग-युगान्तर से। मैं आया हूँ आदिवासियों की

चेतना से। वन्य बर्बर मानवेतर प्राणियों के भीतर से मैं गुजरता हुआ अपनी उसी प्राथमिक इतिवृत्त में आ पहुँचा हूँ। रामायण में, महाभारत में, आवर्तित होता हुआ यह मैं अन्त में आ पहुँचा हूँ, आर्य सभ्यता में। हजारों वर्षों को अपनी कहानी मैं सुनता आ रहा हूँ। इस हिमालय को गवाह बना कर उस के उसी पेट में, कोटर में, गहन गुफाओं में, छाया में, मेरी प्राण-सत्ता छिपी है। तभी उस गुल्मलतासमाकीर्ण पत्थरों के ढेर में से अपनी अमर आत्मा को बार-बार पा कर मेरा मन रोता है। भटकता है मेरा मन झरनों के किनारे-किनारे प्राचीन पाइन की छाया में। भयावने प्रस्तर के स्तूपों में और गिरिमेखलों के अगल-बग़ल। मेरा अति-पुरातन प्राण उन ओक-वृक्षों की शाखाओं में और पुष्पित आर्कीड की लताओं में तथा रेडोड्रेनड्रान के गुच्छों में लिपटा रहता है। प्रत्येक कीट-पतंगों, सरिसृप पत्थर-रत्नों के अणु-परमाणुओं में, प्रत्येक झरने के जल-विन्दुओं में, प्रत्येक वनस्पति की लताओं-पत्रों के शिरा-उपशिराओं में मैं अपने अस्तित्त्व की उपलब्धियाँ पाता चला जा रहा हूँ।

पथ के अनगिनत तीखे घुमाव पार होते वक़्त बहुत ही खतरनाक मालूम पड़े थे। इस में भी सन्देह नहीं, पहाड़ी सड़क पर पैदल चलना अधिक सुरक्षित है—यदि वन्यश्वापद और सर्पों का भय न हो तो मोटर सब से अधिक सुविधाजनक है लेकिन सब से अधिक सन्देह पूर्ण भी। हर घुमाव में इञ्च दो इञ्च के फ़ासले पर मौत को ठुकराते हुए चलते रहने की वजह थकावट से शरीर चूर हो गया है। और ऐसे में भी ड्राइवर जब नशा पी कर गाड़ी तेज चलाता है, तब तो हर क्षण डर बना रहता है। विगत पचीस वर्षों में मुझे पाँच हज़ार बार पंचतत्त्व में मिलने जाने का सुअवसर मिला किन्तु देवतात्मा हिमालय की गोद में लगता है, दुरात्माओं को ठौर नहीं मिलता। जैसे काठगोदाम से जो अलमोड़ा जाते हैं, रानीखेत हो कर उन्हें मोड़वाली सड़क पर कम से कम एक सौ ऐसे घुमाव मिलते हैं। मोटर के एक पहिये के इञ्च भर इधर और इञ्च भर उधर होते हो मौत या भयानक चोट लग सकती है। या मान लीजिए, जो हिमाचल प्रदेश में मण्डी शहर हो कर कुलूमनाली के पथ से एक बार विपाशा नदी के किनारे-किनारे गये हैं, न लौटने तक स्वयं उन्हें अपने जीवित लौट आने का विश्वास नहीं हुआ है। पहाड़ों में दार्जिलिंग जाने वाली सड़क सब से अच्छी है। छोड़िए अच्छी होगी। यही कुछ दिनों पहले ही अलमोड़ा गया था। वहाँ प्रमुख आकर्षण थे उद्भिज तत्त्वविद् श्रीवंशीधर सेन। वे आचार्य जगदीशचन्द्र के शिष्य और महाकवि रवीन्द्रनाथ के होस्ट हैं – जिसे अतिथि सेवक कहा जाता है। उन से एक कहानी सुनी है। १९३७ में किसी तरह कह सुन कर वे गरमियों में रवीन्द्रनाथ का अलमोड़ा ले गये। मोटर से अलमोड़ा पहुँच कर विश्व कवि ने कई दिनों तक श्रीसेन से बात-चीत नहीं की। इस का कारण था, वहाँ के घुमावों बैण्ड को पार करते समय कवि के मन में जो आतंक और उद्वेग पैदा हो रहे थे उस से इन में अथक थकावट और सुस्ती आ गयी थी!

राह में एक सुरंग पथ पार कर एक समय हम लोग भीमपैड़ी आ पहुँचे। यह हिस्सा एक बहुत ऊँचे पहाड़ की तराई स्थित छोटी सी घाटी है। यहाँ से 'रोप वे' या रज्जू-पथ दूर तक फैली पर्वत शृंखलाओं के गर्भ में चला गया है। कुछ दूर तक वह रज्जू-पथ दीखता है, उस के बाद नज़र नहीं आया। भीमपैड़ी अथवा भीमपेहड़ी—कुछ भी कहिए, भीम पहाड़ी भी अगर कहा जाये तो कोई आपत्ति नहीं। नेपाल भू-भाग है महाभारतीय पर्वत शृंखलाओं के अन्तर्गत और समग्र हिमालय का एक अंश मात्र। ऐसा लगता है कि द्वापर में महापति द्वितीय पाण्डव ने हिमालय का खूब भ्रमण किया था। उत्तर-पश्चिम सीमान्त के हिमालय से ले कर उन के भ्रमण का चिह्न देखते हुए कुमायूँ के भीमताल पहुँचा हूँ—वहाँ सामने हो खड़ा है हिडिम्बा पर्वत एवं भीमेश्वर महादेव का प्राचीन मन्दिर। और आसाम में भी यही मिलता है। हिडिम्बापुरी— जो आज डीमापुर और कोहिमा के नाम से प्रसिद्ध है, वही है हिडिम्बा पहाड़। इस से यह पता चलता है कि वृकोदर ने सहधर्मिणी घटोत्कच की माता को संग ले कर हिमालय के विभिन्न स्थानों में धर्माचरण किया होगा।

यह भी है भीम पहाड़ की गोद। निकट है, वाग्मती नदी। नेपाल राज्य की ओर से एक धर्मशाला अवश्य है, मगर भीड़ से निकल कर हम सड़क पर ही आ बैठे। देखता हूँ, पालित साहब के गले में सोने की जंजीर अब झूल रही है। उन्होंने कहा, बिना चाय पिये पादमेकं न गच्छामि! उस के साथ चाहिए पान और तम्बाकू।

काठमाण्डू शहर यहाँ से निकट है। अन्दाज़न बीस-बाईस मील से अधिक नहीं। मगर इतना पथ ही अग्नि परीक्षा के समान है। यहाँ घोड़े, डाँडी, झांपन अथवा कण्डी सब कुछ व्यवस्था हो सकती है। किन्तु हमारी पूँजी थोड़ी थी। यानी कि चढ़ाई पर चढ़ने के सिवा दूसरी गति नहीं। चारों तरफ नेपाली यानी गोरखा कुली हाथों में रस्से लिये घूम रहे हैं। उन की कमाई का समय यही है। हम लोगों ने भीमपैड़ी में समय न बिता कर चढ़ाई की ओर क़दम बढ़ा दिया। अमलेकगंज से यहाँ आने के समय राह में जगह-जगह वसन्त काल का नवीन समारोह देखता आया हूँ। कहीं वह है रक्तिम-पीताभ, तो कहीं नील-हरा। आश्चर्य है! छोटे-छोटे पहाड़ी गाँव पुष्पों के स्तवक से और घाटियाँ पंछियों की चहचहाट से भरपूर हैं। मन में यह बात उठी थी कि यही वसन्त की शोभा हमारे संग-संग चलेगी। मगर जब हम सीसागढ़ी पहाड़ की चढ़ाई पर कुछ दूर पहुँचे, तब यह धारणा ग़लत साबित हो गयी।

भीमपैड़ी में अगर हम स्नान, भोजन और विश्राम कर के आगे बढ़ते तो हो सकता है, ग़लत सिद्ध नहीं होती, हम लोगों का खयाल था कि सीसागढ़ी उर्फ़ श्रीशगिरि पार कर कूलेखानी पहुँच कर धर्मशाला में विश्राम करना ठीक होगा। मगर श्रीशगिरि में न थी श्री और न था वसन्त काल। धूप प्रचण्ड थी, आगरे के क़िले में पड़ने वाली जेठ की धूप को भी मात देने वाली। पथ में कहीं भी छाया और पीने का पानी नहीं।

चट्टी और धर्मशाला का कहीं पता नहीं, यहाँ तक कि पथ का अन्दाज भी नहीं लग पाता। सिर्फ़ ऐसी धूप में पगडण्डी पर चलते हुए इस चढ़ाई से उस चढ़ाई पर बढ़ते जाना। इस चढ़ाई की तुलना गढ़वाल की बिजनी की चढ़ाई या छान्तिखाल की चढ़ाई से ही की जा सकती है। ठीक-ठीक याद नहीं, पर ढाई घण्टे चलने के बाद नेपाल सरकार की गोरा छावनी और सैनिक दफ़्तर मिला था। यहाँ नहाने की सुविधा मिली मगर अपने स्वाद के अनुसार किसी भी प्रकार का आहार नहीं मिला।

दोपहर की तेज धूप पहाड़ के ऊपर जैसे आग बरस रही थी। पालित साहब का पारा चढ़ा हुआ था। वे रह-रह कर चट्टानों पर हाथ का डण्डा जोर से दे मारते। कहीं-कहीं पथ में परित्यक्त देवालय मिलता तो पालित साहब झुंझला कर निकलते हुए कहते—रबिश, नहाने पर जितना पानी मिला, वह सब का सब पसीना बन कर निकल गया।

मुड़कर देखा उन्होंने शरीर के ऊपर से कुछ कपड़े उतार दिये हैं। ललाट पर पसीने की असंख्य बूँदों की धारा बह रही है। जैसे हिमालय के ऊपर बहती है, गिरि नदी की धाराएँ। यह धारा गरदन पार कर सोने के चैन को भिगोती हुई और भी नीचे बह गयी है। सहानुभूति के साथ कहा, आप के डब्बे में पान है, खाते क्यों नहीं ?

—नहीं है।

—तो नसवार लीजिये एक चुटकी ?

—पालित साहब ने एक झुरमुट पर लाठी पीटते हुए सिर्फ़ कहा—रहने भी दीजिये !

साधुओं का दल चल रहा है चिमटा बजाते हुए। जय पशुपति नाथ, जय शम्भो ! उन के अगल-बग़ल से डण्डी-यात्री चल रहे हैं। निकट से ही पेड़ों की डालों को झकझोरते हुए तिब्बती टट्टू सवारी लादे चले जा रहे हैं। कभी-कभी बढ़िया घोड़े पर सवार हो कर सरकारी अफ़सर आगे बढ़ जाते हैं। उन की पीठ पर बन्दूक लटक रही है, सिर पर मिलिटरी का तमग़ा है। उधर से चला आ रहा है पीठ पर भयानक बोझा लादे गोरखा कुली। और नजर आता है रोयें वाली पहाड़ी बकरियों का झुण्ड, प्रत्येक की पीठ के दोनों तरफ़ गठरियाँ लटकी हैं।

वापसी में उस उत्तर-बिहार की सीमा से आदमी के चेहरे पर की रेखाएँ बदलने लगी हैं, उत्तर-बिहार के अनेक स्थलों में मंगोलियन रक्त आ घुसा है। ऊँचाई में, चौड़ाई में, दोनों आँखों की पार्थक्य में वह परिवर्तन दीखता है। देखता-देखता आ रहा हूँ। जितना भीतर जा रहा हूँ, उतना ही यह परिवर्तन स्पष्ट होता जा रहा है। सिर्फ़ मनुष्य नहीं, गाय भैंस, बकरियाँ और भेड़ें इन की आकृतों में और गढ़न बदलती जा रही हैं। यह क्रम विर्वतन देखा अलमोड़ा, गढ़वाल, हिमाचल प्रदेश में। पहलगाँव से जो खिला पर्वत पथ की ओर एक इलाक़ा दूसरे इलाक़े की प्रकृति में जा मिला है।

एक रक्त-स्वभाव मिलता जा रहा है। सिक्किम में जो देख आया हूँ, उन्हें जिन्हें लेपचा कहा जाता है। सिक्किम के आदिवासी उन के साथ बंगाली इन के साथ गोरखा और इन के साथ नेपाली। इन सब को मिला लें तो हो गये लेपचा। इसी प्रकार आदि काल से समस्त मनुष्यों के संग समस्त मनुष्यों को एक अदृश्य नियन्ता मिलाता रहा है। इच्छा से मिल रहे हैं, अनिच्छा से मिल रहे हैं, जाने-अजाने मिल रहे हैं। विघ्न डालने की सामर्थ्य तुम में-हम में कुछ नहीं है। हिटलर ने विघ्न डालने का प्रयत्न किया था मगर अपनी क्षमता से आप मारा गया। प्रकृति के क्रम विर्वत में विघ्न डालने को क्षमता नहीं है किसी की।

सात-आठ मील रहा होगा—जहाँ तक अन्दाज लगाया जा सकता है। जब कुलेखानी पहुँचा, तीसरा पहर बीत रहा था। इतना थका और भूखा था कि पालित साहब से आँखें मिलाने का साहस तक नहीं हुआ। सामने बड़ी सी सरकारी धर्मशाला नजर आयी। दूर-दूर नजर आती है नेपाली गोरखों की बस्तियाँ। हम लोग थकी देह से धर्मशाला में के भीड़ में ही जा टिके। आज के चौथे दिन शिवरात्रि है, इस लिए हाथ में हमारे समय है।

कुलेखानी की बड़ी धर्मशाला, तिब्बती वास्तुकला का परिचय देती है। सिर्फ़ धर्मशाला नहीं, मन्दिर भी वैसा ही है। बड़ी-बड़ी रहने की जगह देवस्थान, गोरखा बस्ती के घर द्वार, यह सभी तिब्बती-कला के प्रभाव से निर्मित हुए हैं। अधिकांश वास्तु लकड़ी के हैं, उसी पर खुदाई, उसी पर नक़्क़ाशी। नेपाल बौद्ध प्रधान है, मगर शक्तमति। महिष मर्दिनी के लिए महिष चाहिए क़दम-क़दम पर। अधिकांश मांसाहारी हैं। चाहिए खड्ग, चाहिए खून, चाहिए बलि देने के पशु—मछली, मांस, शराब। तन्त्र-मन्त्र, भूत-प्रेत, पिशाच—सभी मिलने चाहिए। अनार्य शिव चाहिए जो मरघट में भटकता है। अनार्य छिन्न-मस्ता चाहिए जो रक्त पिपासिनी है। चाहिए चण्डिका जो शत्रुनाशिनी है। सिंह वाहिनी जगद्धात्री चाहिए जो सब का पालन करती है। मेरे निकट आज भी स्पष्ट नहीं है नेपाल बौद्ध है या शाक्त। ईसाई और बौद्ध धर्मावलम्बी जो हैं वे इस युग में 'अहिंसा परमो धर्मः'—यह आदर्श मान कर चले या नहीं, इस में मुझे सन्देह होता है। क्योंकि पूरब और पश्चिम के संघर्ष में उस दिन द्वितीय विश्व-युद्ध हो चुका है। उस के प्रमुख नायक थे ईसाई और बौद्ध धर्मों के लोग। हिन्दू और मुसलमान दूर जा खड़े हुए थे। अहिंसा का अहिंसा से विश्वव्यापी रक्तपात हो चुका है।

नेपाल के प्रायः समस्त वास्तु में कीर्ति के जो चित्र हैं, उन में अधिकांश हैं नग्न नर-नारियों का मैथुन-रत चित्र। काशी में, पुरी में, कोणार्क, खजुराहो, बंगाल के किसी-किसी वास्तु में—इस की अधिकता है, यह सभी जानते हैं। अश्लीलता से वे डरे नहीं। क्योंकि उसे इन लोगों ने सुन्दर बना लिया है। मैथुन चित्रों के द्वारा ये उस अग्निस्राव की ओर संकेत देते हैं जिस से मानव समाज एक सभ्यता के बाद दूसरी

सभ्यता तथा विश्वव्यापी जीवसृष्टि विवर्तित हुई है। संसार की समग्र जाति इस अभिव्यक्ति से डरती आयी है। उन्होंने सभी की आँखों से जीव-जन्म रहस्य को बचा कर रखना चाहा है। मगर एकमात्र हिन्दू ही ऐसे हैं, जिन्होंने इस रहस्य को दर्शन की दृष्टि से देखा है। जिन के निकट ज्ञान बड़ा है, विज्ञान नहीं। जिन्होंने तत्व की ही प्रतिष्ठा की है, सिर्फ़ तथ्य की ही खोज नहीं की। जो देखते आये हैं, महाशक्ति के आधार योग से पलक-पलक में जीव-जन्म का धूम मचा है। पुनः महाकाली ने अपनी मृत्युगह्वर में सभी जीवों का ग्रास कर लिया है। जन्म-मृत्यु का यह वृत्ताकार खेल शाश्वत काल से होता आ रहा है।

दूसरे दिन हम एक नदी पार हुए। नदी छोटी थी। कहना मुश्किल होगा कि यह बागमती की ही शाखा है या नहीं। चारों तरफ से पर्वतमालाओं से घिरी सभ्यता से दूर, छोटी-छोटी गोरखा बस्तियों को छोड़ देने पर चारों ओर से सन्नाटा। कुछ दिनों पहले ही इस इलाक़े में ओले पड़े थे। आज भी भीषण ठण्ड है हवा में। सामने की चढ़ाई पथ पार कर अब कहीं मिली घाटी। पथ पर फिसलन, मिट्टी रक्तिम है। इधर-उधर वन-जंगल और फिर इसी में कुछ खेती-बाड़ी का निशान भी। उसी में फसल। आगे-पीछे पहाड़ों की दीवार, उस पार का कुछ दीख नहीं पड़ता। श्रीशगिरि पार किया, अब पार करना पड़ेगा चन्द्रगिरि। पथ लम्बा है, मगर चढ़ाई कम है। दो वृहत् पर्वतों की चोटियों के बीच यह घाटी है। ज़रा उतराई मिली तो चिन्ता हुई, क्योंकि इतनी ही चढ़ाई तोड़नी पड़ेगी। हम लोग समतल पा कर खुश होने वाले हैं।

आराम और भोजन की बात नहीं उठती। कारण, हम तीर्थ-यात्री हैं। जितनी दूर सम्भव है बढ़ जाऊँगा, यही थी चेष्टा। सवेरे गन्दी चाय पीकर पालित साहब का धीरज टूट गया था। उन के मन की बात थी यह कि शिवरात्रि जैसी एक साधारण बात के लिए इतनी जल्दबाज़ी की जरूरत नहीं है। पार-पत्र में जब समय अधिक है, तब धीरे-धीरे एकाध-दिन यहाँ-वहाँ काट लेने में नुकसान ही क्या है?

कथन युक्तिसंगत है, मगर उन के गले में सोने की सिकड़ी है, इस कारण उन में साहस है—लेकिन मेरी जेब कुछ उत्साहवर्धक जो नहीं है। परिणाम, मुझे जल्दी थी। हालात यह कि मैं जितना तेज़ी से आगे बढ़ जाता पालित साहब उतने ही पीछे पड़ जाते। मील के एक चक्कर में पत्थर की चट्टान पर बैठ उन को जोहने लगता। और तब वे एक मील पीछे रह कर भी किसी एक चट्टान पर बैठे सुस्ताते रहते। इसी प्रकार चलते-चलते दोपहर ढले तो हम चेरलांग की धर्मशाला आ पहुँचे। आखिरी ओर की राह कष्टप्रद थी इस लिए आराम की विशेष ज़रूरत थी।

बागमती के किनारे एक सरकारी आश्रय मिला। वह था लत्तर-पत्तर से छाया तम्बू। बिस्तर के लिए थोड़ा पुआल भी जुटाया गया। मगर नदी की लहर अगर अचानक तेज़ हो गयी तो पानी अन्दर आयेगा—हम लोगों के मन में घबराहट थी,

लेकिन इस से भी अधिक इस बात की चिन्ता थी कि बर्फ़ीली ठण्ड में हमारी रात कटेगी कैसे ?

पत्थर के टुकड़ों की सहायता से चूल्हा जोड़ कर भात बनाने की चेष्टा शुरू हुई। लकड़ी की लपट से रोशनी हुई। उस के बाहर सब अँधेरा है। सुना गया है, आज-कल इधर आदमी खा जाने वाले बाघ का उपद्रव मचा है। आदमी की गन्ध और खट-पट सुन कर वे आयेंगे क्यों नहीं ? शाम के जाड़े में हम नदी तट पर बैठे यों ही थर-थर काँप रहे थे, ऊपर से आदमी को खा-चबा जाने वाले बाघ के भय। पालित साहब इधर-उधर देख-सुन कर अँगीठी के पास से उठ तम्बू के दरवाज़े पर उकड़ूँ हो कर बैठ गये। गरम चाय और नाश्ता पा कर फिर से उन का मिजाज़ लौट आया था। अब अँधेरे के मारे कुछ नज़र नहीं आता। हम सिर्फ़ घबराती निगाहों से ताक रहे थे पश्चिम की ओर। दो विशाल पर्वतों के नीचे की खन्दक से जहाँ से वागमती की तेज़ धाराएँ हरहराती हुई बहती आ रही हैं। इधर कई दिनों से धूप बड़ी तेज़ थी। बर्फ़ पिघली है खूब। आधी रात को धारा और भी फैलेगी, ऐसी सम्भावना है। मन दुश्चिन्ताओं से भर आया था।

भोजन-पानी निबटा कर, पुआल के बिछावन पर कम्बल में मुँह छिपा कर जैसे ही लेटे कि मेरे तम्बू में यात्रियों की संख्या देखते ही देखते बढ़ गयी। अन्दर आठ-एक आदमी की जगह निकल सकती थी, मगर पन्द्रह-एक लोगों ने जगह ली। भिखमंगे, बूढ़े, लँगड़े-लूले, साधु—तरह-तरह के लोगों की भीड़ लग गयी। उन में थी कच्ची उमर की शक्ल की एक बिहारी स्त्री। ललाट पर टिकुली, माँग में सिन्दूर, कलाइयों में चाँदी की चूड़ियाँ। पहनावा काले चौड़े किनारे की साड़ी—पहले से ही हमारी देखा-देखी थी। उस ने आ कर जगह ली एक गंजे बूढ़े महाराज की बग़ल में। उस स्त्री के बोल-चाल से, हँसी-मज़ाक़ से, खुलेपन से, और गीत की गुनगुनाहट से बंजर में मानो काले मेघों की घटा घनी हो आयी। पालित महाशय की हिन्दी में पैठ की कम थी, फिर भी वे कम्बल में मुँह डाले भीतर ही भीतर हँसी में लोट-पोट। स्त्री की प्राण शक्ति खूब थी, उस की बोल-चाल से लोगों की आँखों की नींद भागने लगी। मगर यह भी कहा गया कि आदमी की आवाज़ पा कर नरभक्षक बाघ का दिशा पकड़ लेना सम्भव है। और पुरुषों की अपेक्षा स्त्री में ही नरभक्षी बाघों का आकर्षण है। तब कहीं वह चुप हुई।

आधी रात के शोरगुल से हमारी नींद टूट गयी। गठरी से मोमबत्ती निकाल कर जलायी गयी। हम डण्डे सँभालने लगे। मगर बात कुछ और थी। गंजा बूढ़ा गेरुआधारी महाराज सोया था स्त्री के ठीक बग़ल में। अचानक नींद में उस स्त्री को लगा कि बाघ नरभक्षक के पंजे में वह नहीं थी, पड़ी थी बूढ़े की बाँहों में। बत्ती जला कर हम लोगों ने देखा कि उस बूढ़े को वह स्त्री पीट रही है। मगर बहुत अरसे की तपस्या के फलस्वरूप महाराज संयमी और इतने अहिंसक थे कि ताबड़तोड़ घूँसे पड़ने के

बाद भी क्रोधित नहीं हो रहे थे। वह बूढ़ा यह समझाने की कोशिश कर रहा था कि उस ने अपने एक पुराने शिष्य को सपने में देखा और उस का हाथ उस की ओर बढ़ गया। मगर वह स्त्री उस की इस बात पर तिलमात्र भी विश्वास न कर के यह चिल्ला कर बताना चाहती थी कि पुरुष के हाथों और उँगलियों का अभिप्राय प्रत्येक युवती समझती है, और इस आधी रात को महाराज का ज़ोर-ज़ोर साँस लेना और उस की गरमी का रहस्य किसी भी बुद्धिमान् औरत से छिपा नहीं है।

शोरग़ुल और कहा-सुनी हुई बहुत देर तक। मोमबत्ती के मालिक ने मोमबत्ती को बुझा कर रख ली। स्त्री और महाराज जिस जगह सोये थे ठीक उसी जगह सोये रहे। जहाँ तक याद आता है, आखिरी रात के वक़्त फिर दोनों में एक दबा कलह हम लोगों को सुनाई पड़ा था।

इस के बाद सुबह हुई। जाड़े में हाथ-पैर जमते जा रहे थे। आज सुबह-सुबह ही हम चेत्लांग छोड़ कर चन्द्रगिरि की चोटी का अतिक्रमण करेंगे। चढ़ाई बहुत कठिन है, लेकिन यही शेष चढ़ाई है। इस के बाद उतरना होगा थानकोट में, वहाँ से सीधा काठमाण्डू। हम यात्रा के लिए तैयार हो रहे थे। धूप चढ़ने से पहले ही चल पड़ेंगे।

पालित साहब सहज ही टस से मस होना नहीं चाहते, वे ज़रा सुस्त चाल वाले हैं। उन्हें चाय चाहिए बार-बार। ज़रा जम कर बैठना, ज़रा कल रात की चर्चा—साथ ही गरम-गरम चाय, पूरी, कचौड़ी। सभी कुछ लोभनीय हैं, इस में सन्देह नहीं। लेकिन जेब की भाषा तनिक दूसरे प्रकार की है, जिसे जितनी देर होगी, उतनी ही अमानत में तनाव आयेगा। यही है मुश्किल। जो भी हो, मुझे भी थोड़ी ढील देनी ही पड़ती है।

आज सबेरे हम लोगों ने ईजाद किया कि महाराज और उस हिन्दुस्तानी स्त्री में खूब मेल-जोल सम्भव हुआ है। स्त्री मज़ाक़ में सरल है, और बूढ़ा महाराज भी काम-काज में बहुत उत्साहित। दोनों संग-संग घूम-फिर रहे हैं। बाद में पता चला कि औरत को बच्चा नहीं होता इसी वजह से झगड़ा कर अकेली पशुपतिनाथ जा रही है कि बाबा पशुपतिनाथ, अगर उस की मनोकामना पूरी करें, इसी आशा में। इस कहानी को आधार बना कर मैं ने बाद में 'देवता का ग्रास' नाम से एक रचना प्रकाशित करवायी थी। बाबा पशुपतिनाथ ने स्त्री की मनोकामना पूरी की थी।

चेत्लांग के सामने ही खूब बड़ी पर्वत की चोटी है। उस की बग़ल से सैकड़ों यात्री चींटी की तरह रेंगते हुए ऊपर चढ़ रहे हैं। सीसागढ़ी की तरह इस का भी नाम चन्द्रगढ़ी है। बहुत ही कष्टदायक घुमावदार पगडण्डी। अमरनाथ तीर्थ में जो लोग गये हैं, मन्दाकिनी से उखीमठ में गये हैं, जो बीस-बाईस वर्ष पहले त्रियुगीनारायण गुप्त काशी गये हैं, वे चन्द्रगिरि की चढ़ाई के बारे में खूब जान सकेंगे। एकमात्र भरोसा यही है कि इस पथ की लम्बाई कुछ कम है। चारेक मील से अधिक नहीं। जैसा है भूटान की

सीमा में बक्सा जेल का पथ। कुल डेढ़ेक मील की चढ़ाई। यही ग़नीमत है। नहीं तो कष्ट भूले नहीं भूलता। जैसा मसूरी से 'कैम्पटी' जल-प्रपात का पथ। छह मील मात्र चढ़ाई है। इसी से लोग सहज में भूल जाते हैं। मगर जिस कारण से लोग नैनीताल के 'चायना-पीक' की बात भूलते नहीं उसी कारण से ही चन्द्रगिरि की बात आज भी मैं भूला नहीं हूँ। अब पता चला है आज कल रक्सौल और काठमाण्डू के बीच स्वर्गीय सम्राट् त्रिभुवन के नाम से एक राजपथ का निमाण-कार्य चालू है।

शीशगिरि और चन्द्रगिरि दोनों चोटियाँ समुद्र सतह से लगभग आठ हज़ार फ़ुट ऊँची हैं। मगर भीमपैड़ी के बाद से अन्दाज़न पाँच हज़ार फ़ुट तक चढ़ाई चढ़नी पड़ती है। शेष चढ़ाई-उतराई तो अमलुकगंज से भीमपैड़ी तक बस से ही आया-जाया जाता है। चन्द्रगिरि चोटी और इधर-उधर की पर्वत शृंखलाएँ घनघोर जंगलों से ढकी हैं। निर्विघ्न हिंसक जन्तुओं की विचरण भूमि। चोटी की ओर देखते ही चारों तरफ़ का अम्बर विस्तृत होता जाता है। नीचे की ओर जब रहते हैं तब, खुद को बहुत बड़ा समझते हैं। जितना ऊपर चढ़ते हैं, विश्वप्रकृति की ओर जितनी बार दृष्टि जाती है, तब देखता हूँ, खुद कितना छोटा हूँ। संसार यात्रा में हमारे आस-पास जितना लोभ, मोह, अभिमान, आकर्षण, हमारा सुख-दुःख हमारे अन्दर षट रिपुओं का खेल जो होता है—वह कितना नगण्य है, कितना साधारण है, आसमान यहाँ बहुत बड़ा है। इस पृथ्वी का आश्चर्य।

चन्द्रगिरि की चोटी पर देखी कपड़ों के टुकड़े से बँधी हुई बहुत सी झण्डियाँ! हिमालय में जहाँ भी जाइए यह दृश्य देखने को मिलेगा। सिक्किम में यही, अमरनाथ में यही, गढ़वाल, कुमायूँ में यही, भूटान की सीमा पर यही, हरिद्वार के चण्डी पर्वत के पथ में यही। यही जब चलन है, तब यह है प्रचलित कुसंस्कार, इस में सन्देह नहीं। मगर यह कुसंस्कार ही एक अखण्ड एकता के बन्धन में बाँधे हैं हिमालय को एक प्रान्त से अन्य प्रान्तों तक। काले कपड़े उड़ा कर कौओं को भगाया जाता है। लाल कपड़ा देख कर भैंस बिगड़ उठती है। सफ़ेद कपड़े का टुकड़ा उड़ाने से हिमालय में भूत, प्रेत, पिशाच वह इलाक़ा छोड़ कर दूर भाग जाता है। यही श्वेत पताका उड़ती रहती है समग्र तिब्बत की गुफाओं में।

चोटी पर चढ़ कर देखा, उसी प्राचीन पृथ्वी को। मगर उत्तर में है उस का एक स्वप्न लोक। समग्र हिमालय पर बर्फ़ का साम्राज्य है—उस की हरेक चोटी दूधिया उजली बर्फ़ से ढँकी है। मानो हरेक चोटी है तुषार शुभ्र मन्दिर, महायोग में आसीन। वायु-स्तर भेद कर उन पर जा पड़ी है धूप। एक उज्ज्वल केसरिया-स्वर्ण आभा जैसे फैली है। यहाँ सब चुप हैं। मनुष्य की बोली, भाषा, मन्त्र, स्तव, गीत, सभी चुप। चेतना, प्राण, विचार ज्ञान, बुद्धि—सभी कुछ मानो थर-थर काँप रहे हों। मेरे इस दृष्टि बिन्दु में बहुत क्षण के बाद अपने-आप को झकझोर कर यह जानना पड़ा कि अब हम लोगों को आगे बढ़ना है।

ऊपर से आँखें उतार कर नीचे करनी पड़ती हैं। नीचे है विराट् नेपाल। नीलाभ है उस की घाटी और खेत-खलिहान। बड़े-बड़े मन्दिर और प्रासादों के गुम्बद यहाँ से कितने छोटे लग रहे हैं। मध्य में है रौप्य नगर काठमाण्डू, मानो खिलौनों का घर सजा हो। कितना विराट् है, कितना व्यापक है, कितना विस्तृत है! मगर हिमालय के सामने है बहुत नगण्य। इस पश्चाद् भूमि के सम्मुख खड़े हो कर सम्पूर्ण काठमाण्डू शहर को लगता है एक फ़ुट लम्बा-चौड़ा एक बच्चों का खिलौना। इस प्रकार खड़े हो कर कितनी बार कितनी ही हिमालय की घाटियों को विस्मय-भरी दोनों आँखों से देखता रहा हूँ। मैसूर के ऊपर खड़े हो कर देहरादून को, बनिहाल सुरंग के मुहाने पर खड़े हो कर समग्र कश्मीर, हनुमान् चट्टी को पीछे छोड़ कर बदरिकाश्रम, गोपेश्वर पर्वत के ऊपर से बहुत दूर अलकनन्दा के तट पर स्थित चमोली पहाड़ी शहर को, ब्रजेश्वरी मन्दिर के इलाक़े से पंजाब की विशाल काँगड़ा उपत्यका को और चण्डी मन्दिर के ऊपर खड़े हो कर हरिद्वार का मनोरम दृश्य देख चुका हूँ। कई क्षण आराम कर के अब हम नीचे की ओर क़दम बढ़ाते हैं। हमें अन्दाज़न चार हज़ार फ़ुट नीचे उतरना होगा, दो मील के फैलाव में। काम कठिन है। यह समझ में आता है। इस विराट् प्राकृतिक प्राचीरों के अन्तराल में काठमाण्डू शहर को रखा गया है। इन्हीं अवरोध से बाहर रखा गया है सभ्यता को। मगर इस ख़तरनाक उतराई की ओर देख कर पहले तो हम घबरा उठे। उतरते वक़्त शरीर में सन्तुलन न हो अगर, तो मृत्यु निश्चित है। इस के अलावा घुटनों पर ख़ूब ज़ोर पड़ेगा। इन पहाड़ों की चढ़ाई में संकट नहीं है, सिर्फ़ कलेजे में धक्का लगता है और मेहनत ख़ूब पड़ती है। मगर उतराई में लाठी अच्छी तरह न पकड़े रहने से संकटों की आशंका रहती है। याद आती है पारसनाथ की बात। वहाँ हज़ारीबाग़ की ओर जो श्वेताम्बरी दिगम्बरी धर्मशालाओं की तरफ़ से पारसनाथ के पहाड़ी मन्दिर पर चढ़ चुके हैं, उन्हें कुछ अनुभव है। फिर भी पारसनाथ में सुविधा यह है कि उस का पथ छह मीलों में फैला है। यहाँ बहुत हुआ तो ढाई मील। पता चला है कि इस उतराई पथ पर हर वर्ष ख़ूब दुर्घटनाएँ होती हैं। पैरों की असावधानी से चट्टानों में ठोकर लगने से चट्टानें बहुत बार लुढ़क पड़ती हैं। बहुत से लोग डग चूक कर गिर पड़ते हैं। मगर तीर्थ-यात्रा के पथों में जितने ही दुर्गम इलाक़े होते हैं उतने ही वह मनुष्य की साहस और शक्ति को आकर्षित करते हैं। समग्र हिमालय के भ्रमण में मनुष्य की शक्ति, साहस, धैर्य, अध्यवसाय और आत्मनिग्रह की परीक्षा का रूप यही तो है। तुम हो यदि शान्त, तुम हो नम्र, तुम हो धीर, तुम हो एकाग्र, कष्ट-सहिष्णु तभी हिमालय के स्वाभाविक स्वभाव के यथार्थ स्वरूप का दर्शन पा सकोगे!

लगभग डेढ़ घण्टे लगे थानकोट पहुँचने में। छोटा सा क़सबा। चारों ओर से मूर्त ग़रीबी। यहाँ से काठमाण्डू अन्दाज़न छह-एक मील होगा। यहाँ से ही बस छूटती

है। अब हमारे चेहरों पर तीर्थयात्री होने की छाप प्रकट हुई। गर्द-गुबार से भरा कम्बल, गन्दा पहनावा, मैला सिर, ठण्ड से त्वचा फट जाने के चकत्ते। इस यात्रा में यात्री-जनता के बीच सहज ही मिल गया हूँ। इस के पहले कोई-कोई ग़रीब यात्री हम से भीख माँगते थे, अब अगर हम भीख माँगना चाहें तो किसी को सन्देह नहीं हो सकता। पहाड़ के ऊपर से उतर आने पर बहुत सुख की साँस लेता हूँ। पिछले तीन-चार दिनों में पार किये गये समतल सहज रास्ते भूल चुका हूँ। हम बस पर सवार हो गये।

पीछे छूट गयी गुफाओं, कन्दराओं में चन्द्रगिरि की आरण्यक वन्य भूमि। पहाड़ी तराइयों में जन्तु-जानवर और सरिसृप अपने स्थायी डेरों में हैं। और इसी पर्वत-शृंखला के किसी एक रहस्यलोक के भीतर से बागमती बह जाती है, जिस के इस पार-उस पार के अंचलों में आज भी मनुष्य के पैर नहीं पड़े हैं। याद आती है अलकनन्दा की किसी एक शाखा नदी की। चालू सड़क से कुछ दूर, जहाँ जाने की ज़रूरत कभी नहीं पड़ती। उसी नदी की गोद में प्रस्तर-शिला पर भी पाँवों से उतर पड़ा। वह नदी दो बृहद् पर्वतों के मध्य से कुछ दूर जा कर अदृश्य हो गयी है। वहाँ कभी कोई आदमी पहुँचा है, इस का निशान नहीं मिलता। ऊपर से उतर रही है उस की धारा। उस के तेज़ बहाव में बहती हुई चट्टानों पर बिखर-बिखर झाग दे रही है। बड़ी-बड़ी मछलियाँ ऊपर से पानी के संग नीचे उतर रही हैं। छोटी नदी के दोनों किनारों पर पहाड़ों के ऊपर से वसन्त ऋतु पूरी उमंग के साथ नवमय गुहागह्वरों के आस-पास थिरक रही है। चट्टानों और विशाल वृक्षों पर वन-बल्लरी का विस्तार है। अजान-अनाम पुष्प-सँभार से वृक्षों के तने नदी में झुक गये हैं। बड़े-बड़े रंगीन पक्षी की ध्वनि आ रही है। बहुत बड़े दो डैने फैलाये दो लाल मोहन आ उतरे हैं। पहाड़ के कोटरों में अपरिचित पंछी ने अण्डा दिया है। भयानक चट्टान की बग़ल में एक विचित्र वर्ण का विशाल सर्प ख़ामोश पड़ा है। देखते-देखते और भी आगे बढ़ गया। दोपहर की ख़ामोशी में चिड़ियों की चहचहाहट के साथ साँपों की आवाज़ आ रही है। तरह-तरह के मकड़े पहाड़ों में अपने द्वारा बुने जाल में उलझे हैं। कभी दूर की बस्ती से कोई पशु इस नदी में पानी पीने नहीं आता होगा। सम्पूर्ण निःस्तब्धता की ऐसी ही तो है वन्य प्रकृति।

वहाँ खड़े हो कर मान लिया है कि चन्द्रलोक की चाँदनी से आकाश-पथ के द्वारा शुक्लपक्ष में देव-बालाएँ यहाँ उतरती हैं। वे इस नीली धारा में अवगाहन कर उस शिला के नीचे जा बैठती हैं। उन की देह की छटा से यह तलहटी रोमांचित हर्ष-पुलकित हो उठती है। ऊपर दूर पर ईशानकोपा के पर्वतों पर से चला गया है संकीर्ण पथ। कहीं जैसे खो गया है। और यहाँ नीचे निकट ही चट्टानों पर सूख गयी रक्त की धारा। अब भी यह रक्ताभ है और उसी के निकट झाड़ी में सद्याहत सींग वाले हिरण की खण्डित देह पड़ी है। सहसा शंका होती है, जैसे अगल-बग़ल से कोई हमें देख रहा है। षष्ठेन्द्रिय के द्वारा मैं अनुभव कर रहा हूँ कि ऐसे में ही मेरा सारा

शरीर सिहर उठता है। मैं अजनबी हूँ, इस साम्राज्य में मेरा अनधिकार प्रवेश है। वहाँ का कोई एक मेरा पीछा कर रहा है। सहसा चेत हुआ हाथों में मेरा कोई हथियार नहीं है। तब बोझिल पैरों को घसीटता हुआ लौट आया हूँ।

कंकड़ बालू वाली राह तय करने में बस को आधा घण्टा लगा। जहाँ उस ने उतारा, वहीं बग़ल में पानी का नल था। यहाँ पहुँचने में बागमती का पुल पार करना पड़ा है। मगर काठमाण्डू का रूप देख कर मन पहले खिन्न हो उठा। जितना गन्दा, उतना ही घिनौना। कुल मिला कर एक हृदय-विदारक संकीर्णता से घिरा हुआ—प्रत्येक चतुष्कोण दो पाटी छाजन वाले घरों के जितने भीतर निगाह जाती है, वही एक अस्वास्थ्य का संकेत, बीमारी के जैसे एक गलीज साम्राज्य! पास ही त्रिपुरेश्वर का मन्दिर है। लकड़ियों के ऊपर चमत्कृत कर देने वाली कारीगरी। निवास-स्थानों का अत्याश्चर्य वास्तुकला से निर्माण किया गया है उस का छन्द, उस की यात्रा, उस की सुषमा देखते हुए मुग्ध हो उठा हूँ। मगर शीत-प्रधान देश होने के कारण नागरिकों को गन्दे और अस्त-व्यस्त घर-द्वार में देख कर उत्साहहीन ही हुआ।

सड़क के ऊपर पड़ा है सिन्दूर लगा शिवलिंग। उस के निकट ही पड़ा है हाँडी-काठ—वहाँ ताजा ख़ून थिरक रहा है। एक स्वाधीन देश का राजपथ होते हुए भी इस की श्री-समृद्धि की ओर किसी की नजर तक नहीं है। कहीं गुम्बद है, कहीं पैगोडा तो कहीं शाक्त मन्दिर।

चिलचिलाती धूप। अतः नल के ठण्डे पानी में सड़क पर ही जैसे-तैसे स्नान कर के संकट स्वयं मोल ले लिया। गला बैठ गया और सिर भारी हो आया। स्नान के बाद चक्कर काटते हुए निवास-स्थान ढूँढ़ने निकला।

काठमाण्डू का प्रकृत नाम क्या है यह मैं नहीं जानता। बहुतों का कहना है कि इस का नाम है काष्ठमण्डप या काठमण्डप। काठमाण्डू इसी का अपभ्रंश है। आधुनिक काठमाण्डू का निर्माण स्वर्गीय महाराजा चन्द्र शमशेर जंगबहादुर ने किया था। राजपथ पर उन की प्रस्तरमूर्ति स्थापित है। निकट है कलकते की लाल बगान। जैसा एक तालाब—रानीबाग़। तालाब के बीचोंबीच है एक मन्दिर—अमृतसर के स्वर्णमन्दिर जैसा ही। रानीबाग़ के उस पार है, एक घण्टाघर, जिसे टॉवर क्लॉक कहा जाता है। चारों ओर पहाड़ और मध्य उपत्यका में बसा है काठमाण्डू। इसी के अगल-बग़ल बसे हैं छोटे-छोटे गाँव और क़सबे। जिन के नाम हैं स्वयंभू, दक्षिण काली पाटान, नारायण थान, दत्तात्रेय, चौबहार इत्यादि। कुछ घरेलू काम-धन्धे, कुछ खेती-बाड़ी, यही है सामान्य जीविका। इस के अतिरिक्त नौकरी-चाकरी की व्यवस्था नहीं के बराबर है। लड़कों की बड़े होने पर तो उन की नजर पलटन के दफ़्तर पर टिकती है, लड़कियाँ वय प्राप्त होतीं तो उन की कामना केटी हो कर राजपरिवार में जा बसने की होती है। जो राजा हैं, वे धीराज के नाम से जाने जाते हैं। प्रधानमन्त्री हैं महाराजा धीराज हैं

पाँच सरकार, महाराजा तीन सरकार, ऐसा मालूम हुआ। यह सब बाहर के लोगों के लिए कोई अर्थ नहीं रखता, इसी लिए इन बातों में कोई सिर भी नहीं खपाता।

चारों ओर पर्वत शृंखला—मध्य की यह उपत्यका किसी ज़माने में एक विशाल जलाशय थी। इस जलाशय के जल को जिन्होंने तलवार के वार से काटा था, वे थे नेपालवासियों के आराध्य देवता मंजूदेव। तलवार के उसी वार से बागमती नदी की उत्पत्ति हुई। तब से ही यह घाटी आदमी के रहने लायक़ बनी। कशमीर में भी ठीक वैसी ही कथा प्रचलित है। वहाँ कश्यपमुनि की कृपा हुई थी। कश्यप मीर, इसी से नाम पड़ गया कशमीर। श्रीनगर के डल नामक जलाशय को नाले में घसीटना ठीक होगा या नहीं, इस विषय में मेरी कोई जानकारी नहीं है। नैनीताल की कथा भी ऐसी ही है। नयनी जलाशय के नीचे नैनीदेवी रहती थीं—इस लिए निश्चय ही उन की कोई कृपा हुई होगी।

आज नेपाल में बह रही है नयी हवा। अतः पुराने दिनों की कहानी इतिहास में पड़ी रहे। अभी उस दिन तक राजा के लिए नेपाल की सीमा से बाहर जाना अमंगल-सूचक एक गर्हित काम था। आज यह धारणा मिट गयी है। स्त्रियों का राज घराने में केटी होने का तात्पर्य है उन की क़िस्मत पलट जाना। मगर लगता है यह रिवाज भी अब कम होता जा रहा है। नेपाल की बुद्धि प्राचीन पन्थी थी। ज्ञान निर्माणात्मक संस्कार रहित। समाज में, धर्म में, शिक्षा में, दैनिक जीवन प्रणाली में सर्वत्र एक सा। इसी से मन पिछड़ा हुआ था। परिणामस्वरूप व्याधि, अस्वास्थ्य, राजकीय दमन एवं हताशा इतने दिनों तक उस के समाज-जीवन को जकड़े थे। ऐसी अवस्था में ही बंगाली जा पहुँचे नेपाल। वे अपने साथ ले गये शिक्षा और संस्कृति। स्कूल-कॉलेज में, डाकघर में, राजकोष में, सरकारी दफ़्तरों में, अस्पतालों में और पूर्ति विभाग में, कचहरी में बंगाली जा बसे। मैं जब गया था, तब तो वहाँ महाराजा के गृह-शिक्षक, मुंशी, चिकित्सक, यहाँ तक कि उन के रसोइयों के प्रधान थे बंगाली। एक समय बंगाल के बहुत से क्रान्तिकारी दलों के नौजवान वहाँ नाम बदल कर रहने के लिए मजबूर थे। आज भी नेपाल में बंगाली बहुत लोकप्रिय हैं। अभी उस दिन तक अँगरेज़ों ने उन के डाक-विभाग पर अपना क़ब्ज़ा जमाये रहे, उन की भलाई-बुराई में ज़बरदस्ती अभिभावक बने रहे एवं पार-पत्र की बाध्यता से भारत से नेपाल को मिलने नहीं देते रहे। अँगरेज़ों के चले जाने के बाद श्रीशगिरि और चन्द्रगिरि की दीवार लाँघना, अब कहीं सरल हो गया है। नये रास्ते बने हैं। अँगरेज़ों के मानसपुत्र अर्थात् महाराजाओं का समूह इतने दिनों बाद राजपाट समेट हट गये हैं। दक्षिण की हवा उन के मुँह को छूने लगी है। उन के सभी बन्धन टूट गये हैं।

कल पशुपतिनाथ में शिवरात्रि का मेला है। मुझे बुखार आ गया है, सिर उठाना मेरे लिए मुश्किल है। बुखार बढ़ता जा रहा है। पालित साहब ख़ूब उन्मुक्तता का अनुभव कर रहे हैं। उत्साह से वे यहाँ-वहाँ घूम रहे हैं। गले में सोने की जंजीर

लटकाये वे तालाब के किनारे-किनारे हवा खा कर लौटे। उन के बायें हाथ की दो उँगलियाँ सोने के जंजीर की लड़ियों को प्रायः टटोलती रहती हैं। गाना वे नहीं जानते, यही मैं जानता था और जब वे गाना गाते रहे तब भी मैं माने बैठा था, वे गाना नहीं जानते।

अस्पताल के एक बंगाली डॉक्टर के घर हम ठहरे थे। उन्होंने मेरे इलाज का जिम्मा लिया। भले आदमी अकेले थे। यानी खाने-पीने की एक समस्या थी। जो भी हो, एक कमरा मिला बढ़िया। उसी की खिड़की से देखता रहा, काठमाण्डू की ओर। मुझे खूब याद है, 'महाप्रस्थान के पथ पर' का एक परिच्छेद इसी खिड़की पर बैठ कर लिखा था।

नेपाल का इतिहास मेरा अच्छी तरह जाना नहीं है। सुना है, ईसा पूर्व सप्तम शताब्दी में तिब्बत राज ने नेपाल पर आक्रमण किया था और नेपाल राज अंशुवर्मा की कन्या भृकुटि के संग उन का विवाह कर दिया गया था। तभी से तिब्बत के साथ नेपाल का सामाजिक और आध्यात्मिक संयोग है। आज भी तिब्बत निवासियों के लिए नेपाल एक तीर्थ स्थान है और प्रतिवर्ष लाखों तिब्बती नेपाल के महाबोधि, स्वयम्भू और नमो बुद्धाय के मन्दिरों की परिक्रमा के निमित्त वहाँ आ इकट्ठे होते हैं, इस के बाद कभी मुसलमानी आक्रमण के परिणामस्वरूप बहुत से राजपूत परिवार भाग कर नेपाल आये। इस बात को भी छह सौ वर्ष हो गये। तब नेपाल में मंगोलीय पहाड़ी जाति थी। वे न सिर्फ़ शान्तिप्रिय थे, बल्कि अपनी कला-कारीगरी और स्थापत्य में भी लीन रहते थे। राजपूतों ने उन के हाथ से शासन अपने हाथ में लिया था। परिणाम-स्वरूप बाद में इसी राजपूत और मंगोलीय सम्मिश्रण से गोरखा जाति की उत्पत्ति हुई। वही गोरखा पश्चिम नेपाल से धीरे-धीरे विस्तार पाते फैल गये और उन्होंने गोरखा राज्य की स्थापना की। बहुत शक्तिवान् हो कर ये ही सम्पूर्ण नेपाल पर शासन करने लगे।

आज भी उन्हीं का राजपाट है और यह उन्हीं का प्राप्य है। वैसे कभी-कभी आज भी दोनों दलों के बीच लड़ाई की चर्चा की भनक मिलती है। एक दल गोरखा नेपालियों का, दूसरा दल है नेपाली राजपूतों का। जो भी हो नेपाल का बहुत सारा हिस्सा आज भी अज्ञात है, उपेक्षित है। बीहड़ और दुरारोह पर्वत शृंखलाओं के अग़ल-बग़ल घाटियाँ हैं मगर वहाँ बस्ती नहीं है। कहीं बर्फ़ का चिरस्थायी ढेर है। कहीं पाले का संत्रास तो कहीं बर्फ़ीली नदी की भयंकरता से घिरा पेड़ पौधा-हीन, पथरीला मैदान है। इन्हीं के उत्तर में है, कंचनजंघा और गौरीशृंग। काठमाण्डू से प्रायः दो सौ मील पार करने पर मिलेगा नामचे बाज़ार—वहीं से गौरीशृंग के लिए सड़क गयी है। वहाँ गौरीशृंग का एक प्रादेशिक नाम प्रचलित है।

काठमाण्डू के मध्य बिन्दु से अन्दाजन ढाई मील दूर पर है पशुपतिनाथ। मन्दिर का नाम गाँव जैसा ही है। जैसे केदार-बदरी, जैसा है ज्वालामुखी, जैसा है बैजनाथ। शहर से बस चलती है, मगर भीड़ से भरी। इस लिए तेज बुखार में भी

दूसरे दिन हमें पैदल ही जाना पड़ा। पालित साहब के पास कुछ पूँजी थी। वे चले गये बस से। तय हुआ कि मन्दिर में या लौटने पर फिर मुलाक़ात होगी। पैदल चलने में एक सुविधा है, भ्रमण का निर्वाह हो जाता है। हिमालय में जब भी बस से भ्रमण किया है, देखा बहुत, किन्तु उपलब्धि कुछ नहीं हुई। पैदल जाते समय राजबाड़ी बायीं ओर पड़ती है। मगर राजबाड़ी कहने मात्र से जिस प्रकार उद्यान सरोवर और फ़ौव्वारे की कल्पना होती है, यह ऐसी राजबाड़ी नहीं है। यह है एक विशाल इमारत, जैसी है कूँचबिहार की राजबाड़ी, नाटौर की राजबाड़ी, कलकत्ते का गवर्नर हाउस, दिल्ली का राष्ट्रपति भवन। ये सभी आँखों को सुख देती हैं। किन्तु यह राजबाड़ी बिलकुल सपाट है। सड़क के ऊपर भीमपैड़ी जाने वाली रस्सी-राह—वैसी है जैसी दार्जिलिंग में है। जनता की भीड़ के संग बढ़ रहा हूँ। बुखार के मारे रास्ते में कई बार कई जगह रुका भी। आँखें चढ़ी हुई थीं, इस से देखने में असुविधा भी हुई है।

धीरे-धीरे हम बागमती पुल के पास आ पहुँचे। निकट ही है श्मशान घाट नदी के उस पार। गुह्येश्वरी का मन्दिर और पीठस्थान। बागमती के तट पर ही पशुपतिनाथ का मन्दिर है। मन्दिर की प्रमुख चोटी सोने की चादर से मढ़ी है, चाँदी का तोरण है और मन्दिर के बाहर विशालकाय एक कनक कान्तिपूर्ण मूर्ति है। पशुपतिनाथ के अगल-बग़ल और भी बहुत से मन्दिर हैं। मन्दिर का चबूतरा खूब बड़ा है ओर चारों ओर से संगमरमर के पत्थरों से जड़ा है। मुख्य मन्दिर के भीतर पशुपतिनाथ का कृष्णवर्णी पंचमुखी प्रस्तर विग्रह कसौटी की वेदी पर प्रतिष्ठित है। भीतर, जैसा कि अनेक मन्दिरों में दीखता है, उतना अँधेरा। भीड़ के रेले को रोकने के लिए मूल मन्दिर के चारों ओर के चार दरवाज़ों में काठ का बेड़ा लगा दिया जाता है। फिर भी यात्रियों के समूह को भयंकर भीड़ खड़े हो कर भीतर अच्छी तरह कुछ देखने नहीं देती।

गुह्येश्वरी मन्दिर में मूर्ति नहीं है, है चट्टान। सोने की चादर से मढ़ी वही है महापीठ। यहाँ दक्ष-कन्या सती का गुह्य-अंग गिरा। जैसा कि कामाख्या में देख आया हूँ, इसी सती का योनिपीठ। मन्दिर में प्रवेश कर, कई क़दम उतर, अँधेरे में उसी चट्टान के दर्शन करने की महिमा है। पशुपतिनाथ की पूजाविधि शैव है मगर गुह्येश्वरी की पूजा है शाक्त। यहाँ मुर्ग़ा और पशु को बलि का चढ़ावा चढ़ता है। शाक्त और बौद्ध यहाँ आ मिले हैं। यह मिलन नेपाल के मच्छीन्द्रनाथ के देवस्थान में दीखता है। दोनों जातियों के लोग यहाँ पूजा चढ़ाते हैं। पशुपतिनाथ में सम्राट् अशोक आये थे। उन के जमाने की चार बौद्ध मूर्तियाँ आज भी विद्यमान हैं। बग़ल में है मैञ्जूदेव का मन्दिर, जिस की तलवार के वार से पानी कट गया और इस घाटी को जन्म मिला। यहाँ किंवदन्ती है कि मंजूश्रीदेव चीन से आये थे। यही कारण है कि तिब्बत और नेपाल के धार्मिक संस्थानों में मेल है। वहाँ से तीर्थ यात्री चले आते हैं बुद्धनाथ स्तूप में। वे काठमाण्डू तक आते हैं। उस स्तूप से निर्गत पर्वत जल वे चीन

और तिब्बत ले जाते हैं। दलाईलामा यही जल स्पर्श करते हैं।

शिवरात्रि के मेले में राजा का एक बहुत विराट् जुलूस आया। राज-दर्शन होने में देर नहीं हुई। शिविका में आयीं अन्तःपुरवासिनी असूर्यम्पश्या पुरनारियाँ। उन के संग-संग आये अमात्यगण एवं राजपुरुष। पालित साहब को इस भीड़ में कहीं ढूँढ़ नहीं पाया।

काठमाण्डू के क़रीब फ़ौजी अभ्यासों का मैदान अभी हाल का है। इधर आ जाने पर नयी सभ्यता का कुछ आभास मिलता है। इस की सीमा पर प्राचीन निवारों की राजधानी थी, जिस का नाम है षण्डिखाल। इन निवारों से ही पुराने जमाने में गोरखाओं ने शासन छीना था। इस के अतिरिक्त भ्रमण योग्य स्थान हैं—पाटन और भटगाँव। ये थे प्राचीन नेपाल की राजधानी। वहाँ भी निवारों की स्थापत्य और शिल्प कारीगरी का प्रमाण मिलता है। यात्रीगण नीलकण्ठ के किनारे जा कर विष्णु-मूर्ति और वसुधारा का दर्शन करते हैं। अस्वस्थ होने के कारण मैं वहाँ नहीं जा सका।

इस के बाद तीन दिनों और बुखार में अचेत पड़ा रहा। समग्र हिमालय पर्वत श्रेणियों के भ्रमण के दौरान यही मेरी पहली और आखिरी बीमारी है। जो भी हो, डॉक्टर ने उस यात्रा में निमोनिया और विकार के लक्षण के सन्देह में नेपाल से लौट जाने की सलाह दी। श्रीशगिरि और चन्द्रगिरि के अन्दाजन बीस मील पहाड़ी मुझे झम्पान से तय करना पड़ेगा।

झम्पान के सिवा कोई चारा नहीं। मगर रुपये। झम्पान के लिए अलग से रुपये हमारे पास नहीं हैं। पालित साहब खाना-वाना खा कर पान चबाते-चबाते आये और मेरा चेहरा देख कर हँसी में लोट-पोट हो गये। यह क्या, बाबा पशुपतिनाथ के चरण पर सिर रख कर स्वर्ग सिधारने की चेष्टा में हो? मगर यह हो कैसे सकता है!

उन्होंने मेरी उँगलियों के बीच एक सिगरेट रख दी। वे सन्देह में डूबे हुए भयग्रस्त मेरे निकट आये। मैं हँस रहा था। वे खड़े हो कर बोले—देखिए, सोने की चेन मेरे गले में ही है, इसे अब बेचने की जरूरत है—और यह तो आप की मित्राणी की ही चीज है, लेकिन मामला ज़रा डेलिकेट है, उन की चीज उन्हें वापस करने में ही अपनी इज्जत है।

कहना युक्तिसंगत है, किन्तु इस पर कुछ विचार करने के पहले ही बग़ल के कमरे से डॉक्टर दासगुप्ता आ हाजिर हुए। गम्भीर हो कर पालित साहब की ओर देख कर उन्होंने कहा— उन्हें हम पचीस रुपये देते हैं, उन का काम उतने में चल जायेगा।

फाइन! यह कह कर पालित साहब उछल पड़े।

यही मेरी झम्पान पर प्रथम यात्रा थी। पहाड़ों के भीतर से दोनों आँखें बन्द कर, चार आदमियों के कन्धे पर बैठ लहरों पर उतरता हुआ मानो तैर चला, थानकोट से भीमफैड़ी। देह की तरह दोनों आँखें भी एक तरह से आच्छन्न रहीं। आँखें बन्द नहीं, कुछ दीखता भी नहीं, सोया भी नहीं। सिर पर थी चिलचिलाती धूप।

इसी तरह मुझे मानो बहा कर मेरी नियति मुझे ले चली है। हिमालय के एक स्थान से दूसरे स्थान में कभी कोई व्यतिक्रम नहीं। ऐसी एक अस्वाभाविक अवस्था में भी मानो सुनाई दे रही है किसी नये पहाड़ की पुकार। उस पुकार में अजब सा एक रुक्ष, वन्य, क्षुधार्त, कठोर आत्मनिग्रह का स्वर अनुभूत होता है। यह पुकार मुझे कभी कहीं स्थिर नहीं रहने देती !

बहुत दिनों से मेरी यह धारणा है कि हिमालय परिभ्रमण के समय अगर कोई बीमार पड़ता है, तो वहाँ की नदी में अवगाहन-स्नान करने से रोग समाप्त हो जाता है। सन्ध्या के समय भीमपैंड़ी पहुँच कर मैं ने बागमती में स्नान किया था। हवा ठण्डी और पानी शीतल होने के बावजूद मुझे ठण्ड नहीं लगी। घर जब मैं लौटा तब स्वस्थ था। यही लिख कर दासगुप्ता को मैं ने मनीऑर्डर से पचीस रुपये उन्हें भेज दिये। कलकत्ता लौट कर पालित साहब ने अपने गले में पड़ी सोने की चेन उस के वारिस को लौटा दिया था। उस की वापसी में निश्चय ही कुछ हास्यास्पद आडम्बर था। और सोने की चेन जिन्हें वापस मिली, वे हमारा भ्रमण-वृत्तान्त सुन कर पालित साहब को कभी भी माफ़ नहीं कर सकीं।

[७]

विदुषी लेखिका श्रीमती कृष्णादेवी का इस के पहले दो-एक बार जिक्र किया है। उन्होंने पत्र लिखा, स्वर्ग में भी औरतों को शान्ति नहीं मिल सकती। अगर वहाँ विश्वामित्र हुए तो एक और क्रान्ति है। यहाँ यों तो सब ठीक ही है। अकेली और घर से दूर जाऊँगी, इस के जिक्र से ही चारों ओर से हजारों बाँहें बढ़ा कर यही एक बात मुखर हो उठी है कि—जाने नहीं देंगे। जो भी हो आने वाली २५ अक्तूबर जैसी पुण्यतिथि में रात को साढ़े नौ बजे जो गाड़ी दिल्ली से हरिद्वार को जाती है, मैं उसी गाड़ी के ठीक सामने खड़ी रहूँगी। शशांक बाबू साथ हों तो बड़ी खुशी होगी, वे लगाम खींचना जानते हैं। पुनश्च योगिनी का वेश धारण किया है, इस लिए 'क' कहने मात्र से कृष्ण का बोध होगा। 'क' देवी के बदले 'कृष्णा' सम्बोधन से मुझे खुशी होगी। गौरी मैं नहीं हूँ, अतएव नाम सार्थक होगा।

यानी दिल्ली स्टेशन से ही कृष्णा हमारे संग हो गयी। जाड़े का मौसम सामने है। भ्रमण की कल्पना में मित्रप्रवर शशांक चौधरी के पंख फड़फड़ा रहे थे। उन का स्वास्थ्योद्धार, उन का मनबहलाव, उन का निद्रालुत्व छेड़े न जायें, उन का खान-पान का

नियम भंग न हो आदि की ओर हम लोग हमेशा सजग रहे। शशांक का यकृत हमेशा क्रियारत था। कृष्णा बोलीं—वे दुबले-पतले हैं, अगर उन का वज़न कम से कम अगर दस पौंड न बढ़ा तो हमारा हिमालय आना व्यर्थ होगा।

फलस्वरूप, हरिद्वार में कई दिनों रहने पर उस में तीन जने मिल कर पाँच जनों का भोजन मज़े में चट करने लगे। कमर कस कर शशांक की देखभाल में हम जुट गये। उन को बेड-टी, उन का नाश्ता, दोपहर का भोजन, उन का रात का खाना, यानी शशांक की पाचन शक्ति पर हम लट्टू थे और बन्धुवर खुद भी चकित थे। कृष्णा ने हमें धमकी देते हुए कहा—आप अपने देवतात्मा हिमालय पर जितना जी चाहें सिर खपाइए, मेरे लिए तो यह है एक लम्बी छुट्टी। कोई कहीं नहीं है। अब ससुर, जेठ आगे-पीछे दायें-बाँयें—कोई नहीं है। मेरी खुशी का अन्दाज़ा आप नहीं पा सकते! चूल्हा-चक्की सँभाला नहीं है न।

मगर शशांक?

उन के लिए स्वास्थ्य-सुधार! हाज़मा बढ़ाना। वे आप के जैसे भावुक नहीं, गृहस्थ हैं। वह बह नहीं जाते, तैर कर निकल जाते हैं। हिसाबी आदमी हैं वह इत्यादि। अर्थात् इस प्रकार संग-साहचर्य में हमारी राह इस यात्रा में रोमांचक थी। बँधी-बँधाई योजना में भ्रमण करना मुझे ज़रा भी नहीं भाता। यह समझाने की शक्ति मुझ में नहीं थी। ये आयीं हाड़-जुड़ाने और वह आये हैं सेहत बनाने।

हरिद्वार से प्रायः तीस-बत्तीस मील है देहरादून। यहाँ है स्टेशन के क़रीब ही मनसा पहाड़ का सुरंग। इस सुरंग में से ट्रेन जाती है भीमपैंड़ी होते हुए मोड़ ले कर सत्यनारायण की ओर। कुछ दूर आगे राय वालर के निकट जा कर रेल-पथ दो भागों में बँट गया है। दायीं ओर है गंगापथ, ऋषिकेश में गाड़ी ठहरती है। बाँयीं ओर से देहरादून का पथ निकल गया है। यह है एक जंगल। देहरादून घाटी का जंगल विख्यात है। हाथी, बाघ, भालू, काकर, विभिन्न सरीसृप, हुँड़ार और चीते यह सभी अगल-बग़ल के जंगलों में मिलते हैं। कुछ दिनों पहले तक इस राह पर चीतों और बाघों का उपद्रव खूब था। तीर्थयात्रियों का बिना दल बनाये जाने का मतलब था मौत। आज वह दिन नहीं रहा। जंगल तो वैसा ही है मगर जन्तु-जानवर और भी पीछे हट गये हैं। जगह पर क़ब्ज़ा हो गया है; श्रेष्ठ जन्तुओं का यानी मनुष्यों का।

हम रेल से जा रहे थे। यह है शिवलिंग पर्वत-श्रृंखला का पादमूल। देहरादून के आगे के पहाड़ी वन-जंगल चारों ओर से घिरे हैं। यह वन पूरब से पश्चिम की दिशा में और भी घना होता जाता है। पूरब में है गंगा का मूल प्रवाह और पश्चिम में यमुना प्रवाहित है। इन दोनों नदियों के मध्य दक्षिण सहारनपुर जिला के सिवा इस घाटी की कमोवेश दो सौ मील की परिधि में जंगल ही जंगल है। उत्तर-पश्चिम भारत की काँगड़ा जैसी देहरादून घाटी, शिकार के लिए सुप्रसिद्ध है। जंगल के भीतर

शिकारियों के लिए डाक बंगले बने हैं।

मेरे लिए मुश्किल यह है कि प्रचलित अर्थ में मैं टूरिस्ट नहीं हूँ। इस लिए क्रमवार तथ्यों की ओर स्वभावतः मेरा झुकाव कम है। मैं आया हूँ नये देश के, नयी पटभूमि में सांस लेने। देहरादून का चावल बहुत सुन्दर और स्वादिष्ट है। मगर इस विषय में सिर खपाने का समय मेरे पास नहीं है। इस इलाक़े में विशाल औषध वन है और लता-पत्रों की गवेषणा के निमित्त सरकारी कॉलेज की प्रसिद्धि खूब है। अच्छी तरह खयाल है, वहाँ पहुँच कर कई घण्टे व्यतीत करने पर भी हमारी उत्सुकता नहीं मिटी थी। यहाँ देवदारु, शाल, चीड़, पीलातूत, शीशम आदि के वृक्ष खूब देखने को मिलते हैं। हम लोग बहुत से चाय-बगान देखते रहे हैं।

देहरादून स्टेशन पर उतरने से रांची का खयाल हो आया है। समुद्री सतह से दो-ढाई हज़ार फ़ुट ऊँचा किन्तु अनुमान लगाना भी मुश्किल है। हमारी आँखें लगी थीं यहाँ से दो प्रधान पथ की ओर। एक चला गया है रुड़की दूसरा चक्राता। मगर कोई पथ बिलकुल सहज नहीं है। चक्राता यहाँ से कमोबेश साठ मील पर है। अन्दाज़न तीस मील जाने पर सहारनपुर की सड़क से जा मिला है। वहाँ से और भी तीस मील जाना पड़ता है। कोटद्वार से जैसे लैंसडाउन, इसी प्रकार सहारनपुर रोड के उस संयोग से चक्राता का पथ पर्वतों को छूता हुआ निकल गया है। पथ ऊपर उठता गया है घूम-घूम कर, चढ़ाई और चढ़ाई। पहाड़ी नदियाँ, झरने, उत्तर में बरफ़ानी धवल हिमालय की फैली हुई रंगिनी। नीचे की ओर जंगलों से घिरा देहरादून का फैला हुआ हरा-भरा क्षेत्र। बीच में मिलता है चोहारपुर। इस के बाद यमुना का पुल। इस पुल को पार करने पर मिलता है नहान रोड। दूसरी ओर चक्राता को जाने वाली मोटर की सड़क मिलती है। अंगरेज़ों के ज़माने में भारत सरकार ने कभी भी गढ़वालियों और गोरखाओं पर विश्वास नहीं किया इस लिए वह इसी चक्राता और लैंसडाउन में फ़ौजों को स्थायी रूप से रखते थे। पठानों का भी उन्हें विश्वास नहीं था, इसी लिए समग्र पंजाब और सीमान्त में गोरों की छावनियाँ इतनी थीं। जब कि ये गढ़वाली, गोरखा और पठान के जैसे निर्भर-योग्य योद्धा भू-भारत में ढूंढ़े नहीं मिलते। अंगरेज़ आज नहीं हैं मगर गोरखा सैनिकों को पाने के लिए उन की व्याकुलता आज भी रह गयी।

चक्राता लगभग सात हज़ार फ़ुट ऊँचाई पर है। यहाँ भ्रमण किया जा सकता है मगर रहा नहीं जा सकता। फ़ौजियों के परिवार के लोग कभी-कभी यहाँ आ कर रहते हैं तथा इन के लिए देहातियों की हट्टिया यहाँ लगती हैं। प्रयोजन की सीमा पार करने के बाद कहीं कुछ नहीं है। फ़ौजी बैरक या दफ़्तर के अलावा यहाँ न कोई समाज है, न परिवार। परिणामतः एक वेला में ही मन घबरा उठता है। कार्तिक महीने में तेज़ ठण्डी हवा बहती है। मगर यमुना की वन्य तथा पहाड़ी रंगिनी मन को अविभूत किये रहती है। चक्राता के बाद है कोहलना क्षेत्र। यह है चक्राता का ही हिस्सा मगर कोहलाना 'नेक' से अलग है। दोनों मिल कर हैं एक, मगर एक-दूसरे से अलग।

कलकत्ता और भवानीपुर के बीच जैसे चौरंगी।

देहरादून से अन्दाजन पैंतीस मील दूर है हरिपुर के सामने हिमालय का नैसर्गिक दृश्य पथिकों को आनन्द में चकित करता है। हिमालय पार कर धरती पर प्रथम बार उतरी है यमुना। वहाँ गंगा का आविर्भाव हुआ है हरिद्वार में। यहाँ कालिन्दी का आविर्भाव होता है हरिद्वार में। जैसा कि हम देख आये हैं अलमोड़ा के उत्तर प्रान्त में बैजनाथ—जहाँ गोमती का प्रथम अवतरण धरती पर हुआ है। हरिपुर प्रान्त में कालसी इलाक़े में सम्राट् अशोक का शिलालेख प्रसिद्ध है। वहाँ कुल चौदह अनुज्ञा पत्थरों पर खुदे। ईसा पूर्व तीसरी शताब्दी का वह प्रमुख उपस्थिति यहाँ के जनहीन मैदानों में, नीलाभ आसमान के नीचे तेज़ धूप में आज भी जैसे अनिर्वचनीय गीति-काव्य की व्यंजना लिये घूमती रहती। मेरा अति आधुनिक मन कहीं की कोई प्राचीन स्मृति देखते ही समग्र सत्ता द्वार में उसे चाटने लगता है।

द्वापर में आचार्य द्रोण अपने एक शस्त्र शिक्षा शिविर स्थापना के लिए चक्कर काटते रहे यहाँ-वहाँ। अन्त में शिवलिंग पर्वत श्रृंखला को लाँघ कर उपगिरि और बहिर्गिरि के मध्य स्थित देवदारु पर्वत की गोद में अवस्थित इस विशाल घाटी को उन्होंने चुना। द्रोणाचार्य का यहाँ आश्रम था, इस लिए इस अंचल का नाम पड़ा डेराद्रोण उर्फ़ देहरादून। प्राचीन हस्तिनापुर से देहरादून अधिक दूर नहीं है। इसी घाटी से पौराणिक युग से आधुनिक इतिहास के ज़माने तक इस देहरादून में अनेक तूफ़ान आये। यह उपत्यका हमेशा से गढ़वाल के अधीन रही। सत्तरहवीं शताब्दी में मुग़लों का आगमन हुआ। शाहजहाँ के सेनापति खलिलुल्ला के साथ पृथ्वीशाह का युद्ध हुआ। राजा ने उन से सन्धि की। सम्राट् औरंगजेब से मित्रता कर के शताब्दी के अन्त में देहरादून आये गुरुराम राय। और उन्होंने अपने भक्तों के साथ मोहनगिरिसंकट के पास डेरा डाल दिया। हिन्दू-मुसलमान का विरोध दूर करने की मंशा से जिस दिन उन्होंने देहरादून में पहली बार क़दम रखा था, उस दिन की स्मृति में आज भी देहरादून में 'झण्डोत्सव' मनाया जाता है। गुरुराम राय का मन्दिर जो मुग़ल स्थापत्य का एक उदाहरण है, यहाँ अति प्रसिद्ध है। यहाँ गुरु की शैय्या और चिताभस्म सुरक्षित है। गुरुराम राय के शिष्यों को यहाँ रामरइया कह कर पुकारा जाता है।

अठारहवीं शताब्दी में इस देहरादून में भयानक राजनीतिक तूफ़ान उत्पन्न होता है। साम्राज्यलोभी पठानों का दल यहाँ आता है। अफ़गान सेनापति नाजिबुद्दौला तथा उन का कठोर हृदय नाती गुलाम क़ादिर ने देहरादून पर आक्रमण किया और यहाँ रक्त की नदियाँ बहने लगीं। यह वह समय था, जब देहरादून ऐश्वर्य और सम्पदा दोनों में भरा-पूरा था। नाजिबुद्दौला उस वक़्त सहारनपुर के प्रशासक थे। शिवलिंग पर्वत श्रृंखला को लाँघ कर उन्होंने देहरादून पर आक्रमण किया था। इस समय गढ़वाल के राजा देहरादून के अधिपति राजा फतेहशाह को उन की गुण-गरिमा के लिए चारों ओर से प्रसिद्धि मिली थी। मगर रोहिला दल के शासन और सेनापति नाजिबुद्दौला को अपने

पड़ोसी का यह समादर सह्य नहीं हुआ। इस लिए रक्तपात हुआ थोड़ा और देहरादून पर उन का अधिकार हो गया। मगर बहुत कम दिनों के लिए। इस के बाद नजीबुद्दौला मर गये। इस बीच फतेहशाह के आश्रयी राजपूतों एवं गूजर सम्प्रदाय के लोग जो व्यापार के लिए सुदूर से आते रहे और पंजाब के सिखों ने, अथवा नेपाल के गोरखों ने इस घाटी पर एक-एक कर आक्रमण किया। देखते ही देखते अठारहवीं शताब्दी के अन्तिम दिनों में देहरादून की दुर्गति चरम पर पहुँच गयी। यह उपत्यका श्मशान में परिणत हो गयी। मगर यहाँ अन्त नहीं हुआ। सिख सरदार, बघेल सिंह और पठान सेनापति ग़ुलाम क़ादिर की तलवार से हिमालय की ये चट्टानें बारम्बार रक्तरंजित होती रहीं। लूटा दोनों ने ही। हत्याएँ की हैं उल्लासित मन से। आग लगा कर दोनों ने ही उल्लासित किया है। अन्त में ग़ुलाम क़ादिर ने गाय के रक्त से गुरुराम राय के मन्दिर को रंगा दिया।

ग़ुलाम क़ादिर के बाद हुआ गोरखों का आक्रमण। वे जाति के हिन्दू थे मगर निर्ममता में ग़ुलाम क़ादिर को भी मात कर गये थे। गोरखाओं ने पहले समग्र कुमायूँ पर झण्डा फहराया, बाद में देहरादून भी ले बैठे। उन्होंने समग्र गढ़वाल को ध्वंस कर दिया और दिन की रोशनी में ही देहरादून की सड़क पर ही राजा प्रद्युम्न शाह की हत्या कर डाली। इस के बाद किस प्रकार गोरखा अँगरेज़ों से पराजित हुए तथा गढ़वाल राज सुदर्शन शाह ने क्यों अँगरेज़ों की सहायता स्वीकारी, यह मैं लिख चुका हूँ, आगे भी लिखूँगा।

देहरादून में गोरखों का शासन काल कलंकित स्याही से पुता है, इस सम्बन्ध में यहाँ कुछ चर्चा करूँगा। वे जब इस घाटी पर आ कर कुकठी और बन्दूक़ों से राह-घाट पर मनमानी हत्याएँ करने लगे, तब घाटी के प्रायः प्रत्येक नर-नारी यहाँ-वहाँ भागने लगे। किसानों से लगान न वसूल पाने की प्रतिक्रियास्वरूप गोरखाओं ने हरिद्वार में होने वाले वार्षिक मेले में गढ़वाली लड़के और लड़कियों को बेचने आते। एक स्वस्थ लड़के का दाम लगता पचहत्तर रुपये और एक सुन्दर तथा अच्छी गढ़वाली लड़की की क़ीमत होती डेढ़ सौ रुपये। मज़े की बात यह है कि उसी मेले में एक घोड़ा अढ़ाई सौ रुपयों में मिलता था।

देहरादून से पाँच मील आगे बढ़ने पर टेनस नदी के क़रीब एक डकैतों की गुफ़ा मिलती है। डकैतों का दल यहाँ कहीं नहीं है। ज़रूर, मगर यहाँ की जनहीन एकान्त में आ खड़े होने पर रोयें खड़े हो जाते हैं। यहाँ नदी का पानी पत्थरों के नीचे से अदृश्य हो जाता है तथा कुछ दूर जा कर धारा के रूप में फिर नज़र आता है। अगल-बग़ल की प्राकृतिक शोभा मन में काव्यमय अभिव्यंजना सौंपती है।

मुझे ठीक याद नहीं आता फिर भी देहरादून शहर से राजपुर अन्दाजन नौ-एक मील है। सड़क अच्छी है और मोटर बस के लिए अति उत्तम है। इस राजपुर के पास ही है गन्धक और गरमजल का सोता। समग्र गढ़वाल कुमायूँ के पर्वतीय अंचलों

में धातु एवं गरम जल के सैकड़ों सोते हैं। मगर यहाँ उस का परिवेश बहुत सुखकर और आनन्ददायक है। एक गुफा की चोटी से निरन्तर जलधारा उतर रही है, यह दृश्य दृष्टि को मुग्ध कर लेता है। इस दृश्य को जिन्होंने पहली बार सहस्र धारा से अभिहित किया है, उन के रस-बोध की तारीफ़ कौन नहीं करेगा। चारों ओर अनेक लता-गुल्मों की झाड़ियाँ मौसम के अनुसार चारों ओर भिन्न-भिन्न फूलों की बहार। शरद में, वसन्त में, हिमालय में तरह-तरह के रंगीन पंछी आ उतरते हैं—और उन के बीच इस सुनसान कानन में शान्त मृदु झरने की झर-झर ध्वनि बहुत कुछ गीतमय सी।

शहर से तीनेक मील दूर गरही गाँव पार कर इस से भी आगे चाय बगान और फॉरेस्ट रिसर्च कॉलेज को पीछे छोड़ आगे बढ़ने से मिलता है, एक नदी के नीचे तपोकेश्वर शिव का मन्दिर। मन्दिर है एक बड़ी गुफा के अन्दर और नदी की गोद में। यहाँ अनेक वर्णों के पत्थर देखे। बहुतों का कहना है कि यहाँ शालिग्राम पत्थर मिलता है। हम गुफा के सामने जा खड़े हुए थे। अन्दर हैं कई मूर्तियाँ और देवलिंग। भारत में सर्वत्र जैसे, यहाँ भी वैसे ही शिवरात्रि में विशाल मेला लगता है। मेला है मिलने का माध्यम। एक मेले की तारीख़ तय कर के हज़ारों नर-नारी एक जगह मिलते हैं। भारतीय संस्कृति के प्रमुख प्रतीक हैं देश-देशान्तर के मेले। मेले के द्वारा आज भी भारत के जन-साधारण को पुकारा जा सकता है। तपोकेश्वर के उस पार देहरादून मिलिटरी कॉलिज है। जो भविष्य में भारत के सेनाध्यक्ष होंगे वे यहाँ बचपन से ही रण-विद्या और चरित्र-निर्माण की उपयोगी शिक्षा ग्रहण करते हैं। यहाँ की शिक्षा के नियम कठोर हैं तथा जीवन-निर्वाह की प्रणाली बड़ी रुखाई से सिखाई जाती है। इस लिए मन ही मन तारीफ़ किया है। महाभारत के आचार्य द्रोण यहीं अस्त्र शिक्षा देते थे। उस से आज के इस अकादमी का मेल है। चारों ओर पहाड़ तथा जंगल तथा दोनों बग़ल दो नदियाँ और मध्य में यह विशाल उपत्यका जो शस्त्र-विद्या और रणकौशल की शिक्षा के लिए उपयुक्त स्थान है।

देहरादून की दो और शिक्षा संस्थाएँ मुझे अच्छी लगीं। एकान्त पहाड़ और जंगलों के बीच यदि कोई बालक-बालिकाओं को सद्शिक्षा देने की बात सोचता है, तो यह आनन्द की बात है। स्वर्गीय एस० आर० दास भारतीय संस्कृति और परम्परा की पृष्ठभूमि में बालकों को कैसे शिक्षित किया जाये, इस विषय पर विचार कर चुके हैं। उन्होंने इसी धारणा से प्रायः बीस वर्ष पूर्व देहरादून में एक विद्यालय की स्थापना की थी। वहाँ जाति-वर्ण का बिना विचार किये सभी बालक शुचिता सम्पन्न विद्या अर्जित कर सकते हैं। स्वर्गीय दास के इस दून स्कूल के अतिरिक्त लड़कियों के लिए एक विद्यालय स्थापित है। जिस का नाम है 'कन्यागुरुकुल।' यह विद्यालय राजपुरा की राह में पर्वतीय भूमि पर स्थापित है।

जाड़े में यहाँ खूब ठण्ड पड़ती है मगर गरमी के दिन बड़े ही तर होते हैं। यह विद्यालय समुद्र की सतह से प्रायः तीन हज़ार फ़ुट ऊँचाई पर है। लेकिन इस के

चारों ओर के वन-पर्वतों की शोभा निरख कर आँखें शीतल हो जाती हैं। बंगाल की युवा पीढ़ी कितनी बदक़िस्मत है और एक वर्ग के माता-पिता कितने अदूरदर्शी। यह बात समझ में आती है तब, जब देखता हूँ कि आज सभी प्रदेश स्वास्थ्य, चरित्र-निर्माण और इस तरह की वैज्ञानिक शिक्षा की दिशा में युवा पीढ़ी को विकसित कर रहे हैं। उत्तर प्रदेश में अस्सी प्रतिशत बालक-बालिकाओं का स्वास्थ्य अच्छा है, यह सुनने मात्र से मन अघा जाता है। शिमला, दार्जिलिंग, कर्सियांग, कालिंपोंग और शिलांग में भी कन्या गुरुकुल जैसे विद्यालय मैं देख चुका हूँ, परन्तु इतना आनन्ददायक परिवेश कहीं नहीं दीखा। यहाँ दस वर्ष से ऊपर की बालिकाओं को भरती नहीं की जाती। बहुत कुछ आश्रम की विधि-विधान के समान ही यहाँ बालिकाएँ विद्या अर्जन करती हैं। विद्यालय देहरादून में अधिक संख्या में हैं।

हल्की सी याद आती है, उस जैन धर्मशाला की, जो देहरादून स्टेशन से कुछ दूर है। एक बंगाली होटल था, आज भी हो सकता है हो, मगर धर्मशाला का वातावरण मुझे अच्छा लगता है। वहाँ चारकोल और पेन्सिल से लिखे बहुत से नाम और पते मिले। एक विनम्र स्मृति में हमें याद रखें! यह विनय कहीं छूटा नहीं है। कितने देशों के, कितने मन्दिरों के नाम-धाम पत्थरों पर खुदे मिलते हैं। यह विनय देख चुका हूँ कुतुबमीनार के मुँडेरे पर, आबू पहाड़ के नीचे, द्वारका की धर्मशाला में, बम्बई के समुद्र गर्भ के एलोरा में, अजन्ता में, रामेश्वर, भुवनेश्वर में, राजस्थान के सावित्री पहाड़ पर हर जगह—सिर्फ़ याद रखो। संसार से एक दिन मिट जाना है। यह जानता हूँ, मगर यह सूचना मात्र देना चाहता हूँ कि मैं था! यदि धर्मशालाओं की इन दीवारों पर तुम्हारी नजर पड़े जो कि पड़ेगी कभी, तब अपने हृदय में कहीं भी ठौर देना मुझे!

इस हास्यास्पद चेष्टा की ओर देख कर मित्रवर शशांक ऐसे हँस पड़े कि अपना अस्तित्व ही अश्रद्धेय हो उठा। कृष्णा देवी ने कहा—आप का स्वास्थ्य-सुधार हो रहा है या नहीं, इतना तो लिख ही दीजिए, शशांक बाबू!

एक महिला की मीठी चुटकी!—शशांक विज्ञ की तरह निरर्थक शब्द उच्चारण कर निरुत्तर रहा।

यहाँ की हमारी आयु कम है। इस धर्मशाला के दो कमरों में ही हमारा संसार तीन दिनों के लिए सिर्फ़ है। उसी में तीनेक दिनों के लिए घरौंदा सजा बैठा है। बाहर के कुत्ते आते हैं, दुकानदार, झाड़ूदार आ कर लौट जाते हैं। हम लोग भी घूमते रहे हैं, जब-तब, यहाँ-वहाँ। हमारे सामने देवदार पर्वत है। रात को यहाँ से दीखती है, मसूरी की बत्तियों की पंक्ति। नीचे है देहरादून, ऊपर है मसूरी। अक्तूबर प्रायः समाप्त हो आया है। अब सभी की मसूरी से उतर आने की बारी है। मगर हम लोगों का मन मानो विपरीत गया हो। यही है हमारी यात्रा का अवसर। कृष्णादेवी हँस कर बोलीं—यवनों के संग चली हूँ तब तो खाना एक साथ ही खाना पड़ेगा। घूमा अनेक

देखा, देखना बाक़ी था सिर्फ़ हिमालय।

मैं बोला—शास्त्र रचयिता मनु ने कहा था, यात्रा में नारी वर्जित है। उस के अर्थ का बोध इतने दिनों में हुआ।

कृष्णादेवी की दोनों आँखें स्वाभाविक रूप से बड़ी हैं। उन्होंने हमारी ओर समय प्रश्न-सूचक दृष्टि से देखा। मैं बोला, संग में महिला हो तो राह को ओट लिये रहती है, उस की अपेक्षा कर के कुछ देखा नहीं जाता।

कृष्णा बोलीं—तब कम्बल ओढ़ कर कमरे में जा कर सोती हूँ मैं। आप जा कर घूमिए, राजपुर के पथों पर। कविता करिए। देखा तो आप ने बहुत कुछ, मन के दृष्टि मिली है क्या? तीर्थों में सिर पटकने से सिर फूलेगा ही और कुछ नहीं।

बात दर्शनतत्त्व को छू गया, इस लिए बस, लगा कि कृष्णादेवी के मन में समस्याओं की जटिलता है। उस दिशा में न बढ़ना ही अच्छा है। गत कई दिनों से उन की सौजन्यता और निश्छल व्यवहारों से हमें खूब आनन्द मिला है। उन की प्रकृति स्वाभाविक, गम्भीर और संयमी है। किसी उल्लास या कोलाहल में वे एक बार भी खोयी नहीं। मगर अपनी धीर हँसी से हमें इस यात्रा में सहयोग देती रही हैं। हर क़दम पर कृतज्ञता का बोध हुआ है। वे कविता, कहानी और निबन्ध लिखती हैं—उन की बहुत सारी रचनाएँ मेरे द्वारा भी छप चुकी हैं। हिन्दी में भी वे विशेष पारंगत हैं, मगर अपनी रचना पर आलोचना से वे नाराज़ हो उठती हैं। इसे वे बहुत कुण्ठा सहित टाल जाती हैं। उन के पारिवारिक जीवन सम्बन्ध में हम कुछ नहीं जानते। जानने की कभी चेष्टा भी नहीं की। मगर कहीं कोई दर्द है इसे अनुभव करता रहा हूँ। हरिद्वार के घाट पर उन्हें अकेले बैठ कर कई बार देखा है, सन्ध्या होते ही ऋषिकेश में धर्मशाला से निकल कर वे नील धारा के किनारे जा बैठतीं और मैं शशांक को छेड़ता रहता। बस, इतना ही। स्त्रियों के सम्बन्ध में मज़ाक़ करना अशोभनीय है यह मैं मानता रहा हूँ।

फिर उस जैन धर्मशाला के बरामदे पर मैं बोल बैठा—आप का मन बेचैन हो उठा है।

वे मुँह फेर कर हँस पड़ीं, बोलीं—समझी, कुछ माँग है। न?

—माँग कैसी?

—मैं बेचैन हूँ, इसे छोड़िए, मगर आप को भूख लगी है। चलिए खिलाऊँ।

हम दोनों हँस पड़े। शशांक उत्साह के साथ जा कर पीने का पानी ले आया। उन की पकड़ ठीक थी। हम लोगों का हाज़मा खूब बढ़ गया है।

कल हम मसूरी रवाना होंगे।

[८]

हरिद्वार के उस पार चण्डी पहाड़ के नीचे से गंगा की मूल धारा के तट पर खड़े होने पर निगाह गड़ जाती है। सीधे उत्तर की ओर—वहाँ बदरीनाथ की तुषार शुभ्र चोटी इतनी दूर से भी चमचमाती सी लगती है। मनसा पहाड़ या चण्डी के मन्दिर पर खड़े होने पर तो कुछ कहना ही नहीं। एक कौआ यदि उड़ कर जाये, आकाश-पथ से तो पचीस मील से अधिक नहीं होगा। मगर सड़क से जाने पर दो सौ मील से कम नहीं होगा। घटा देखना चाहो तो दूर से ही, वरना पैदल चलना, प्राणान्तक है। पहाड़ों पर शक्ति की अग्नि परीक्षा होती है।

शशांक चौधरी की खुशी इस बात में है कि पहाड़ की चोटी पर ही रहा जाये। वहाँ हवा हलकी है और साँस भी होती है लम्बी-लम्बी। और यह हाजमा के लिए लाभदायक है। निन्नानबे प्रतिशत लोग यही चाहते हैं। अस्थिर हो कर चक्कर काटते रहने से जलवायु लगती नहीं। जो चट्टानें लुड़कती रहती हैं उन पर क्या हरियाली होती है कभी ?—शशांक का तर्क अकाट्य है, अकारण है हिसाब-बोध।

देहरादून से हम बढ़ रहे थे मसूरी की ओर ! जाड़े का मौसम। ठण्डी हवा में शुष्कता। कोल्डक्रीम चेहरे पर लगाने के दिन आ गये। चेंजर लोग पहाड़ों से एक-एक कर विदा हो रहे हैं। सम्भवतः वे नहीं जानते कि पहाड़ पर रहने का यही उपयुक्त समय है। ठण्डक जितनी होगी, हवा जितनी होगी, धूप जितनी होगी, उतना ही स्वास्थ्य सुधरेगा। वस्तुतः अक्तूबर के मध्य से दिसम्बर के मध्य तक मसूरी, नैनीताल, अलमोड़ा, दार्जिलिंग आदि पहाड़ी शहर रहन-सहन के लिए उत्तम है। मगर बंगालियों का सीज़न अक्तूबर के साथ ही खत्म हो जाता है। यानी हम सीज़न के बाद वहाँ जा रहे थे। हम लोगों के मन का खिचाव कुछ भिन्न है।

कृष्णादेवी से पूछा—कैसा लग रहा है आप को ?

उन्होंने संक्षेप में उत्तर दिया—नया-नया !

नया है, इस में सन्देह नहीं। जब-जब ऐसे पथ से गुज़रा हूँ, सब नया-नया लगा है। गौहाटी से नंगपो, कालका से धर्मपुर, जम्मू से वनिहाल, मण्डी से कुलू, चम्बा से डलहौजी, काठमाण्डू से भवाली, शुकना से तिनधरिया सदा नया है। जो नहीं जा सके हैं, उन का दुर्भाग्य है—जो हो आये हैं, उन के हृदय पर अमिट छाप है। हम बढ़ आये हैं राजपुर के क़रीब। हमारी बस चिकने पथ से गुज़र रही है। देहरादून से मोटर से मसूरी लगभग बाईस मील होगी। आठ-नौ मील आगे बढ़ने पर राजपुर

पड़ता है। पचीस वर्ष पहले देहरादून से मसूरी घोड़े पर सवार हो कर जाने के लिए एक सहज रास्ता था। मगर उधर से अब कोई नहीं जाता।

द्रोणाचार्य के समय से ही इस पर्वत का नाम देवदार पर्वत पड़ा है। राजपुर पार कर गाड़ी जब ऊपर चढ़ती है तो शिवलिंग पर्वत श्रृंखला और देवदार के बीच में देहरादून की विशाल घाटी दृष्टिगत होती है। मोटर की सड़क बहुत अच्छी है, उसे देख कर नैनीताल और दार्जिलिंग की याद हो आती है। मसूरी के पूरब की ओर बहुत नीचे से बहती है गंगा और पश्चिम की ओर से यमुना। हिमालय के सहस्रों पहाड़ों के नाम के साथ सहस्रों रूप कथाएं जुड़ी हैं। यहाँ भी उस का अभाव नहीं है। इस देवदार की चोटी पर सुनते हैं एक दानव रहता था। जिस का नाम था मानासुर। उसी का अपभ्रंश है मसूरी। बहुतों का कहना है यहाँ बहुत से अंचलों में मनसरी का वृक्ष मिलता है, इसी से इस का नाम मसूरी पड़ा है।

राजपुर तक सड़क समतल है। इस के बाद चढ़ाई शुरू होती है। सुन्दर सड़क है मगर 'बेंड' की अधिकता होने की वजह से दुर्घटना से मौत की शंका बनी रहती है। इसी लिए यहाँ के अधिकारियों ने गाड़ियों के आने-जाने के लिए 'वन वे' की नियम लागू किया है। चढ़ने के समय यहाँ की चढ़ाई बहुत दुस्साध्य लगती है और उतरते वक़्त भी उतना ही भयानक। हमारी बस अपनी पूरी ताक़त और भयंकर आवाज़ करती हुई मगर धीर गति से ऊपर चढ़ रही थी। पैदल एकाध व्यक्ति जो ठक-ठक करते हुए आ रहे हैं, मोटर में बैठे रहने के बावजूद उन की वह ठक-ठकाहट सुनाई पड़ती है। मेरा विचार है कि इस सड़क को सुधारना ज़रूरी है।

एक के बाद एक 'बेंड' हम पार कर रहे हैं। पीछे की ओर देहरादून की विस्तृत घाटी चित्रवत् लगती है। जितनी ऊँचाई पर चढ़ता जा रहा हूँ, विस्तार और व्यापकता उतनी ही बढ़ती जा रही है। चढ़ाई जितनी ऊँची होती जा रही है, वैसे ही प्राकृतिक दृश्य पद्मरूप होने लगते हैं। दूर-दूर दृष्टि भाग रही है। अलमोड़ा, नैनीताल, गढ़वाल, प्रत्येक पहाड़ी ज़िले और पहाड़ों के बाद दिग्दिगन्त तक फैला लगता है। सड़क की बग़ल से, कहीं से आता हुआ प्रपात का स्वर, कहीं पर्वतगार्त से बँटने वाले झरने की मृदु कलकल निनाद। ऊपर है तीव्र धूप मगर ठण्डी हवा बह रही है। चुपचाप बैठे रहने की वजह से ही शायद जाड़ा लग रहा है। अन्य पहाड़ी शहरों के जैसा ही यहाँ भी टोलटैक्स लगता है। हम लोगों को आदमी पीछे डेढ़ रुपया देना पड़ा। झारीपानी के चैक पोस्ट पर टैक्स की रसीद बिना दिखाये काम नहीं चलता। झारीपानी से थोड़ा आगे बढ़ने पर नेपाल महाराजा का महल नज़र आता है। महल कहने मात्र से ही एक चित्र सामने उभर आता है, वर्णन की आवश्यकता नहीं है। झारीपानी से आगे एक और छोटा जनपद मिलता है। यहाँ एक कॉलेज और सिक्खों का गुरुद्वारा है। हमारी गाड़ी एक झूलते हुए पुल पार कर आगे बढ़ आयी। उस के नीचे से एक नदी देहरादून की ओर चली गयी है।

मसूरी एक शहर है, मगर समग्र पहाड़ आज मसूरी कहा जाता है। देवदार पहाड़ का नाम आदमी कब भूल गया है, इस का अनुमान लगाना भी मुश्किल है। बार्लोगंज के बाद पड़ता है कुलरी बाजार, यहाँ से एक सड़क लाण्डूर की ओर चली गयी है। लाण्डूर की ओर जाने पर प्रथम दृष्टि पड़ती है एक घण्टाघर पर। यह घण्टा-घड़ी ठीक मसूरी और लाण्डूर के मध्य स्थित है।

यहाँ तक कृष्णादेवी खामोश थीं। अब मैं ने ही उन्हें मैदान में ललकारा—आज सवेरे से ही आप पकड़े नहीं पकड़ाती हैं।

उन्होंने गरदन मोड़ कर हम लोगों की ओर देखा। मैं पुन: बोला—ब्याह के बाद नयी बहू जब ससुराल आती है, तब वह मौन क्यों रहती है, यह मेरा जाना हुआ है। मगर आप का यह मौनव्रत मेरे लिए दुर्बोध्य है। लगता है, आप का मन बड़ी तेज़ी से पीछे भाग रहा है।

उन्होंने हँस कर कहा—हो-हल्ला के बिना आप का मन शायद नहीं लगता।

समझ में बात आ गयी कि वे बोलना नहीं चाहतीं। मसूरी लगभग आ गया है। किन्केगेर के पास हम लोगों को उतरना पड़ेगा। वहाँ से कुछ चढ़ाई पथ पैदल पार करने के बाद माल पहुँचूँगा। मोटरबस से उतरने के कुछ पहले कृष्णादेवी ने सिर्फ़ कहा—डूब कर जो सोच बैठे हो, कवि, बात वह नहीं है।

बस से उतर कर सामान क़ुली के सिर पर रख हम ऊपर की ओर राह पकड़ चल पड़े। यह समय सुविधाजनक है। होटल जितना सस्ता है, जगह भी उतनी ही अधिक मिलती है। धर्मशाला – मुसाफ़िरखाना किसी की कमी नहीं है। आर्य समाज मन्दिर में भी बहुत जगहें मिलती हैं, यहाँ तक कि मुफ़्त में भोजन और निवास दोनों ही। मगर मेरी जातिगत पसन्दगी सब से निराली है। इधर-उधर बहुत चक्कर काटने के बाद मन-माफ़िक एक होटल मिला। तीन-चार कमरे ले कर रहने से भी रोज़ दो रुपये से अधिक नहीं लगेंगे और भोजन आदि इच्छा के अनुसार। होटल का मालिक एक पारसी है। हम लोगों को छोड़ कर अन्य कोई बोर्डर अभी नहीं है। यही तो हम चाहते थे। कृष्णा हम लोगों की अतिथि हैं अर्थात् शशांक ने उन्हें एक अच्छे कमरे में टिका दिया और उन्होंने अपना काव्य-कुंज उस में बना लिया। हम लोगों ने यहाँ गोवर्धन नामक एक गढ़वाली रसोइये को रख लिया था। वह था क्षत्री ब्राह्मण, फिर भी मांस और मछली बढ़िया बनाता था। उस का घर था देवप्रयाग। वह सद्गृहस्थ घर का लड़का था, लिखना-पढ़ना जानता था तथा गढ़वालियों की स्वाभाविक प्रसन्नता उस के चेहरे पर हमेशा उद्भासित देख कर हम सभी बड़े खुश थे।

बन्दरपंच पर्वत शृंखला पर दृष्टि सीधी पड़ती है। अन्य किसी पहाड़ी शहर में इतने निकट से तुषार-चोटी देखने को नहीं मिलती। उत्तर का हिस्सा बिलकुल शून्य है, यही कारण है कि मसूरी में बर्फ़ीली हवा खूब बहती है। दार्जिलिंग या शिमले का उत्तरी हिस्सा बँधा हुआ है। अलमोड़ा में भी कुछ हिस्से में पहाड़ की दीवार का अव-

पौध नजर आता है। नैनीताल तो जैसे तालाब में पड़ा हो। मगर मसूरी एकदम खुला हुआ है। उस की चोटियां उठ आयी हैं मानो यूथभ्रष्ट हो कर चारों ओर से खुला अवकाश है। 'कैमल्स बैक' की चोटी बग़ल में ही है, फिर भी वह अवरोध नहीं है। 'कैमल्स बैक' का नाम पहले था गन-हिल। वहां पहले बारह बजे दिन को तोप दाग़ा जाता था, जिस से शहरी अपनी घड़ी मिलाते थे। मगर इस से पहाड़ों में एक प्रकार का कम्पन होता था, जिसे शहर-निवासी पसन्द नहीं करते थे। अब तोप दागना बन्द कर दिया गया है।

लाण्डूर के उत्तर-पूर्व स्थित टप-टिब्बा मसूरी की चोटियों में सब से ऊँची चोटी है। इस की ऊँचाई साढ़े आठ हज़ार फ़ुट से भी अधिक। इस चोटी पर खड़े होने से सिर्फ़ दूर का बन्दर-पंच ही नहीं बल्कि एक-एक कर नीलांग, श्रीकान्त, सन्तोपथ, केदारनाथ, कामत, बदरीनाथ, प्रायः प्रत्येक चोटी दृष्टिगत होती है। आसमान यदि साफ़ और मेघों से घिरा न हो तो और भी दूर पूर्व क्षितिज पर पृथ्वी की उच्चतम चोटियां दिखाई पड़ती हैं। जैसे नन्दादेवी, त्रिशूल, द्रोणगिरि आदि। बहुत बार तो कैलाश पर्वत की श्रेणियों का अनुमान भी यहां से किया जा सकता है।

मसूरी से गंगोत्री जाने के लिए सड़क गयी है। बहुत से लोग जैसे गढ़वाले के देव प्रयाग-टेहरी-धरासुर का पथ पकड़ते हैं, वैसे ही एक पथ फेड़ी और लालकौड़ी होता हुआ धरासुर की ओर चला गया है। यह पथ निर्जन है तथा जंगलों से घिरा हुआ। जन्तु-जानवरों का उपद्रव भी यहां खूब है इस लिए दल बना कर जाना ही कल्याणकारी है। इस पथ पर चढ़ाई और उतराई अधिक होने के कारण ही यात्री देव प्रयाग के पथ से जाना अधिक पसन्द करते हैं। यहां बहु विचित्र वर्णों के जंगली फूल तथा औषध के काम में आने वाले लता-पत्र मिलते हैं। किन्तु इन देशी वस्तुओं के प्रति हम लोगों का मोह बराबर से कम रहा है। प्रचलित पद्धति का बँधा-बँधाया स्वरूप ही हमें प्रिय है, इस लिए इन के लिए न कोई उद्वेग है न आकुलता। जो भी हो, गंगोत्री की दूरी यहां से एक सौ मील से अधिक नहीं है।

इस पहाड़ी पथ को कई बार देख चुका हूँ। कितनी ही पहाड़ी नदियों और निर्झरिणी से मेरा घनिष्ठ परिचय है। इस कारण इन्हें देख कर चिरबन्धुत्व का स्वाद मन में जागता है। उन के अगल-बगल जा कर टहलने से जैसे वे मुझ से कुशल-क्षेम पूछते हों। महाकाल की तुलना में मैं क्षणायु, क्षणजीवी हूँ, मगर वे हैं चिरकाल की आदि अनन्तरता। मैं उन के इस गहन लोक में आया हूँ, नयी पाखी की नयी बोलियां सुनाने। वे कान खोल कर जैसे हज़ारों वर्षों से सुनते आ रहे हैं, जरा व्याधि-मृत्यु और काल-क्रमिक मनुष्य के उत्थान-पतन के अतीत। फिर भी वे सुनते हैं नयी पाखी की बोलियां! मैं भी कई बार उन की भाषा सुन चुका हूँ। निर्झर के कल-कल के द्वारा सरीसृप और पशु-पंछियों के कंठ गुहार, झींगुर की झंकार के और पतंगों की गूँज के द्वारा उन की मार्मिक भाषा सुनता आया हूँ अनाहृत स्तब्धता में।

इस इलाके से चली गयी है और सड़क यमुनोत्री की ओर। यहाँ से लगभग एक सौ दस मील। रानू गाँव से होते हुए कुलनारी और राजकोट की ओर वहाँ से काउलाली हो कर खुरसाली की ओर। खुरशाली से यमुनोत्री सिर्फ़ डेढ़ सौ मील है। यहाँ से चकाता रोड पकड़ कर चलिए कैम्पटी प्रपात पीछे छोड़ कर नाग टिब्बा पर्वत शृंखला के भीतरी पथ से, जो यमुना के किनारे मिल गया है। वहाँ से यमुना घाटी पार कर चढ़ाई पथ पर सीधे उत्तर की ओर चले जाइए। मगर इस में जगह-जगह से वनों से गुज़रना पड़ता है। इस के आगे हैं यमुनोत्री और वहाँ से खुरशाली, चीनपुला, भैरंग घाटी होते हुए गंगोत्री आसानी से पहुँचा जा सकता है। यह पथ बहुत दुर्गम और लम्बा है। यहाँ कष्टदायक ठण्ड खूब पड़ती है। इस के अतिरिक्त भोजन और आवास की कमी भी खूब है। मगर इस जीवन की सार्थकता इसी में है कि किसी तरह भी यहाँ की प्राकृतिक सुषमा निरख ली जाये। यहाँ पहुँच कर यह मान लेने में आपत्ति नहीं होती कि कैलाश श्रेणी-शिखर से ही मूल गंगा की धारा अवतरित हुई है। यह विश्वास करने पर विवश होना होगा कि देवादिदेव की जटा-जटिलता में जाह्नवी अपनी मुक्तधारा में उन्मादनी हो दिशा खो बैठी है। मसूरी और गंगोत्री के पथ हरसिल के निकट पहुँच गंगोत्री धारा नील गंगा, हरिगंगा और गुप्तगंगा से जा मिली है। गंगोत्री से गोमुख जाने का पथ कष्टकर है—लगभग पन्दरह मीलों तक। पाँच घण्टे लगते हैं। यहाँ जिस प्रकार तुषार नदी का दृश्य बड़ा सुन्दर है, वैसे ही यमुनोत्री में भी तुषार नदी की शोभा अति मनोहारी। यमुनोत्री का उत्तप्त झरना जितना सुखद है, उतना ही मन्दिर भी आनन्ददायक है।

मसूरी से चकाता लगभग चालीस मील है और देववन और भी छह मील आगे है। चकाता से दो सड़कें शिमला की ओर चली गयी हैं। एक टीऊनी और आराकोट होती हुई, मोड़ लेती हुई एक सौ पचीस मील तक चली गयी है, दूसरी चकाता से सिनगोटा पुल पार कर आगे बढ़ गयी है। इस सड़क से जाने पर दूरी कुछ कम हो जाती है। चकाता से कायोखेरा, इस के बाद चेपाल और फागू होते हुए शिमला पहुँचा जा सकता है। लगभग एक सौ मील लम्बी है यह सड़क। मसूरी से झलकी हो कर टिहरी जाने के लिए बयालीस मील चलना पड़ता है। टिहरी से नैनीताल जाना पड़ेगा द्वारहाट, अलमोड़ा, रानीखेत और खैरना होते हुए। कोशी का पुल पार करने पर अलमोड़ा और खैरना का पुल पार करते ही मिलता है नैनीताल। अर्थात् मसूरी पर्वत अन्य अनेक पर्वत शृंखलाओं से घिरा है। हिमाचल प्रदेश स्थित शिमला, पंजाब की कुलू घाटी इधर कुमायूँ पर्वत शृंखला और नीचे है देहरादून और सहारनपुर। मसूरी के उस पार से गढ़वाल और दूसरी ओर हिमाचल प्रदेश जैसा दीखता है, वैसा अन्यत्र कहीं से नहीं।

मेरा मन उदास था। लगा, जैसे कुछ छूट खा रहा है। देखने का अर्थ ही है संचय—कहीं संचय की झोली खाली न रह जाये। पहाड़ों की कोई अपनी भाषा नहीं,

फिर भी वे अपने को प्रकट करें मुझ में। मेरी सार्थकता इसी में है। हिमालय अपनी दिग्दिगन्त से जुड़ी महाकाव्य कथा बिखेरे है, तुम सिर्फ़ उसे उद्घाटित करो! तुम में हो उस की महिमा की अभिव्यक्ति। विश्वव्यापी बनी हुई है वृहत् सृष्टि, तुम देख रहे हो। उस के पीछे है स्रष्टा का संकेत। स्रष्टा को देख नहीं पाते, परन्तु तुम उस की उपलब्धि करते हो। यह है तुम्हारे अन्तस् की महिमा, तुम्हारे निजत्व की अभिव्यक्ति। ईश्वर है या नहीं, इसे छोड़ो। मैं उत्सुक हूँ, यही मेरा परिचय है। मैं हूँ संशयवादी। मैं जानता नहीं, ज्ञान का जन्म किस से है—विश्वास से या संशय से? बुद्धि से या तर्क से? उपलब्धि है ज्ञान, यही है विश्वास। इण्ट्यूशन से मिलती है दिव्य दृष्टि—यह तर्क द्वारा विश्वास होता है। किन्तु भक्ति से विश्वास होता, यह असम्भव है! अन्ध भक्ति किस ओर खींचती है, यह मुझे पता है। पर्वतों में मैं प्रतिफलित हूँ। तभी तो हम आनन्दित हैं। मैं खुश करना चाहता हूँ अपने भीतर के स्वयं का, तभी वह है कंगाल, हाथ पसारे घूमता है हिमालय के चारों ओर, वह रोता फिरता है भू-भारत में! आत्मसन्तोष के लिए वह प्रत्येक पत्थर को छाती से लगा लेता है, हर जंगली फूल की पंखुरियों को चूमता है, प्रत्येक झरने में है उस की प्रेमांजलि, प्रत्येक शिखर पर चढ़ता है उस के अनुराग का अर्घ्य। मैं शायद हूँ पत्थरों का प्रेमी, तभी तो मेरा हिमालय-दर्शन कभी भी शेष नहीं होता! जब भी देखा, तुम नवीन लगे! तुम्हारे अंग-अंग में नूतनत्व है, तुम मोहनी माया हो, तभी मेरी दोनों आँखों में है इतना घना अनुराग। मेरी लुब्ध दृष्टि तुम्हारी रंगिनी की ओर गड़ी हुई है। तुम्हारे सामने आते ही मेरी आदिम भूख उद्वेलित हो उठती है। तुम्हारे कठोर स्वभाव के स्तवकों में जैसे मेरी मृत्यु नृत्यरत है, मेरी हिंसक प्रीति मानो तुम्हारे प्रत्येक अंग में नखाघात करती है, नुकीले दाँतों के दंशन से तुम्हें क्षत-विक्षत करती है। तुम मुझे कितनी बार खींच लाये हो अपने उसी अन्ध गुफा-गह्वरों की प्रेत छायामय मृत्यु के बीच। मन्त्र-मुग्ध कर के अपने वसन्त कानन में। ले गये अपने निभृत रहस्य लोक में—मुझे सुनायी है तुम ने अपनी मर्म कथा। मैं हूँ वही भिक्षु आनन्द—तुम्हारे उसी अन्तहीन राज-महिमा में मैं नया जन्म ले कर बार-बार लौट आता हूँ।

राजा प्रद्युम्न शा के पुत्र सुदर्शन शा से ऐंग्लो इण्डियनों ने देहरादून घाटी को खरीदा और उन्होंने इसे बारह सौ रुपये सालाना खज़ाना के एवज में ईस्ट इण्डिया कम्पनी को सौंप दिया। इस के कुछ दिनों बाद नेपाल के गोरखाओं ने इस घाटी के लोभ में ब्रिटिश सिंह की पूँछ पकड़ कर खींची थी। वनराज ने आक्रान्त हो कर गोरखाओं के ऊपर आक्रमण किया एवं नेपाल ने क्षत-विक्षत हो कर हार स्वीकार की। मसूरी उस समय था देहरादून के अन्तर्गत। परन्तु उस समय के मसूरी में देहरादून के बर्बर हिंसकों का अड्डा था, मनुष्यों का वहाँ नामोनिशान तक नहीं था। आज भी जाड़े में जन्तु-जानवरों का जत्था मसूरी के पहाड़ों में आता है, जब कि ठण्डक के मारे पहाड़ त्याग कर सभी तराई की ओर चले जाते हैं, क्योंकि पूरे जाड़े भर सम्पूर्ण मसूरी पर

तीन फ़ुट ऊँची बर्फ़ जमी रहती है। जो भी हो यह सच है कि विगत एक सौ वर्षों में साहब लोगों के हाथों मसूरी का निर्माण हुआ है। एक डलहौज़ी को छोड़ कर सम्भवत:, अन्य कोई भी पर्वतीय शहर का ऐसा सर्वांगीण साहबी स्वरूप कहीं देखने को नहीं मिलता। इस काम में परम्परागत प्रकृति से सम्बन्ध एक प्रकार से नहीं रह गया। अभी उस दिन तक यहाँ पौण्ड के हिसाब से खाद्य बिकता था तथा इंगलैंड के वजन में आबो-हवा का प्रचलन था।

यहाँ के स्थायी निवासियों में अधिकांश ही साहब और मेमों के परिवार थे। श्मशानों के बदले यहाँ साहबों का क़ब्रिस्तान था। पुस्तकालय में अभारतीय पुस्तकें मिलती थीं तथा समाचारपत्रों में 'स्टेटस्मैन' आता था तथा धर्म-मन्दिरों की जगह गिरजाघर थे। वे हैं शीत प्रधान देश के लोग, इस लिए उन्होंने यहाँ के प्रत्येक पर्वतीय शहर में, जहाँ ठण्ड खूब पड़ती है, एक-एक इंगलैण्ड बना बसा लिया है। इतना सुन्दर और सुसज्जित फूलों का बगीचा लता-पत्रों से आच्छादित। चमत्कृत करने वाले बंगले, इतना सुरुचिपूर्ण और सुनियोजित जीवन-यापन का तरीक़ा अन्य किसी भी पर्वतीय शहर में मुझे देखने को नहीं मिला। यह उत्तर प्रदेश के अन्तर्गत होने पर भी यहाँ उत्तर प्रदेश के लोगों की संख्या थी बहुत ही कम। कारण, उन का अति हिन्दुत्व यहाँ उन के निवास करने के लिए रुकावट था। इसी कारण पंजाबी और मुसलमानों को यहाँ जगह काफ़ी मिली, यों सर्वव्यापी मारवाड़ी भी यहाँ अपर्याप्त नहीं थे।

विद्यालय का अर्थ है अंगरेज़ी स्कूल। अँगरेज़ी के ही माध्यम से वहाँ पढ़ाई होती थी। यहाँ के किसी एक लड़के या लड़की को जगह देना वे उचित नहीं समझते थे। वहाँ पढ़ाई जाने वाली पुस्तकें विलायत से छप कर आती थीं। विद्यार्थी को युरॅप का इतिहास पढ़ाया जाता था। धर्मग्रन्थ था बाइबिल। पहनावा था विलायती कपड़े, किसी नेटिव से किसी प्रकार का सामाजिक सम्पर्क नहीं था। यहाँ ही तैयार होते थे आर्मी के अफ़सर, वाइसराय का स्टाफ़, ज़िला शासक, पुलिस के अधिकारी और नयी दिल्ली के सेक्रेटरियों का गिरोह। वे ही थे भारत साम्राज्य के रक्षक। भारतवर्ष से कभी भी अँगरेज़ इंच भर भी नहीं हटेंगे, यह मानकर ही उन्होंने निहित स्वार्थों के केन्द्रों का निर्माण किया था। परन्तु हाय फिर भी जाना पड़ा, छोड़ जाना पड़ा। मेरे एक मित्र ने कहा, मधु-मक्खियों के असहनीय डंकों से घायल हो कर वनराज भाग गया। अँगरेज़ों ने यहाँ न एक सौ वर्ष, न दो सौ वर्ष, कुल पैंतीस वर्ष राज्य किया था। यानी १९१२ से १९४७ तक। फिर भी स्वदेशियों की यन्त्रणा से वे जर्जर हुए। इस देश का मन पाने के लिए उन्होंने धरती पर घुटने टेके थे। डेढ़ सौ वर्षों तक उन की मार-पीट खत्म नहीं हुई थी। सन्धि के बाद सन्धि कर के विभिन्न जातियों को उन्होंने त्रस्त किया था। नपुंसक देशी रजवाड़ों को मुकुट पहना इतने दिनों वे स्वयं दरबानी करते रहे हैं। सिर पर ढो-ढो कर कपड़े लाये, इलाक़े-इलाक़े में स्कूल खोले, स्त्रियों के मनहरण के खयाल से टॉयलेट बना-बना कर लाये—उन्होंने क्या नहीं किया! इस के बाद बसाया दिल्ली

दरबार—सोचा था, अब ललाट पर चुहचुहा आये पसीना पोंछ कर सुख से राज करेंगे। परन्तु विधाता हुआ विपरीत। आखिर अंगरेज भाग कर प्राण बचा पाये। सब से शक्तिशाली जाति, सब से कम समय टिक पायी। विधाता के द्वारा ऐसा परिहास दुनिया के इतिहास में कहीं नहीं मिलता।

कई जल-प्रपात मसूरी में हैं। जैसे यहाँ प्रपात यह है, भट्टागाँव के आस-पास। यहाँ से मसूरी के लिए बिजली जाती है। शहर से नीचे कर्ट रोड से कुछ चलने पर यह मिलता है। और एक है हार्डी प्रपात। विनसेन्ट पहाड़ी के दक्षिण-पश्चिम में बहुत दुस्तर राहों से गुज़रना पड़ेगा। इन दोनों को छोड़ कर बार्लोगंज की ओर है मसी और हियर्सी प्रपात। मगर उन तक पहुँचने को राह एक बग़ीचे से हो कर निकलती है, एक उद्यान पुरी के भीतर से। और एक है जिस का नाम है मारी प्रपात। वह है लाण्डूर से प्रायः साढ़े पाँच मील दूर।

हम लोगों ने एक दिन तय किया कि कैम्पटी जल-प्रपात देखने चलेंगे। कृष्णादेवी आनन्दपूर्वक संग रहीं। हमारे होटल से प्रायः साढ़े सात मील राह थी। सबेरे को हम लोग निकले। रसोई बनाने वाले गोवर्द्धन हमारे मध्याह्न भोजन के उपकरण अपने साथ ले चले।

यह है चक्राता जाने वाली सड़क। मगर इस सड़क पर बस या मोटर नहीं चलती। राह सँकरी है और उतराई बहुत और ऐसी मानो पीछे से धकेल कर आगे बढ़ा रही हो। शरद ऋतु के यात्रियों की बारी शेष हो चुकी है, इस लिए लगभग पूरी राह जन-हीन है। सफ़ेद केड्स के जूते पहन कर कृष्णा स्वच्छन्दतापूर्वक चलीं। वे स्वभाव से ही आत्मगता हैं। हम गप्पें करते, वे प्रसन्न मन सुनतीं। इसी में उन्हें सुख मिलता।

वन की हर राह हमारी अजानी है। वह वन घना होता जाता। जितना भी हम आगे बढ़ते, उतना ही घना। जाड़े का दिन—इसी से हमें थकावट कम मालूम होती। पूरी राह समाप्त करने में प्रायः ढाई घण्टे लगे। कैम्पटी में एक छोटा सा डाक बंगला तथा बरामदा है। अनुमान लगाता हूँ, यह इलाक़ा मसूरी से लगभग दो हज़ार फ़ुट नीचा है, यानी धूप थी, थोड़ी सी गरमी है। सामने के पहाड़ के बीच एक चक्राकार क्रोड़गर्भ है, बहुत कुछ अश्वक्षुर की आकृति जैसा। उसी की एक विशाल पहाड़ी चोटी पर से भयंकर जल-प्रपात नीचे गिर रहा है झरझर। अगल-बग़ल दो-एक छोटे-छोटे प्रपात भी हैं। नीचे उतर कर उन्होंने तालाब को जन्म दिया है। आसाम के चेरापूँजी में ऐसा दृश्य देख चुका हूँ। हस्ती प्रपात में गिरीडीह के उसी प्रपात में, दार्जिलिंग के पगलाझोरा में एवं कश्मीर की राह में जम्बू की विशाल पर्वत शृंखलाओं में—जिसे कहा जाता है पीरपंजाल, पर्वत शृंखला। यहाँ का परिवेश उतना मनोरम नहीं है। दो-चार विज़िटर—पुरुष और महिलाएँ नज़र आयीं और सभी ने मिल कर गुलगपाड़ा भी मचाया। जब कि यहाँ सैर-सपाटे के लिए ऐसी कोई सुविधा भी नहीं थी। फिर दोपहर

के भोजन के रूप में खिचड़ी की वजह से हमारा परिवेश मनोनुकूल हो उठा था। यह कहना मुश्किल है कि हमारे भोजन में हिन्दू-मुसलमान का संयोग हुआ या नहीं।

जलवायु की वजह से हमारी पाचनशक्ति जितनी अच्छी क्यों न रही, मगर लौटते समय हम लोगों की हालत अच्छी नहीं थी। भरे पेट की वजह पैर सहज में उठते ही नहीं थे और चढ़ाई तय करने की मनाही। पहाड़ी यात्रा में कभी भी भरे पेट भोजन नहीं करना चाहिए, इसे याद रखना चाहिए था। इस से लौट कर आने में चार घण्टे अधिक समय लगा था। कृष्णादेवी जितनी थक गयी थीं उतनी ही पसीने से लथपथ थीं। और हम लोग—इस के उल्लेख की जरूरत ही क्या है! होटल में लौट कर किसी ने किसी से घण्टे भर तक बात ही नहीं की। तब था कृष्णपक्ष। सन्ध्या के बाद ही तारों से आकाश छा गया और उस आकाश को जैसे हाथ उठा कर ही हम छू सकते थे। परन्तु नीचे का दृश्य और भी अपरूप था। हम लोग बहुत चुन कर ऐसे एक होटल में टिके थे, जहाँ से समग्र देहरादून घाटी को गरदन मोड़ते ही देखा जा सकता था। शाम को देहरादून शहर में टँग गयी है बत्तियों की माला। सात हज़ार फ़ुट ऊँचे एक जगह पर बैठ कर नीचे की मंज़िलों की वह दीपावली की घटा विस्मय विमुग्ध कर गयी। बम्बई के मालाबार हिल के ऊपर स्थित रिज होटल से नीचे समुद्र की ओर देखने पर भी ऐसी ही छटा मिली थी। वहाँ समुद्र की गोद में सम्पूर्ण बम्बई, लगा था, जैसे धरती पर उतर आया हो। आधा चाँद और उस में से प्रकट हुआ है मैरिन ड्राइव। सन्ध्या के बाद अर्धचन्द्राकार कछार की गोद में दीपमालिका जल उठी थी। यहाँ के लोग इस वृत्त को कहते हैं क्वीन्स नेकलेस। मेरी दोनों आँखें विस्मय-विमुग्ध थीं।

अचानक बग़ल से कृष्णादेवी ने हमला किया। वे बोलीं—पुरुषों को हम खुश करती हैं लाचारी से!

उन के वाक्य-बाण से हम दोनों आहत हुए। शशांक ने पूछा—क्यों बताइए ज़रा?

उन्होंने कहा—आँखें दोनों शान्त रहेंगी तभी तो कुछ देख पायेंगे। कैम्पटी फॉल जा कर झूठे ही परेशानी में नहीं पड़े क्या?

मैं ने कहा—आप को कष्ट हो रहा था तो कहा क्यों नहीं?

—मुझे कष्ट हो रहा था आप लोगों का कष्ट देख कर!

—हम लोग खुश होंगे, आप क्या इस लिए गयी थीं?

कृष्णा अब हँस पड़ीं, बोलीं—क्षमा करें, नाराज़ न हों, अब से बिना मेरे कहे आप लोग कहीं जा नहीं सकते।

—मतलब? मैं ने उन की ओर देखा।

उन्होंने कहा, बताइए शशांक बाबू, जहाँ जाने पर कुछ मिले नहीं, वहाँ ये हाथ क्यों बढ़ाते हैं? क्या मिला कैम्पटी फॉल में!

शशांक कह बैठे—यही तो इन का दोष है। हर समय उसे ही पकड़ना चाहते

हैं, जो पकड़ के बाहर है। देखती नहीं, जहाँ कुछ मिलता नहीं, वहाँ की चर्चा में मशगूल हैं।

हम सभी ज़ोर से हँसने लगे। हँसी-मज़ाक़ में बैठ कर शशांक सदा विपक्षियों का साथ देते हैं। मुझे बनाने में ही उन्हें मज़ा मिलता है।

विजय-गौरव में कृष्णा बोलीं—कल से प्रोग्राम हम और शशांक बाबू बनायेंगे।

मैं हँस कर बोला—तो मेरी शंका इतने दिनों बाद पूरी हुई।

—कैसी शंका ?

—छोड़िए, कहने की जरूरत नहीं। मैं उठने की चेष्टा करने लगा।

वे दोनों घबरा कर मेरी ओर ताकते रहे। मैं सिगरेट पीने लगा। देखते-देखते कृष्णा के चेहरे का रंग उतर गया। अधीर हो कर वह बोलीं—यह कैसा बचपना है ? कैसी शंका ?

नाटक जब अच्छी तरह बन गया, तब कहा—मतलब इन कई दिनों की ओढ़ी हुई गम्भीरता की बात ही मैं कह रहा था।

—ओह ! मैं तो डर गयी थी !

—फिर हम लोग हँसने लगे थे।

[९]

सिन्धु और शतद्रु जैसी वन्य और पहाड़ी नदियाँ भारत में और तीसरी नहीं है। कभी डायरी के पन्ने पर लिखा था, गंगा है राजतरंगिणी मगर शतद्रु मेरे लिए आदि में विस्मय, अन्त में भी विस्मय ! भारत को दो खण्ड किया है शतद्रु ने। वह तिब्बत से यात्रा प्रारम्भ करती है और कैलास पर्वत-शृंखला को काटती है। फिर जास्करा को, इस के बाद धवलाधार शूलशृंग और शिवलिंग पर्वतमाला को अर्थात् समग्र हिमालय को काटती हुई पंजाब के विलासपुर में आ कर मोड़ लेती है। अजब नदी है। इन सभी को तुरूप से काटती हुई पंजाब के भीतर घुस कर सीधे दक्षिण में उतर गयी और फिर सिन्धु में समाहित हो चली गयी अरब सागर तक। वही वन्य शतद्रु भाखरा में केन्द्रित हुई।

भूतत्त्वविद् अवाक् हो कर शतद्रु की ओर ताकते रहते हैं।

विलासपुर की तरफ़ जब शतद्रु आयी, तब वह हिमाचल प्रदेश के अन्तर्गत थी। मुश्किल तो यह है कि पार्वत्य पंजाब एवं हिमाचल प्रदेश ऐसे मिले हुए हैं कि एक-

बारगी यह कहना कठिन है कौन किस तहसील में है। चम्बा हिमाचल प्रदेश में है तो काँगड़ा और कुलू पंजाब में। यह सुन कर अचम्भा होता है। दोनों में कहीं कोई मेल नहीं। पश्चिम बंगाल के एक इलाक़े से दूसरे इलाक़े में जाने के लिए अभी उस दिन तक जैसे बिहार अथवा आसाम पार करना पड़ता था, वैसे ही हिमाचल प्रदेश में भी एक पहाड़ से अन्य पहाड़ पर जाने के लिए बिना पंजाब को लाँघे कोई चारा नहीं। पेप्सू का भी लगभग यही हाल है और पश्चिम भारत स्थित बड़ौदा की भी यही स्थिति है। इस का परिणाम यह हुआ कि बाहरी घुसपैठ से प्रदेशों की राष्ट्रीय मेल-जोल की रक्षा में कठिनाई पैदा हो गयी।

मुझे अचरज हुआ, जब शिमला को हिमाचल प्रदेश में ले आया गया। क्योंकि हिमाचल प्रदेश की मूल प्रकृति है राजपूती और शिमला की पंजाबी। इन के विच्छेद की कामना मैं ने नहीं की मगर मिलन तो आश्चर्यजनक है ही। पठान और मुग़लों के ज़माने में, पाँच-छह सौ वर्ष पूर्व हज़ारा राजपूत परिवार भाग कर हिमालय में आये थे। स्थानीय लोगों को हटा कर उन लोगों ने अपनी विद्या, बुद्धि, शौर्य, शिक्षा और सुशासन की प्रतिष्ठा की थी। इसी प्रकार नेपाल भी राजपूतों के द्वारा जैसे सुगठित हुआ, उसी प्रकार उत्तर प्रदेश एवं दक्षिण कशमीर के बीचोंबीच का पहाड़ी इलाक़ा जिसे आज कहा जाता है हिमाचल, उसे भी पहले राजपूतों ने आपस में बाँट लिया था। इस का फल यह हुआ कि खण्डित, छोटे, विच्छिन्न हो-हो कर बहुत से छोटे-छोटे राज्य एक-एक कर के बन गये। दो-चार पहाड़ों को मिला कर एक-एक राज्य बना और सीमा के रूप में आसपास की नदियाँ प्रमुख हो उठीं। वे राज्य स्वाधीन एवं स्वतन्त्र हो उठे। छोटे-बड़े राज्यों ने आज हिमाचल प्रदेश को जन्म दिया। इन में चम्बा, मण्डी, विलासपुर, शिरमूर—ये सब के सब बड़े राज्य हैं।

शिमला में कुछ दिनों तक रह चुका हूँ। अभी उस दिन तक यह पटियाला महाराजा की ज़मींदारी में था परन्तु अंगरेज़ सरकार ने उसे अपने कब्ज़े में रख छोड़ा था। पंजाब की गरमी असह्य है। इस लिए बिना पहाड़ी शहर के साहबों का काम कैसे चलता? इसी सन्दर्भ में एलेन कैम्बेल जॉनसन की पुस्तक है 'मिशन विद माउण्ट बैटन।' इस पुस्तक के एक पृष्ठ का स्मरण हो आता है। पूरबी पाकिस्तान के जनमने के साथ ही जिन्ना साहब ने कुछ अंगरेज़ों को सरकारी ओहदे पर आसीन होने के लिए अनुरोध किया था। मगर पूरबी बंगाल के क्षेत्र में शिलांग और दार्जिलिंग नहीं पड़ा, इस लिए भद्र अंगरेज़ों ने नौकरी नहीं स्वीकारी। जो भी हो, पटियाला का महल शिमला में है ज़रूर, मगर वे रहते थे उस वक़्त चाईल शहर में। शिमला से चाईल रात के वक़्त दीखता है, जब चाईल में बत्तियाँ जगमगाती हैं। दिन के वक़्त वह अस्पष्ट लगता है। शिमला से चाईल जाने के लिए मोटर की सड़क है। यह सड़क कान्दाघाट हो कर गयी है।

पहाड़ी शहरों में एकमात्र शहर शिलांग है, जहाँ पता नहीं चलता कि पाँच

हज़ार फ़ुट की ऊँचाई पर हम रह रहे हैं। सड़क खूब समतल है वहाँ। अन्य किसी हिलस्टेशन में यह सुविधा नहीं है। शिलांग वैसे हिल सिटी है, हिल स्टेशन नहीं। शिमला इस के विपरीत है। जहाँ तक याद है मुझे, शिमला की ऊँचाई सात हज़ार फ़ुट से भी अधिक है और मसूरी में भी रानीखेत की भाँति सर्दियों में खूब ठण्ड पड़ती है, बर्फ़ भी होती है। किसी-किसी वर्ष तो शिमला में चार-पाँच फ़ुट तक बर्फ़ जम जाती है। शिमला जाने वाली सड़क भी सीधी-सरल नहीं है। क्योंकि मण्डी, चम्बा अथवा बिलासपुर से शिमला पहुँचने में ऐसे दुस्तर पथों को पार करना पड़ता है कि राजधानी से नित्य संयोग रखना मुश्किल है। उत्तुंग पर्वत, सूनी घाटियाँ, भीषण जंगल तथा दूरअतिक्रमा नदी-निर्झरिणी का सदा से एक से दूसरे का सम्पर्क टूटा हुआ!

कालका से शिमला तक रेल पथ है। साथ ही रेल-मोटर पथ और उसी की बग़ल से निकल गया है प्रशस्त कोर्ट रोड। जैसा है दार्जिलिंग या गोहाटी से शिलांग अथवा काठगोदाम से अलमोड़ा का पथ। पथ है टेढ़ा-मेढ़ा। कहीं बहुत से लूप, बहुत सी सुरंगें। इस पहाड़ी सड़क में कई सुप्रसिद्ध इलाक़े पड़ते हैं। एक है डगसाई—जहाँ भारतीय सेना का दफ़्तर है। एक है सोलन जहाँ है भारत प्रसिद्ध मद्य प्रस्तुत करने वाला कारखाना। तीसरा है कसौली—कुत्ते के काटने पर जहाँ विशेषज्ञ के द्वारा चिकित्सा होती है। और चौथा है धरमपुर—जहाँ के अस्पताल में यक्ष्मा के रोगी आश्रय पाते हैं। समतल पंजाब की गर्द-गुब्बार से दूर पर्वत की एकान्त वनमयता के मध्य धरमपुर एक अति मनोरम स्थान है। कर्सियांग की वायु में जलीय अंश अधिक है, यहाँ तक कि नैनीताल के भवाली में भी बहुतों को नमी ज़्यादा मालूम पड़ सकती है। मगर धरमपुर की जलवायु बंगालियों के लिए विशेष लाभप्रद है। यहाँ की चारों ओर की वन-भूमि भिन्न-भिन्न वर्णों के असंख्य हिमालय के वन-पाखी, झरनों की कल-कल मुखरता किसी भी पर्यटक को अमरावती का सुसमाचार सुनाती मिलेगी।

कालका से शिमला अन्दाज़न साठ मील पहाड़ी पथ है। आश्चर्य है, इस पथ का जिन्होंने आविष्कार किया है, वे नमस्य हैं, इस में शक नहीं। पहाड़ के ऊपर-ऊपर से आवागमन के लिए जो पगडण्डियाँ हैं—जितनी जटिल उतनी ही सुगम, लेकिन किसी प्रकार जहाँ पथ का टेर नहीं मिलता, वहाँ हर पहाड़ के भीतर-भीतर पारस्परिक संयोग, बड़ा अतिमानविक है। यहाँ भी ठीक दार्जिलिंग जैसा ही है। रेल पथ के साथ ही मोटर पथ। नेवला जिस प्रकार साँप से खेलता है यहाँ मोटर के संग रेल का खेल भी वैसा ही लगता है। दोनों ही कभी अदृश्य, यानी दोनों ही जैसे भटक गये हों पहाड़ी वन-पथ में। मगर यथासमय फिर दोनों आमने-सामने। मतलब, नेवले के द्वारा ही साँप की हार सम्भव है। ऐसी ही बात रेल और मोटर की है। क्योंकि मोटर पहले पहुँचती है शिमला। शिमला की सड़क पर ही है चुंगी। वहाँ तलाशी ली जाती है, फिर टोल-टैक्स का सवाल उठता है। इस के बाद पार-पत्र ले कर पंजाब (वर्तमान के हिमाचल प्रदेश) की ओर भारत की राजधानी में क़दम रखना पड़ता है। एक ज़माने में पहाड़

के दो प्रान्तों की दो पठारों के ऊपर प्रदेश के गवर्नर और भारत के वाइसराय के निवास थे। साफ़ शब्दों में, यह था अँगरेज़ों का ग्रीष्म अवकाश-स्थान। वेस्टरिज से दक्षिण-पश्चिम की ओर जाने से मिलता है मासोब्राय, जो था बड़े लाट का भवन। भवन का नाम है रिट्रीट। इस 'रिट्रीट' में चोड़ वन की छाया में चाय पार्टी के बहाने भारत का भाग्य, बहुत बार नियन्त्रित हुआ है। और यहाँ की ही निर्जनता में बैठ कर किसी एक शेष रात्रि में पण्डित नेहरू ने पाकिस्तान के निर्माण को स्वीकारा था।

उसी वेस्टरिज की तरफ़, अर्थात् अपर शिमला के 'केन्द्रीय परिषद्' के निकटतम मन्दिर की बग़ल से जा कर नीचे की ओर के एक मकान में बहुत दिनों तक मैं रहा। यहाँ से शिमला का पथ चक्राकार सा घूम गया है। उधर है लोवर शिमला। इस पार से यक्ष पर्वत की सड़क चली गयी है। वहाँ उस का प्रचलित नाम है जैकोहिल। अम्ल के रोगी मेहनत कर के रोग पर विजय के लिए वहाँ जाते हैं। और कुछ श्रमशील नर-नारी भी जाते हैं उस तरफ़। समग्र पहाड़ का परिभ्रमण करने के दौरान आठ मील के क़रीब चक्कर काटना पड़ता है। उस जादूनगरी में कितनी ही मेनकाएँ आधुनिक विश्वामित्रों को बाँकी चितवन के द्वारा खींच ले जाती हैं।

इधर माल की राह पकड़ कर सीधे जाने पर मिलेगा एक जनहीन हिस्से में बंगाली समाज के द्वारा संचालित एक काली मन्दिर। इस काली मन्दिर की कभी, स्वर्गीय नृपेन्द्रनाथ सरकार के प्रयत्नों से काफ़ी प्रसिद्धि थी। वे तत्कालीन सरकार के आदमी होते हुए भी अत्यन्त लोकप्रिय और बंगाली सम्प्रदाय के नेता थे। कीर्तिर्यस्य स जीवति।

मैं था मित्रवर सत्येन्द्र प्रसाद बसु का अतिथि। वे थे एक विशिष्ट पत्र-प्रतिनिधि तथा साहित्य-समालोचक। मगर आज वे इस लोक में नहीं हैं। उन की चर्चा अन्यत्र भी कर चुका हूँ। तीनों दिशाओं में ख़ूब ऊँची-ऊँची पहाड़ियाँ, नीचे की ओर एक छोटी सी घाटी। आस-पास ऊँचे-ऊँचे देवदारु, शाल और चीड़ के दरख़्त। मानो यह हो एक निविड निकुंज। पर ऐसी निर्जनता में भी हम जैसों का एक दल जा जुटा था। बरीशाल के नेता श्री सरलकुमार दत्त, जो स्वर्गीय अश्विनीकुमार दत्त के भाई के लड़के थे, वे थे टोली के गुरु। मजाक़िया और बुद्धिमान्। यहाँ प्रसिद्ध पत्रकार दुर्गादास आते थे, और आते थे पी० पी० गिरी। और आते थे मद्रास के प्रसिद्ध नेता सत्यमूर्ति, अग्रसर-प्राप्त क्रान्तिकारी नेता अमरेन्द्रनाथ चट्टोपाध्याय, एम० एल० ए०, सुदक्ष चित्रकार सोरेन सेन तथा और भी बहुत लोग। स्त्रियों में थीं श्रीमती बसु जो आज स्वर्ग में हैं। कवि अजितदत्त की साली श्रीमती मिण्टू और उन की एक सहेली श्रीमती रमा नन्दी। इन के अतिरिक्त और थे श्रीमान् पातंजलि गुहठाकुरता। मगर उन दिनों वे हम लोगों के बीच "बोलाई" नामसे विख्यात थे। और एक सुन्दर तरुण छात्र कभी-कभार आता था। उस का नाम है प्रभातकुमार मुखोपाध्याय। अप्रासंगिक यदि न हो तो कहूँ, कि उस दिन के उस प्रभात ने आगे चलकर बोलाई की सहोदरा बहन से विवाह कर लिया।

जो महाप्रस्थानेर पथे में रानी की भूमिका के अभिनय कर के अभिनेत्री के रूप में विख्यात हुई। यानी उस समय हमारा दल निहायत छोटा नहीं था। सत्येन के घर पर बिना मूल्य का टेलीफ़ोन था। मतलब बहुत सारी उपयोग्य कहानियाँ टेलीफ़ोन पर ही रचित होतीं।

शिमला से तारादेवी का छोटा सा गाँव क़रीब था। यहाँ एक काली मन्दिर मैं ने देखा था। जैसा कि पहले कह चुका हूँ, असम के उत्तर प्रान्त से शुरू — भूटान सिक्किम का दक्षिणांचल, दार्जिलिंग, नेपाल, कुमायूँ, इस के बाद काँगड़ा और हिमाचल प्रदेश—आदि सभी स्थानों, समग्र हिमालय में सर्वप्रमुख रूपसे शक्ति की पूजा होती है। चण्डी के बाद आगमन हुआ काली का, इस के बाद तारादेवी का, इस के भी बाद आयी किन्नरों की भीमकाली, शाकम्भरी, महिषमर्दिनी—इसी क्रम में। व्यक्तिगत विश्वास और धारणा से समाज-मन की उत्पत्ति है। उसी समाज-मन ने धार्मिक संस्कृति, चित्तप्रकर्ष और समष्टिगत ज्ञान प्राप्ति की लालसा को जाग्रत् किया है। यदि कोई ऐसा कहता है कि मैं विश्वास नहीं करता, तो कहे, किन्तु विश्वास चला आ रहा है युग-युगों से। भारतीय-मन की यह क्रमबद्धता आज भी अटूट है।

शिमला के नीचे है सरकारी रिजर्व फ़ॉरेस्ट। ऊँचे ओहदे वाले कर्मचारी यहाँ शिकार के लिए आते हैं और मौज-मज़ा के लिए वे कुछ दूर पर अवस्थित अननदेल के मैदान में घुड़सवारी का आनन्द लूटने जाते हैं—शहर से तीनेक मील दूर नीचे की ओर। जैसा है दार्जिलिंग में लेवांग मैदान। बड़े शिमला के किनारे-किनारे छोटे शिमला की सड़क चली गयी है बयलूगंज को पीछे छोड़ती हुई प्रास्पेक्ट पहाड़ की ओर। वह हिस्सा जनहीन है, इस लिए वनभोजन के लिए बहुत सुविधाजनक है। वहाँ खड़े हो कर हिमाचल प्रदेश का विस्तार और बृहत्तर रूप देखा जा सकता है।

सरकारी कर्मचारियों के निवास स्थान, बड़े-बड़े होटल और बोर्डिंग हाउस से हर समय शिमला भरा रहता है। संख्या में इतना अधिक निवासस्थान अन्य पहाड़ी शहरों में ढूँढ़ने से नहीं मिलता। यहाँ के स्थानीय निवासी व्यापार करते हैं या मज़दूरी और बाक़ी लोग नौकरी करते हैं। अब भी ऐसे बंगाली हैं—जिन में बहुत से ऊँची नाक वाले लोग हैं—जो इस शहर के स्थायी निवासी हो गये हैं। बहुत तो ऐसे मिलेंगे, जिन्हें नौकरी से पेंशन मिल जाने पर भी दिल्ली-शिमला का मोह नहीं छोड़ पाते हैं। सच कहा जाये तो मोह त्यागना भी कठिन है। जल, वायु, आहार-विहार एवं एक प्रकार की पूर्वापूर्व स्वच्छन्दता ही शिमला की विशिष्टता है। इस शहर की सर्वांगीण उन्नति के निमित्त पंजाब और भारत—दोनों देशों की सरकार ने एक लम्बे अरसे से सिर खपाया है।

शिमला के नीचे प्रशस्त कार्ट रोड चला गया है। इसी राह से शिमला में प्रवेश किया जा सकता है। समग्र शहर की परिश्रम साध्य चढ़ाई और उतराई को पीछे छोड़

यह राह बहुत दूर तक चली गयी है। इस हिन्दुस्तान-तिब्बत रोड से शिमला से नारकण्डा लगभग चालीस मील मोटर की सड़क है। इस के बाद पैदल चलो, शिमला से कमोबेश —डेढ़ सौ मील का अतिक्रम करने पर मिलता है 'चिनि' शहर, अर्थात् बूशाहर राज्य का इलाक़ा। किन्तु इस पथ का अन्त यहीं नहीं होता—दुस्साहसियों के लिए पथ खुला रहा विचित्र जगत् में जाने के लिए। जिस पथ से जाने पर शिपकी गिरिसंकट पार कर तिब्बत पहुँचा जा सकता है। लेकिन यह पथ अति दुरूह है। पूर्व कशमीर से जिस प्रकार कारगिल हो कर लद्दाख जाना पड़ता है, वैसे ही बहुत दुर्गम गिरिसंकट एवं अजान-अनाम तथा दूरारोही अंचलों को पार कर लद्दाख की राजधानी लेह शहर में पहुँचा जा सकता है। घोड़े झब्बू, अश्वेतर के अलावा कोई सवारी नहीं। भोजन संग रखना पड़ता है, इसी के साथ एक तम्बू भी और वेतनभोगी दो पथनिर्देशक, इन के बिना मुश्किल है। बिलकुल जंगली पहाड़ी पथों में खोना भी कम संकटपूर्ण नहीं है। पथ जहाँ शाखा-प्रशाखा में खूब विभक्त है, वहाँ बिना गाइड के काम नहीं चलता। कारण, किसी पथ का कहीं कोई संकेत नहीं। चढ़ाई चढ़ते-चढ़ते वायु के एक विशेष स्तर पर पहुँच कर साँस लेने में गड़बड़ी का होना जरूरी है। अत्यन्त स्वस्थ, साहसी और कष्ट-सहिष्णु व्यक्ति भी थोड़े परिश्रम से ही थक क्यों उठे, यह वे स्वयं ही समझ नहीं पाते। जो भी हो, इस पथ से शिपकी संकट तक जाने पर कहीं हिमाचल प्रदेश की सीमा मिलती है। इसी सीमा के मध्य बूशाहर राज्य पड़ता है और इस राज्य के एक अंचल का नाम है किन्नर देश। एक तरफ़ तिब्बत, दक्षिण में हिमाचल प्रदेश, पूर्व में है गढ़वाल की सीमा। एवं इसी अंचल को छूते हुए प्रवाहित है अजब शतद्रु—इन के बीच है किन्नर देश, बूशाहर की राजधानी शरण है, यहाँ भारतप्रसिद्ध भीमकाली का सुरम्य मन्दिर है। यह भारतीय और तिब्बती स्थापत्य शिल्प का एक बेजोड़ नमूना है।

पहले भी मैं कह चुका हूँ कि पूर्व कशमीर में, नेपाल, उत्तरी गढ़वाल में तथा सिक्किम-भूटान में तिब्बती स्थापत्य का प्रभाव स्पष्ट है। हिन्दू मन्दिर तो दूर की बात है, मुसलमानों की मसजिदें भी इस प्रभाव को धोखा नहीं दे पातीं। बहुत बार तिब्बती प्रकार के हिन्दू देवी-देवता—जैसे शिव, कार्तिकेय, काली, लक्ष्मी आदि का रूप सज्जा तथा गढ़न में भी तिब्बती प्रभाव अनायास समाहित हो गया है। वैसे हिन्दू देव-देवी भी विभिन्न नाम एवं विचित्र संज्ञा से तिब्बती-पूजा पाते हैं, इस में सन्देह नहीं। शतद्रु नदी का तीर पकड़ कर प्राचीन पथ से तिब्बत से भारत जाया जा सकता है। यह पथ बूशाहर राज्य में जब प्रवेश करता है, तब इस के किनारे मिलता है प्राचीन शहर रामपुर। किन्तु इस शहर को पार करते ही यह स्पष्ट हो जाता है कि किन्नर देश दो भागों में विभाजित है : एक भाग भारतीय है और दूसरा तिब्बती। भारतीय हिस्सा मन्दिर प्रधान है, आचार और आचरण में, समग्र हिमाचल प्रदेश जैसा ही हिन्दुत्व सम्पन्न। मगर तिब्बती हिस्सा कुछ भिन्न है। इन के धर्म गुरु हैं लामा। उन का धर्म स्थान है गुफ़ा। वे हैं बौद्ध। उन की दृष्टि रहती है तिब्बत की तरफ़। रूप में तिब्बती,

आचार-विचार में लामा। वैसा ही भूत-प्रेत, पिशाच और दैत्य-दानवों के विरुद्ध मन्त्रोच्चारण। स्पष्ट है किन्नर देश भारत और तिब्बत का सांस्कृतिक सेतु है। इस किन्नर देश का प्रधान केन्द्र है 'चिनि'। 'चिनि' के दक्षिण में विशाल अधित्यका अंचल है। घनघोर जंगल, अचरज है। बड़े-बड़े रंग-बिरंगे पंछी इस वन से उस वन में सस्वर उड़ते रहते हैं। नीचे से तेज़ी से सींग वाले हरिणों का दल गुज़रता है। इस के अतिरिक्त तिब्बत से उतर आते हैं भूरे रंगों के रीछ।

नारकण्डा से रामपुर जाने वाली सड़क पर ही कोटगढ़ पड़ता है। पथ कुछ टेढ़ा है। मगर रामपुर के बाद ही से पथ जंगली हो उठा है—चढ़ाई पर चढ़ाई, फिर उतराई। इस पथ से गुज़रते समय सभ्य संसार का कोई चिह्न सहज ही नज़र नहीं आता। वर्ष के विशेष समय में व्यापारियों का कारवाँ आता-जाता है। तिब्बत है एक प्रकार से निषिद्ध देश, किन्तु भारत का द्वार हमेशा खुला है। कौन नहीं जानता कि भारत का द्वार बन्द हो जाये तो तिब्बती व्यापारी संकट में पड़ जायेंगे। इस लिए तिब्बतियों के स्वार्थ को दृष्टि में रख कर तिब्बत-हिन्दुस्तान रोड कभी भी बन्द नहीं रहा। रामपुर से वांग्टा, वांग्टा से चिनि। मगर वांग्टा है जंगलों का केन्द्र, कहीं रुकावट नहीं। देवदारु तथा चीड़ एवं अखरोट का वन। शाल और सैगुन-शीशम का जंगल। पर्वतमालाओं का तराई अंचल गहनतम है, इसी जंगल में कहीं-कहीं लकड़ी के काम करने वालों का घर है। वे प्रायः वर्ष भर तक एक अंचल से दूसरे अंचल में लकड़ी काटते फिरते हैं और बड़े-बड़े कुन्दे शतद्रु की प्रखर नीलाभ जलधारा में बहा देते हैं। वही लकड़ी बह कर आ जाती है पंजाब की ओर। यह व्यापार युगयुगान्तर से चला आ रहा है। वांग्टा से चिनि का पथ चढ़ाई। पथ के बीच में एक झूलता-सांकों भी है। सन्ध्या के बाद से इस सांकों से इस पार से उस पार बड़े-बड़े जन्तु-जानवर आते-जाते हैं। इस साँकों को पार कर धीरे-धीरे चढ़ाई पार करना पड़ता है। लाल सेब का वन शुरू हो गया है। अंगूर का खेत उस की अगल-बग़ल है। लड़कियाँ लाजभरी आँखों से ताकती हुई—अंगूर जैसा टसटस मुखड़ा, सेब जैसे लाल-लाल दोनों गाल। सुगठित देह पर आँखें नहीं टिकतीं, ऐसा ढका हुआ सर्वांग कि सैलानी की कोई अपवित्र कामना किन्नर के सौन्दर्य पर हाथ लगा पाये, यह असम्भव है। सभ्य लोगों से वे डरती हैं।

चिनि बहुत ऊँचा है, सम्भवतः दस बारह फ़ुट ऊँचा। सहसा सामने पड़ती है विशाल घाटी, समतल और असमतल। तीन ओर से वह चक्राकार है, उस के नीचे की तरफ़ है बृहत्तर भारतवर्ष। किन्तु अंगूर और सेब के बग़ीचे को पार कर सामने उठ आयी हैं आकाश को छूने वाली पर्वत की चोटियाँ। चोटियों के ऊपर चोटी, हमेशा बर्फ़ से ढकी हुई। हर चोटी के नाम में तिब्बत और भारत मिला-जुला। नाम याद रखना कठिन है। यहाँ, एक सौ मील के अनन्तर आ मिला है गढ़वाल, पंजाब, तिब्बत और कश्मीर। पहाड़ की चोटी पर खड़े हो कर इन सब को देखा जा सकता है। सिक्किम के गेंगाक दरबार की कन्दरा के आँगन में खड़े हो कर जैसा देखा जा सकता है, उत्तर

में तिब्बत, पूर्व में भूटान, पश्चिम में नेपाल और दक्षिण में भारतवर्ष, यहाँ भी ऐसा ही है। इस भू-भाग में शतद्रु भिन्न-भिन्न नामों और शाखा-प्रशाखाओं में प्रवाहित है। ठीक यहीं किन्नर देश द्विधा विभक्त हुआ है। उत्तर में है दुरूह पहाड़ी पथ, तरुलता हीन है उस का रूप, दक्षिण में अनन्त श्यामश्री और बीच-बीच में अनगिनत देवालय। हर गाँव, हर बस्ती के आस-पास है देवस्थान।

इतने मन्दिर और देवस्थान क्यों हैं हिमालय में ? इस का उत्तर मिला तब, जब पहाड़ी शहरों के क़रीब पहुँचा और जब एक कर्मजगत् के कोलाहल में आ गया। तब देवालय की संख्या कम होती गयी है। जब भी दुस्साध्य, दुस्तर पहाड़ी दुनिया की ओर बढ़ा हूँ, वहीं इस की संख्या बढ़ जाती है। इस का कारण स्पष्ट है। आदमी अकेला नहीं रहना चाहता, वह चाहता है मिलन। आदमी नेह से बँधता है, बन्धुत्व का सेतु बनाता है, स्नेह के द्वारा सम्पर्कों को क़ायम रखता है। देवालय है उसी मिलन का केन्द्रस्थल। इन देवालयों से निकल कर शंखध्वनि और मांगलिक घण्टे का स्वर दूर-दूरान्तर में फैल जाता है। सदा लगता है, पहाड़-पर्वतों पर सन्देश देता है, एक गाँव से दूसरे गाँव को प्रत्येक मनुष्य के मन में चेतना जगाता है। यह देवालय आदमी में नीतिबोध कराता है और समाज-धर्म की चेतना से परिचित, अन्याय के प्रति अनासक्ति तथा पवित्र जीवन के प्रति अनुराग उत्पन्न कराता है। एक न्यायालय चिनि में है—लेकिन न तो वहाँ मुवक्किल हैं और न ही कोई मुक़दमा। चोरी, डकैती, रहज़नी यह सब कुछ नहीं। न्यायालय सन्नाटे में पड़ा रहता है। एकान्त किन्नरों की जीवन यात्रा की प्रक्रिया सन्देह नहीं, आदर का बोध कराता है।

दक्षिण का किन्नर नाचने-गाने में मस्त है। किसान स्त्रियाँ नाचती हुई गीत का टेक पकड़ लेती हैं और मन्दिर के ब्राह्मण-पुरोहितों को घेर कर भी वे नाचती हैं। आभूषण आदि लौटा देने मात्र से पति-पत्नी का अलगाव हो जाता है—बस ! बचा-खुचा जीवन नाच-गा कर वे काटते हैं। परिवार की बहू किसान के संग नाच आयी। जंगली वृक्ष-वल्लरियाँ जब मंजरित हुईं, जब श्यामल-हरित वन में वसन्त की सी आभा निखरी, किन्नरियों का दल तब लकड़ी 'चीरने वालों के साथ नाचने-गाने चला। दूसरे देश का सैलानी या परिव्राजक आ खड़ा हुआ, उन के बीच बाँकी चितवन वाली नर्तकी आगे बढ़ आयी। स्निग्ध विस्मय-विमुग्धता उन्हें ले गयी अपने आँगन में, अंगूर, सेब आदि मिष्टान्नों से उस की अभ्यर्थना में लीन हो गयी। इस के बाद उन्होंने मधुर कण्ठ से गीत गाया—उस गीत की भाषा दुर्बोध्य है, सुर भी अपरिचित, किन्तु उस कोयल कण्ठ का मर्म है अनास्वादित उपलब्धि, आत्मा का रहस्योच्छ्वास। आनन्द पर विजय की घोषणा। पहाड़ों-पर्वतों-जंगलों में यह संगीत ही परम सत्य है, क्योंकि वे गीत परमार्थ का बोध कराते हैं। तीज-त्योहारों के उपलक्ष्य में वहाँ गीत के साथ नये प्रकार का नाच होता है—जैसा कुलू घाटी में—दैत्य-दानव का मुखौटा, जन्तु-जानवर का मुखौटा लगाने का रिवाज है। नाच के संग होता है मन में प्रबल

आग्नेय उत्ताप, जिसे 'पैशन' कहा जाता है। अन्याय को भयभीत करना, पाप को प्रताड़ित करना, मृत्यु को स्वीकारना, पुण्य की जय-यात्रा के साथ जनता की स्वीकृति लेना। उन्मत्त हो कर किन्नर लड़कियाँ नाचती हैं, उन के अंग-अंग थिरकते हैं। नाच ही है उन का जीवन-मरण। उस नाच के साथ मिला होता है अन्धड़ का आवेग, वर्षा की करुणा, वसन्त की यौवन-यन्त्रणा। इस नाच की थिरकन प्रान्तचारी चरवाहे को छूती है, छूती है राही का मन, छूती है व्यापारियों को, गृह-उद्योग में लगे कर्मरत नौजवान कर्मचारियों को। उन के साथ वे भी गीत गाने लगते हैं—लम्बे अलाप ले-ले कर। समग्र किन्नर पहाड़ियों में वही गीत ध्वनित-प्रतिध्वनित होता है।

उत्तर किन्नर का रूप कुछ और है। दक्षिण का पाप यहाँ कहीं प्रवेश न कर जाये। विशाल तोरण के नीचे से प्रवेश करो, सब अकल्याण बाहर छोड़ आओ। सूखा ऊसर, रोड़े से भरे कठिन पहाड़ी रास्ते को पार कर आने वाले विनत लामाओं को साष्टांग श्रद्धा निवेदन करो और आशीष माथे चढ़ाओ। वैसे ही, जैसा पहले देख आया हूँ, यहाँ भी पग-पग पर फटे कपड़ों का झण्डा फहराता है—प्रेत-पिशाचों के विरुद्ध वही श्वेत पताका—उन पताकाओं की प्रत्येक लहर में गौतम बुद्ध के प्रति श्रद्धा प्रकट हो रही है, जो हैं लामाओं के परम गुरु। हर आदमी मन्त्र पढ़ता है। जैसा कि तिब्बत का स्वभाव है। हर आदमी के हाथ में है पूजा-चक्र। अगल-बग़ल के पत्थरों पर लिखा है 'ओम् मणिपद्मे हुं'। जो बस्ती कुछ बड़ी है वहीं है गुफा। वहाँ स्थापित हैं बुद्ध की मूर्तियाँ और उस के द्वार पर रखा है एक बड़ा-सा नगाड़ा। स्त्रियाँ हैं धर्मपरायणा। मुखमण्डल पर सौम्य भाव, छरहरी होते हुए भी खूबसूरत, सिर के केश कटे हुए। जीवन पर्यन्त देवसेवा, लामाओं की सेवा। लामा ही हैं सर्वस्व। लामाओं के हाथ ही है समाज-व्यवस्था, जीवन-मरण का उत्तरदायित्व। इस उत्तर किन्नर से तिब्बत का पथ सीधा चला गया है। गारटक की ओर शतद्रु के किनारे-किनारे डबलिंग को पीछे छोड़ता हुआ तथा शिपकी की विशाल बर्फ़ से ढकी चोटी के नीचे-नीचे। इस के मध्य लूक और पियांग जनपद पड़ते हैं। देखते-देखते ही जटिल पर्वतमाला पार करते ही गारटक पहुँचने पर यह कारवाँ वाला पथ मूल पथ से जा मिलता है। गारटक है तिब्बत और भारत के बीच एक व्यापार का केन्द्र। इस शहर के आगे तक जटिल और धूसर अंचल में भारत और पश्चिम तिब्बत की सीमा बिलकुल नज़र नहीं आती। बही-खाते तथा मानचित्रों में यह कैसे किस रूप में वर्णित है, यह कहना कठिन है। गारटक के कारवाँ की पगडण्डी चारों ओर बिखर गयी है।

दक्षिण-पूर्व में कैलास और मानसरोवर का पथ है—इस पथ से बहुत से लोग जाते-आते हैं। मगर ठण्ड के कारण मौत की सम्भावना भी कम नहीं है। एक पथ उत्तर की ओर चला गया है—सिन्धु नदी तक, जहाँ से लद्दाख और कश्मीर जाने के लिए ऊँचे पथ हैं। उत्तर पूर्व से एक पथ चला गया है—तिब्बत के हृदय केन्द्र तक। वहाँ सोने की खान है। उत्तर को एक दूसरा पथ तासीगंग होते हुए मध्य एशिया को-

तरफ़ चला गया है—तिब्बत भारत के एक और व्यापार के केन्द्र की ओर। सम्प्रति चीन-भारत समझौते के अनुसार गारटक की बात विशेष रूप से कही गयी है। कैलास पर्वत श्रृंखला के लगभग मध्य केन्द्र की विशाल एक चोटी के ऊपर यह गारटक अवस्थित है। ऊँचाई में पन्दरह हज़ार फ़ुट से भी अधिक। हमारी परिचित पृथ्वी से यह पार्वत्य-जगत् इतना पृथक् तथा अ-अनुभूत है कि वन्य विस्मय में डूब जाना पड़ता है कि समतल भूमि एवं आधुनिक सभ्यता स्वप्नवत् मालूम पड़ती है। यह पृथ्वी का आदिम रूप सामने उपस्थित करता है तथा हज़ारों वर्ष पूर्व की चेतना का आभास देता है। अद्भुत। ऐसा दिगन्त-व्यापी एक अचरज, जिस की चर्चा मानव समाज के समक्ष करने में स्वयं को कैसा अजब-सा महसूस होता है। ऐसी ही एक उपलब्धि कश्मीर के जोजिला प्रपात संकट के निकट पहुँच कर हमें हुई थी। घोड़ा या टट्टू या झब्बू और चपरी—जो भैंस जाति का तथा अति शान्त निरीह जीव है—इन के सिवा यातायात का अन्य कोई साधन नहीं है। संसार में कहीं चक्के वाली गाड़ियाँ हैं, या चरबी से जलनेवाले दिये के बिना पेट्रोल या केरोसिन नामक किसी पदार्थ की गन्ध मिलती है, यह यहाँ बिलकुल अज्ञात है। आजकल नारकण्डा तक मोटर रास्ता है, और आबोहवा अच्छी रही तो जीप से आउट हो कर कुलू घाटी तक उस पथ से जाया जा सकता है। मगर नारकण्डा से रामपुर तथा चिनि का पथ यथा-सम्भव सुगम बनाने की ज़रूरत है। चिनि की सीमा में चीन के सैनिकों का जो अवैधानिक प्रवेश हो गया था, इस दिशा में भारत सरकार का सचेत रहना आवश्यक है, और यातायात की सुविधा जितनी जल्दी सम्भव हो सके, उतना ही अच्छा है।

शिमला से बहुत दिन पहले ही नीचे उतर आया था। लेकिन वहाँ की तराई के फूलबग़ीचे वाले छोटे से मकान, उस के पास के झरने की स्वरलहरी, साथ ही मित्रों का संग-साथ—बहुत दिनों तक मेरे मन को उदास बनाये रहा। जिन्होंने मुझे इस भ्रमण में भेजा था, उन्हीं विदुषी लेखिका और कवयित्री श्रीमती कृष्णा देवी के निकट लौट कर अभी-अभी सविस्तर कहानी सुनाने बैठा हूँ कि इसी समय शिमला का एक करुण समाचार 'अमृत बाजार पत्रिका' में छपा। हमारे अतिथि-सेवक पत्रकार सत्येन्द्रप्रसाद वसु की कल दोपहर हृदयगति रुक जाने से मृत्यु हो गयी। उन के अन्तिम क्षणों में बहुत से महान् व्यक्ति एवं स्वयं सर नृपेन्द्रनाथ सरकार उपस्थित हुए।

इस समाचार के प्रकाशित होने के ठीक एक दिन पहले शिमला से सत्येन का लिखा एक पत्र हमें मिला था :

"तुम लोग एक-एक कर के चले गये, मुझे अकेला छोड़ कर। मैं इस का बदला चुका कर रहूँगा कह रखा···· । चारेक दिन पहले डॉ० विधानचन्द्र राय यहाँ आये थे अपने काम से। मेरे पुराने हृदय रोग की बात याद है न, डॉ० राय इस बार फिर परीक्षा कर बोले, 'पहाड़ पर रहना तुम्हारे लिए ठीक नहीं है। तुम इसी समय नीचे उतर जाओ।' लेकिन मैं अगर यहाँ से चला जाऊँ तो यूनाइटेड प्रेस का काम कोई कर सकेगा क्या ? इस समस्या का समाधान क्या हो सकता है, सोच रहा हूँ····"

यूनाइटेड प्रेस की उन्नति के लिए सत्येन ने जीवन दे दिया, यह विधुभूषण सेनगुप्त भी मानते हैं। मगर अब मेरा मन कभी शिमला जाने का नहीं होता।

[१०]

मानस खण्ड की सीमा में खड़े हो कर तीन तरुण ब्राह्मणों ने कभी कैलासपति की मंगल कामना प्राप्त की थी—तुम लोगों की भारत विजय-यात्रा सार्थक हो, तुम देव-भूमि के उदार नीले नभ के नीचे सभ्यता और संस्कृति का सन्देश ले जाओ। काल प्रहरी की तरह तुम भी सदा काल-सापेक्ष बने रहो।

तरुणी भैरवी हँसती हुई अस्त-व्यस्त लटों को फटकार कर उन के सामने आ खड़ी हुई। बोली, "प्रभु, 'अनवतप्ता' मानस के नीलपद्मपात्र से मैं ने भी अपनी अंजलि भरी है। देवाधिदेव आदेश करें, मैं भी यात्रा करना चाहती हूँ।"

कैलासपति के निर्देशानुसार तीनों ब्राह्मण तीन दिशा को गये—उत्तर, पूर्व और पश्चिम में। मोदमना योगिनी युवती चली दक्षिण में। जननी भारत के ललाट सीमान्त की भाँति यात्रा आरम्भ करने के पूर्व उन्होंने मन्त्रोच्चारण कर तीन बार कैलास-मानस की प्रदक्षिणा की।

लाखों वर्ष पहले की यही कहानी है। किन्तु उन चारों ने अपने-अपने पथ में कोई विघ्न आने नहीं दिया। उन लोगों ने बर्फ़ीली चट्टानों का अतिक्रम किया, तूफ़ानी गति वाले हिमप्रपात को पराजित किया। इस के बाद निर्जन भयानक जंगलों, गगनचुम्बी गिरिशृंखलाओं, भयाक्रान्त प्राकृतिक भयंकर ताण्डव को तुच्छ कर के आगे बढ़ते गये। किसी के मुखापेक्षी नहीं हुए। प्यास मिटाने के लिए पानी तक की भीख न माँगी। ठहरे कहीं नहीं। उन्होंने ऐश्वर्य का अपहरण किया है रास्ते में। यात्रा पथ के दोनों छोरों को फलवान् बनाया तथा जीवन्तता के द्वारा उन्होंने अस्थिर अशान्त गति प्राप्त की। कैलासपति का आशीर्वाद सार्थक हुआ।

इन तीनों ब्राह्मणों का नाम है सिन्धु, ब्रह्मपुत्र और शतद्रु। और मतवाली भैरवी हैं, कर्नाली। ये चारों चिरकाल से एक विचित्र ऐश्वर्य को वहन करते आये हैं। शतद्रु अपने लहरों में समेट स्वर्ण-कण के रूप के संग चला; रौप्य की धूलि झकमका उठी है कर्नाली में, सिन्धु अजस्र हीरे के कण बहा ले चला है और ब्रह्मपुत्र अपनी पूर्व

धारा में स्फटिक सम्भार से गर्वित है। शतद्रु के पानी पीने से हाथी का बल मिलता है। कर्नाली के पानी पीने से मोर का सा सौन्दर्य मिलता है। 'सिन्धु' का जल सिंह के समान विक्रमी बनाता है, ब्रह्मपुत्र के पानी में बलशाली घोड़े की कठोर गति और अध्यवसाय प्राप्त हैं।

कर्नाली का हाल बड़ा अजब है। कुमायूँ की काली नदी और सरयू मिल कर हुई शारदा, तथा नेपाल में प्रवेश कर कर्नाली ने छद्म नाम धारण किया घागरा; इस का अपभ्रंश हुआ घाघरा। दोनों क्षुब्ध नदियाँ मिलती हैं चौकाघाट में, इस के बाद वे छपरा से उतर कर गंगा में मिल गयी हैं। सरजू हो या घर्घरा—परिणति हुई गंगा में। त्रिभुवन तारणी तरल तरंगिनी गंगा। भीषण भयंकरी, रुद्रायणी कर्नाली जाह्नवी की धारा में मिल कर स्थिर-थिर तथा आत्म समाहित हो गयी है।

पूर्व पथ से ब्रह्मपुत्र बीज-मन्त्र का जाप करता हुआ चला है। उस का ध्यान भंग नहीं हुआ। वह बह चला है हजारों मील तक, भारत के ईशान कोण में नामचाबारोयार पर्वत चोटी की प्रदक्षिणा करते हुए वह आसाम में जा घुसा है। हिमालय की दूसरी ओर से सोलह हज़ार ऊँचे पठार का समतल पार कर खूब लम्बे चौड़े रूप में एक हज़ार मील तक धारा-पथ में ब्रह्मपुत्र चला आया है। ऐसा उदाहरण एक-दो को छोड़ कर और नहीं मिलता। ब्रह्मपुत्र का आभिजात्य है, उस का कैलासमेरु का मानस-पुत्र होना। किन्तु यह नदी प्रथमतः बाधा के सम्मुख हुई वहीं, जहाँ देवतात्मा हिमालय ने उत्तर आसाम से दक्षिण आराकान की दिशा में अपनी जटा की गाँठ खोली हैं। उसी उत्तर-पूर्व आसाम की उत्तुंग चोटी नामचाबारोयार पर्वत अंचलों में सभ्य मनुष्य आज भी सम्भवतः पहुँच नहीं सका है। इस ऐतिहासिक युग में भी यह अंचल उपेक्षित रह गया है। समतल आसाम को हम इतिहास में पा लेते हैं, मगर पहाड़ी वन्य-आसाम को पठान मुग़ल या अँगरेज़ों के काल में अपेक्षाकृत कम ही पाते हैं। सिर्फ़ वर्तमान काल की मध्य शताब्दी में आसाम के पहाड़ी इलाक़ों में जीवन के मात्र स्पन्दन की प्रतीति होती है। पटकाई पर्वत शृंखला के इर्द-गिर्द पहाड़ों की गोद में मिसमी और मिकरों के जीवन में प्राण का स्पन्दन मिलता है। ज्वालामुखी अग्नि-स्राव नागाओं के चरणों पर आ गिरा है। इसी शताब्दी में भैरव के विकराल रक्त-रंजित नेत्र खोले सभ्यता के विरुद्ध अस्त्र धारण किया है उन लोगों ने। वहाँ इतने समय तक सभ्यता के पैरों का निशान तक नहीं पड़ा, और न ही उन्हें आधुनिक विज्ञान ने विजय के लिए कभी ललकारा है। जन्तु जानवर, कीट-पतंग, पक्षी, सरीसृप के संग पहाड़ी आसाम इतने दिनों तक एक कोने में पड़ा रहा।

ब्रह्मपुत्र दक्षिण पथ से घूम कर आया है पांगसिंग से 'कानो' घाटी में। वहाँ उस का नाम पड़ गया डिहंग। हिमालय में कोई भी नदी अकेली नहीं आयी। गंगा, यमुना, सिन्धु, शतद्रु, अरुण, सूर्यकोशी, सप्तकोशी, जलढाका, मानस—कोई भी अकेली नहीं आयी। भारत में प्रवेश कर ब्रह्मपुत्र ने हिमालय की विभिन्न नदियों को सहायता

ली है। यह कानी घाटी के दोनों ओर जो विशाल भू-भाग है, उस की राष्ट्रीय सीमा सम्भवतः आज भी निर्धारित नहीं हुई। कोई जानता नहीं हिमालय के अन्तर्गत मिसमी पहाड़-समूह की सीमा कहाँ है। कहाँ पहुँच कर भारत की सीमा मिलेगी—कोई नहीं बता सकता। सभ्य मनुष्य को देख कर यहाँ की पहाड़ी जाति के लोग और जंगली मनुष्य भय के मारे दूर-दूर तक भागते हैं। और नहीं तो दल-बद्ध हो कर सहसा आक्रमण करते हैं। इन की भाषा मुश्किल से दो-चार के अलावा कोई और नहीं समझता। लोग इन के जंगली जीवन को पहचानते भी नहीं। इन से घुलने-मिलने की चेष्टा तक नहीं करते। यहाँ नाम, परिचय-गोत्र हीन जंगली लोग बसते हैं, वे घर बनाते हैं बड़े विचित्र प्रकार का सभी लता-पत्र वृक्ष के तनों से बनाया और छाया हुआ। इन में से एक जाति खानाबटोरा है, वे भारत, वर्मा, चीन, तिब्बत कुछ नहीं जानते। वे ढूँढ़ते-फिरते हैं—भूख मिटाने के लिए भोजन और प्यास बुझाने के लिए पानी। बरछा, बल्लम और तीर-धनुष ले कर हिंसक जन्तुओं के पीछे भागते हैं। जिस तरह के जानवर देख कर सभ्य मनुष्य पीछे भागते हैं या बन्दूकों से आखेट करते रहते हैं या उस पर वार करते हैं, इन्हें देख कर वे जानवर भी जान बचाने के लिए भागते हैं। तीस हाथ लम्बा पहाड़ी म्याल सर्प इन का प्रिय खाद्य है। जंगली कुत्ते का कच्चा मांस इन के लिए बड़ा उपादेय है। इन का परिचय बोध-जाति नहीं, वरन् पहाड़ है। पहाड़ों के नाम से ये जाने जाते हैं। जंगल-पहाड़ों में बर्फ़ीले अन्धड़ और भूकम्प से ये घिरे रहते हैं। पिता-माता, पुत्र-कन्या सभी नंगे। लज्जा का कोई संस्कार कहीं नज़र नहीं आता। वर्षा, वसन्त, गरमी, जाड़े में इन का एक ही काम होता है—वह एक इलाक़े से दूसरे इलाक़े पर आक्रमण करना तथा भोजन की खोज में चक्कर काटना। इन्होंने कभी किसी का अनुशासन नहीं स्वीकारा, किसी सभ्यता को आँखों से देखा तक नहीं और किसी समाज की कल्पना नहीं की। इन्हीं कारणों से भारत का उत्तर-पूर्व सीमान्त हमारी दृष्टि में हमेशा से रहस्यमय है। सम्भवतः हिमालय का और कोई भी हिस्सा इतने अन्धकार में नहीं है।

हिमालय की प्रमुख-शाखा आसाम के अन्तिम प्रान्त उत्तर से दक्षिण में उतर आयी है। उस का नाम है पटकाई पर्वत श्रृंखला। यह पर्वत श्रृंखला भारत और वर्मा के मध्य उत्तर-दक्षिण में फैली दीवार है। इस पर्वत भू-भाग की घाटी में जनपद से चौकन गिरिसंकट में पहुँच कर भारत की सीमा का अन्त होता लगता है। और भी एक सीमा छूट जाती है वह है आसाम, वर्मा, चीन तथा तिब्बत का सन्धि-स्थल। वहाँ पहाड़ी जंगली नदी पहुँच कर शालवनी के करीब पहुँच कर भारत समाप्त हो जाता है। किन्तु समाप्त होने पर भी कुछ बचा रह जाता है। भारत की सीमा तथा आसाम की प्रशासनिक सीमा के आस-पास का हिस्सा पहाड़ी है—वे सब क्या आज भी उत्तर-पूर्व सीमान्त एजेंसी के अन्तर्गत हैं।

कभी चीन, वर्मा, तिब्बत, भारत—सभी के ऊपर अँगरेज़ों का दखल था। इसी

लिए इस शक्तिशाली चतुर्दिक् सीमा-रेखा के बारे में चर्चा नहीं उठी आज समय बदल गया है। मगर क्या उन सभी जटिल, अजानी सीमाओं पर भारत का अधिकार हो चुका है। क्या सीमा-रेखा के निर्दिष्ट स्वरूप का पता चला ? इस में सन्देह नहीं कि आज हर पहाड़ी में यह सवाल उठ खड़ा हुआ है।

हिमालय से प्रथम जब ब्रह्मपुत्र पांगसिग घाटी को पार कर भारत में आ घुसा, तो उस का छद्म नाम पड़ा डिहंग। मिसमी गिरिश्रेणी की पश्चिमी उपत्यका के भीतर संसार भर के हर प्रकार के हिंसक जानवर तथा सरीसृपों की आवास भूमि को पार कर डिहंग नदो जब पासी घाट और कांबो इलाक़ा स्थित सदिया के निकट पहुँच कर नगर से सट कर बहने वाली एक और विस्तृत नदी डिबोंग में डिहंग एकाकार हो गयी और वहाँ पूर्व दिशा से आ पहुँची लोहित नदी। ये तीनों ही हिमालय की सन्तानें हैं, किन्तु तीनों ही मिसमी के विराट् पहाड़ी भू-भाग और अगण्य उपत्यकाओं को विभिन्न प्रकाश में विभाजित करती हैं। मानवीय समाज सभ्यता आज भी इस सुदूर विस्तृत पहाड़ी इलाक़े में कहीं भी आधिपत्य नहीं जमा सकी। इस मिसमी के भीतर से तेरह हजार से प्राय: उन्नीस हज़ार फ़ुट की चढ़ाई के उत्तर-पूर्व अंचल में बढ़ने पर जो गिरिसंकट मिलता है, वही है भारत का अन्यतम मुख्य द्वार। मगर इस के बाद से कहाँ तक बढ़ने पर भारत की सीमा-रेखा मिल सकती है, यह विचारणीय तथ्य है। मेरा विश्वास है, इस शताब्दी के मध्य जिस प्रकार अन्तर्राष्ट्रीय राजनीतिक चेतना का आभास मिलता है, उसी का यह फल है कि राष्ट्रीय सीमा के विषय में आज समस्याएँ उत्पन्न हो रही हैं। किसी को इस की चिन्ता नहीं थी कि भारत का पहाड़ी अंचल कहाँ कितनी दूर तक विस्तृत है अथवा हिमालय के किस स्थान पर पहुँचने से भारत की सीमा-रेखा मिल सकती है। सभी आसाम की घाटी को जानते-मानते रहे हैं अब तक। किन्तु पहाड़ी आसाम के वास्तविक स्वरूप को जानने की चेष्टा न करने के कारण ये धीरे-धीरे युगों के व्यवधान से आत्मीय हो गयी हैं। मिकिर, डाफला, मिरी, आवर, बोरी, मिसमी आदि विभिन्न जातियों ने यहाँ मूल हिमालय के नीचे, आसाम घाटी की उत्तर दिशा में डेरा डाला है। इन जातियों के सामने जब जा खड़ा होता हूँ, तब देखता हूँ, तमाशे और प्रदर्शनी। वे अर्धनग्न हो कर नाचते हैं। स्त्रियों के तन पर कपड़े नहीं होते— तीर-धनुष उन के संगी हैं, अद्भुत है उन की जीवनचर्या – इत्यादि विभिन्न विषयों के हम उन के चित्र खींच लाते हैं और अखबारों में छपवाते हैं—और नंगे नाच के कला-कौशल को विषय बना कर रसिक समाज में बैठ कर चर्चा करते हैं। मगर यह कभी भी महसूस नहीं करते कि ये भी हमारे ही आदमी हैं।

उन का समाज तथा जीवन प्रक्रिया हमारा ही एक अंश है। उन्हें अन्न-वस्त्र घर-द्वार का अभाव है, जिस के लिए हम अपराधी हैं। वे अगम्य के निवासी होने को मजबूर हैं, वह भी हमारी ही मोह-ममताके वशीभूत होनेके कारण। अँगरेज यह जानते हैं, अमरीकी यह मानते हैं, इस लिए वे मिशनरी भेज कर जिस प्रकार सैकड़ों-हजारों

आसामियों को ईसाई बना कर भारतीय समाज से उन्हें काट कर तनाव की स्थिति पैदा कर दी है, वैसे ही दूसरी ओर अपने पिछलग्गुओं को भेज कर आसाम के पहाड़ी इलाक़े के सम्बन्ध में उन्होंने राष्ट्रीय भारत से एक विवाद खड़ा करवाने की कोशिश की है। आज पहाड़ी आसाम को कहीं-कहीं तो पहचानना मुश्किल है कि यह भारत का हिस्सा है, या नहीं। इन का समाज, इन का आचरण-विचार, इन की जीवन-पद्धति—प्रायः सभी भारतीय-भाव के विरुद्ध हैं। १९४६ की बात कोई भूला नहीं है, जब अंगरेज़ों के कैबिनेट मिशन ने भारत पहुँच कर समस्त आसाम को 'सी' स्टेट में परिणत कर मुसलिम आबादी प्रधान बंगाल के साथ जोड़ देने की चेष्टा की। बाद में आसाम कांग्रेस की उदासीनता तथा श्रीहट्ट भू-भाग के हस्तान्तर से इसे आंशिक सफलता मिली।

समतल भारत की स्नेह-ममता मिली नहीं। इस वजह से पहाड़ी आसाम रोता रहा बहुत दिनों तक। उस की विनती किसी ने मानी नहीं। उस की प्रार्थना पर किसी ने ध्यान नहीं दिया और जब इन में से अनेक सभ्य समाज के सामने आ खड़े हुए, तब किसी ने इन की ओर ताका तक नहीं। उसी द्रविड़-मंगोलीय रक्त, जिस से बंगाली की उत्पत्ति है, उसी रक्त से असमीया की भी उत्पत्ति हुई, उसी से भूटान और सिक्किम की भी। वही रक्त है—त्रिपुरा में, मणिपुर में तथा बर्मा में—बहुतों का कहना है कि द्रविड़-मंगोलिया रक्त से ही बंगोपसागर के उत्तर-पूर्व, भू-भाग की उत्पत्ति हुई। आर्यों का आगमन इधर अभियान के अन्तिम समय में हुआ। पर उन की अपनी सभ्यता और संस्कृति यहाँ किस मात्रा में सुरक्षित है, यह कहना कठिन है। हमारे आचमन मन्त्र में ब्रह्मपुत्र नहीं आता, प्राचीन शास्त्रों में आसाम का उल्लेख भी कम है। महाकाव्य के युग में पहुँच कर देखता हूँ कि द्वितीय पाण्डव भीम ने हिडिम्बा को ब्याहा था। यह कौन नहीं जानता कि वर्तमान डीमापुर वही प्राचीन 'हिडिम्बापुर' है। तृतीय पाण्डव अर्जुन ने नागराज कन्या उलूपी का आविष्कार किया तथा मणिपुर राज्य की दुहिता चित्रांगदा और उलूपी—दोनों ही से उस का ब्याह हुआ। इस के अतिरिक्त पहाड़ी आसाम से भारत के सम्पर्क की कथा बहुत क्षेत्रों में किंवदन्तियों के द्वारा जानी जाती रही। मगर इतिहास के युग में पहुँच कर देखा गया कि पहाड़ी आसाम घाटियों वाले आसाम से बहुत दूर चला गया है। उस का इतिहास में कोई स्थान नहीं रहा। दोनों में अलगाव भी खूब है।

जो इतने समय तक वंचित और उपेक्षित रहा, जिसे कभी भी भारत-राष्ट्र के सभ्य समाज में तरजीह नहीं मिली, वही नागा गिरिश्रेणी आज ज्वालामुखी हो उठी है। भारत को उन्होंने कभी पहचाना नहीं, भारत ने भी उन को समय रहते उबारा नहीं। उन्हें सदा पहाड़ी असभ्य जाति कहा गया, इनसान नहीं। वे सदा से स्वच्छन्द उन्मुक्त रहे, परवशता के किसी युग में नहीं स्वीकारा। उन के निकट जो रहे, वे हैं अँगरेज़ मिशनरी, चाय बग़ानों के मेम, साहब। वे जानते हैं कि जंगली जीवन और अपनी दुनिया की स्वच्छन्दता। पटकाई के इस पार उन्हें सामन्तशासित मणिपुर मिला और

उस पार उन्हें मिली ब्रह्मघाटी की बाधाहीन विचरण भूमि। वे जानते हैं बर्मा को, मणिपुर को। भारत को वे नहीं पहचानते। भारत से उन का कोई धमनीगत सम्पर्क नहीं रहा। आज जब वे मिशनरी और साहबों के उकसाने से उत्साहित हो कर सम्पूर्ण इलाक़ाई आज़ादी चाहते हैं, तब उन्हें प्रीति-प्रेम से जीतने की ज़रूरत है। उन के बीच जा कर उन्हें अपने सुख-दु:ख में मिलाने की ज़रूरत है। वर्तमान में नागा पहाड़ को छोड़ हिमालय का और कोई इलाक़ा इतना भारत विद्वेषी दीखता नहीं। ठीक इसी कारण पूर्व कशमीर का लद्दाख प्रदेश अभी उस दिन हाथ से निकलने लगा था पर समयानुकूल हस्तक्षेप करने से वह बच गया। इस में ज़रा भी सन्देह नहीं कि नागा जाति के साथ भारतीय नेतृत्व आज संकट में पड़ा है।

शिलचर से सड़क पूर्व की ओर चली गयी है। भादो का मध्यामध्य! बराक नदी पार कर चुका हूँ। पन्द्रह दिन पहले भारत को स्वाधीनता मिली है और पाकिस्तान को जन्म मिला। नवजागरण की एक लहर चारों ओर नज़र आती है। उसी लहर से हतप्रभ था पूर्वबंग। मुसलिम आबादी में कहीं भी आनन्द-उल्लास नज़र नहीं आया। सिर्फ़ देखता आया हूँ अवरोध और अनिश्चयता। उन के देश के इस नये नामकरण से दु:ख, दारिद्र, अभाव-अभियोग का अन्त होगा या नहीं—यही प्रश्न उन्हें घेरे था। उस दिन कुमिल्ला में कई सभा-समितियों के दौरान सैकड़ों बंगाली मुसलमान को एक संग खड़े देखा। उन के स्वभाव की सरलता और आत्मीयता प्रतीति से मुग्ध हो उठा था।

बराक नदी पार कर सबेरे-सबेरे शिलचर से मणिपुर की ओर चल पड़ा। वर्षा के कारुण्य की छुअन दोनों तरफ़ की सजला को छूती सी लगी। गाँव का पथ चला गया है—टेढ़ा-मेढ़ा दिग्भ्रमित सा। इधर से घाटी की राह चली गयी है—तराई की ओर। इतना शान्त और आत्मलीन वनमय पथ बहुत दिनों से नहीं देखा। दूर और दूर से जो सभी पहाड़ी इलाक़े नज़र आ रहे हैं सम्भवत: वे बराइल पर्वतशृंखला के अन्तर्गत हैं। मैं ठीक-ठीक नहीं जानता। हम चार व्यक्ति थे। 'युगान्तर' सम्पादक चिरनवीन श्री विवेकानन्द मुखोपाध्याय तथा परेशचन्द्र चट्टोपाध्याय और उन की श्रीमती। हम लोगों का गन्तव्य एक छोटा सा जंगली पहाड़ो शिखरदेश था। उस का नाम है अरुण-बन्ध। परेश बाबू अपने पहाड़ी चाय बग़ीचे में हमें ले जा रहे थे। इतने उदार और अतिथिपरायण ढूँढ़े नहीं मिलते। उस बार हम चार ब्राह्मण मिल कर यात्रा कर रहे थे। यानी प्रोफ़ेसर (डॉक्टर) अमिय चक्रवर्ती भी साथ थे। मगर विगत कल अस्वस्थ हो जाने की वजह से उन्होंने साथ छोड़ दिया था। जो भी हो, परेशचन्द्र की अतिथि-परायणता की सूची में जिस प्रकार हिन्दू-मुसलमान और ईसाई का बाधाहीन मिलन सम्भव था, उसी प्रकार विवेकानन्द बाबू के सहज मन की लीला-भूमि में भी गुंजाइश थी। ऐसे स्वस्थ आत्मस्वतन्त्र व्यक्ति सहज ही नहीं मिलते। आसाम का रोमांच कौतूहल मेरे मन में समाया था। दृश्यमान आसाम के बारे में बहुत दिनों से बहुत कुछ

सुनता आया था। एक ओर रहस्यलोक का मायाजाल, वैसे ही दूसरी तरफ़ पग-पग पर मौत का निमन्त्रण भी। असाध्य रोग, विषाक्त जल, कालाज्वर, नरभक्षी बाघ, उन्मत्त हाथी, कभी गेंडे, अजगर सांप, नरमुण्ड शिकारी पहाड़ी जातियाँ इन सब ने हमेशा से पहाड़ी इलाक़ों को विचरण क्षेत्र बना रखा है। वस्तुतः हिमालय की शाखा-प्रशाखा में एक अफ़िदी इलाक़े को छोड़ और कहीं भी रोंगटे खड़े नहीं होते। समतल भारत में, बहुतों का ऐसा खयाल है कि आसाम के खास-खास इलाक़ों में जादूगरनियों का समूह मिलता है, जो आँखों से देख कर आदमी को वशीभूत ही नहीं करतीं बल्कि उस का नाश भी कर डालती हैं। छह सौ वर्ष पूर्व मुहम्मद शाह के ज़माने में पठान सैनिकों का एक जत्था आसाम पर विजय करने के लिए हिमालय के इस इलाक़े में गया था, लेकिन पहाड़ी दीवारों के अन्तराल में एक लाख घुड़सवार सैनिक किसी रहस्यजनक कारण से मौत के मुँह में उतर गये थे, जिन का अवशेष तक नहीं मिलता।

'अरुबन्ध' के नीचे से एक सुनसान पक्की सड़क मणिपुर की ओर चली गयी है। पिछली लड़ाई के समय इस सड़क पर ब्रिटिश-अमरीकी लड़ाई की तोड़-फोड़ खूब हुई। यहाँ से वायुयान से मणिपुर पहुँचने में कुल पंद्रह मिनट का समय लगता है। अगल-बग़ल तराई में चाय-बगानों का काम होता रहता है। आसाम की विशेषता ही है कम जनसंख्या। मेघ वृद्धि और इतने परिमाण में कुहरा भारत में और कहीं नहीं मिलेगा। इस लिए वहाँ का उद्भिज-जीवन विचित्र सा लगता है। आसाम का विशेष परिचय है—भयानक गहन वन-जंगल नीलपाड़ा, बालीपाड़ा काजीरंग आदि पहाड़ी दलदल में गेंड़े, हाथी, हरिण, वाइसन तरह-तरह के जानवर भरे पड़े हैं और सुरक्षित वन के रूप में इन की देख-रेख की जाती है। यहाँ के गेंड़े और वाइसन विख्यात हैं। हमारे अरुण बन्ध में रहते हुए एक दिन जब हम अँगरेज़ मैनेजर के घर से रात के भोजन के बाद बाहर निकले तो जंगल में शोरगुल सुनायी पड़ा। और कुछ देर बाद कुछ लोगों ने बड़े मोटे रस्से में बाँध कर जिस जीव को खींचते-घसीटते सामने ला हाज़िर किया उसे देख कर ही हम हतप्रभ हो गये। वह पन्द्रह फ़ुट लम्बा और मोटा एक वर्ण वैविध्य पूर्ण अजगर था। लोगों ने उस अजगर को मार डाला था, फिर भी उस में कुछ जान थी। ऐसे ही मयाल हरिण खरगोशों को या निरीह जन्तुओं को अपनी सम्मोहक दृष्टि से वश में कर के उसे अपने पास ला कर सहसा उस पर आक्रमण करते हैं। जिस आसाम को जान नहीं पाया, कभी पहचान नहीं सका था, जिस का आश्चर्य और वन-जंगल की सम्पदा सदा मेरे लिए अज्ञात थी, वही अजाना आसाम मानो इस रात के अन्धकार में उस लम्बे-चौड़े अजगर के आकार-प्रकार के रूप में अपने को प्रकट कर रहा हो। उस की इस वर्ण वैविध्यता से ही यहाँ की हिमालय के अन्तर्गत विभिन्न जातियों का परिचय मिल जाता है। जिन का नाम है—शेला, आबर, मिसमि, तिराप, मिक्कर, नागा और सुवनशिरी। ये यहाँ की प्रमुख जातियाँ हैं, किन्तु नागा जाति सर्वमान्य है। स्वच्छन्द और शासनहीन जीवन बिताने की वजह से उन्मत्त हैं ये। इन का स्वभाव

वन-जंगल के पशु-पक्षियों से मिल जायेगा किन्तु सभ्य मनुष्य के संग इन का मेल असम्भव लगेगा। ये जन्तु हत्यारे हैं। मगर ये भी उन्हीं जन्तुओं के भोज्य हैं। दोनों, एक दूसरे के बहुत निकट हैं। दोनों, एक-दूसरे को अच्छी तरह पहचानते हैं, एक-दूसरे की भाषा भी समझते हैं। यह रूप दक्षिण कुमायूँ में देख चुका हूँ। धवलाधार पर्वत श्रेणी की गोद में पड़े काँगड़ा में, भूटान की तलहटी में देखा है। जानवर उन को पुकारते हैं तथा जन्तु उन के फन्दे में आ-आ कर फँस जाते हैं। उन का जीवन एक-दूसरे की निकटता में है, एक-दूसरे का गहरा परिचय है। जन्तु की खाल वे शरीर पर ओढ़ते हैं, हड्डियों की माला उन का आभूषण है, भालू का रोआँ उन की पोशाक, बाघ के दाँत और नख उन के लिए अलंकार हैं। बिना नरमुण्ड दिखाये वे नारी-समाज में सम्मान नहीं पा सकते। विशाल पहाड़ी पाखी जैसा नाच पाने में उन्हें आनन्द नहीं आता। मन लाडा, गारो, खासी जयन्तिया, डाफला, आबर, नागा, मिसमि, जहाँ भी जाओ, बस सब का यही स्वरूप। लोहित नदी के किनारे-किनारे चलो, परशुराम कुण्ड, ब्रह्मकुण्ड, वशिष्ठाश्रम, मिसमि में हर कहीं—यहाँ-वहाँ एक ही रूप। परिचय सब का एक है किन्तु नाम भिन्न। पदम, मिनियंग, मालंग, मिजू, दिगारू, तरावन, चूलिकाटा, हूसो बूगून, दिदामाई—जो इच्छा हो, उस नाम से उन्हें पुकार लो। इन सभी जातियों में से मात्र एक को चुन कर एक-एक ग्रन्थ लिखा जा सकता है, इतना अचरज में डालने वाला उन का परिचय है। आज भी सम्पूर्ण आसाम अज्ञात ही है।

शिलचर से बराक और सानाई नदी को पीछे छोड़ कर लुसाई पर्वत-शृंखला के अन्दर से आईजल की सड़क चली गयी है। कलेश्वरी का प्रबल प्रवाह उत्तर से दक्षिण तक प्रसारित है। इसी के तट पर आईजल जनपद स्थित है। लुसाई गिरिश्रेणी की पश्चिमी नदी पार होते ही मिलता है पहाड़ी चट्टग्राम, जहाँ बौद्ध संस्कृति ने वर्षों से अपना गढ़ बना रखा है। पहाड़ी चट्टग्राम के ऊपर चढ़ जाने पर नज़र आता है एक ओर आसाम एवं सम्पूर्ण पश्चिम दिशा में त्रिपुरा। त्रिपुरा की दक्षिण सीमा में फेनी नदी प्रवाहित है। बराक नदी के उस पार मणिपुर राज्य पूर्व दिशा में छूट गया, बर्मा के पश्चिम सीमा में, चिन्दुइन घाटी में, नागा पहाड़ की गोद में। वे हैं बभ्रुवाहन के वंशज, जो वहाँ के राजवंशी कहलाते हैं। आसाम में अनेक स्थानों में जो कुछ मिलता है, वहाँ भी वही सब मिलेगा। वहाँ का समाज नारी प्रधान है। ऐरावतवंशीय नागराज इरावत जन्मे थे उलूपी की कोख से, जैसे जन्मे बभ्रुवाहन चित्रांगदा की कोख से। इरावती नदी आज भी उसी पौराणिक कथा का साक्षी है। समग्र मणिपुर तथा राजधानी इम्फाल नृत्य-गीत, कीर्तन, वैष्णव-प्रेम, अतिथि-परायणता में मग्न हिमालय की गोद में पड़ा रह कर अपनी महती प्रकृति का परिचय देता है। आज नागा प्रदेश और मणिपुर इरावत तथा बभ्रुवाहन के दो प्राचीन राज्य लगभग एक-दूसरे से सटे हुए हैं। मगर शिक्षा, सभ्यता और संस्कृति की दृष्टि से ये मणिपुर के निकट हैं। आज नागा पहाड़ की

जातियाँ इन के प्रभाव से ही सामाजिक और सांस्कृतिक उन्नति कर रही हैं। महाराजा चन्द्रकीर्ति तथा युवराज टीकेन्द्रजीत के प्रति श्रद्धा और सम्मान मणिपुर में सर्वत्र व्याप्त है। टीकेन्द्रजीत के गौरव और वीरता की गाथा मणिपुर में उद्भासित है। अँगरेजों का कलंकित इतिहास टीकेन्द्रजीत की फाँसी से ही जैसे पुनर्जन्म का इतिहास है। मणिपुर के अत्यन्त आधुनिक इतिहास में राजा प्रियव्रत सिंह की प्रेरणा और अध्यवसाय के द्वारा शिल्प-कला, साहित्य-शिक्षा एवं नृत्य-गीत आदि की अभिनव उन्नति हो रही है।

लुसाई और मणिपुर पार कर के हिमालय की जटिल जटा दक्षिण में बहुत दूर तक फैली है। चिन्दुई, आराकान, ब्रह्मदेश, इन्दोचीन, सियामे, कम्बोज तक। यहाँ से कंटकाकीर्ण पहाड़ी पथ को पीछे छोड़ता हुआ दूर-दूर डीमापुर, कोहिमा, इम्फाल, पालेल और टामू तक चला गया है। अपने संग वह लेता चला गया है प्राणों की पिपासा, क्षुधा एवं पूजा का बीजमन्त्र। मीकंग और मेनामे के तट इरावती और शालवनी के अनगिनत कछार, चिन्दुइन की शाखा-प्रशाखाएँ, मणिपुर की नदी और लगटग की गहरी झील जैसे हिमालय यात्री वृद्ध संन्यासियों के आशीर्वाद-स्वरूप हों। भारत के सुदूर अतीत का सन्देश ले गयी थीं इस हिमालय की शाखा-प्रशाखाएँ, वैसे ही कभी महेन्द्र और संघमित्रा, शान्तरक्षित और कामता उसी अभिप्राय से चले थे जैसे चले थे श्रीज्ञान दीपंकर। वैसे ही वे जैसे असह्य क्षुधा छोड़ गये मेरे रोम-रोम में और मैं जैसे जन्म-जन्मान्तर-व्यापी जाप करता लोहित नदी और ब्रह्मपुत्र के जनहीन कछारों में चलता चल रहा हूँ। रिवंग और सुवर्ण शिरी के तटों पर नीलपद्म तथा स्वर्ण रक्तिम उपल खण्ड खोजता फिर रहा हूँ। वही देखना चाहता हूँ, उस ब्रह्मकुण्ड में जो दीखता नहीं। यहाँ के वन-जंगल के चप्पे-चप्पे में अपना ही जीवन छोड़ता चला हूँ—गुफा-गह्वर के द्वार-द्वार पर, यहाँ की पावन-वीथियों में, सहस्रों आर्किड की धाराओं में, सहस्र झरने तथा नील नयना अलका में अपना तन-मन अर्पित कर चुका हूँ। यहाँ की पृथ्वी चिरकाल से चकित करती है—अपने जंगल, पर्वत, नद-नदी, उपवन-तपोवन में बिखरे स्नेह और सौंदर्य-लालसा से। लाखों असमिया आनन्दमग्न रहें, मैं विदा हो रहा हूँ हिमालय के संग-संग।

अरुबन्ध से उतर कर आ गया हूँ दामचड़ा की जटिंगा नदी के तट पर। बालू तथा पत्थरों के कछार पार कर, अजगरों का वन पीछे छोड़, आ खड़ा हुआ हूँ नदी-पथ पर। जिस के तीन ओर है पहाड़ी अवरोध। दोपहर की धूप में चिड़िया चहक रही हैं। उस पार छायावृत रहस्यलोक को जाने वाली सड़क से मेरा मन दामचड़ा से लामडिंग की ओर भाग रहा है, डिमापुर से मार्गरेटा, शिलघाट से शिवसागर। जन-शून्य भयानक जंगलों में छोड़ जा रहा हूँ अपनी आत्मीयता। उत्तर लखीमपुर और काजीरंग में, उत्तरपूर्व सीमान्त में अपनी आन्तरिक आराधना रही हिमालय का अन्तिम आशीर्वाद।

असम का पौराणिक नाम था कामरूप। राजा नरकासुर थे कामरूप के अधिपति। गौहाटी के निकट उन की राजधानी थी। दक्षयज्ञ के बाद सती की मृतदेह कन्धे पर ले कर उन्मत्त शिव ने जब भू-भारत की यात्रा की, श्री विष्णु ने देखा सृष्टि-स्थिति के ऊपर सम्भवतः प्रलय का घना बादल छा रहा है। उन्होंने अपने सुदर्शनचक्र का उपयोग कर के बृहत्तर मानवता की रक्षा करने की सोची। उसी सुदर्शनचक्र के द्वारा खण्डित सती की महामुद्रा का इसी कामरूप के अन्तर्गत ब्रह्मपुत्र तट प्रान्तवर्ती नीलांचल पर्वत की चोटी पर गिरी। एक समय यह अति रमणीय पर्वत की चोटी थी, जब चाँदनी उद्भासित थी, जब चन्द्रहसित ब्रह्मपुत्र नीलांचल का चरण पखारती हुई बह रही थी, उसी समय हिमालय की जादूगरी से देवलोक की एक युवती मुग्धमना और नग्नदेहा नीलांचल पर उतर आयी। उस दिन की मोहमयी चाँदनी इतनी गहन हो उठी थी कि वह युवती लज्जानिवारण के हेतु वस्त्र भी धारण करना भूल गयी। इधर राजा नरकासुर भी उसी चाँदनी में नीलांचल में भ्रमण को निकले थे। सहसा उस नग्नकान्ति इन्दु की पुजारिन को उन्होंने देखा। विमुग्ध दृष्टि से नरकासुर ने पूछा : तुम कौन हो, रूपसी ?

रूपसी ने उत्तर दिया : मैं, कामदेवी। प्रणय की प्रतीक हूँ। इस नीलांचल के पर्वत शिखर पर मेरे नाम से एक मन्दिर की स्थापना हो सकती है या नहीं, इसी उद्देश्य से मैं यहाँ उतर आयी हूँ।

नरकासुर ने विह्वल स्वर में कहा : यदि आज्ञा हो तो वह मन्दिर मैं ही निर्मित करा दूँ, सर्वस्व लगा कर, लुटा कर।

बाँकी चितवन से कटाक्ष कर कामाक्षी बोली : तुम्हारी मंशा क्या है ?

नरकासुर ने कहा : तुम प्रसन्न होओ, इसी में मेरी सार्थकता है। तुम्हारे इस नग्न देहवितान में मेरी मरण डोर उलझ गयी है। देवि, तुम मुझे पति रूप में ग्रहण करो, नहीं तो मैं यह राजमुकुट ब्रह्मपुत्र की लहरों में बहा दूँगा।

एक शर्त पर कामदेवी राजी हुई इस प्रस्ताव से। वह यह कि आज ही मन्दिर का और समतल से नीलांचल को जोड़ने वाले एक पथ का निर्माण हो, यह दोनों सबेरा होने तक यदि सम्भव हुआ तो वे नरकासुर की अंकशायिनी होंगी।

नरकासुर ने तत्क्षण ही राजी हो कर दौड़-धूप शुरू कर दी। मूर्च्छित चाँदनी सिमट गयी जादूगरनी कामदेवी की लावण्य-काया में। लालसा लुब्ध-लोभी नरकासुर के असम्भव क्रिया-कलाप पर दृष्टि गड़ाये वे वहीं खड़ी रहीं।

सबेरा होने के पहले ही नरकासुर अपना काम लगभग समाप्त करने की स्थिति में पहुँच गये, अब मात्र सड़क का कुछ काम बाक़ी था। मगर सर्वनाशी का कुछ और ही अभिप्राय था। कामदेवी ने एक मुर्ग़े को बुलाया। मुर्ग़े ने उन के अभिप्राय से प्रभात का संकेत देने वाली अपनी पुकार का स्वर भरा तब कामाक्षी वक्र हो कर बोली : यह लो प्रभात हो गया। अब मैं तुम्हें वरण नहीं कर सकती।

देवी अन्तर्धान हो गयीं। दुःखी हो क्रोध में आ कर नरकासुर ने मुर्गे को काट डाला।

उस अधूरे पथ का शेषांश आज भी वैसा ही है। गौहाटी जाने वाले पथ से प्रायः मील भर चढ़ाई लाँघ कर उसी पथ पर चढ़ आया है नीलांचल। नीलांचल की चोटी पर भुवनेश्वरी का मन्दिर है। कामाख्या मन्दिर और उमानन्द भैरव के मन्दिर को केन्द्र बना कर ही यहाँ तीर्थ परिक्रमा की जाती है। बहुतों का खयाल है कि लगभग तेईस सौ वर्ष पहले कामाख्या पीठस्थान का निर्माण हुआ था। मन्दिर के अन्दर नर-नारायण एवं चिलाराय की प्रस्तर मूर्ति स्थापित है। यहाँ चार सौ वर्ष पूर्व का शिला लेख मिलता है।

एक अन्धकारपूर्ण सुरंग-पथ से नीचे की ओर कई क़दम उतरना पड़ता है। कामरूप का यह प्रधान तीर्थ है। नीचे दृष्टिगत होती है एक शिला-सतह कुछ खुदी चट्टानों जैसी ही—वही है देवी की योनिपीठ। वहाँ आलता, सिन्दूर और लाल किनारे की साड़ियों का अम्बार नज़र आता है। यहाँ के भले, साधु व सरल प्रकृति के पुजारी-पण्डा अपने गृहस्थ परिवारों में यात्रियों को रख उन का आनन्दपूर्वक सत्कार करते हैं। पहाड़ की जलीयभूमि में कामाख्या एक गाँव है। गाँव में ताल-पोखर, राह-घाट, बाज़ार-हाट और साधारण तरह के घर-मकान सभी हैं। मैं वहाँ के एक बड़े परिवार में कई दिनों तक रहा किन्तु एक क्षण के लिए भी कभी अपने को अनात्मीय या प्रवासी महसूस नहीं किया। दिन को सूर्य के निकलने से घर-द्वार का काम-काज चलता अपने क्रम से, लेकिन रात को किसी-किसी हिस्से में रहस्यमयी छायाएँ उतर आती हैं। मेरा मन स्वभावतः बड़ा कौतूहली है। यहाँ के क्रिया-कलाप की भिन्न-भिन्न बातें एक अरसे से सुनता आया हूँ। मारण, उच्चाटन, वशीकरण, तन्त्र-मन्त्र आदि के रहस्यों का उद्घाटन करने के ख़याल से कभी-कभी रात को इधर-उधर चक्कर काटता रहा हूँ। मगर सबेरा होने से पहले ही लौट आना पड़ा है। क्यों? यहाँ यह बताना अप्रासंगिक है।

नीलांचल के नीचे की ओर पाण्डुको से गौहाटी का पथ गया है। आज के जैसा सुविस्तृत शहर, उस समय नहीं था। इतने लोग, इतना काम-काज, इतने प्रकार के यान-वाहन की बात सोची भी नहीं जा सकती थी। प्रधान राजधानी थी शिलांग में। गौहाटी पीछे छूटा रहता, सभी मोटर से चले जाते जंगली पहाड़ी पथ से शिलांग। भूल नहीं रहा हूँ तो पैंतीस मील लम्बा पथ होगा। उस समय किसी एक बंगाली प्रतिष्ठान का इस पथ पर मोटर-बस के यातायात पर एकाधिपत्य था। वे अब हैं या नहीं, इस का पता नहीं। मगर उन दिनों गौहाटी-शिलांग का यह पथ बड़ा अच्छा लगा था। कालका-शिमला की बात याद आती है। याद आती है, सिलीगुड़ी-दार्जिलिंग, काठगोदाम-अलमोड़ा, रावलपिण्डी-कोहिला। ये स्मृति पटल पर अंकित हैं। श्रेष्ठ कविता की तरह मन में अनर्थक भावना हिमालय के इन पथ-घाटों को उभारते, व्याकुल कर देते हैं और सहसा ही आकुल बंशी बज उठती है सुदूर में कहीं। इस पथ पर चलने से

मन उड़-उड़ जाता है खासी-जयन्तिया को लाँघ कर कहीं, जैसे पथहारा स्वर, हिमालय की परत-परत में, शाखा-शाखाओं में। भुवनेश्वरी शिखर से ब्रह्मपुत्र अपरूप लगता है।

गौहाटी पार करने के बाद मैदान और जंगल है। पथ पर जाना पड़ता है, खेतों की पगडण्डियों तथा पशुओं को भगाने के लिए बने मचानों के नीचे से। बहुत हिस्सों में दिन को रोशनी में भी अकेले पथिक के लिए यह पथ अभी उस दिन तक निरापद नहीं था। पहाड़ी जनपद नांगपो गौहाटी, शिलांग के मध्य में पड़ता है। शहर चित्रवत् है, लकड़ी की बिक्री का यह केन्द्र है।

वर्ष के अधिकांश समय आसाम में वर्षा का बादल घिरा रहता है। हम लोगों के लिए जो अतिवृष्टि है, वहाँ वही साधारण रूप में मान्य है। आसाम है उर्वर, लेकिन मिट्टी भीगी हुई, समग्र प्रदेश ही गीला। नीचे जो लोग रहते हैं, उन्हें बड़ा कष्ट है। लेकिन जन्तु-जानवर जल-जलीय, जंगल इन से सटे-सटे हैं। मगर पहाड़ पर चढ़ते ही, पाइनवन की हवा शरीर में लगेगी। फूलों की ऐसी गन्ध मिलेगी जैसी कभी मिली नहीं। ऐसी लताएँ नज़र आयेंगी, जैसी पहले कभी देखी नहीं। ऐसे स्त्री-पुरुष नज़र आयेंगे जैसे भारत-भूमि में खोजने पर भी नहीं मिलेंगे।

द्वितीय विश्व युद्ध का प्रारम्भ ही हुआ था। अक्तूबर १९३७ के एक दिन शिलांग पहुँचा। समुद्र की सतह से पाँच हज़ार फ़ुट ऊँचाई पर आँखें फाड़-फाड़ कर समग्र शहर को देखता रहा हूँ—मगर लगभग समतल है। स्वास्थ्य के गुणों से शहर विहँस रहा है। दार्जिलिंग की तरह नहीं, यहाँ तो बड़े-बड़े राजपथ यहाँ-वहाँ चले गये हैं। माल भूमि का पथ ऐसा प्रशस्त है कि लगता है, कश्मीर और श्रीनगर में हूँ। इतनी बड़ी-बड़ी बग़ानबाड़ी किसी पहाड़ी शहर में देखने को नहीं मिलती। चारों ओर ख़ूब लोग, ख़ूब नर-नारी। निर्दोष उमंग चारों ओर उमगी है। धनिक असमिया, सम्भ्रान्त बंगाली लावान के हिस्से में ये यहाँ बसे हैं वंशानुसार। साहब-सूबों का बंगला भी है पग-पग पर। शहर में आसपास बसे हैं—भद्र-अभद्र, नग्न-अर्धनग्न, इतर भद्र। असमिया, मणिपुर, खसिया, नागा, सिलहट देख कर मेरा मन मुग्ध हो गया है। असमिया आसाम की अपनी भाषा है, सुनने में सुखप्रद। मगर माधुर्य में बँगला। कई अक्षरों में कुछ परिवर्तन हैं। दरअसल है एक ही। मेरे होटल में सब के सब असमिया हैं—किन्तु वे तो ठीक बँगला में बातें नहीं करते यह जानने में समय लगा था। उन की बोलने की भंगिमा समझने के लिए कान सजग रखता था। अहोम लगता है उन की पहाड़ी बोली है, परन्तु इस विषय में मैं सिर नहीं खपाता।

समग्र शिलांग एक पुष्प-पात्र सा है। लता-पत्रों, वृक्षों की टहनियों में अजस्र फूलों की चटख। वे फूल और बग़ीचे कारू कार्य के परिचायक हैं। अनार, अखरोट और नारंगी का बाग़ीचा एक बहुत बड़े हिस्से को घेरे हैं। बाज़ार में कुछ और ही नज़ारा है। जैसे मेला लगा हो आनन्द का। हाट-बाज़ार में कोई नाच रहा है, कोई घुँघरू बजा रहा है। वे बाज़ार में बेचने आये हैं—चावल-दाल के साथ ही तीर-धनुष, साग-

सब्जी के साथ पाखी के पंख, तेल-नून-लकड़ी के साथ चाँदी के गहने और हाड़ की मालाएँ। बाज़ार में संख्या क्रिश्चियनों की अधिक है। स्कूल-पाठशाला में जाइए, वहाँ भी ढेरों क्रिश्चियन मिलेंगे।

मिशनरी नारी-नेतृ के संग-संग सैकड़ों औरतें चल रही हैं। वे भिन्न-भिन्न सम्प्रदाय और विभिन्न जातियों की मिली-जुली औरतें हैं। मगर सब की सब क्रिश्चियन। मेरे होटल के निचले मंजिल में था एक परिवार—पिता मुसलमान, माँ हिन्दू और बेटी थी क्रिश्चियन। लड़का भी वही, क्रिश्चियन हो जाने पर उन लोगों की बहुत सारी चिन्ताएँ मिट जाती हैं। मिशनरी लोग उन की दशा सुधार देते हैं।

बातों ही बातों में बहुत दूर चला आया हूँ। दक्षिण आसाम की असंख्य गिरिश्रेणियाँ हिमालय के मूल मेरुदण्ड में नहीं हैं, लेकिन ये सभी हिमालय की शिरा उपशिराएँ हैं। गारो, खसिया, जयन्तिया, कछाड़, लूसाई, मिकिर, नागा, पतकाई, आबर, मिसमी—ये सब उन शिराओं के भग्नांश हैं। कई अवसरों में परस्पर सहयोग नहीं है—बहुत बार क्रमबद्धता पकड़ में नहीं आती। मगर जड़ है धरती के नीचे या घाटी के ऊपर, नदी के गर्भ में या अरण्यालोक में। हिमालय एक है आदि और अनन्त। हज़ारों मीलों में उस की दूर दूरांतर तक फैली शाखा-प्रशाखाएँ विभिन्न पर्वत श्रेणी के नामों से प्रकट हैं। मैं राजस्थानी, मराठी, बंगाली, मद्रासी क्यों न होऊँ लेकिन मैं हूँ भारतीय—अभिन्न, अभेद्य, अखण्ड, अक्षुण्ण। हम हैं भारतवासी, यही मेरा एकमात्र परिचय है। मेरा दूसरा परिचय है आंचलिक—वह प्रमुख या प्रधान नहीं हो सकता। पहले हम भारतीय हैं। इस के बाद बंगाली। मेरी जन्मभूमि बड़ी है, निवासस्थान बड़ा नहीं। मेरी सम्पूर्ण सत्ता बिखरी है, कश्मीर से कन्याकुमारी और कावेरी के व्याप्त प्रवाह में, गंगा और तुंगभद्रा में। किसी शिक्षा और संस्कृति के ऊपर आंचलिक अंकुश मुझे स्वीकार्य नहीं है। मैं हूँ अखिल भारतीय। हूँ मैं भारत का पथिक। लेकिन उस दिन मैं आसाम के संग एकाकार हो गया था।

चेरापूँजी की ओर बढ़ रहा हूँ। खड़िया-पत्थर के पहाड़ को छूता चल रहा हूँ। इधर से एक अन्य पथ दूर तक घाटी की ओर चला गया है—श्रीहट्ट की ओर से। आसमान पर बादल घिर आये हैं। कहीं-कहीं वर्षा भी हुई है। कई मील चलने पर हस्ती प्रपात भी मिलता है। एकान्त जंगल की छाया में जलधारा पर्वत से उतर रही है। यहाँ के कुंजवन के सूने, अंचल में गद्गद कण्ठों की काकली कभी भी सुनी जा सकती है। शिलांग से चेरापूँजी लगभग चौंतीस मील को दूरी पर है। कभी-कभी पथ चौड़ा, कभी सँकरा। कहीं समतल और कहीं-कहीं गहरे खड्ड। कहीं-कहीं पर्वत आरक्तिम है, कहीं अरण्य की उदार गम्भीरता। कहीं-कहीं बीच-बीच में दुस्तर और दुस्साध्य भी। संसार में सब से अधिक वर्षा यहीं होती है। बादल की भीगी हवा से विश्वप्रकृति यहाँ जैसे क्षुधित और धूसर है।

आ पहुँचा चेरापूँजी में। काई से ढकी ज़िन्दगी सहज ही दृष्टिगत होती है।

दो-चार सरकारी और गैरसरकारी घर-मकान। कुछ दूर पर मिला एक जलप्रपात—मसूरी में जैसा है कैम्टी प्रपात। जनहीन, प्राणी चिह्नहीन पर्वत की चोटियाँ यहाँ स्तब्ध हैं। नीचे उतर रही हैं असंख्य झरनों की धाराएँ। दूर दिगन्त में उस की छाया से ढकी है सूरमा घाटी। पहाड़ के सिर पर से चला गया है, भोलागंज की ओर, लौह रज्जू पथ।

चेरापूंजी के ऊपर फिर काले बादल मँडराने लगे हैं।

[११]

फाल्गुन का प्रथम सप्ताह। इस वर्ष जाड़ा कुछ दीर्घाश्रयी है, कुछ कम हो कर फिर लौट आता है। आसमान का रूप भी दो दिनों से उत्साहवर्धक नहीं है। सुनने में आता है कि उत्तर बंग के लोग भी चैत के महीने में भी रज़ाई ओढ़ कर सोते हैं। किसी एक दिन रात को जलपाईगुड़ी से दार्जिलिंग ज़िला में आ गया हूँ। लम्बा मैदान पार कर आया अन्धेरे में। हवा में ठण्डक ख़ूब थी। मैं बदनाम हूँ कि मुझे ठण्ड नहीं लगती। जिन की मोटर से आया वे हैं भूपेन्द्रनाथ बक्सी, मोहरंग-गुल्मा के चाय बग़ान के तत्कालीन मैनेजर। मेरे भ्रमण करने में वे बड़े उत्साहदाता हैं। किसी भी प्रकार की सहायता उन से मिलती है। सिलीगुड़ी पहुँच कर उन्होंने कुछ ख़रीद-फरोख्त की। इस के बाद गाड़ी चली दार्जिलिंग का राजपथ पकड़ कर। लम्बी सड़क चली गयी है उत्तरी पहाड़ी तराई में। शुक्ना के जंगल में नहीं रहा कभी। हिमालय के तराई-अंचल के जिस जंगल की चर्चा कर चुका हूँ, शुक्ना उसी क्रम में एक और जंगल है। रात को पैदल इस पथ से जाना संकटप्रद है। इस पथ को बहुत बार तय किया है। जब दार्जिलिंग जाना बहुत सहज था, मन उचटा तो दार्जिलिंग। पूजा के समय दार्जिलिंग। वैशाख के अन्त में कलकत्ते में उमस महसूस हुई कि चलो दार्जिलिंग। और कुछ हो या न हो मन छिपाने का बड़ा आश्रय है दार्जिलिंग। मगर आज पहली रात है यह, जब शुक्ना के जंगल में जा रहा हूँ, क्योंकि जंगल में ही भूपेन्द्रनाथ बाबू का चायबग़ान है। और उन के उस बग़ान के भीतर से ही चली गयी है आसाम की रेल लाइन कूचबिहार की ओर। पथ मामूली है लेकिन उस में ही घने वन की उपलब्धि होती है। शिलीगुड़ी के शाल और सेगुन बंगाल में विख्यात हैं। बर्मा टीक के बाद ही इस की गणना होती है। लेकिन व्यापार एक बात है, और अँधेरी रात शाल-सेगुन से घिरे सैकड़ों मील जंगल दूसरी बात। कुल आठ मील लम्बा पथ है लेकिन इसी बीच ऊसर पहाड़ की ओर

नजर आया तिनधरिया की झकमक करती हुई बस्तियों की रोशनी। अँधेरे में जैसे दीपमालिका। ठीक ऐसा ही दृश्य—इसी प्रकार दीये की माला से शोभित पहाड़ का दृश्य नजर आता है देहरादून से मंसूरी। देखते ही देखते हम लोगों ने गुल्मार चायबग़ीचे में प्रवेश किया। हम ने बहुत से चायबग़ीचों में दिन काटे हैं, मगर उस की चर्चा यहाँ आवश्यक नहीं।

नित्य बाघ आते हैं इस इलाक़े के चाय बग़ीचों में। कल शाम को ठीक यहीं, लाइन के किनारे मोटर की रोशनी देख एक लेपर्ड (हुँडार) ठमक कर खड़ा हो गया था। वे आते हैं गाय-बछड़े की आशा में। लेकिन आदमी की आवाज़ मिलने पर वे भाग खड़े होते हैं। कभी-कभी मैन-ईटर' भी निकलते हैं, परन्तु सभी चायबग़ानों में सधे हुए शिकारी रखे जाते हैं। शाम होते ही चाय बग़ानों का काम-काज बन्द हो जाता है। बग़ान के अन्दर से भी लगभग दो मील चलना पड़ता है। मगर दोनों ओर अँधेरे की वजह से कुछ दिखाई नहीं पड़ता। तराई अंचल में घनघोर जंगल प्रेतों की छाया की तरह चारों ओर खड़े हैं। हमारी मोटर मोड़ लेती हुई विस्तृत बग़ानबाड़ी में घुसी। मैनेजर के विशाल मकान के नीचे चन्द्रमल्लिका का बग़ीचा है। किसी बड़े जमींदार की बग़ानबाड़ी से ही इस की तुलना की जा सकती है। भूपेन्द्र बाबू सपरिवार यहाँ रहते हैं। उन की देख-रेख आतिथ्य और हँसी-मज़ाक, गप-सप में वह रात बड़े मज़े में बीती। दूसरे दिन सवेरे चाय-नाश्ते के बाद उन्होंने नयी मोटर तथा नेपाली ड्राइवर मेरे हवाले कर दिया। बोले, यह गाड़ी मैं जहाँ चाहूँ, वहाँ ले जा सकता हूँ और चार-पाँच सौ मील तक के पेट्रोल की व्यवस्था ड्राइवर को कर दी गयी है। फिर जबरदस्ती उन्होंने मेरे कन्धे पर लाद दिया एक लम्बधड़ंग ओवरकोट और बैलाक्लावा टोपी। वह ऊनी था। वे मेरे मनमाने आचरण से बहुत दुःखी थे। वादा किया कि लौटते समय उन से मिल लूँगा।

अनन्यसाधारण के लिए धन्यवाद का प्रश्न ही नहीं उठता। मगर इतना लापरवाह अपने को माना हूं नहीं। पहाड़ी पथ में मोटर में अकेले बैठ कर वैसा आराम और सुख कभी और नहीं मिला। ऐसी आरामदेह गद्दी और शीशे की खिड़कियाँ। ऐसा एकान्त निर्विघ्न। वर्षा चाहे बर्फ़ीली झंटास में हों लेकिन मैं एकदम निश्चिन्त हूँ। दायें-बायें का सवाल ही नहीं—जब खुशी, जिधर चलो। भूपेन बाबू लेखक का मन पहचानते हैं।

सिलीगुड़ी पहुँच कर गाड़ी सेवकपुल की तरफ़ मुड़ी—गोलीखाली की पुरानी रेल लाइन से सट कर वह पथ पहाड़ी पर्वत के अन्तःपुर में चला गया है। बिजली की रफ़्तार में गाड़ी चली। पथ के मध्य पड़ने वाली नदी का नाम है महानन्दा शायद वह तिस्ता से जा मिली है। दार्जिलिंग और जलपाईगुड़ी की सीमा ठीक-ठीक यहाँ समझ नहीं पाया। जलपाईगुड़ी की सीमा सम्भवतः सिलीगुड़ी के नीचे से अलीपुरदुआर की ओर बढ़ गयी है। जंगल की प्रान्त-रेखा के ऊपर से। समतल पथ धीरे-धीरे समाप्त

होता जा रहा है। देखते-देखते ही पथ सँकरा हो आया। पीछे छोड़ आया हूँ मैदान और मैदान के बीच-बीच में आजकल बस गया है शरणार्थियों का उपनिवेश। कहीं लड़की का कारोबार, कहीं घरेलू उद्योग। बहुत से लकड़ी के मकान खूँटियों पर खड़े हैं, जिसे कहा जाता है पोता, मैदान से ही लकड़ी की सीढ़ियाँ ऊपर मंजिलों को चली गयी हैं। इस प्रकार के मकान तराई इलाक़े की विशेषता है। गौहाटी से नांगपो के पथ पर देखता आया हूँ वैसा ही अलीपुरदुआर में कूचबिहार के अनेक इलाक़ों में देखा। जहाँ बाढ़ का भय है, जहाँ पहाड़ी नदी की ढलान अकस्मात् बन गयी है या जन्तु-जानवर कीड़े-मकोड़ों का भय है, वहाँ मनुष्य अपने को निर्विघ्न रखने का प्रयास करता है।

गोलीखाली की पुरानी टूटी-फूटी रेल लाइन अगल-बग़ल नज़र आ रही है। तिस्ता की दुरन्तता के कारण इस पथ से रेल का चलना सम्भव नहीं हुआ। पानी के धक्के से लोहे की लाइनें मुड़, स्लीपर छिटक कर गुम हो जाती हैं और गाड़ी तथा इंजन भी पानी में तैरने लगते हैं। फलस्वरूप आजकल मोटर बस या ट्रक वालों का रामराज्य है। तिस्ता के इस पथ पर जब मैं पहली बार आया था, तब की बात याद हो आयी है। उस दफ़ा सिलीगुड़ी से ट्रेन से आया था। शशांक चौधरी संग थे। कल से वर्षा होने से पहाड़ों में जैसे टूटन लगी थी। तिस्ता की भी दुरन्तता वैसे ही बढ़ गयी थी। फलस्वरूप काली झोरा से ट्रेन आगे नहीं बढ़ पायी थी। मगर अघटन जितना भी घटे मेरे रुकने से काम नहीं, चलने का है। वह था सन् १९३८, बंगला तारीख थी २५ वैशाख। महाकवि के जन्म दिन के उपलक्ष्य में हम कालिंगपोंग जा रहे थे। रवीन्द्रनाथ तब वहीं थे। उन के पादपद्म में अर्पित करने के लिए कुछ नैवेद्य भी था साथ में। उस में अमलहोम की प्रणामी भी थी—एक गुच्छा, रजनीगन्धा और एक कलम। फूल तो सूख सकता है, किन्तु कवि की कलम सूखी नहीं कभी भी।

मध्य पथ में तिस्ता चौड़ी हो गयी है। संकीर्ण गिरिसंकट के अन्दर से दीर्घ पथ में आ कर वह समा जाती है घाटी में। पहाड़ तोड़ लाती है अपने संग लाती है कंकड़ और बालू। मेरी मोटर चल रही थी उसी की सीमा से होती हुई। देखते ही देखते आ गया कॉटेनेशन ब्रिज। इस का ही प्रचलित नाम है सेवकपुल। इस पार है दार्जिलिंग ज़िला,—उस पार है जलपाईगुड़ी। जहाँ तक याद है, मोटर-पथ चला गया है अलीपुर और कूचबिहार की ओर। पहाड़ से सट कर चलना पड़ता है। पथ दाहिनी ओर छोड़ मोटर अब चली पहाड़ के भीतर से। बग़ल में है तिस्ता। कहीं धूप की चिलचिलाहट, कहीं घिरे मेघ की वजह से ठण्डी हवा का स्पर्श।—आज फाल्गुन के प्रथम सप्ताह में खेल खूब जमा है। चढ़ाई शुरू हुई है, भूपेन बाबू का ड्राइवर सतर्क हुआ! जंगल में पहाड़ दोनों ओर नज़र आ रहा है। पहले स्तर के बाद दूसरा स्तर। फिर धीरे-धीरे महाहेमन्त की विशाल व्यापकता। ऊँचा से ऊँचा होता जा रहा है उस का शिखर प्रदेश। कितनी देर से देख रहा हूँ, कितनी बार। श्रद्धा से देखने को ही

आनन्ददर्शन कहा गया है। वरना हिमालय है केवल पत्थरों का समूह। माटी और पत्थर की मूरत को श्रद्धा से देखा जाता है तभी तो आनन्द की उपलब्धि होती है। उस के अपने आकार में महिमा कुछ नहीं है। महिमा है मेरे अपने मन में। युरॅप के आलपस् पर्वत श्रेणी के विषय में कुछ लोग अतिशयोक्ति करते हैं। हमारे लिए वह अर्थहीन है। हम ने हिमालय को माना है देवतास्वरूप। देवता देवादिदेव हैं हिमालय—वे शिव हैं, वे कल्याण के आधार हैं। किन्तु युरॅप की दृष्टि में आलपस् को महिमा बिलकुल नहीं है।

अन्दाजन बत्तीस मील पथ है शिलीगुड़ी। इस के बाद मिला तिस्ता का दूसरा पुल। बायीं दिशा में पथ सीधी चढ़ाई पकड़ कर दार्जिलिंग शहर की ओर चला गया है। उस का नाम है पेशक रोड। यहाँ से दार्जिलिंग बाईस मील है—घूम बीच में ही पड़ता है। इधर तिस्ता का पुल पार कर अद्भुत पथ घूमता हुआ ऊपर उठ गया है कालिंगपोंग में। यह पथ है दसेक मील का। पुल पार करने के पहले पड़ती है जेठमल भोजराज की गद्दी। ये यहाँ एक सौ वर्ष से भी अधिक दिनों से दार्जिलिंग और सिक्किम में आयात-निर्यात का काम कर रहे हैं। व्यापार में एकाधिकार है। ये हैं पंजाबी राजपूत। जब सम्पर्क का कोई ज़रिया नहीं था, जब रेल-पथ, मोटर स्वप्नवत् थे तब ये हिमालय आये थे। इन का प्रभाव इस इलाक़े में खूब है।

मेरी मोटर चल पड़ी कालिंगपोंग की ओर। सुख है, इस लिए झंझट भी है। इतना सुख सह्य नहीं होता। तेज़ चलने वाली मोटर पर भ्रमण उपयुक्त नहीं होता। ग्रहण करने का समय नहीं मिलता कहीं भी, मन कहीं भी ठहर नहीं पाता। इस लिए देखना भी सही रूप से नहीं हो रहा है। थकावट नहीं है, पथ-श्रम अनुभव नहीं होता, हर क़दम पर पथ का स्पर्श नहीं कर पाता—यानी यह भ्रमण सार्थक नहीं है। निस्तब्ध निर्जनता में कब कहाँ हिमालय को किस शिला की छाया में बैठा, गोमती धारा पार कर कब किस दोपहरी में गरुड़ नामक छोटे शहर में पैदल चलता हुआ पहुँचा, मसूरी से पैदल ही चल कर कब कैम्पटी जल प्रपात की दिशा में उतर गया, घनघोर जंगल के भीतर से थकी देह ढोते हुए कब जा पहुँचा मन्दाकिन के तीर पर गौरीकुण्ड—वे सब पथ-पथान्तर के घुमाव, हर क्षण की उपलब्धि खूब याद हैं। यह भ्रमण टालने जैसा ही है। स्पर्श का अभाव है, तभी इस भ्रमण की सिद्धि नहीं है। पोस्ट ऑफ़िस का पार्सल यहाँ से बिलायत भेजा जाता है। लेकिन उस ने युरॅप का भ्रमण कर लिया ऐसा नहीं कहा जा सकता।

देखते-देखते बहुत ऊपर चढ़ आया। अब धीरे-धीरे समझ में आ रहा है कि भूपेन बख़्शी के हाथ से ओवरकोट ले लेने का मूल्य कितना है। फ़रवरी का तीसरा सप्ताह समाप्त हो रहा है लेकिन कुल पाँच हज़ार फ़ुट की ऊँचाई पर ही इस प्रकार के शीत का होना अस्वाभाविक है। समय दोपहरी का है, धूप-छाँह से कालिंगपोंग का आकाश विविध वर्णों से शोभायमान है। मेरी मोटर आ रुकी एक बंगाली मिस्टर

मुखर्जी के होटल के सामने। जरा ढालू पथ पर घूमते ही एक बड़ा सा लॉन। यह भ्रमण के मौसम का समय नहीं है, यानी बोर्डिंग सूना है। ड्राइवर के खाने-पीने की व्यवस्था कर के मैं अन्दर चला गया। अच्छा कमरा चाहिए, अच्छा विलास-व्यसन और तीन-चार होटल ब्यॉय मुझे अभी चाहिए। बहुत दिनों बाद अब जरा नवाबी कर ली जाये। दोस्तों का कहना है, मैं जब अकेला रहता हूँ, तो मैं संकटप्रद हूँ। ब्यॉय, सोडा लाओ।

मोटर के रूप में जितना आभिजात्य था, उस से मेरी पोशाक का मेल नहीं खाता। पोशाक-पहिनावा छोड़ आता हूँ अपने देश में ही। कैफ़ियत कोई माँगता नहीं। चुस्त-दुरुस्त रहने की ज़रूरत है, ऐसा मैं नहीं मानता। पोशाक ही परिचय है, वह परिचय न मिले इसी में राहत है। कोई न जाने, मुँह फेर कर चला जाये, उत्सुकता प्रकट न करे, यही मेरा प्रयोजन है। बोर्डिंग के अन्दर जा कर दो तल्ले में पहुँचा। देखा इस कमरे से उस कमरे, सभी ख़ाली। सूना बरामदा, सूना कॉरी डोर। आज़ादी सुरक्षित है। खिड़की से हिमालय देखना चाहिए। जिस ओर है वह तिस्ता घाटी, जहाँ दोपहर को रक्तिम आलोक दल से छोटे-छोटे मेघ उतर पड़े हैं उत्तरीय उड़ाते हुए। बरामदे पर खड़े हो कर दूर उत्तर की ओर देखना आवश्यक है। जहाँ चोटियों पर बेमौसमी वर्षा की सजलता व्याप्त है। वहाँ उस ग्रेहम्सहोम की उत्तर दिशा में एक के बाद एक चोटी प्राक् विस्मयस्तब्ध, ध्यान गम्भीर स्थिति में अवस्थित है। वहाँ है महाकबरू, कंचनजंघा, श्रीशम्भू नरसिंह चोटी, सिन्योलच और लमगेबोर चोटियाँ। नामकरण किसने किया, नहीं जानता, इतिहास में भी उल्लेख नहीं मिलता। यदि नाम का पता न भी चले तो कोई फ़र्क़ नहीं पड़ता। वे हिमालय के समूह हैं, इतने से ही मैं ख़ुश हूँ। इन्होंने सदा मेरे अस्थिर स्वभाव को प्रश्रय दिया है। इसलिए उन के सामने मेरी कृतज्ञता की सीमा नहीं। उन्होंने जवाब दिया है मेरे अनेक दिनों के अनेक प्रश्नों का, अनेक तत्त्व-जिज्ञासाओं का। वे हैं मेरे अनेक दिनों के अनेक गोपन अश्रु के साक्षी और सान्त्वना—इतने ही से मुझे संतोष है। उन की चट्टानों पर मिला है मुझे अपना अलिखित मन। उन की उस कलरव मुखर घाटियों के समक्ष मैं ने अपनी जीवन जिज्ञासा की सुविस्तृत अर्ज़ी कितनी ही बार पेश की है। मेरे हृदय की रक्तधार कितनी बार उन की चट्टानों से कट-कट कर बहने वाली निर्झरिणी की उन्मत्त नर्तन के संग बह चली है। ध्यान मौन चिर निर्वाक् हिमालय, मगर सिर्फ़ मुझ से वे बातें करता है। मुझे खींच ले जाती हैं वे अपने अन्तःपुर में। वे मेरा तात्पर्य समझते हैं। उन के बीच पहुँच कर कभी भी मैं बल प्रकट नहीं करता। साहसिक अभियान में उन के सिर पर खड़े हो कर कभी भी अपना सिर उठाने की हिम्मत नहीं की। लेकिन हिमालय ने मुझे श्रद्धा और आनन्द का पथ दिखाया है, दिखाया है नैवेद्य चढ़ने वाला पथ। उन के एक पत्थर के निकट मैं हूँ कीटाणुकीट यही है मेरा एकान्त, एकाग्र आनन्द।

रामकृष्ण आश्रम है कालिंगपोंग में, दक्षिण चोटी पर। वहाँ से कंचनजंघा का दर्शन मात्र आशय था। उस समय साँझ होने में कुछ बाक़ी था। किन्तु वहाँ के ब्रह्मचारी महाराज मुझे देख कर उल्लसित हो उठे और मैं उन की पकड़ में आ गया। उन्हें कभी देखा है, ऐसा लगता नहीं। लेकिन उन्होंने मुझे किसी अवसर पर देखा है। देखते ही उन्होंने अपनेपन के साथ निकट खींच लिया। फल यह कि मेरी स्वच्छन्दता अवरुद्ध हो गयी। सामाजिक दुनिया में लौट आना पड़ा। महाराज ने अपना दल बढ़ा लिया और विशिष्ट नागरिकों को संग ले कर मुझे ले चले छोटे हाक़िमके बँगले पर। हाक़िम के उम्र में जवान पर भी होते हुए उन के और उन की पत्नी के आवभगत से मैं मुग्ध हो उठा। उन का नाम है डॉक्टर भट्टाचार्य। मैं सिक्किम जाऊँगा, यह सुन कर उन्होंने उत्साह में गैंगटाक टेलीफ़ोन कर दिया, और जेठमल भोजराज के नाम पत्र भी लिख दिया। ऐसे लोकप्रिय भले और शिक्षित हाकिम बहुत कम निकलते हैं। अभी वे राइटर्स बिल्डिंग में एक कर्मचारी हैं। वहाँ पर परिचय हुआ था डी० पी० प्रधान से। वे यहाँ के एक नेता हैं। हमारे साथ थे अवसर प्राप्त मजिस्ट्रेट मनोरंजन चौधरी। वहाँ से चला गया डॉ० गोपाल दास गुप्त के घर। मकान के नीचे उन का एक बड़ा दवाखाना है। जलपाईगुड़ी के प्रसिद्ध नेता डॉक्टर चारुचन्द्र सान्याल ने उन के नाम एक पत्र मुझे दिया था। मेरा इरादा उस पत्र को दबा जाने का था। मगर मेरे पहुँचने से पहले मेरे आने की खबर उन्हें मिल चुकी थी। कहने का मतलब इस मिलने-जुलने का फल हुआ स्थानीय बंगाली समिति में मेरा भाषण। क्या कहा, यह भी याद नहीं है, मगर क्या कहना चाहा था, वह आधी रात को करवट बदलते हुए समझा। कल चन्दन नगर कॉलिज के कई प्रोफ़ेसरों ने पत्र द्वारा मुझे यह बताया था कि मेरे भाषण का ही यह फल था कि बंगाली समिति का नाम बदल कर 'मैत्री संघ' पड़ा। फिर मैं सामान सहित होटल से डॉक्टर दासगुप्ता के प्रयास से उन के ही मकान के दो तल्ले वाले एक कमरे में पकड़ लाया गया। उन की विदुषी द्वितीय पत्नी ने रात के भोजन की राजसी व्यवस्था कर के मुझे बुलवाया। जरा भी कटने की गुंजायश नहीं थी और मैं वहाँ पन्द्रह दिनों तक रहने को बाध्य था। सहसा अपने को यन्त्रचालित पुतला महसूस करने लगा मैं। ये वे ही डॉक्टर दासगुप्ता थे, जिन्होंने एक समय रवीन्द्र की चिकित्सा की थी।

जो भी हो, यह अनुभव अभिनव है, इस में सन्देह नहीं। इतने दिनों सिर का पसीना हिमालय पर पोंछता आया, कितनी ही बार अन्न और आश्रय नसीब नहीं हुए। अपने पैरों में स्वयं मालिश भी की है। बोझ ढोते-ढोते कन्धे भर-भर आये हैं, पैरों में छाले फूटे और लँगड़ाता हुआ चलता रहा—इस का साक्षी तक कोई नहीं है। आज सोने को मिला गद्दीदार पलंग, फ़र्श पर क़ालीन, इज़ी चेयर पर मखमली कुशन सिरहाने रेडियो के द्वारा गूँज रहा है विहाग। उस विहाग के अलाप में जैसे बाहर से हिमालय पुकार रहा है अपने क्रन्दन कम्पित मूर्च्छना में भरे अव्यक्त पीड़ा के स्वरों में। कितने

ही साथी-संगी मिले इसी हिमालय पर। मारी पहाड़ का वह अजीज अहमद और मोती सिंह, कोहला की राह पर खन्ना, कशमीर में एम० के० घर, जम्मू में वह बख्शीजी ड्राइवर, रुद्रप्रयाग में वही मराठी दम्पति, नेपाल का मन बहादुर, कुलू घाटी का सुखन लाल। इन के अलावा बंगाली युवक-युवतियाँ, बन्धु और बान्धवी। कई नहीं रहे, कई आज भी हैं। कोई खो गया है, कोई मिल गया है अन्धकार-स्मृतियों में, कोई मर गया है, कोई घर-द्वार बना बैठा है; मुश्किल तो यह हुई कि मेरा हिमालय का पथ अभी भी शेष नहीं हुआ। अपने को भुलावा देने की चेष्टा की है, रोते मन को खिलौने दे कर अन्यमनस्क करना चाहा है—परन्तु अचानक हवा-हवा में हिमालय की पुकार सुनाई पड़ जाती है। उस के मध्य आ कर यह समझ पाता हूँ कि सब खेल और खिलौने बेकार हैं, छद्मवेश फ़ुज़ूल है—यहीं मेरा अपने से वास्तविक परिचय होता है।

सुबह मेरा ड्राइवर गाड़ी ले कर आया। डॉक्टर-दम्पति के डाइनिंग हॉल में जलपान करने के बाद गाड़ी ले कर निकल पड़ा। कलिंगपोंग के ऊपर से रैंक रोड—सिक्किम से आगे तिब्बत की ओर जाती है। मगर यह पथ दुस्तर और दुःसाध्य है। इस लिए यह प्राचीन रास्ता त्याग अब लगभग सभी गैंगटांक के पथ से आते-जाते हैं। समस्त उत्तर भारत में कलिंगपोंग से तिब्बत सर्वापेक्षा निकटतम है। रैंक रोड जेलाप-ला गिरिसंकट में जा कर शेष हो गया है। इस के बाद ही है तिब्बत की सीमा। गैंगटाक से नाथूला गिरिसंकट कुल छब्बीस मील है; यहाँ से जेलाप-ला ठीक कितना मील है, इस का पता मुझे नहीं है। मगर इसी पथ से तीन जगत् प्रसिद्ध बंगाली तिब्बत गये थे। उन में से प्रमुख हैं बंगाल गौरव, ढाका-विक्रमपुर के अतीश दीपंकर श्रीज्ञान। आज से नौ सौ वर्ष से भी बहुत पहले भारत के तत्कालीन श्रेष्ठ ज्ञान ऋषि दीपंकर ने तिब्बत पहुँच कर वहाँ बौद्ध-धर्म का प्रचार किया था। वे तेरह वर्ष वहाँ रहे और लासा के निकट ही उन की मृत्यु हुई। गौतम बुद्ध की बग़ल में तिब्बतवासी उन की मूर्ति की आज भी बोधिसत्त्व के रूप में पूजा करते हैं। दूसरे व्यक्ति हैं आधुनिक भारत के कुलगुरु राजा राममोहन राय। उन्होंने तिब्बत की यात्रा की थी, परन्तु उस का क्रमिक इतिवृत्त का मुझे पता नहीं है। तीसरे जिस व्यक्ति के प्रति मैं असीम श्रद्धावान हूँ वे छद्मवेश में तिब्बत गये थे, उन का नाम है शरदचन्द्र दास। वे गये थे उन्नीसवीं सदी के अन्त में। उन का आधुनिक भारत ऋणी है। क्योंकि उन्हीं का भ्रमण-वृत्तान्त सुन कर इस ज़माने में, हम प्रथम-प्रथम तिब्बत के विषय में कुछ जान पाते हैं। बीसवीं सदी के प्रारम्भ में सरफ़ांसिस यंगहसबेंड जब तिब्बत पर विजय करने गये, तो शरदचन्द्र दास के भ्रमण वृत्तान्त से सब से अधिक सहायता उन्हें मिली—यह सरफ़ांसिस की ही स्वीकारोक्ति है। अतीश दीपंकर के पहले और एक भारत वरेण्य बंगाली तिब्बत पहुँच कर आचार्य बोधिसत्त्व की उपाधि पा चुके हैं। वे हैं जसोर के राजकुमार शान्त

रक्षित। आठवीं सदी में वे तिब्बत गये थे। लामाओं ने उन्हें राजसी मान प्रदान किया था। लेकिन दीपंकर के जितनी अगाध कीर्ति की कथा हम जानते हैं, अशान्त रक्षित के सम्बन्ध में उतनी जान नहीं पाते।

कश्मीर के पूर्व प्रान्त में बसा गारटक भारत-तिब्बत व्यापार का प्रमुख केन्द्र है मगर वह है बहुत दूर और बहुत अजाने अंचलों को पार कर वहाँ पहुँचा जाता है। कुमायूँ के प्रान्त का गार्वियांग पार कर लिपू-लेक गिरिसंकट जैसा न होने पर भी वह बहुत कुछ वैसा ही है। वहाँ ताकला कोट है तिब्बतियों का केन्द्र। नेपाल में भी है नामचे बाज़ार से तिब्बत का सम्पर्क। अन्यान्य पथ भी मिलते हैं। मगर बाँगला का यह पथ ही है सर्वश्रेष्ठ। तिब्बत इतना क़रीब है शायद लोग यह जानते नहीं। हवाई जहाज से जाने पर कलकत्ता से दिल्ली पहुँचने में समय लगता है साढ़े तीन घण्टे। उसी गति से चलने पर लासा पहुँचने में घण्टे तीनेक लगते होंगे।

कलिंगपोंग की जो सड़क चली गयी है उत्तर की ओर, वहाँ ऊन के केन्द्र हैं—एक के बाद एक। असंख्य तिब्बती और मारवाड़ी बसे हैं उस के अगल-बग़ल। यहीं है तिब्बतियों का प्रमुख व्यवसाय। यहाँ व्यापारियों की काफ़ी उन्नति हुई है, इस का आभास देती हैं, बड़ी-बड़ी अट्टालिकाएँ और अनगिनत कोठियाँ।

सवेरे से ही आकाश आज है मेघ से घिरा, जाड़े की हवा बहुत तीखी थी। बड़ा गिरजा है कलिंगपोंग का लैण्डमार्क। उस की बग़ल से निकल गया है चढ़ाई पथ इधर-उधर मुड़ कर बहुत ऊँचाई पर स्थित ग्रेहम्स् होम की ओर। यहाँ ऐंग्लो इण्डियन तथा साहबों के अभिभावक-हीन बच्चे पढ़-लिख कर इनसान बनते हैं। सम्पूर्ण पहाड़ पर यह एक विशाल कृतित्व है। व्यवस्था खांटी साहब-मेमों के हाथों में है। सरसरी तौर पर देखने में ही घण्टों भर लग गया। रिमझिम वर्षा होती ही रही।

लगभग तीनेक घण्टे घूम कर डॉक्टर दासगुप्ता के इलाक़े में लौट आया। यह है अभिजात गाँव। किन्तु इस के पास की एक पतली गली से नीचे उतर कर जिस मन्दिर के चबूतरे पर आ खड़ा हुआ, उसे आज भी भूला नहीं हूँ। देख लिया नंगा-गन्दा छिन्न-भिन्न वह घर, जहाँ चौदह वर्ष पहले एक रात मैं ने और शशांक चौधरी ने बितायी थी। इस का नाम था ठाकुरबाड़ी, आज भी वह नाम उतना ही प्रचलित है। उस दिन भी कलिंगपोंग ही आया था, परन्तु कलिंगपोंग पर दृष्टि नहीं पड़ी थी—उस दिन महाकवि रवीन्द्रनाथ के विराट् व्यक्तित्व ने समग्र हिमालय को हमारी आँखों से ओट कर रखा था। याद आती है, २५ वैशाख की वह दोपहरी। कवि थे गौरीपुर के प्रासाद में। वैदान्तिक एटर्नी हीरेन दत्त थे। रवीन्द्र नाथ के साथ, प्रतिमादेवी, अनिलचन्द। मैत्रेयी और चित्रिता भी साथ थे। श्रीयुत् अमल होम की क़लम और रजनीगन्धा कवि को दे कर प्रणाम किया था। मेरे हाथों में था 'युगान्तर' की रवीन्द्र जयन्ती संख्या। महाकवि जानते थे, मैं उस समय 'युगान्तर' का अन्यतम सम्पादक था। मेरे अनुरोध पर उन्होंने बहुत बार युगान्तर के लिए रचनाएँ दी थीं। आज के

'युगान्तर' के प्रथम पृष्ठ पर छपा था चित्रकार के द्वारा गत बनाया कवि का एक रेखा-चित्र। गाँव-शहर, देश-महादेश एवं दिग्वलय को पीछे छोड़ कर कवि का मस्तक ऊँचा हुआ है तुषार मौली गौरीशृंग के भी ऊपर— अर्थात् हिमालय से भी वे बड़े हैं। पृथ्वी की उच्चतम शिखर हैं वे। चित्र के द्वारा उन का यही रूप प्रकट करने की चेष्टा मेरी थी।

कवि ने कहा : सम्पूर्ण महाभारत को वे अपने हाथों एक बार लिखना चाहते हैं, इतना बड़ा एपिक संसार के किसी युग के किसी साहित्य में नहीं है। किन्तु काम कठिन है, अनेक दिन लग जायेंगे। हीरेन बाबू को लाया हूँ, उन से सहायता लूँगा।

उन्हें जब बताया, यहाँ के एक ठाकुरबाड़ी में टिका हूँ, उन्होंने कहा : इसे छोड़ और ठाकुरबाड़ी कहाँ है यहाँ ?

सौम्य हँसता हुआ कवि के चेहरे पर स्वास्थ्य की रक्तिम आभा प्रकट हो रही थी। बाहर का प्रकाश आ पड़ा है उस सुन्दर श्वेत-स्निग्ध चेहरे पर। कोमल एक शाल उन के शरीर पर पड़ा था। एक आराम कुरसी पर वे अधलेटे पड़े थे। दो-चार बातों के बाद उन का परिहास-सरस वाक्यबाण छूटने लगा। उस बाण से मैं भी बिंध गया। ठहाके आस-पास भी गूँजने लगे। कवि उस दिन हमें अपने पल्ले पा बैठे।

उस दिन की उस २५ से वैशाख की सन्ध्या देशवासियों के लिए अपने जन्म दिन के उपलक्ष्य में, वे एक नव-रचित कविता आकाशवाणी से प्रसारित करें, इस लिए कलकत्ता आकाशवाणी के अधिकारियों ने कलिंगपोंग से टेलीफ़ोन की व्यवस्था की थी। कलिंगपोंग में टेलीफ़ोन नहीं था। इसी अवसर पर उस का प्रथम उद्घाटन हुआ। इस लिए पहाड़ों पर तार की खूँटियाँ लगीं और तार लगाये गये थे विगत कई दिनों में। टेलीफ़ोन अधिकारियों ने इस के लिए बहुत व्यय किया था। कवि अपने कमरे में टेलीफ़ोन पर कविता पाठ करेंगे और आकाशवाणी के कार्यकर्ता उन का स्वर पकड़ कर संग-संग प्रसारित भी करेंगे। कई आकाशवाणी के विशेषज्ञ इस अवसर के लिए यहाँ आये थे। उन में प्रमुख थे स्वनामधन्य स्वर्गीय नृपेन्द्र मजुमदार। महाकवि रह-रह कर ज़ोर-ज़ोर से गला साफ़ करते हैं, यह सभी का जाना हुआ था। मगर आज काव्य-पाठ के समय उस आवाज़ के चपेट में सूक्ष्म यन्त्र टूट सकता था, इस की आशंका रवीन्द्रनाथ को विशेष तथा अन्यों को भी थी। इस लिए खलबली भी थी। बीच में ही नृपेन बाबू ने मुझ से कहा : ठीक उसी कुरसी पर बैठ कर यन्त्र को मुँह के पास रख कर कलकत्ता को एक बार पुकारिए तो। आप के गले की आवाज़ से वह नहीं फटा तो कोई शंका या डर नहीं है।

मैं सिहर उठा, वह तो कवि का आसन था ! आखिर नृपेन बाबू को फ़रमाइश पूरी करनी ही पड़ी। मखमली कुशन वाले चेयर पर बैठ कर पुकारा : हलो, कैलकटा '' हैलो''''?

कलकत्ते से तत्क्षण उत्तर आया : ओके !

समय शाम के साढ़े सात या आठ का होगा। एक घण्टी बजी ··! कवि उठ कर जा बैठे यन्त्र के सामने। हम सभी बाहर आ खड़े हुए। बाहर हम लोगों के पास ही था रेडियो यन्त्र। कलकत्ते से कवि का स्वर लौट कर इसी यन्त्र में आयेगा—इसी से हम सभी खुश थे। कवि मात्र पन्द्रह मिनट तक अपनी कविता का पाठ करेंगे। बाहर से हम लोगों ने शीशे का दरवाजा बन्द कर दिया। शब्द न घुस जाये इस लिए।

बल्ब का संकेत पा कर कवि के दीर्घ दीप्त कण्ठ की मूर्च्छना नवरचित कविता में उच्छ्वसित हो उठी।

आज मेरा जन्म दिन। अभी-अभी प्राणों के प्रान्त-पथ में
डुबकी लगा विलुप्ति के अँधेरे से उदित हुआ वह
मरण से पार-पत्र ले कर।

हमारे पैरों के नीचे कलिंगपोंग थर-थर काँप रहा था, यह उस समय किसी के मन में नहीं रहा। चाँदनी थी उस दिन बाहर। एक जादूमय स्वप्नलोक में जैसे हम खोये थे। भूल बैठे थे परस्पर का अस्तित्व—

आज आया है क़रीब
जन्म दिन, मृत्यु दिन—दोनों एक आसन में बैठे हैं;
दो लौ आमने-सामने मिले जीवन प्रान्त में मेरे।
रजनी का चन्द्र और प्रत्युष का शुकतारा-सम,
एक मन्त्र में करते हैं अभ्यर्थना!

इन्द्र का ऐश्वर्य ले हे धरती, हो तुम जाग्रत्,
त्यागी को प्रत्याशा किये, निर्लोभ को सौंपने सम्मान,
दुर्गम के पथिक का आतिथ्य करने को तब दान,
वैराग्य के आरम्भ सिंहासन पर हो आसीन क्षुब्ध है जो लुब्ध है जो,
मांसगन्ध से मुग्ध है जो, खो चुके हैं एकान्त आत्मा की दृष्टि।

श्मशान के प्रान्तचर, आवंजना कुण्ड को तब घेर
बीभत्स चीत्कार से वे रात-दिन करते हैं हेराफेरी
निर्लज्ज हिंसा में करते हैं हाय हाय!

········दिनान्त के अन्तिम पल में
रहेगी खड़ी मेरी मौन वीणा मूर्च्छित तुम्हारे पद तल।
और रहेगा पड़ा पीछे मेरे नागकेसर का पौधा—
फूल जिस का फूटा नहीं और पड़ा रहेगा डोंगी पतवार के अभाव में—
इस पार का प्रेम—विरह-स्मृति के अभिमान में
थक कर रात के अन्त में लौटेगा वह पीछे की ओर।

कुल पन्द्रह मिनट में ही हम उस चाँदनी-सम्मोहित हिमालय की ओर ताकते से जैसे आदि अन्तहीन काल के मध्य निश्चिह्न हो गये थे। सहसा पास से जैसे रुद्ध साँस छोड़ कर रवीन्द्रनाथ बोल पड़े : खैर उन्होंने गला साफ़ नहीं किया। इस के बाद महाकवि कुल तीन वर्ष तीन माह जीवित रहे।

चौदह वर्ष बाद अब लौट आता हूँ फिर अपनी बातों पर। डॉक्टर दासगुप्त और उन की पत्नी से किसी तरह हमें इस यात्रा के लिए विदाई मिली। आकाश पर मेघ छाया है अभी भी, हो सकता है वर्षा भी हो जाये। परन्तु आज मैं ने तय किया, भूपेन बाबू की गाड़ी छोड़ कर किसी और तरीक़े से सिक्किम रवाना होऊँगा। राह मेरी जानी हुई नहीं है। इस लिए यदि उन की गाड़ी कहीं बिगड़ गयी तो यह बहुत शर्म की बात होगी। बहुत सोच-विचार कर गाड़ी ड्राइवर को लौटा ले जाने को कहा। पहले तो वह ज़रा घबराया, फिर राज़ी हो गया। लौटते वक़्त—अगर सही सलामत लौटा तब भूपेन बाबू से मिलूँगा, ऐसा कह दिया। वह गाड़ी ले कर चला गया।

भारत के बाहर है सिक्किम, इस लिए मेरा एक प्रकार का मिला-जुला मनोभाव है। अजाना, अपरिचित वह पथ। लेकिन यही तो है सब से बड़ा आकर्षण। मैं बस पर जा सवार हुआ।

[१२]

कलिंगपोंग से दस मील बस से उतर आया तिस्ता नदी के किनारे। थोड़ा आगे बढ़ने पर मिलेगा तिस्ता का पुल। पुल पार कर बायीं ओर है शिलीगुड़ी जाने का पथ और दाहिनी ओर है तिस्ता बाज़ार पार कर के पेशक रोड, वह ऊपर से होते हुए चला गया है घूम को तरफ़। घूम से दार्जिलिंग। मेरा पुल पार करना ज़रूरी नहीं था। सहसा रुक गया। दोपहरी ढल गयी है। आकाश बहुत कुछ बादलों से घिरा है, मगर वर्षा की सम्भावना कम है। हवा है झुर-झुर ठण्डी। हम सामने की ओर से पुल पार नहीं करेंगे, हमें जाना है पीछे की ओर से कलिंगपोंग पहाड़ के नीचे से जो अंचल सरकार द्वारा संरक्षित है। यह अंचल आज मेरे लिए एकदम नया है मगर इस की पृष्ठभूमि हमारी चिरपरिचित है। नेपाल में बागमती, कशमीर में रायवान हिमालय प्रदेश की मण्डी, हृषीकेश पार कर लक्ष्मण झूला के उस पार का सब कुछ एक के बाद एक मेरे मन में उभर आया। कुछ विलायत लौटे बंगाली दार्शनिक प्रोफ़ेसर एक बार तिस्ता का पुल देख कर लौटे तो मुझ से बोले—इस की तुलना मात्र स्वीट्ज़रलैंड से ही की जा सकती

है। कितनी सुहावनी पार्वत्य नदी है। कितना खुशहाल प्राकृतिक परिवेश है। उन्होंने कहा : अकेला भारतवर्ष पाँच-पाँच स्वीट्जरलैंड की शोभा को हजम किये है। यह कहने को विवश हूँ कि वह तुलना मुझे अच्छी नहीं लगी।

हमारी बस चली धीरे-धीरे। अब राह सँकरी है। कलिंगपोंग की तरह कोलतार वाली चौड़ी चिकनी सड़क नहीं है। क्योंकि पहले कभी इस पथ पर चक्के वाली गाड़ी नहीं चलती थी। तिस्ता बह रही है बायीं तरफ़ से। पिछले वर्षा का भयानक टूटन का अनुपात हर पहाड़ पर मिला। ऊपर से चट्टान उतार कर पथ तोड़ कर ले गयी है नदी गर्भ में। वह धक्का अभी भी सँभला नहीं है। अभी भी पहाड़ों की देह क्षत-विक्षत है। इस के अतिरिक्त ऊपर से भीषण प्रवाह वाले जल-प्रपात के आघात से पहाड़ों के शरीर जगह-जगह कट-कट कर गिर पड़े हैं, अभी भी उन की मरम्मत पूरे तौर पर नहीं हुई है। परिणामस्वरूप हर दो सौ-एक सौ गज के अनन्तर गाड़ी रुक जाती है। कुली राह दे कर अलग खड़े हो जाते हैं और गाड़ी चलानी पड़ती है बहुत धीमे। बैण्ड के पास-पास टूटन ज्यादा है। क्योंकि अमूमन धाराएँ बेण्ड से ही नीचे उतरती हैं। जहाँ तक याद है गाड़ियों की दोनों ओर से आने-जाने वाला नियम अभी मुलतबी है कारण खड्डों में अभी भी धसक की सम्भावनाएँ हैं। हमारा पथ क्रमशः घुमावदार होता जा रहा है। चढ़ाई-उतराई कम है मगर पथ बहुत ही संकीर्ण। हम पथ की ओर उत्सुकता से ताकते रहते हैं कि ड्राइवर कैसे गाड़ी ले चलता है। सामने के दो चक्कों में से एक को मन और दूसरे को प्राण सौंप कर निरूपाय सा बैठा है। यह कहना अत्युक्ति नहीं कि खड्ड की ओर वाले चक्के में हमारा प्राण है। पहाड़ों पर किस प्रकार दुर्घटना होती है, यह ऐसे रास्तों में बिना आये जाना नहीं जा सकता। हर क्षण ड्राइवर को दोनों ओर से चौकस रहना पड़ता है। आँखें चूकीं कि मौत। इस के अलावा बैण्ड पर मोड़ लेते समय गाड़ी का एक चक्का यदि किनारे पर स्लिप कर गया तो भगवान् ही बचाये। और पीछे के चक्के स्लिप करने पर पूरी गाड़ी मध्याकर्षण के भँवर में। ड्राइवरों को ऐसे रास्तों पर कई नियमों पर ध्यान देना जरूरी होता है। चलती गाड़ी में ड्राइवर सिगरेट पीने की चेष्टा न करें। बैण्ड के निकट पहुँच कर चौड़ाई पर ही मोड़ लें। तीसरा खतरनाक रास्ते से गुजरते समय यात्रियों की तरह-तरह की टीका-टिप्पणियों की ओर ध्यान न दें। ऐसे में किसी का बम्बइया गीत गाना या राजनीति की बहस छेड़ना भी एक भयानक संकट है।

लगता है, हम उतराई की तरफ़ बढ़ रहे हैं, क्योंकि ऊपर से छाया ही सा मालूम पड़ रहा है। अँधेरा थर-थर कर रहा है। झींगुर गुहार मचा रहे हैं। पथ निर्जन है। ऐसा कहना अनुचित होगा कि इधर आदमी का निवास ही नहीं है। जाड़े की ठण्डक जम गयी है छायाछत के ऊपर। बायीं ओर वनमय तिस्ता आँकी-बाँकी हो कर बह चली है। भारत की प्राचीन नदियों में तिस्ता उर्फ़ त्रिसोता एक है। दाहिनी ओर पहाड़ उठ गया है कलिंगपोंग की ओर। निस्तब्ध जंगली पथ। गाड़ी के हिस-हिस

को छोड़ पृथ्वी शब्दहीन है। सिर्फ़ रह-रह कर उस की चेतना का अनुभव होता है तब, जब सहसा ऊपर से कोई राह भटकी चिड़िया पुकारती हुई गुज़र जाती है।

दो जनपद देखते ही देखते पार हो गये। एक चित्रे, दूसरा मल्लिबाजार इस के बाद मिलेगा तारखोलाहाट। अब यहाँ से टेलीफ़ोन का तार शुरू हुआ है। तिब्बत जब से प्रत्यक्षभाव से चीन के दखल में आया, तब से सिक्किम के अन्तिम प्रान्त तक सम्पर्क की रक्षा तो करनी पड़ती है। इतने दिनों तक यह पथ निर्जीव था, तिब्बत और भारत में बिना कुछ कहे-सुने आना-जाना लगा रहा। किन्तु आज समग्र भारत और चीन की दृष्टि इस पथ पर गड़ी है। प्रसंगतः यह बात उठी, मात्र कई दिनों पहले भी, भारत सरकार की सत्यता पर कम्युनिस्ट चीन का विश्वास नहीं रहा। उस की धारणा थी, तिब्बत स्थित ईयाटुंग और गीयानत्सी से भारतीय सैनिक टुकड़ी को भगाने से अशान्ति अवश्यम्भावी है। इसी लिए चीनी फ़ौजी प्रस्तुत हुए और तिब्बत में हवाई अड्डे-निर्माण के बारे में अभी उस दिन तक व्याकुल रहे। इधर हम लोगों को चीन-भारत मैत्री संघ की स्थापना करने के बाद भी चीन का हृदय नहीं बदला। मगर लॉर्ड कर्जन के काल में सर फ्रांसीस यंगहसबैंड जो कुछ कर गये, पण्डित नेहरू की नीति ने उस की परवाह भी नहीं की। अब चीन-भारत मैत्री को स्वीकार कर उन्होंने चीन के मन से सभी संशय एवं अविश्वास जिस तरह मिटाया है, वैसे ही पाश्चात्य साम्राज्यवाद को भी कुछ सत् शिक्षा प्रदान की है। सैकड़ों वर्षों से उदार और साधु राजनीति से चीन के परिचय न रहने के कारण उस के मन में क्षुद्रता का उदय हुआ था। पण्डित नेहरू की विदेश नीति ने चीन की बुद्धिवृत्ति को निर्मल कर दिया है। अभी चीन के प्रधान मन्त्री भारत आये थे। उन के आगमन पर पण्डित नेहरू के प्रति कृतज्ञता प्रकाश का संकेत नहीं था।

रास्ता बहुत खराब है। जाने कब पहाड़ से टकरा जायें, जाने कब गाड़ी स्लिप कर नदी में गिर पड़े। घने जंगलों के नीचे से हमारी मोटर बस चली जा रही है। सड़क अधिक लम्बी नहीं है, तिस्ता के पुल से रेंगपो कोई सोलह मील है। मगर जान बचा कर इतना ही आने में लगभग डेढ़ घण्टे लग गये। इसी बीच अगल-बग़ल अपनी शाखाएँ छोड़ कर तिस्ता उत्तर की ओर खो गयी। फिर हमारा पथ चक्राकार हो कर मुड़ा, कलिंगपोंग महकमे के वन-संरक्षण को अतिक्रम कर हमारी गाड़ी आ खड़ी हुई रंगित नदी के किनारे—जहाँ सिक्किम और भारत की सीमा है। सामने है लकड़ी का पुराना पुल, इधर भारत, उधर सिक्किम। इस पार एक दफ़्तर खुल गया है। वहाँ भुटिया पुलिस अफ़सर यात्रियों की जांच-पड़ताल कर रहे हैं।

बिल्कुल पार-पत्र का रिवाज यहाँ नहीं है। फिर भी नाम-धाम, पेशा, परिचय—सभी कुछ बताना पड़ता है। मैं पत्रकार हूँ—आजकल इसे लोग समझने लगे हैं। मगर लेखक आखिर क्या बला है। सुनने में भी हँसी आती है। कहो व्यवसायी, कहो दाल में मिलावट करने वाला, चावल के संग कंकड़ें खिलाता हूँ या फिर बताओ

कि दाम वाली सस्ती गाँठ खरीद कर ब्लैक के कपड़े बेचता हूँ—यह परिचय फिर भी जानने-मानने लायक़ है। पर लेखक का अर्थ क्या है? मुंशी हुआ—जवाब का खाता लिखने वाला मुंशी—कुछ समझ में नहीं आता। मगर किस उद्देश्य से जा रहे हो?

सोच कर बोला—आकाश-पाताल देखने!

—क्या देखने?

अन्त में संवाददाता की भाषा में ही कहना पड़ा—आदमी और वस्तुएँ।

जाते वक़्त यह सबूत दे कर ही गया कि सात दिनों में ही लौट आऊँगा। यही तो है सीमा रक्षक भारतीय पुलिस का दल जिसे कहा जाता है चैक पोस्ट। इस पार भी यही, पुल के उस पार भी वही—एक ही चैक पोस्ट, एक ही कहानी की पुनरावृत्ति। खैर जो भी हो, यहाँ पहाड़-पर्वत जैसे चारों ओर से हमें घेरे हैं। जैसे हम पाताल में उतरते जा रहे हैं। यहाँ से रंगित नदी पूरब की ओर चली गयी है। उस के बाद मुड़ गयी है। किस तरफ़ मुड़ी है, यह कहना मुश्किल है। बहुतों का कहना है भूटान तो हमारे लिए आज भी रहस्यमय राज्य है। हज़ार वर्षों में कोई सभ्यता किसी सुरंग-पथ से भूटान में आज भी प्रवेश करने का अवसर नहीं पा सकी। बल्कि तिब्बत से विशाल संसार का सम्पर्क कुछ है, मगर भूटान हमारे लिए एकदम अन्धकार में है। सहसा लगा कि यहाँ के जैसे प्राचीन पत्थर हिमालय में कहीं भी नज़र नहीं आते। ऐसी काली, ऐसी काई वाली, ऐसी छायामय नदियाँ, ऐसा प्रेतलोक का संकेत और कहीं नहीं मिलता। निस्सन्देह नये देश में आ गया हूँ—आदिम आबहवा, प्रागैतिहासिक पृष्ठ-भूमि। पठान मुग़ल, ओलेन्दाज, पुर्तगीज़, अँगरेज़ कब किस राह आये हैं, इस का इन्हें होश तक नहीं। इन का योग-तन्द्रा तोड़ने के निमित्त सैकड़ों वर्षों में कहीं से भी कोई आवाज़ नहीं उठी। आदमी की आवाज़ से अधिक ये पंछियों की बोलियाँ सुनते आये हैं। देखते रहे हैं ये पहाड़ों की धूप-छाँह में तितली-पतिंगों का सम्पूर्ण जंगल में खेल। समझे बैठे हैं ये कि मनुष्य के संग एक ही छप्पर के नीचे सद्भाव से वास करते हैं। उपकरणों के आयोजनों को इन्होंने कभी महत्त्व नहीं दिया, इसी कारण प्रयोजन की सीमा भी इन के लिए चौड़ी नहीं हुई। पेड़ों में छत्ते बना कर जैसे मधुमक्खियाँ उस में गुँथी रहती हैं—यहाँ के आदमी भी ऐसे ही पहाड़-पर्वतों से सट कर छोटे-छोटे घर बना कर युग-युगान्तरों से यहाँ पड़े हैं।

झूला पुल के बाद रंगपो एक छोटा गाँव है, मगर यहाँ जो हाट लगी है वह सीमान्त का आखिरी बाज़ार होने के बावजूद क्षेत्रफल के अनुसार छोटा है। लेपचाओं की संख्या इधर कम है, मगर अचरज की बात यह है कि तिब्बती लोग भी यहाँ वस्तुएँ बेचते-खरीदते हैं। मारवाड़ी सब जगह मिलते हैं, नेपाली हैं, यहाँ तक कि बिहारी व्यापारी भी हैं—किन्तु बंगाली नहीं हैं। व्यापारी लोग घर-मकान बना कर यहाँ जम गये हैं। मुख्यतः चीजें भारत से लायी जाती हैं। कपड़ा, नमक, खिलौने, तम्बाकू और तरह-तरह के रंग-बिरंगी और गृहउद्योग की वस्तुएँ। इस के आयात-निर्यात में

लेपचाओं को बहुत सुविधाएँ नहीं मिलतीं। इस लिए आगे चल कर अगर कोई यह सोचे कि बाहर से लोग उन का शोषण करते हैं, तो कोई अत्युक्ति नहीं होगी। दूसरे बहुत से पहाड़ी गाँवों की तरह रास्तों को अधिकता यहाँ नहीं है। धूल-मिट्टी, कंकड़, पत्थरों के अलावा भी कोई साफ़-सुथरा जीवन होता है, यह इन की कल्पना से बाहर है। भारत की सीमा की बात छोड़िए—यह है बाँगला और सिक्किम का संयोगस्थल, अर्थात् बाँगला से तिब्बत की दूरी पचास-पचपन मील से अधिक नहीं है। सिक्किम इसी के मध्य में है। मगर यहाँ बाँगला की संस्कृति का चिह्न मात्र भी नहीं है। बौद्ध से शाक्त कभी भी, किसी ज़माने में नहीं मिले। संसार के कमोवेश कम से कम पचहत्तर करोड़ लोग बौद्ध धर्मावलम्बी हैं। स्वयं गौतम बुद्ध के पड़ोसी बंगाली हैं, पर उन्होंने पुनर्जन्म को छोड़ कभी भी बौद्ध मतवाद ग्रहण नहीं किया। अतएव इस के पूर्व कह चुका हूँ कि बंगाली सन्तान अतीश दीपंकर तिब्बत जा कर बौद्ध धर्म का प्रचार कर बोधिसत्त्व की संज्ञा से आज भी समग्र तिब्बत में पूजे जाते हैं। गौतम बुद्ध के बाद ही उन की गणना होती है।

रंगपो गाँव को पार कर हमारी गाड़ी सिक्किम के बीच से गुज़रने लगी। अब धूप दीखी। आकाश बहुत कुछ साफ़ है मगर पथ वैसा ही संकीर्ण तथा पत्थरों वाला। यहाँ से ही तिस्ता की शाखा नदी हमारी बायीं ओर से बह रही है। दाहिनी ओर है पहाड़ों का अवरोध। तिस्ता खो गयी है। मगर कहाँ, इस का पता नहीं चलता। किसी का कहना है, यहाँ से सीधी मान्जेन जनपद को पार कर उत्तर-पश्चिम में कुम्भकर्ण पर्वत से होते हुए कंचनजंघा की ओर चली गयी है, और किसी का कहना है कि सीधी सुनटांग की ओर निकल गयी है। हम चल रहे हैं पूर्व पर्वत से सट कर। चारों ओर है पर्वत-श्रृंखला। शान्त और ध्यानमग्न। क्रमशः घन-गहन में खोता जा रहा हूँ। अपनी जानी हुई दुनिया से परे, इसी वजह से चारों ओर अवाक् विस्मय सा होता है। यह है तितलियों का देश। सैकड़ों वर्ण और जाति की तितलियाँ और पतंगे यहाँ जनमते हैं। यहाँ कमोवेश पाँच सौ प्रकार के आर्किड के पौधे और लताएँ मिलती हैं। फूल अभी फूले नहीं हैं, लता-पत्रों में अभी भी प्राण आने की आकुलता-व्याकुलता है। मगर मैं जानता हूँ कि अदृश्य मन्त्र वन-वनों में व्याप्त है। निकट भविष्य में ही पुष्प-समारोह से दिग्-दिगन्त प्लावित हो उठेगा। बंगाल के एक अवसरप्राप्त गवर्नर इस अंचल में आये थे और उन का कहना था कि—यह है लैंड ऑफ़ थंडर बोलटस्—यह है वज्रपात का देश! और किसी ने कहा था—यह है तितलियों का देश!

सड़क के किनारे गाड़ी रुकी। तिब्बती कारवाँ सामने आ रहा है, उसे राह देना अनिवार्य है। ध्यान लगा कर सुनता हूँ निस्तब्ध पहाड़ी गाँव में मृदु-मधुर तन्द्रिल स्वर गूँज रहा है—डिग-डिग टंग-टंग और हैं वे वैसे ही, जैसे हमेशा से आते रहे हैं। उन्होंने हमेशा से जोड़ रखा है तिब्बत को भारत से। धर्मों के मतवाद, समाज के नियम-क़ानून, राजनीति का बवण्डर—कुछ भी उन का पथ-रोध नहीं कर सका। वह

श्लथ मति उदासीन अपरिचित पथिकों का दल आ रहा है भारत की ओर—डिग-डिग टंग-टंग घण्टे की आवाज़ पहाड़ों में फैला कर संगीत की मूर्च्छना उत्पन्न करते हुए वे आ रहे हैं।

पहली बार भारत के बाहर का कारवाँ देखा मारी पहाड़ पर, जो आज पश्चिम पाकिस्तान में है—मगर उस कारवाँ के लोग तब शहर प्रवेश कर बिखर गये थे। उन के सिर पर की टोपी, लबादा और जूता-मोज़ा देख कर भौंचक्का रह गया था। वे थे पामीरी, इयारखन्दी, समरखन्दी, उज़बेकी, खोरासनी, उत्तर तिब्बती और मध्य एशिया के मध्यवर्ती जाति के लोग। कशमीर में देखा है कारवाँ। वे थे गुर्जर जाति के लोग—एक प्रकार के खानाबदोश। वे भी आते हैं मध्य एशिया से या समरखन्द या बोखारा और मंगोलिया तकलामाकान मरुभूमि पार कर। चरस, चमड़ा व पशम. यही हैं उन की कारोबारी वस्तुएँ। कभी-कभी हाथियों की हाट भी लगती है। पूर्वी पंजाब और हिमाचल प्रदेश में और पेप्सू में कारवाँ पथ बहुत पुराने ज़माने से बना है। कुमायूँ में भी कई सड़कें हैं। किन्तु ये कारवाँ दल के लोग समतल भू-भागों में गरमी के डर से अमूमन जाना नहीं चाहते। नेपाल का एक तरह से धर्म है बौद्ध, मगर उसे हिन्दू राज्य कहा जाता है। इस के अनुसार सिक्किम बौद्ध होते हुए भी हिन्दू है। त्रिभुवन विक्रम नाम है हिन्दू, सिक्किम के महाराजा तासी नाम गेयाल सम्पूर्ण बौद्ध नाम है सिर्फ़ बौद्ध ही नहीं, वे हैं तिब्बती भी। आत्मीय-परिवार सभी तिब्बती। भारतीय हिन्दू से उन का कोई सम्पर्क नहीं है। वे हैं वर्ग-उपेक्षित, गोत्र-उपेक्षित।

कारवाँ आ गया सामने। घोड़े और हाथियों की पीठ पर दोनों तरफ़ कच्चे पशम का बोझ लटक रहा है। दल में कभी पचास-साठ, कभी-कभी दो सौ तक पशु होते हैं। संग-साथ आते हैं तिब्बती कुत्ते, वे उन जन्तुओं की रखवाली करते हैं। मालों पर निगाह रखते हैं। काले-काले कुत्तों की भयानक आँखों में होता है स्वामिभक्ति का तेज। ये साथ-साथ आते हैं और पशुओं के साथ लौट जाते हैं। राहघाट पर जब तिब्बती व्यापारी सोते हैं ये कुत्ते पशुओं का पहरा देते हैं। चोर, डकैत, जंगली जानवर इन कुत्तों के सामने आते डरते हैं। विचित्र पोशाकों में तिब्बती गिरिसंकट से सट कर चले आ रहे हैं। दूर से लगता है, यह कारवाँ लम्बा सरीसृप जैसा। अपने साथ वे लाते हैं सुदूर की गन्ध, दुस्तर गिरिशृंग और अनध्यूषित अंचलों के संवाद। उन की ओर देख कर अकारण पर्यटकों का मन अप्रत्याशा से जाने कैसा आग्रही-आकुल हो उठता है। एक नये विचित्र जीवन का पट उन के सामने खुल जाता है।

रंगित नदी भी शायद खो गयी। अब हम एक लकड़ी का पुल पार कर आ पहुँचे शिंगताम हाट में। रंगपो से सात मील दूर। आज शुक्रवार है, बड़ी सी हाट लगी है। हफ़्ते में इसी एक दिन यह हाट लगती है। यह बहुत कुछ तराई है, पास ही है शिंगताम नदी। नदी की धाराएँ मज़े की हैं। आसानी से समझ में आ जाता है कि यह बर्फ़ीली धाराएँ हैं, वरना फ़रवरी में धाराएँ इतनी तेज़ नहीं रहतीं। आस-पास के

पहाड़ों की चोटियाँ विराट् से विराट्तर होती गयी हैं। अब हम चढ़ाई पथ पर चलेंगे। पथ उत्तर की ओर है।

शिंगताम की हाट क्या है। मानो जंगल में मंगल। हफ़्ते में एक दिन लेपचा लोग बाज़ार-हाट करते हैं। मारवाड़ी व्यापारियों के लिए आज का दिन है चकाचक। नारंगी का भाव है रुपये में तीन। नारियों के कपोलों पर है उस की आभा। छुरी-कैंची, कटारी-खुरपी का बाज़ार। तिब्बती मूँगे और स्फटिक की मालाएँ, पीतल और चाँदी के गहने, लकड़ी की वस्तुएँ, कच्चे चमड़े का बैग—कम्बल और धूस का। मेरे क़रीब सुबह से एक तिब्बती जोड़ा बैठा है। भाषा नहीं जानता इसी से हाथ और मुँह के संकेत से ही दोस्ती हो गयी है। मेरी हिन्दी टूटी-फूटी है, और वे बोलते हैं लेपचा बोली। यानी ग्रीक और हिब्रू! मगर हँसी ऐसी प्रक्रिया है, जो संसार की किसी जाति और किसी भी भाषा में दुर्बोध्य नहीं है। वह एक ही बात में, एक ही बार में हृदय में उतर जाती है। वह स्त्री क़ै कर रही है सवेरे से ही। मोटर से जैसे पहाड़ पार करते हुए बहुतों को मितली आती है। गरदन उठा कर वह बाहर नहीं देख पाती, अन्दर ही मुँह चुराये पड़ी है। वे जायेंगे तिब्बत के किसी गाँव में। किसी काम से कलिंगपौंग गये थे। तीन दिन गैंगटाक में बिता कर वे तिब्बत लौटेंगे। अमूमन तिब्बतियों की देह का रंग सफ़ेद और लाल मिल कर जो रंग बनता है, वैसा ही है—दूधिया, रक्ताभा दूधिया! मगर यह लड़का बहुत कुछ श्याम वर्ण का है। उस के सिर पर कोने वाली रोयेंदार टोपी है— ऊन और चमड़े से बनी, देखने में अद्भुत! मगर इस टोपी की बनावट में ही तिब्बती गुफा-मन्दिरों की बनावट तथा वहाँ के नगर कार्य का आभास मिल जाता है। शरीर पर तिब्बती जोब्बा नहीं है। पशम के ऊपर काम किया हुआ चमड़े का जैकेट। वह मुझ से अनर्गल बातें कर रहा है, जिस का एक अक्षर भी मैं नहीं समझ पाता, और वह मेरे कथन के उत्तर में जो कुछ भी कहता है वह भी मेरी समझ में नहीं आता। फिर भी दोस्ती हो गयी। हँसी से, शरीर स्पर्श से, सिगरेट के आदान-प्रदान के द्वारा।

गाड़ी खड़ी थी। हम लोगों के सामने ही थी शराब की एक दुकान। वहाँ, बच्चों से ले कर बूढ़ों तक की भीड़ लगी है। माँ-बाप के संग सज-धज कर आये हैं गृहस्थ घरों के बाल-बच्चे। माँ-बाप उन्हें शराब खरीद कर देते हैं। टीन के बरतन को मुँह से लगा कर सभी गट-गट शराब पी रहे हैं। मेरी बग़ल में बैठे थे एक चश्मा लगाये नेपाली सज्जन। उन्होंने कहा, यहाँ का यह रिवाज है। हाट के दिन वे घूमने निकले हैं। नशे में सभी आनन्द-विभोर हैं। ठण्डे मुल्क का यही नियम है। नशे-पानी में ही उन्हें आनन्द मिलता है। बिना शराब के उन का चलता नहीं।

शिंगताम का बाज़ार उत्तर से दक्षिण की ओर फैला है। यहाँ भी प्रधानता मारवाड़ी और बिहारियों की है। नेपाली व्यापारी भी कुछ हैं और लेपचाओं की संख्या तो बिलकुल ही कम है। जो यहाँ के निवासी हैं, उन्हें ठीक-ठीक पहचानना मुश्किल

है। एक ही मंगोलियन रक्त। किन्तु बहुविधा शाखा-प्रशाखाओं के। विशेषकर नेपाली, भुटिया, सिक्किमी—इन की नारियों में अन्तर करना मुश्किल है। तिब्बती नारी एक तरह की होती है। उन्हें पहचानने में समय नहीं लगता। तिब्बती पुरुष बड़ा विचित्र होता है। पैर से सिर तक भिन्न-विभिन्न रंगों की पोशाकें। सम्पूर्ण शरीर जैसे इन्द्रधनुषी है। पोशाकों के सभी रंग गहरे-लाल, नीला, काला, पीला, बैगनी, हरा। पोशाकों की इतनी रंगीनी हिमालय में और कहीं नहीं है। सम्पूर्ण पहाड़ियों में से तिब्बतियों को पलक में पहचाना जा सकता है। इन्हीं रंगों की बहार की वजह से जो साधारण बाबू हैं, उन का तो कहना ही क्या! किसी-किसी की पोशाक तो ऐसी है कि रंगमंच पर प्रवेश करते ही तालियाँ पड़ने लगें। शिंगताम के बाज़ार में इतने लोग हैं, इतने मर्द-औरतें—किन्तु उन में दो चोटियों वाले टोपी पहने दो-चार लामा भी हैं, उन्हें पहचानना बड़ा आसान है।

दक्षिण पहाड़ का ढालू पथ बहुत दूर तक ऊँचाई पर उठ गया है। उधर ताकने पर जन-बहुलता कहीं दृष्टिगत नहीं होती। शिंगताम की हाट से हमारी गाड़ी अब चल पड़ी है उत्तर की ओर। अगल-बग़ल तराई में थोड़ी-बहुत खेती-बाड़ी देखते हुए बढ़ रहा हूँ। कहीं-कहीं नारंगी का विस्तृत बग़ीचा, कहीं-कहीं ढेरों अनार के फूल और फल। कहीं है कच्चे सेब का वन। यहाँ से सैकड़ों पेटी फल बाहर भेजे जाते हैं। अब हमारा पथ चढ़ाई पर है। नदी इस बार दाहिनी ओर है। मगर इस नदी को लोग शिंगताम के नाम से पुकारते हैं। आजकल पहाड़ों में कहीं-कहीं घनघोर वर्षा हो रही है। इसी से शिंगताम की धाराएँ इतनी तेज़ हैं। लहरें नहीं उठती हैं किन्तु धारा उद्दाम है। नदी घूमती है अनेक मोड़ों से, कहीं विघ्न महसूस नहीं करती—और फिर कहीं-कहीं तो स्थिर भी है। किन्तु पथरीली गिट्टियों और लता-पत्रों की विचित्रता और कहीं नज़र नहीं आती। उन में ही हैं अनेक प्रकार के आर्किड तथा बहुतेरे रडोड्रेनड्रम। पेड़-पौधे, लता-पत्र, फूल-फल इन के बारे में मेरा ज्ञान सीमित है। इस का अभिमान मैं नहीं करता। ऐसी बहुत सी गुल्म लताओं को कुचल कर मैं बढ़ता आया हूँ कि मुड़ कर देखने पर दुःखी ही हुआ हूँ। शहरों के लोगों के लिए जो आर्थिक दृष्टि से मूल्यवान् हैं। दो-ढाई मील आगे जा कर हमारी गाड़ी घुस पड़ी एक पहाड़ी सुरंग में। कारवाँ का अन्त नहीं, एक के बाद एक चला जा रहा है। कोई छोटा है और कोई बड़ा। मगर वही भयानक आँखों वाले एक या दो कुत्ते प्रत्येक के संग हैं। साथ-साथ है, वही घोड़े का रखवाला, वही स्वस्थ और सुन्दर तिब्बती। इस सम्प्रदाय में श्रेणी विभाजन भी है। साधारण किसान और मज़दूर तिब्बती एक प्रकार से कलिंगपौंग में यहाँ-वहाँ खूब नज़र आते हैं। दूसरी श्रेणी के जो हैं वे हैं ऊँची जाति के सौदागर, जो ढेरों रुपये के मालिक होते हैं।

सुरंग पार कर के हमारी गाड़ी टेढ़े-मेढ़े पथों से चली। रंगपो से सिक्किम की राजधानी—गैंगटाक अन्दाज़न २५ मील है और गैंगटाक से कलिंगपौंग पचास मील।

हम मात्र चढ़ाई पार कर रहे हैं, इतनी ही नहीं, बीच-बीच में घाटियाँ भी पीछे छोड़ते बढ़ रहे हैं। सच कहूँ तो इन कई घण्टों में ग्रीष्म, वर्षा और जाड़ा—तीनों ऋतुओं का अनुभव किया है। नीचे की ओर उमस खूब थी—जैसी हमेशा से पहाड़ों से घिरी घाटी में होती है, मगर ऊपर की ओर हलकी और बहती हवा है। कहीं-कहीं किसी मोड़ पर आँखें टिक गयी हैं। सुदूर दिगन्त। चमलहरी के विशाल गगनचुम्बी शिखर की ओर कहीं-कहीं सिनीयलचू, कबरू और थोड़ी सी कंचनजंघा भी मिली है। पाँच हज़ार फ़ुट पार कर हमारी गाड़ी आगे बढ़ती जा रही है।

जाने कौन कह रहा था कि सिक्किम का मूल नाम है सुखिया यानी नवगृह। तिब्बती सिक्किम को डेंनडग के नाम से पुकारते हैं, जिस का अर्थ होता है चावल का भण्डार। भण्डार भरा-पूरा था तभी सम्भवतः सिक्किम बहुत काल तक तिब्बत सरकार के अधीन था। बिना युद्ध, बिना रक्त-पात के सिर्फ़ धर्म के प्रभाव द्वारा कैसे देश विजय किया जा सकता है, तिब्बत उस का प्रमाण है। उदाहरण देता हूँ ? समग्र पूर्वी कशमीर का, उत्तर पूर्वी पंजाब, उत्तरी गढ़वाल और कूमायूँ, उत्तर नेपाल, सिक्किम एवं भूटान का। आसाम का उत्तर-पूर्व प्रान्त भी जोड़ लें तो ग़लत नहीं होगा। इन में सिक्किम है दो नावों में। राजनीतिक दृष्टि से सिक्किम जब तिब्बत के अधीन था तब सिक्किम में कलिंगपोंग के साथ ही समग्र दार्जिलिंग ज़िला भी था। अठारहवीं सदी तक का इतिहास यही बताता है। उन्नीसवीं सदी में सर्वप्रथम गोरखाओं ने आक्रमण किया और ठीक इसी समय उन्होंने गढ़वाल पर भी आक्रमण किया। मगर लड़ाई हो गयी अँगरेज़ों के संग। गोरखाओं ने जो अँगरेज़ों के द्वारा पराजित हो कर पश्चिम देहरादून और गढ़वाल को छोड़ दिया अब पूर्वी भारत में सिक्किम छोड़ने पर वे बाध्य हो गये। मगर राजनीतिक दृष्टि से सिक्किम का मन भारत की ओर और प्राण तिब्बत में ही रहा। आज तक ऐसा ही है। आत्मिक रूप से तिब्बत का लामा धर्म ही सिक्किम का राष्ट्र धर्म है। विवाह-सम्बन्ध, ननिहाल, ससुराल, पितृगृह—सभी हैं तिब्बत में। राजा-रानी दोनों तिब्बती हैं, धर्म अनुशासन तिब्बती है। आचार-विचार, व्यवहार, प्रथा, समाजनीति और सभी तरह के धर्म-मत तिब्बत का मुँह जोहते हैं। मगर यह एक बात सच है। भारत और तिब्बत के मध्य स्थित इस सिक्किम का राजनीतिक बोझ ढोते आये हैं नेपाली। सिक्किम की जनसंख्या में नेपाली अधिक हैं। उपजाति के रूप में लेपचा हैं, किन्तु वे बहुत निरीह हैं। नेपाली, गोरखा, तिब्बती और आदिम सिक्किमी—इन चारों सम्प्रदायों से ही लेपचा सम्प्रदाय की उत्पत्ति हुई है। इन के वर्ण मिला-जुला है, बहुत ही सरल, खूब परिश्रमी और सहृदयता तथा सज्जनता इन के रक्त का स्वभाव है। सिक्किम को डेढ़ लाख जनसंख्या में ये छाये रहते हैं और प्रायः तीन हज़ार वर्गमील में पाँच सौ गाँव में सर्वत्र ये आधुनिक सभ्य संसार से बिलकुल कट कर निवास करते हैं। लेपचा प्रधानतः किसान और मजदूर हैं। रहते हैं ये समाज के निम्न स्तर के रूप में तथा गोरखाओं के खिदमतगार हो कर।

चोटी पर बसे तितलियों के देश के क़रीब पहुँच गया हूँ। किसी विशेषज्ञ ने एक बार कहा था, 'यहाँ कम से कम चार हज़ार प्रकार के फूल और लताएँ मिलती हैं। मात्र इतना ही नहीं, २५० तरह के फर्न, ६५० श्रेणी के आर्किड, ६०० तरह की तितलियाँ और लगभग ७००० प्रकार के कीट-पतंग यहाँ मिलते हैं।' यह सम्भव है, अविश्वास नहीं करता मैं। सम्भवतः प्रागैतिहासिक काल से सिक्किम संस्कार वर्जित है, कम से कम दो हज़ार वर्षों से यहाँ किसी क्रान्तिकारी नयी सभ्यता की सूचना नहीं मिलती, तभी तो यह चारों ओर से आदिम आरण्यक दीखता है। लामा पड़े रहते हैं मठ और गुफ़ाओं में मग्न। राजा अपने राज में मशगूल। राजा और प्रजा में कहीं विरोध का भाव नहीं। प्रजा उन्नति करना नहीं चाहती, घर छोड़ कर बाहर जाना नहीं चाहती। इस लिए राजा भी परम सन्तोष से दिन काटते हैं। योगतन्द्रा में झूलता तिब्बत और पैर की ओर पड़ा है उदासीन भारत। नीचे से कोई जाता नहीं, खोज-खबर लेता नहीं। समग्र सिक्किम में चारों तरफ़ लामाओं का प्रभाव है। मूल बौद्ध मतावलम्बी मारण, उच्चाटन, वशीकरण, भूत-प्रेत, पिशाच-राक्षस, दैत्य—इसी में मशग़ूल रहते हैं। उन पर पौराणिक दन्तकथाएँ अनुशासन करती हैं, जादू और तन्त्र के प्रति उन की अन्ध आसक्ति है। इन विषयों के प्रचार के लिए असंख्य बौद्धविहार और मठ हैं एवं सैकड़ों-हज़ारों बौद्ध भिक्षु हैं। अतएव काला कम्बल ओढ़े सिक्किम युगयुगान्तर से पड़ा है।

पथ के आख़िरी चरण में बहुत कुछ हिस्सा चढ़ाई है। हमारी गाड़ी सिक्किम की डाक ले कर चल रही है। गैंगटाक जब पहुँचा, समय उस वक़्त चार का था।

गैंगटाक के आकाश पर मेघ घिर आया है असमय। फागुन के प्रारम्भ में ऐसे आकाश की आशा नहीं की जाती। किन्तु गाड़ी से जब बाज़ार के सामने उस दबदबा वाले अंचल में उतरा, दोनों पैर नये देश में पड़ने से ठिठक गये। भारतवर्ष यह नहीं है पलक मारते यह महसूस हुआ। हवा तिब्बतीय है। सामने छोटी-छोटी दुकानें लग गयी हैं राह पर। अजब बाज़ार है, देर तक सामने खड़े होने पर भी उत्सुकता नहीं मिटती। हड्डियों की माला, तिब्बती स्फटिक, लामाओं के टोप, चमरी की पूँछ के टुकड़े, सूखे चमड़े, तिब्बती कंघे, नेपाली कुकरी और विभिन्न प्रकार के लोहे के औज़ार। और भी हैं बहुत-सी चीज़ें, जिन का नाम जानना मेरे लिए सम्भव नहीं। बीचोबीच चल रहा है, लाल मखमल और ऊनी पोशाक में सज-धज कर लामा पुरोहितों का समूह। उन की पोशाक से आभिजात्य का आभास मिलता है। अच्छे एक गरम जोब्बा का दाम डेढ़ सौ से दो सौ तक माँगते हैं। गरदन से पैर तक उस से ढका जा सकता है। दोनों हाथ उस के भीतर। उन हाथों में अहर्निश जप की माला और अहोरात्र मन्त्रोच्चारण। पुलिस अधिकांश तिब्बती हैं, अफ़सर तक। बाज़ार के सामने चेकनाका के पास पहुँच कर इस दफ़ा यह तीसरी बार नाम-धाम परिचय लिखवाना पड़ा। मगर कहीं भी असौजन्य का सामना नहीं करना पड़ा। मेरे संगी वही तिब्बती दम्पतियों को गाड़ी से

उतरने पर राहत मिली। पत्नी अब आवरण हटा कर हँसते हुए पति की बग़ल में आ खड़ी हुई। बीते साढ़े पाँच घण्टे से उसे देखा नहीं था। उस लड़की की जाति तिब्बती नहीं है। वह कुछ-कुछ नेपाली से मिलती-जुलती है। मतलब दो-चार हिन्दी शब्दों को वह समझती है और पति को समझाती भी है। हमेशा से औरतों में वाक् शक्ति की अपेक्षा श्रवण शक्ति खूब होती है। मन अन्तर्मुखी है, तभी तो दूसरों की भाषा की सहज में उपलब्धि इन्हें होती है। यहाँ उस के ससुराल के सम्पर्क का कोई रहता है, वे वहाँ जा ठहरे। वे तीन दिनों तक यहाँ रहे थे।

मैं जा खड़ा हुआ जेठमल भोजराज की गद्दी के सामने। समग्र सिक्किम में वे सर्वापेक्षा गौरवशाली हैं। बाज़ार के एक बहुत बड़े हिस्से में उन की गद्दी है। खाद्य, वस्त्र, बिसाती, पोशाक, तम्बाकू से बनी वस्तुएँ, फल-फूल, सुगन्ध—सिक्किम की नित्य प्रयोजनीय वस्तुओं के आयात-निर्यात में उन का एकाधिकार है। सिर्फ़ इतना ही नहीं, वे महाराजा के बैंकर भी हैं। यानो इस राज्य के समस्त रुपये-पैसे, लेन-देन उन्हीं के हाथ है। वे रुपये जमा रखते हैं और ज़रूरत पड़ने पर अतिरिक्त देते भी हैं। अर्थ नैतिक कर्तृत्व कुछ उन के जिम्मे है या नहीं इस की जानकारी हमें नहीं है। जो भी हो, मेरे पास कलिंगपौंग के हाकिम मिस्टर भट्टाचार्य का पत्र था। उस पत्र के देते ही खुद मालिक खुशी-खुशी आये और हमें अन्दर ले गये और पाँच मिनिट में ही एक आदमो ने चाय केक-बिस्कुट आदि ला हाज़िर किया। बाहर बदली की वजह तेज़ हवा ठण्डी थी, इस लिए एक-दूसरे आदमी ने अग्नि मेरे पैरों के पास ला रखी। मुझे तकलीफ़ हुई या नहीं, मैं थका हुआ हूँ या नहीं, कितने दिनों रहने की इच्छा है, मेरा यहाँ के बारे में अनुभव कैसा क्या है आदि चर्चा से वे बहुत खुश हुए। एक समय मैं इधर-उधर ताक रहा था, यह देख कर उन्होंने आश्वासन दिया, चीज़ों के विषय में निश्चिन्त रहिए।

आधे घण्टे बाद एक आदमी इसी गद्दी के पश्चिम हिस्से में, एक महल में ले गया। पतले से बरामदा से हमें एक कमरे में पहुँचा कर और ग़ुसलखाना दिखा कर वह विदा हुआ।

अप्रत्याशित इतना आश्चर्य मुझे कभी नहीं हुआ। बम्बई के ताज और कलकत्ते के ग्रैंड के कमरे देखे हैं मगर वहाँ रहने लायक़ धन कभी नहीं जुटा पाया। मगर यह कमरा क्या उस से कम है? कुछ दिनों पहले मुर्शिदाबाद के नवाब के शयन-कक्ष में, जहाँ अभी उस दिन अँगरेज़ छोटे लाट सोते थे, उसी कमरे में एक बार गया था। राजा राममोहन के शेषवंशधर श्रीमान् शचीन्द्र मोहन ने अपने हेतमपुर स्थित मकान में शौक़िया सोने के कमरे में एक बार मुझे बैठाया था, कासिमबाज़ार का राज-कक्ष भी देख चुका हूँ, और देख आया हूँ काशी के शिवप्रसाद गुप्त का भी घर, नदिया के महाराजा और नाटौर स्थित महाराजा जगदीन्द्रनाथ के सुसज्जित विश्रामागार, कश्मीर के युवराज कर्णसिंह का बैठकखाना, जैसलमेर के महाराजा रघुनाथ सिंह का शयन-कक्ष,

पन्ना और छतरपुर के महाराजाओं का घर भी देख चुका हूँ! इस घर में लेकिन सभी मिला हुआ है—इस के वर्णन की आवश्यकता नहीं। मगर मैं डर के मारे सोचने लगा, जाते समय कितना रुपया ये मागेंगे! कुछ भो हो, ये तो व्यवसायी भी हैं, बिना रुपया लिये इन का काम चलेगा भी कैसे?

जेब में पड़े मनीबैग पर हाथ स्वयं चला गया और आँखों के आगे समग्र सिक्किम में प्रबल भूचाल आया-सा लगा। हाकिम का पत्र ही संकट का कारण है! ये जो तीन-चार नौकर मेरे पीछे पड़े हैं, इन्हें पद-मर्यादा के अनुसार बख़्शीश देने में ही दिवाला निकल जायेगा!

सहसा लकड़ी के बरामदे पर पैरों की आहट हुई, इस के बाद ही चौथा नौकर एक बड़ी-सी बालटी में गरम पानी, नया तौलिया, सुगन्धित तेल, चन्दन, साबुन, नया टूथपेस्ट और ब्रश, रबर का नया स्लिपर, कलई वाला नया जग इत्यादि स्नान की वस्तुएँ बाथरूम में सजा-बजा कर यन्त्रवत् चला गया—अरे वाह!

देखते-देखते मैं बेपरवा हो उठा। जो भी हो, डरने से काम नहीं चलेगा। ऐसा ही कुछ हुआ तो पॉलिटिकल ऑफ़िसर मिस्टर कपूर हैं, और वह भी नहीं तो दीवान लाल साहब तो हैं ही। मैं ने बाथरूम में झाँका। सामने बड़ा-सा आईना और कंघा, ब्रश, पैरों के पास बड़ा सा बाथ टब, उस के पास पड़ी है चोकी। मेरा गला सूख गया।

मेहगनी के पलंग पर एक फ़ुट ऊँची सेमल की रूई वाली गद्दी के ऊपर मखमल बिछा है। चमरी गाय के रोएँ से बने दो मुलायम कम्बल, दो-दो नरम रज़ाइयाँ, क़रीब पांच-छह सेमल की रूई के तकिये। पूरे फ़र्श पर रोयेंदार क़ालीन, आरामकुरसी। ऊनी गद्दी, हरे कांच की खिड़की पर पीतल के रॉड से टँगे सिल्क के परदे, नयी गोल्डेन फ्लैक की टिन और ऐशट्रे। इस के अलावा तौलिया स्टैण्ड, टोपी का हैंगर, दो बड़े दराज़, डाइनिंग टेबुल, वाश बेसिन, राइटिंग टेबुल, आईना और ड्रावर। चारों ओर झकमक पॉलिश की हुई चमकती वस्तुएँ। सामने पड़ी एक तिपाई पर जाने कब कोई रख गया है एक ताला-चाबी।

नहा कर आया, बिस्तर पर पड़ कर सोचता हूँ, निकलूँ घूमने या नहीं। इसी समय चोटी वाला एक नेपाली ब्राह्मण रसोइया ले आया भोजन की थाली। उत्कृष्ट घी में बनी गरम-गरम कचौड़ियों के साथ स्वादिष्ट सब्ज़ी। दूर से ही निखालिश गाय के घी की महक मिली। उसी के साथ थी एक कांच के प्याले में ताज़ी मलाई। रसोइये के पीछे-पीछे पाँचवां नौकर आया और एक केतली गरम चाय, प्याले, प्लेट और एक लोटा गरम पानी तथा तौलिया रख कर चला गया। सब कुछ यन्त्रचालित, सब कुछ जैसे मैजिक हो। ईश्वर को मानो तो ठीक वरना उसी का अवतार जेठमल भोजराज को स्वीकार लो!

मित्रों ने कहा: तुम्हें जो मिलना था, उस से अधिक इसी जन्म में पा गये।

खिलाया नहीं किसी को, मगर सब से खा लिया।

इस शिकायत का उत्तर नहीं है। यह बात समझाना कठिन है कि गत जन्म में सम्भवतः बहुत प्रीमियम दे आया हूँ, और इस जन्म में पा रहा हूँ अपना प्राप्य ! फिर भी अभी तो समय बीता नहीं है। जेठमल भोजराज अगर भोजन और विश्राम का बिल भेज दें तो आधीरात को देवतात्मा हिमालय की गोद में शरण लेने के सिवा कोई चारा है क्या ?

साढ़े पाँच बज गये। कपड़े बदल कर अब बाहर निकल पड़ा। नया ताला कमरे में लगाना भूला नहीं। मगर बाहर आ कर देखा, आज बाज़ार उठ गया है। सम्पूर्ण गैंगटाक घर में समा गया है। ठण्ड खूब पड़ रही है। हवा में तेजी है। दोनों हाथ जेब में बिना डाले नहीं रहा जा सकता। तिब्बती और नेपाली पान खाते हैं खूब। एक के बाद एक पान की दूकानें हैं, जैसा देखा बर्मा और रंगून में। बहुत सुनियोजित और क्रमबद्ध एक के बाद एक पान की दुकानें रंगून की हर सड़क पर, हर मोड़ पर एक-एक घर है पान की दूकानें। यहाँ ठीक इतनी नहीं है पर लगभग वैसी है। यानी उतनी-सी जगह में इतनी सारी दूकानें विचित्रता ही है। दाहिनी ओर पैर बढ़ा कर देखा गया, राह पर एक गेट है—गेट के नीचे से एक राह सीधी चली गयी है दक्षिण की ओर। गेट के ऊपर एक छोटा सा लकड़ी का घर था। उस घर में था भारतीय पोस्ट ऑफ़िस। बहुत कुछ पोर्च जैसा ही। नीचे से लोग आते-जाते हैं, और ऊपर है घर। पोस्ट ऑफ़िस को दाहिनी ओर मान लेने पर बायीं ओर को राह चक्कर काटते हुए पहाड़ पर चली गयी है। स्पष्ट समझ में बात आती है कि बाज़ार आने-जाने के लिए यह शॉर्टकट है—राज-पथ इधर नहीं है। मेरी आदत है खुद खोजें, ढूँढ़ें। इस लिए उस चक्करदार सुनसान राह से चढ़ाई तय करने लगा। छोटे क़द वाले घोड़े यहाँ-वहाँ चर रहे हैं। कहीं ऊन का बोरा पीठ पर लादे अबोध-सा एकाध मॉडल खड़ा है। अगल-बग़ल है लेपचाओं की बस्तियाँ, उसी के बीच नेपाली भी घुसे हैं। इस तरफ़ तिब्बती नारी मुर्ग़ियों को खदेड़ कर घर में ले जा रही हैं।

वर्षा हो रही है टिपिर-टिपिर। शरीर सिहर उठता है। जोर से वर्षा होने पर आफ़त है—पड़ाव, छप्पर, छावनी कहीं भी नहीं। शाम के अँधेरे में गैंगटाक बुझता जा रहा है। बाज़ार के हिस्से में तो बिजली बत्तियाँ हैं, मगर उस का प्रकाश तो अँधेरे को और भी बढ़ा देता है। श्रीनगर का शाम के बाद का जीवन कठिन है। यहाँ भी ऐसा ही है। खुद जेठमल भोजराज पेट्रोमेक्स का उपयोग करते हैं। बिजली की क्षीण रोशनी से उन का काम नहीं चलता। अपने कमरे में बिजली की बत्ती देख आया हूँ। खुशी हुई। जो भी हो बाज़ार के हिस्से को छोड़ देने पर सभी जगह अँधेरा ही अँधेरा है। मगर यह राजधानी नगर है। मुझे इतनी क्या पड़ी है ? धीरे-धीरे ऊपर की ओर क़दम बढ़ाया। अच्छा लग रहा है, कारण भारत के बाहर का नया स्थान है। कहीं-कहीं दायरे में पड़ी रोशनी से अँधेरा उमड़-घुमड़ कर राह के क़िनारे को मायूस बना रहा है। कहीं

नया घर बन रहा है। उस की कच्ची लकड़ी की मीठी गहरी सुगन्ध से राह भरी है। कहीं पत्थरों पर घोड़े की टाप की आवाज़ पैदा करते हुए कोई सवार इधर से उधर जा रहा है। एक जगह तो हरित-श्वेत फूलों से भरी डालियाँ झूम रही हैं, मह-मह है उन की सुगन्ध।

वर्षा तो बढ़ती ही जा रही है। और आगे बढ़ना ठीक नहीं। एक समय विवश हो कर मुँह फेरना ही पड़ा। नीचे से कोट-पैण्ट पहने तीन व्यक्ति आते दीखे। उन्हें बंगला में बात-चीत करते सुन कर ठहर गया और ख़ुद आगे बढ़ कर परिचय दिया। वे नौकरी पेशा हैं, यहाँ सेण्ट्रल पी० डब्लू० डी० में काम करते हैं। यहाँ बंगाली कई लोग हैं। दूसरे कोई भारतीय नज़र नहीं आते। कोई यहाँ के हाईस्कूल के शिक्षक हैं, कोई पोस्ट ऑफ़िस में काम करते हैं। कुल आठ-दस से अधिक बंगाली नहीं हैं। वे सज्जन हमें ले गये ऊपर की ओर; मगर उस समय शाम हो चुकी थी। उद्देश्य था राजबाड़ी में प्रवेश करना। लेकिन वर्षा ने राह रोक ली। फलस्वरूप बहुत कुछ ऊपर जा कर भी एक समय भींगते हुए दूसरी राह से नीचे उतर आना पड़ा। आकाश का रूप बहुत दुर्योगपूर्ण है। मेरी क़िस्मत ही खोटी है, क्योंकि वर्षा के इन दिनों में कुछ ठण्डक होते हुए भी आकाश ऐसा नहीं रहता। लौट कर फिर अपने कमरे में समा गया। सम्भवतः जासूस मेरे बग़ल में थे। कमरे में आ कर सँभल कर बैठते ही भोजराज का छठा नौकर केक-बिस्कुट के साथ गरम चाय रख कर चला गया। और दो मिनट बाद पुनः आ कर शीशे की सुराही में पीने का पानी और शीशे का गिलास उस पर ढक कर रख गया।

कानों में संगीत के आलाप का मधुर स्वर पड़ा और मुड़ कर देखा कि एक रेडियो सेट मेरे पास ही रखा है। शाम को वह लकड़ी का एक सन्दूक-सा लगा था। शायद चाय देने जब नौकर आया था, तब उस का प्लग लगा गया। अब गीत शुरू हुआ। शाम बीत चुकी। कहने के लिए विवश हूँ कि ऐसा भोजन और इतना आराम हिमालय में कभी नहीं मिला। भोजराज अगर इस मेज़बानी का मूल्य वसूलें तो? यह सोच कर ही सारे रोयें काँटे की तरह खड़े हो गये।

रात के भोजन की तालिका संक्षिप्त हो रहे, ऐसा कह दिया था। इस लिए— पिस्ता, बादाम, किशमिश, इलायची, लवंग, दालचीनी पड़े पंजाबी पुलाव, कई गरम पूड़ियाँ, रसेदार आलूदम, दो टिकियाँ, चारेक कलाकन्द, आलूबुखारा की चटनी इस के अलावा और कुछ नहीं था। इस पर भी उन की धारणा थी कि इतने से शायद ही हाकिम साहब के मित्र की तृप्ति हो!

यहाँ यह कह दूँ कि सिक्किम का जलवायु सुपाच्य है। आरम के इतने आयोजन के होते हुए भी कहूँगा मैं कि यह दुर्भाग्य है। रात जितनी गहरी हो रही है, वर्षा उतनी ही बढ़ती जा रही है। सम्भवतः दिशाशूल में यात्रा प्रारम्भ की थी मैं ने। एक-दो दिनों बाद ही है शिवरात्रि, हो सकता है उस का योग लगा रहे। बाहर था काला अँधेरा, और उस अन्धकार की शोभा गरदन निकाल कर देखने का अर्थ है निमोनिया।

अन्धड़ नहीं है मगर वर्षा के साथ हवा चल रही है। घर चारों तरफ़ से बन्द है, हाँ वेंटिलेटर क्यों नहीं है ? ध्यान लगाने पर तुषार-झंझा की भाँति तेज़ हवा का आर्तस्वर सुनाई पड़ता है। यात्रा फ़ुज़ूल हो गयी। वर्षाकाल में वर्षा प्रिय है, असमय यह अच्छी नहीं लगती। सवेरे के समय गृहस्थ परिवार के जमाई आ खड़े होने पर मन को खुशी नहीं होती। पहले से खबर दे कर शाम को जमाई आये तो उस का आदर होता है।

रज़ाई के ऊपर रज़ाई उस पर रोयेंदार भारी कम्बल, फिर भूपेन बक्शी की दी हुई वह टोपी सिर पर रखनी ही पड़ी। बिस्तर बड़ा आरामदेह है मगर कैसी बेचैनी है यह !

दूसरे दिन सवेरे का रूप देख कर बची आशा भी जाती रही। समस्त पहाड़ बादलों में खोया सा, सिर्फ़ इतना ही नहीं निकटस्थ पहाड़ों को भी ऊपर से नीचे तक बादलों ने घेर रखा है। समग्र गैंगटाक की चोटी यानी राजबाड़ी, बौद्धमठ, कोर्ट-कचहरी सभी बादलों में खोये हुए। बादल उतर रहा है नीचे पोस्ट आफ़िस के ऊपर, पान की दुकानों की छप्परों पर। धुन्धभरा उदास सवेरा। अविराम वर्षा से सभी भाग खड़े हुए हैं। सवेरे की डाक ले कर मोटर नहीं छूटी, पहाड़ी पथ पर वर्षा बहुत खतरनाक है। बाज़ार की चौहदी है जन-हीन। इतनी देर तक यहाँ-वहाँ कई पहाड़ी घोड़े और मिऊल खड़े भींग रहे थे। अब जाने कहाँ क्रमशः लोप हो गये हैं। बादलों के टुकड़े इधर से उधर भाग रहे हैं। धीरे-धीरे गैंगटाक बादलों के समुद्र में डूबता जा रहा है। मगर उस समुद्र के नीचे से रह-रह कर आ रही है सिंघा की आवाज़, घण्टे की गम्भीर घोषणा। बादलों में लुप्त हो गया है राजप्रासाद का प्रांगण। उसी के एकान्त में राज-गुफ़ा से पुकार रहे हैं वे विराट् हिमालय को। ऋतुओं के बाद ऋतु-परिवर्तन देखता आया हूँ नीचे से। घनघोर वर्षा का यह रूप सम्भवतः मेरा देखना ज़रूरी था। सृष्टि की यह अवलुप्ति, यह चराचर व्यापी विषाद की धूप-छाँह, वर्षा की झड़ी की यह आकुलता—इतने महत् आयोजन को देख पाना तो दुर्भाग्य की बात नहीं है। टुकड़े-टुकड़े बादलों में सिंघा की फुत्कार और घण्टे का रव ध्वनित हो रहा है—यह अनुभव ही विचित्र है। अब अस्तित्व लोक की चेतना अनुभव नहीं होती—एक प्राणी, एक पंछी कोई कीट-पतंग कुछ कहीं नहीं। सृष्टि के आदि युग में जैसे आ पहुँचा हूँ—जीवजन्म चेतना का मैं जैसे होऊँ—प्रथम दर्शक।

वर्षा की झड़ी कुछ कम हुई। कई राजवंशीय मोटी पोशाक के ऊपर से बरसाती चढ़ा कर इधर से उधर गुज़र गये। मैं सीढ़ियाँ चढ़ कर गया डाकघर में। अभी ही पत्र डालना ज़रूरी है। वहाँ से आँखें नीचे की तरफ़ दूर तक चली गयीं। निकट ही दीख रहा है एक मन्दिर। वहाँ क्या शिव-स्थान है ? यहाँ से एक मील के बीच। उस का नाम है 'मानो' मन्दिर। तिब्बती स्थापत्य जैसी ही बहुत कुछ कोनेदार बनावट। सहसा पास ही एक जगह आँखें टिक गयीं। कमर में कपड़े बाँधे काला जोब्बा पहने एक तिब्बती महिला ने एक घर से निकल कर सामने के पत्थर वाले स्तूप के अन्दर से

निकाल लीं मरे हुए जानवर की दो टाँगें। इस के बाद इधर-उधर कर देख चुकने पर एक टाँग के चमड़े को दाँतों से नोचने की चेष्टा करने लगी। उस जानवर की देह का और कोई हिस्सा नजर नहीं आया। वह बकरी की टाँगे हैं या कुत्ते की, यह कहना कठिन है। लेकिन उस महिला का यह प्रयत्न मेरे लिए कुछ विस्मयबोधक है। अन्त में जब वह अपने प्रयत्न में विफल हो गयी तब उन दोनों टाँगों को ले कर घर के अन्दर चली गयी। शीत प्रधान देशों में माँस के बिना काम नहीं चलता, यह इस से पता चलता है।

मध्याह्न में बादल साफ़ हुआ। धूप निकलने के बाद पहाड़ों पर वर्षा का चिह्न तक नहीं। भोजन कर के निकल गया। आकाश के बीचोंबीच ढेर-सा उजाला हो गया—ऐसी साफ़ सुनील, नीली आभा गहरे समुद्र के मध्य ही सम्भव है। यहाँ है सूर्य किरणों का प्रकाश, मगर दूर स्थित पहाड़ों की चोटियों पर वर्षा इस समय भी हो रही है। कुहासे से इस का पता चलता है। मैं आगे बढ़ चला। कल शाम वाले उस चढ़ाई-पथ से ऊपर की ओर बढ़ने लगा। गैंगटाक की छत पर आ गया हूँ, लगभग डेढ़ सौ से दो सौ फ़ुट ऊँचाई पर। कई सुहावने बँगलों का बाग़ीचा पीछे छोड़ आया। पतला-सा चक्करदार पथ ऊपर जा कर राजपथ से मिल गया है। अब कहीं कलकत्ते के किसी श्रेष्ठ राजपथ से इस की तुलना की जा सकती है। हवा हलकी है, किन्तु बर्फ़ीली शीत वाली। धूप इतनी अच्छी इस यात्रा के अलावा और कहीं नहीं लगी। सामने के पठार पर विशाल तोरण बना है, उस के अन्दर प्रासाद और उद्यान हैं। रखवालों की लापरवाही से ऐसा लगता है कि अन्दर घूमना-फिरना मना नहीं है। सभ्य देश के शासक सदा शंकालु तथा शत्रुभय से भीत रहते हैं। गण राजनीति का चक्कर असाधु को भी अधिनायक और हत्यारे को राष्ट्र का कर्णधार बना देती है। ताल ठोंक—हाथ उठा प्रतियोगिता के मध्य से प्रतिद्वन्दी क्षमता की चोटी पर पहुँच जाता है और अन्यों के मन में देश भर की ईर्ष्या पलती रहती है। उसी ईर्ष्या और विद्वेष के वशीभूत हो कर व्यक्तिगत तू तू, मैं मैं है। मगर भारत में इस से कुछ व्यतिक्रम है। सिंहासन पर विराजते राजा की हत्या के प्रयत्न का दृष्टान्त हिन्दू भारत में कम हो है। महाराजा तासीनामगेयाल यहाँ सर्वप्रिय हैं—इस लिए उन का राजदरबार खुला हुआ है।

मैं पठार के ऊपर आ खड़ा हुआ। बादल साफ़ हो गया है बहुत कुछ। चार देश मुझे घेरे हैं चारों ओर से। प्रत्येक देश मेरा निकटवर्ती है। सामने है विराट् तिब्बत—और जो चौड़ा पथ इस पठार के ऊपर से निकल कर तिब्बत में प्रवेश करता है, वह खूब साफ़ है। मेरे पीछे अपनी भूमि भारतवर्ष है। मेरे दक्षिण में यानी पूरब की ओर है विशाल भूटान और पश्चिम में नेपाल। इन्हीं के मध्य केन्द्रबिन्दु में मैं खड़ा हूँ। वहाँ है जिसे पहले कह चुका हूँ गैंगटाक को छत। तिब्बत और भारत दोनों में दूरी है कुल पच्चीस मील की। और वही व्यवधान यहाँ प्रत्यक्ष है। दोनों स्थल हैं नेपाल और भूटान। सीधे उत्तर में दीख रही है, बर्फ़-सी उजली कंचनजंघा में विस्तृत असमतल

रेखा, उस की गोद में कुम्भकर्ण पर्वत की चोटी। ये हैं सिक्किम की सीमा में। जैसे गौरीश्रृंग चोटी है नेपाल की सीमा में। उत्तर-पूरब कोने में नाथूला गिरिसंकट यहाँ से साफ़ नज़र आता है। मगर उस से सटी चुम्बी घाटी यहाँ से नहीं दीखती। यह पथ बहुत पुराना है। मगर कुल पचास वर्ष से ही इस का उपयोग किया जा रहा है। पहले था कलिंगपोंग सेक रोड से होकर जेलाप संकट पार कर लासा जाने वाला पथ। अब यह पथ बहुत सहज और सुसाध्य है। कलिंगपोंग से गैंगटाक हो कर नाथूला। हर वर्ष इसी पथ से तिब्बत से कमोबेश एक लाख मन ऊन का आयात होता है और उस का पचहत्तर प्रतिशत कलकत्ता से सीधे अमरीका चला जाता है। इस आयात-निर्यात से कलकत्ते के बंगालियों का लाभ है थोड़ा ढुलाई-लदाई और कुछ लिखाई के द्वारा। नाथूला गिरिसंकट पार करते ही प्रथम भारत की व्यापारी घाटी है हूयाटुंग और दूसरी घाटी है गोयानत्सी। विगत पचास वर्षों में इन दोनों अंचलों में भारत के सैनिक पड़े थे। इतने दिनों बाद विगत १९५४ के अप्रैल में चीन-भारत सद्भावना के अनुसार, पण्डित नेहरू ने उस सैनिक जत्थे को हटा लिया और उन दोनों अंचलों से भारतीय अधिकार का परित्याग किया।

समग्र उत्तर बर्फ़ीली विराट् दीवार की तरह है। यह दीवार प्रागैतिहासिक काल से हिम झंझा से हरे-भरे विशाल भारत की रक्षा करती आयी है। दूसरी तरफ़ अवरोध स्वरूप है समुद्र से उत्पन्न मौसमी हवा का पथ। अर्थात् बृहद् एवं उत्तुंग शिखर समूह अगर न होता तो भारतवर्ष मरुभूमि में बदल जाता। जैसा हो गया है मध्य एशिया या जैसा है भारत के पश्चिम का इलाक़ा। यहाँ खड़े हो कर देख रहा हूँ दूर स्थित नाथूला गिरिसंकट पार कर के एक विशाल कारवाँ चला आ रहा है। एक के बाद एक बढ़ा आ रहा है इस गैंगटाक की ओर। वे पार हो जायेंगे इस राज-प्रांगण की बग़ल से। वे साथ लेते हैं तिब्बती घोड़े और खच्चर। वे लाते हैं चमरी गायों का समूह और लाते हैं बाज़ार हाट में निकलने वाली विभिन्न वस्तुएँ। वे आ रहे हैं धीरे-धीरे, मन्द-मधुर घण्टे की आवाज़ गुँजाते। हर घोड़े और मिऊल की पीठ पर लगभग दो मन कच्चे ऊन के बोझ हैं। तिब्बत के भिन्न-भिन्न अंचलों से वे आते हैं। और तीन सौ से पाँच सौ मील वे चलते हैं। दिन के बाद रात, रात के बाद दिन। धैर्य पूर्वक। लौटते समय वे ले जायेंगे सुई, कपड़े, दवा, चावल, चीनी, बिस्कुट, मेवा, फल, तम्बाकू आदि बहुतेरी वस्तुएँ।

उत्तर-पूरब में है नाथूला का पथ, मगर सीधे उत्तर में पश्चिम को ज़रा छूते हुए ढलान पथ चिक्चू की ओर चला गया है। जहाँ तिस्ता और चिक्चू की दोनों धाराएँ मिली हैं। चिक्चू से मानचेन का पथ बहुत कष्टकर नहीं है। उस पथ में पड़ने वाली तालुंग नदी का दृश्य मनोरम है। मानचेन पार करने के बाद कंचनजंघा की बहुत कुछ फैली आकृति और उस की धवलाकार विशाल देह किसी भी पर्यटक को अभिभूत कर लेती है। कोई कहते हैं चुंगथांग। बहुत से लोग इसे ही कहते हैं सुमटांग।

मगर यहाँ तिस्ता नदी की दोनों शाखाएँ दोनों ओर से आ उतरी हैं। लाचेनचू आया है थांग जनपद की ओर से, जहाँ से चमरी गायों का आयात किया जाता है। सुनटांग के निकट तिस्ता का जो पुल मिलता है, वही सम्भवतः तिस्ता का अन्तिम पुल है। मगर मुझे इस का ज्ञान नहीं। वर्षा के समय इस स्थल में तिस्ता के भयानक और भीषण रूप देख कर शरीर के रोंगटे खड़े हो जाते हैं। सुनटांग के डाकबंगलों से कंचनजंघा के बग़ल की पर्वत शृंखला का दृश्य बड़ा ही अपरूप है। गैंगटाक और टँगुर के मध्य सुनटांग या चुंगथांग लगभग आधीदूरी पर है अर्थात् तीस-बत्तीस मील।

इस के बाद एक तरफ़ पथ चला गया है लाचेनचू नदी के किनारे से लाचेन को पीछे छोड़ता हुआ टँगू की दिशा में, कंचनझाऊ पर्वत चोटी के ठीक नीचे एवं लगभग दक्षिण पूर्व में है कंचनजंघा, जिस के इस ओर उस बग़ल से बहुत सी नदियाँ और निर्झरिणी तेज धार में तुरंगिनी के जैसे धावित हो चली हैं। यहाँ के गाँवों में लाचेन प्रसिद्ध गाँव है। यह जिस प्रकार चमरी गाय का केन्द्र है, वैसे ही सेब के श्रेष्ठ बग़ीचों का स्थान भी है। यह कहना अनुचित नहीं होगा कि पर्वत की विराट् देह में रक्तिम सेबों के वन अति मनोरम लगते हैं। यहाँ की उच्चता प्रायः नौ हज़ार फ़ुट के क़रीब है और यहाँ के निवासी सिक्किम और तिब्बती मिले-जुले हैं। यहाँ छोटी-बड़ी कई बौद्ध गुफ़ाएँ हैं। एक डाक बँगला और एक युरॅपीय मिशनरियों का कैम्प है। लेचेन गाँव से ही चढ़ाई शुरू होती है। लेचेन से टँगू की चढ़ाई प्रायः चार हज़ार फ़ुट है। यह पथ बहुत ही दुष्कर तथा कष्टकर है। फिर भी सब के ऊपर कठोर बर्फ़ीली हवा बहती रहती है। हवा की मार से हाथ-पैर फट-फट जाते हैं। यह उत्तर सिक्किम में ही पड़ता है मगर तिब्बत के संग यहाँ इस की कोई निर्दिष्ट सीमा-रेखा नहीं है। परन्तु दोनों के मध्य सीमा के प्रहरी की भाँति खड़ी है कंचनझाऊ की बर्फ़ीली चोटी। टँगू के ऊपर वाले डाक बँगला से विस्तृत वनमय पर्वत शृंखलाओं की विचित्र वनश्री देखने को मिलती है।

टँगू के बाद अगल-बग़ल विशाल चम्बू और गुरडांगमार पर्वत की चोटियाँ बहुत अंशों में आकाश को अपने ओट किये हैं। चम्बू की निकटवर्ती स्रोतस्विनी के पास हिमालय अभियात्रियों के लिए एक बँगला बना है। यहाँ आराम-विश्राम की सुविधाएँ हैं। कड़ी बर्फ़ की ठण्ड यहाँ पर्यटकों को एकदम निष्क्रिय बना देती है। खौलाये हुए पानी के सिवा यहाँ का पानी पीना असम्भव है।

टँगू से सीधा नदी पथ उत्तर में चला गया है गियांग की ओर और वहाँ से तिस्ता की उत्तरी शाखा लाचेक पूरब की ओर मोड़ लेती है। गियांग जनपद यद्यपि जनहीन है, फिर भी उस की उच्चता पन्द्रह हज़ार फ़ुट से भी अधिक है। गियांग से गोर्दामा सरोवर पहुँचने से पहले मिलता है चैपोत्तरा। चैपोत्तरा में एक रात बड़ी तकलीफ़ों से गुज़ारी जा सकती है। गोर्दामा सरोवर का दृश्य बहुत चमत्कृत करने वाला है—सैलानियों का ऐसा कहना है। मानस-सरोवर की ओर जैसे कैलास और गुरला

मान्धाता शिखर श्रेणी है, गोर्दामा के आस-पास भी वैसे ही कंचनझाऊ और गुरडांग-मार पहाड़ हैं। यहाँ का नीला आकाश और रौद्रलोक की स्वच्छता समतलवासियों के लिए कल्पनातीत है। कारण, तेज हवा अथवा तूफ़ानों में यहाँ धूल नहीं उड़ती। पथरीला-कँकरीला है यह पर्वत लोक। लेकिन धूल कहीं भी नहीं है। अतएव कंचन-झाऊ एवं गुरडांगमार पहाड़ों की गोद में गोर्दामा सरोवर के बर्फ़ीले ठण्ड जल के ऊपर सारे दिवस स्वच्छ सूर्यालोक की और नीले आकाश की जो शोभा नित्य प्रतिबिम्बित होती है, उस की नीलाभा पीत रक्तिम केसरिया हिरण्य हीरा जैसे वर्ण वैचित्र्य मर्त्यलोक के वासियों के लिए कल्पनातीत हैं। उस जादू नगरी में जा खड़े होने पर पृथ्वी अवास्तविक प्रतीत होगी।

सिक्किम और भूटान के मध्य तिब्बत का एक संकीर्ण हिस्सा नालीभूमि में समाया हुआ है। नाथूला गिरिसंकट को पार कर चुम्बी घाटी पर पहुँचने पर यह समझ में आ जाता है कि इस के दोनों तरफ़ सिक्किम और भूटान हैं। पूर्व से पथ रेनक रोड निकल गया है, सीधा उत्तर में फारजिंग और गयानत्सी होते हुए पूर्वोत्तर पथ तक। मगर अब कुछ शॉर्ट-कट हो गया है। कलिंगपोंग से चुम्बी की अपेक्षा गैंगटाक से चुम्बी का पथ बहुत कुछ सहज है। इस लिए जेलाप गिरिपथ की अपेक्षा व्यापारियों ने नाथूला गिरिपथ को चुन लिया है। इस बात को पचास वर्ष हो गये। लॉर्ड कर्ज़न जब बड़े लाट थे तब उन्होंने सर फ्रांसिस यंगहसबैंड को सैनिकों सहित तिब्बत भेजा था। निषिद्ध तिब्बत भूमि का अवरोध तोड़ कर फ्रांसिस ने तिब्बत के साथ का सम्बन्ध बनाया था। चीन तब पंगु राष्ट्र था। तिब्बत उस से जुड़ा होने से भी प्रत्यक्ष रूप से राष्ट्रीय शासन व्यवस्था के अन्तर्गत नहीं था। दलाईलामा थे उस समय तिब्बत के वास्तविक कर्णधार। परन्तु आखिर में उन्हें तत्कालीन भारत सरकार के सम्मुख सर झुकाना पड़ा था। तिब्बत पर चीन का खास दखल नहीं था। नाममात्र को चीन था सिर्फ़ ज़मींदार, सुज़ारेइनटी स्वीकार लेने में ही चीन सन्तुष्ट था। इतने दिनों बाद अब नयी व्यवस्था का जब परिवर्तन हुआ, तब साम्प्रतिक चीन-भारत सम-झौते के सर्व प्रधान कथ्य का ही सर्वप्रथम उल्लेख किया गया। यानी तिब्बत का अर्थ ही है – टिबेट रिजीयन ऑफ़ चाइना।

सिक्किम के राजप्रासाद के प्रांगण में आ खड़े होने पर दोनों तरफ़ जो पहाड़ी लोक नज़र आता है, उसे संज्ञा दी गयी है—शृंगली पर्वतमाला। यह पर्वतमाला कंचन-जंघा तक चली गयी है। साफ़ नज़र आती है उत्तर सिक्किम और दक्षिण सिक्किम के मध्य की सीमा रेखा। उत्तर सिक्किम अगम्य लोक है। अनध्यूसित और बहुत कुछ अज्ञात। यह स्पष्ट है कि प्रधानतः तिस्ता नदी और उस के शाखा विस्तार के ज़रिये ही जैसे उत्तर सिक्किम और तिब्बत को दो हिस्से में बाँटा गया। इस के अतिरिक्त एक वास्तविक सीमा भी है। उत्तर सिक्किम को घेरे हैं विराट् पर्वत चोटियाँ, जैसे

कुम्भकर्ण, कंचनजंघा, जंग-शंग, कंचनझाऊ, पाऊहुनरी इत्यादि । यह कंचनझाऊ और पाऊहुनरी पर्वत श्रृंखलाओं के हिस्से-हिस्से में तिस्ता की एक मूल धारा लाचेनचू पूरबमुखी हो कर बह चली है । यहाँ की नैसर्गिक शोभा दुनिया के किसी भी स्थान के प्राकृतिक दृश्यों को फीका करती है । इस भूभाग की उच्चता बहुत अधिक है, और तिब्बत के समान है । यहाँ से तिब्बत को जाने वाले पथ पर अब अधिक चढ़ाई और उतराई नहीं । कारण, इस के बाद से तिब्बत की विस्तृत आदि-अन्त हीन और जनहीन पठार नजर आती है । इस के पूर्व कंचनझाऊ और गुरुडांगमार पर्वत के आस-पास गोर्दामा अर्थात् गुरुधाम सरोवर की चर्चा कर चुका हूँ । इस के बाद ही पहुँचा था पाऊहुनी पर्वत श्रृंखला के किनारे डंग उपत्यका पर । इस बर्फ़ीली उपत्यका के मैदानों में बहुवर्ण वैचित्र्यमय 'चोलाम हो' सरोवर भलीभाँति दीखता है । कैलास के अन्तर्गत मानसरोवर और गौरीश्रृंग कुंड की तुषार कठिन सरोवर कमोबेश पन्द्रह से अठारह हजार फ़ुट की ऊँचाई पर है । किन्तु 'चोलाम हो' सरोवर है अन्दाजन सत्रह हजार फ़ुट की ऊँचाई पर । डंका घाटी पर खड़े होने से पृथ्वी अत्यधिक विस्मयजनक मालूम होती । और यह पहाड़ों से घिरी घाटी से 'चोलाम हो' सरोवर का जो आश्चर्य चित्त-मोहक दृश्य दृष्टिगत होता है, उस से कशमीर के शेषनाग सरोवर की ही तुलना की जा सकती है । माऊहुनरी और कंचनझाऊ पर्वतश्रेणी के बीचोबीच इस 'चोलाम हो' सरोवर से तिस्ता की आदि दो धाराएँ लाचेनचू और लाचुनचू प्रवाहित होती आयी हैं । एक चली गयी है उत्तर-पश्चिम, दूसरी दक्षिण की ओर । अन्त में, ये दोनों प्रधान स्रोतस्विनी दक्षिण में सुंगतांग के निकट पहुँच कर मिल गयी हैं तथा तिस्ता नाम ग्रहण करती हैं । यही तिस्ता अन्त में पूर्व में बंग के गाईबाँधा के दक्षिण से होती हुई, ब्रह्मपुत्र की शाखा यमुना के साथ जा मिली है ।

सरसरी तौर पर तिस्ता के आदि-अन्त का यही इतिहास है । एक-एक नदी है हिमालय का एक-एक हिस्सा । साँपों से जुड़ा है तिब्बत, ब्रह्मपुत्र से जुड़ा है आसाम, बागमति से नेपाल, शारदा-काली-कोशी से जुड़ा है नैनीताल, और अलमोड़ा गंगा से गढ़वाल, विपाशा से हिमाचल प्रदेश, शतद्रू से पूर्व पंजाब, चन्द्रभागा से जम्मू, झेलम और सिन्धु से कशमीर । इन नदियों ने हिमालय को कई हिस्सों में बाँटा है । ठीक इसी प्रकार तिस्ता ने सिक्किम का निर्माण किया है, और कालचीनी रायडाक ने बनाया है भूटान को । इसे आगे चल कर बताऊँगा ।

धूप आज बहुत मीठी और आरामदेह लग रही है । आकाश जैसे उजला, नीला है । उसी प्रकार स्निग्ध हवा भी झुर्र-झुर्र बह रही है । सामने के कारवाँ का पथ, प्रासाद, प्रांगणों को काटता हुआ नीचे की ओर झुक कर एक जगह से पूरब की ओर उठ गया है । पथ के अन्तिम छोर पर नाथूला गिरिसंकट की प्रथम मोड़ यहाँ से दृष्टि गड़ाने पर नजर आती है । रह-रह कर मेघ से ढँक जाती है और फिर साफ़ हो जाती है । सामने है तिब्बत का विशाल तुषार प्राचीर । सैलानियों के लिए सदा स्वप्नवत् । निषिद्ध

अंचल होने की वजह से वह कौतूहल को और भी बढ़ाता है। स्वर्गीय शरत दास लगभग अस्सी वर्ष पूर्व ठीक किस पथ से छद्मवेश में तिब्बत आये, यह मेरा जाना हुआ नहीं है। पर यही पथ उन के लिए सहज था। उस वीर बंगाली पर्यटक को गिरफ़्तार करने के लिए लामा-समाज में चेष्टाएँ कम नहीं हुई। परन्तु वे बार-बार इस निषिद्ध अंचल में परिभ्रमण कर सही-सलामत लौट आये थे। बाद में पता चला कि उन्हें जिन स्थानीय लोगों ने इस काम में सहायता की थी उन्हें फांसी और कठोर दण्ड दिया गया।

समग्र गैंगटाक के शिखर पर का यह पठार महाराजा और राजपुरुषों का व्यक्तिगत है। राजा के वर्तमान दीवान एक भारतीय हैं, और पॉलिटिकल आफ़िसर—जो भारत और सिक्किम के बीच सर्वदा सम्पर्क की रक्षा करते हैं, वे भी हैं भारतीय। पठार के दक्षिण हिस्से के सिविल लाइन में उन लोगों के बंगले हैं। स्वयं महाराजा का महल भी खास चमक-दमक वाला नहीं है। है साधारण रुचि वाले जमींदारों जैसा। महाराजा तासीनाम गोयाल खुद एक निष्ठावान् बौद्ध हैं। यहाँ आ कर एक लेपचा से उन का गुणगान सुना है। राजनीतिक अशान्ति सिक्किम में बहुत ही कम है।

आस-पास है उद्यान, वह भी राजकीय ही। सैकड़ों प्रकार के आर्किड रडोडेन-ड्रन से एक-एक उद्यान भरा हुआ है। बहुत ही यत्न और कारीगरी से अगल-बग़ल को राहों को सुसज्जित बनाया जाता है। सामने ही एक विस्तृत चारणक्षेत्र है, उस के मध्य ठीक-ठीक याद नहीं—सम्भवतः स्वर्गीय अवसर प्राप्त भारत सम्राट् पंचम जॉर्ज की एक प्रस्तर मूर्ति—एक छावनी में सुरक्षित है। यह सब देखने की मेरी लालसा नहीं है, तभी भूल जाता हूँ कि वह मूर्ति पंचम जॉर्ज की है या महारानी विक्टोरिया की।

इसी सन्दर्भ में रवीन्द्रनाथ की कुछ पंक्तियाँ याद हो आयी हैं—

आया था साम्राज्य लोभी पठानों का दल
आये थे मुग़ल
विजय-रथ के पहियों से
बनाते हुए धूल की जाल, उड़ाते हुए विजय-पताका।
देखता हूँ सूने पथ की ओर
आज उस का नहीं है निशान।

और उस शून्य-छाया में
आये हैं दल के दल
लौह पथ से
प्रवर अँगरेज़
विकीर्ण करते अपना तेज़!
जानता हूँ, उन की राह से भी गुज़र जायेगा काल,
कहीं बहा ले जायेगा साम्राज्य का देश घेरा जाल।

महाकवि की मृत्यु के छह वर्ष और छह दिनों बाद यह भविष्यवाणी भी सत्य और सार्थक हुई।

कल भारतीय शिवरात्रि है लेकिन यहाँ एक-दूसरे नाम से उत्सव का आयोजन हो रहा है। सम्भवतः वह नाम है तिब्बती जिसे याद रखना आसान नहीं है। शि..रात्रि व्रत का तात्पर्य जो भी हो, मगर यहाँ इस का अर्थ है, सिक्किम निरापद रहे। यह जो है विराट् हिमालय और दक्षिण में भारत, इधर किसी भी दिशा में भूत-प्रेत, पिशाच-दैत्य-दानव, यक्ष-रक्ष आदि जब कभी भी बौद्ध सिक्किम की पुण्यभूमि पर आक्रमण कर क्यों नहीं सकते ? इस लिए समग्र शिखर लोक के प्रांगण में और बाँसों के सहारे श्वेत पताका फहरायी गयी है। यह पताका है बौद्ध भाष्य—इस के चतुर्दिक् पिशाच आने का साहस नहीं कर सकते। यह अद्भुत संस्कार मात्र है। यही नहीं, तिब्बत से प्रभावित लगभग डेढ़ हज़ार मील की सीमा में इसी प्रकार भूत-प्रेत की आशंकाएँ प्रचलित हैं। बहुत से हिन्दू मन्दिर और देवालय तक इस प्रभाव को ठुकरा नहीं सकते हैं। आदि-अन्त काल तक लगभग सभी धर्मतत्त्वों में बस यही एक बात है—असुर को दूर रखो, पाप से बचो। मगर आधुनिक विज्ञान के ज़माने में पाप की संज्ञा कितनी जटिल हो उठी है, यह तथ्य पृथ्वी पर जहाँ भी फैला हो, मगर पृथ्वी की छत तिब्बत पर अभी नहीं पहुँचा। साफ़ है कि ग्यारहवीं सदी के मंगोलिया के बौद्ध सम्राट् कुबलाई खाँ के ज़माने से तिब्बत का मनोभाव नहीं बदला। इतने दिनों बाद महाचीन तिब्बत में विप्लव-क्रान्ति के पाप में कूद पड़ा है। वायुशून्य अंचलों में अब शायद अन्धड़ आने वाला है।

इस पताका शोभित प्रांगण के एक ओर सरकारी लामाओं के कुछ घर हैं और दूसरी तरफ़ स्थित है राजगुफा। इस राजगुफा का अन्य नाम है दरबार गुफा। सिक्किम में यही श्रेष्ठ है। गढ़वाली लोग गुहा को गुफा कहते हैं, यह जानता हूँ मगर बौद्धगुफा से बौद्ध मठ का अन्तर क्या है, यह मैं नहीं जानता। दरबारगुफा का स्वरूप देखते ही मन सम्भ्रमित हो उठता है। इस के मूल में है मंगोलिया की स्थापत्य कला, मगर इस का प्रकार भेद देश-देशान्तरों में वर्तमान है। श्याम, इन्दोचीन, मलाया, दक्षिण-पूर्व एशिया, ब्रह्मदेश और दूसरी ओर सिक्किम, भूटान, नेपाल, उत्तर कुमायूँ, उत्तर-पूर्व पंजाब एवं कश्मीर—इस स्थापत्य कला के प्रभाव से कोई भी वंचित नहीं है। कश्मीर में एक से अधिक मसजिदों को देखा है, जिस के निर्माण में, शैली में मंगोलिया प्रभाव स्पष्ट है। गढ़वाल में जोशी मठ, उनखामठ, बदरीनाथ और अनेक अंचलों में इस स्थापत्य का गहरा प्रभाव है। मगर मेरे लिए इस की आलोचना करना सम्भव नहीं।

दरबार गुफा का स्थापत्य भी वैसा ही चतुष्कोणात्मक है। प्रत्येक अलंकरण, विस्मयजनक है, कारुशिल्प का बेजोड़ नमूना। विभिन्न मूर्तियों में वही ड्रेगनीय इंगित। वही एक अर्थ, पूर्ण अभिव्यक्ति, जिस की व्याख्या दुःसाध्य है। पैशाचिक हँसी, भंगिमा

मानो रणदेहि। सभी में लकड़ी, पत्थर और रंगों का काम। भूमिका वर्ण है हरिद्राभ, हिमालय का वर्ण श्वेत—दोनों अंचलों में वर्ण वैचित्र्य की दरिद्रता के हेतु ही इतने रंगों की भरमार है। मरुवासी राजपूत जैसे रंगों के भक्त हैं, तिब्बती भी ठीक वैसे ही। जैसा पहनावा है वैसा ही है राजगुफा का सर्वांग। जैसे इन्द्रधनुष के सात रंगों की बाढ़ आ गयी है। आँखें मिलमिला कर चारों ओर देखता हूँ, यह भारत नहीं है, सिक्किम नहीं है—यह है एक टुकड़ा तिब्बत। यहाँ-वहाँ सर्वत्र लामा। वैसी ही पोशाकें, वैसी ही टोपी, वही मन्त्र, वही माला। सामने है तिब्बती मठ, मठाधीश हैं तिब्बती। राजगुरु स्वयं हैं तिब्बत आगत। सब के एक कोने में मैं ही सिर्फ़ भारत की चेतना की धड़कन-स्वरूप साक्षात् था।

शिवरात्रि आयोजन का आभास मिलता है। नीचे से सुनता आ रहा हूँ कि कल यहाँ उत्सव है। मगर गुफा के अन्दर जाने का मुझे साहस नहीं हो रहा है। भाषा अबूझ—इतना ही नहीं, कोई रीति भी तो नहीं जानता। प्रवेश पद्धति कैसी है। मेरी यह ऑल इण्डिया पोशाक इस लायक़ है क्या? कोई क्रिया-प्रक्रिया तो नहीं है? बाहर के आदमी का अधिकार कितना क्या है? कौन जाने, हो सकता है सरीसृप की भाँति छाती के बल पर सरक कर जाना हो या एक पैर से या अपने हाथों से अपने ही कान पकड़ कर। यह सब कुछ तो अनुष्ठान है। मुश्किल यह है कि वे हिन्दी समझते नहीं, मैं तिब्बती जानता नहीं! नीचे से आते वक़्त उस तिब्बती दम्पति का ठौर नहीं मिला—पत्नी टूटी-फूटी हिन्दी जानती थी। पति भी होता तो सहायता मिलती। उन का धर्म-अनुष्ठान में विश्वास कितना है, यही सब विचार मेरे मन को उलझाये था।

भयानक वर्षा और दुर्योग के पश्चात् मीठी धूप मिली थी। इस लिए हाथ-पैर सेंकने में बहुत समय गुज़ार दिया। जो भी हो, अब क़दम-क़दम बढ़ कर बरामदे पर चढ़ने के लिए पैरों के जूते उतार लिये। एक आदमी अकेले में बैठा ऊँघ रहा है। मेरी ओर एक बार ताका। समझ में आया कि मना नहीं है। इसी साहस में मुख्य द्वार पर पहुँच परदा हटाया। परन्तु अन्दर की ओर देख कर पुनः आँखें मोड़ नहीं सका। सम्पूर्ण कार्य-कलाप में पूजा का एक आयोजन था, इस में सन्देह नहीं। किन्तु एक ऐसा अवास्तविक, अनैसर्गिक परीलोक जैसे आभास ने पलक मारते ही सम्मोहित कर लिया कि मैं ठहरूँ या लौट जाऊँ यही तय नहीं कर पाया।

एक प्रवीण लामा ने—न अप्रसन्न, न स्वागत में—मेरी ओर देख कर इशारा किया। बस इतना ही, फिर तो वह झूमता रहा। मैं खूब धीरे-धीरे बिना किसी प्रकार के शब्द के जा खड़ा हुआ। पॉलिश किये पत्थरों का फ़र्श खूब ठण्डा था। अन्दर धूप-दानी से मीठी सुगन्ध निकल रही थी। चारों तरफ़ दीवार पर बड़े-बड़े चित्र बने थे। सुर-असुर के चित्र, विभीषिका और विक्रम अगल-बग़ल। देवता और दानव। भाँति-भाँति के ड्रेगन। बिलकुल सामने की दीवार पर तीन देवताओं की विशाल मूर्ति। वह मूर्ति लकड़ी की या पत्थर की या मिट्टी की थी, इस का अन्दाज़ नहीं लगा सका। बाद

को जाना कि एक का नाम है वाहागुरु, एक का लक्ष्मण और एक का माने। चारों तरफ़ रंगों की भरमार थी। लाल, नीले, हरे, पीले, बैगनी, काले, रंगों की धाराएँ बह रही हैं जैसे गुफा के प्रत्येक कक्ष में प्रकाश बाहर से आ रहा है मगर अन्दर का सब कुछ झलमल कर रहा है। फ़र्श पर रंगीन रोंयेदार मोटी सी चादर बिछी है। उसी पर कई लामा बैठे हैं। वे आँखें मूंद कर निद्रालु अवस्था में अविश्रान्त, दुर्बोध्य मन्त्रों का उच्चारण कर रहे हैं। वे झूम रहे हैं या ऊँघ रहे हैं, यह समझना मुश्किल है। कैसे कोई इतना लीन हो जाता है, यह समझ नहीं पाता। इतनी अमानवीय स्मरणशक्ति इन्हें मिली कैसे?

झूम रहे हैं वे, अब शायद गिर पड़ेंगे। दीये की लौ के काँपने से जिस प्रकार बत्ती उकसा दी जाती है, वैसे ही ये रह-रह कर अर्धमुद्रित आँखों की पलकें खोल कर नये उत्साह से मन्त्र का सूत्र पकड़ लेते हैं। फिर झूमते हैं, अब लगता है नाक बजने ही वाली है। सम्पूर्ण फ़र्श पर सूतों और बगुले जैसा कोई खिलौना पड़ा है। पंक्तिबद्ध सूत खींचते ही सैकड़ों खिलौने हिलने लगते हैं। यह रहस्य मैं नहीं समझा। मगर कोई बच्चा मेरे साथ होता तो वह इन खिलौनों को लेने के लिए ज़िद कर बैठता। क्योंकि पूरे घर में पंक्तिबद्ध ये खिलौने कौतूहल उत्पन्न कर रहे थे। मेरा ऐसा विश्वास है कि अवाक् विस्मय से छोटे बच्चे यह देख कर आनन्दित होते।

फ़र्श पर खूब बड़े-बड़े थोड़े टेढ़े आकार के ताँबे के चार सिंघा और बहुत बड़ी एक भेरी नज़र आ रही थी। बहुत देर मन्त्रोचारण के बाद दो कम उम्र के लामा दो सिंघों को उठा मुँह से लगा कर फूँकने लगे और तीसरा भेरी बजाने लगा। सिंघा कम से कम छह हाथ लम्बे होंगे। उन दोनों सिंघों को जब फूँका तो ज्ञात हुआ कि अखण्ड निस्तब्धता के मध्य समग्र सिक्किम इतनी देर योगतन्द्रा में लीन था। सिर्फ़ गुफा और राज प्रांगण ही नहीं, बल्कि सिक्किम, समग्र शृंग लीला, पर्वतशृंखला जैसे दूर-दूरान्तर तक ध्वनित और प्रतिध्वनित हो उठा। आकाश सिहर उठा और वायु के स्तरों के भीतर उन सिंघाओं का फूत्कार तरंगित हो कर तिब्बत से विशाल भारत की ओर बढ़ चला। सिंघा की वह दिगन्तव्यापी झंकार पल में ही सीमा और असीम के योग सूत्र की रचना कर गयी। उस सिंघा के संग ही अष्टधातु से निर्मित करताल भी बज उठे। उस की आवाज़ भी इस अनन्त निःशब्द के मध्य गुरु गम्भीर लगती है। शरीर क्यों सिहर उठा था।

कक्ष में एक और चीज़ देख कर विस्मित होना पड़ता है—वह है असंख्य काँच से गढ़ी आलमारियाँ और सभी अनगिनत पोथियों से भरी। सुनने में आया लामा हैं जगद्‌गुरु और वे हैं ब्रह्म ज्ञान के श्रेष्ठ आधार। इस लोक की कोई खबर वे नहीं रखते या रखने की ज़रूरत है, वे नहीं मानते। इस का कारण सिवा इस के और कुछ नहीं है कि सृष्टि का आदि अन्त उन के अधिकार में है। वे इन पक्षियों की सहायता से कह सकते हैं कि इस जगत् की गति और प्रकार क्या कैसे है, सभ्यता और धर्मबुद्धि किस

दिशा में अग्रसर है, पृथ्वी का परिणाम क्या है, मनुष्य का भाग्य कहाँ जा कर रुकेगा। कितने हजार वर्षों बाद इस पृथ्वी पर कौन अवतार अवतरित होगा—और कौन सा मन्त्र उच्चारण करने से कैसे यह जगत् नियन्त्रित होगा। अर्थात् बिना पोथी के कुछ नहीं है। समग्र हिमालय और तिब्बत की सैकड़ों गुफाओं में लाखों पोथियाँ सुरक्षित हैं। लासा के निकटस्थ जो जोखंगमठ और गुफाएँ हैं, वे इन पोथियों के लिए विख्यात हैं। पश्चिम तिब्बत की होमिस गुफा में अनगिनत पोथियाँ रखी हैं। यहाँ दरबार गुफा में एक नजर में ऐसा लगा कि कम से कम पाँच हजार पोथियाँ तो होंगी ही। भारत के प्रधान मन्त्री पण्डित नेहरू ने इस दरबार गुफा में आ कर अपना स्वभावसिद्ध कौतूहल व्यक्त किया था। इस गुफा के अन्दर और भी असंख्य देखने योग्य वस्तुएँ पड़ी है, मगर उन का वर्णन करना मेरे लिए सम्भव नहीं।

मेरा खयाल है कि मैं इस गुफा में दो घण्टे रहा। और इन दो घण्टों में आठ-दस बार सिंघा, भेरी और करताल बजे और भेरी की उस देर तक गूँजने वाली ध्वनि से पहाड़ों की चोटियाँ थरथरा उठीं। इस के बाद जाने कब बाहर धूप में आ खड़ा हुआ।

सब कुछ अजब सा लग रहा था। पहाड़ों की चोटियों की गोद में मेघ पड़ाव डाले हैं। न पंछी की आवाज और न ही एक सरीसृप की सरसराहट। पहाड़ी नीरवता का अन्दाज लगाना कठिन है। एक पतिंगे के पंख की ध्वनि कहीं से आयी और कहीं जा कर खो गयी—समग्र मन से जुड़ी रही उस की संगीतमय गूँज। ऐसी निस्तब्धता को रह-रह कर उस सिंघा की तीव्र कर्कश ध्वनि विदीर्ण कर जाती है। पृथ्वी को रह-रह कर पुकार रही है। देवाधिदेवों के निमित्त प्रबल, प्रचण्ड घोषणास्वरूप शृंगलीला से महाकबरू, वहाँ से चमलहरी और सिनियलचू, इस के बाद पाऊहूंनरी, कुम्भकर्ण और कंचनझाऊँ, इस के बाद वह उद्घोष चला गया कंचनजंघा के तुषार शृंगलोक को पार कर और भी उत्तर दिशा में। पुकारा उस ने भारत को, भारत के पथ से पृथ्वी को।

उतरते समय देखा, कई तिब्बती एक चमरी लिये आ रहे हैं। अँगरेजी में इस जानवर को 'इयक्' कहा जाता है। घनघोर काला रंग, सभी अंगों में बड़े-बड़े रोयें। कन्धे और गरदन प्रायः सटे हुए। छोटी-छोटी सींगें। मगर दोनों आँखें देख कर भय उत्पन्न होता है। यह जंगली भैंस के गोत्र के हैं, इस में सन्देह नहीं। दोनों काली आँखों में यदि हिंसा की रक्तिम अग्नि आभा मिलायी जाये तभी इन की आँखें तुल्य हो सकेंगी। यानी आश्चर्य है, यह सभी जानते हैं कि इस जैसा निरीह और कोई जीव नहीं। रहते हैं ये पहाड़ में और घने वर्षा के इलाके में, इसी से गरमी में आने से ये मर जाते हैं। इसे अपनी ओर आते देख बीस हाथ दूर भागते बहुतों को देखा है। मैं भी किनारे जा खड़ा हुआ। तिब्बती हँस पड़े। मैं डरा नहीं इस लिए कि इस जानवर को मैं जानता था। उस तिब्बती ने शायद सोचा था, मैं चमरी को खरीदना चाहता हूँ। तभी उस ने टूटी-फूटी हिन्दी में कहा—डेढ़ सौ रुपीया। लेकिन मैं खरीदार नहीं था—

मैं ने चमरी की पीठ पर थोड़ी देर हाथ फेर लिया। और जब नीचे पहुँचा तब मालूम हुआ कि तीस-बाईस रुपये में ही मिलती है। दूसरे क्षण चमरी की दोनों आँखें जैसे मोह लेती हैं। बड़ी-बड़ी गोल-गोल काली आँखें।

नीचे आने पर जब बाजार की राह मिली, सन्ध्या तब नहीं हुई थी। उस शिंगा, भेरी और करताल की आवाज यहाँ से बहुत तेज सुनाई पड़ती है। राज प्रांगण की उस वक़्त दीये की सजावट ने पहाड़ की चोटी को आलोकित कर दिया था। कल के उन तीनों बंगाली सज्जनों को देख कर मैं आगे बढ़ कर एक पान की दुकान के सामने आ खड़ा हुआ। आकाश पर बदली घिरी थी, हवा तेज़ बह रही थी।

आश्चर्य है, पान की दुकान बंगाली की थी, यह मेरा नया अन्वेषण है। उस व्यक्ति का घर नोआखाली में है और उस का नाम है प्रभात दे। दूसरे एक और बंगाली की पान की दुकान बाज़ार से थोड़ी दूर आगे बस्ती के पथ पर थी। उस का घर भी बरीशाल के बानरी पाड़ा में है और नाम है अमूल्य दास। इन को ये दुकानें गत पन्द्रह वर्षों से यहाँ है। पान की दुकानों में मुनाफ़ा खूब है। एक पान एक आने में। बंगाल से ही पान आता है यहाँ। लेपचा तिब्बती पान पा कर अघा जाते हैं। दूकान के सामने पड़े बेंच के ऊपर छोटा सा एक बंगाली समाज शाम को जुट जाता है। वर्षा होने पर उसी के अन्दर सब छिप जाते हैं। प्रभात दे सपत्नीक यहाँ रहते हैं, बग़ल के उसी लकड़ी वाले उस छोटे से घर में। साधारण ज़िन्दगी, छोटी सी गृहस्थी। उसी में आशा और भरोसा, उसी में भविष्य जीवन की ऊँची अभिलाषा। दुस्तर पहाड़-पर्वत पार कर दो बंगालियों ने इस गैंगटाक को दो पान की दुकानें दी हैं, इस कथन में समस्त जाति की शिक्षा निहित है, यह भुलाने की बात नहीं।

संध्या के बाद भयानक अन्धड़ के साथ मूसलाधार वृष्टि हुई और गत रात की अपेक्षा बहुत अधिक ठण्ड देखते ही देखते इस छोटे से पहाड़ी शहर में छा गयी। पहाड़ों के साथ बहुत दिनों के परिचय के बिना यह शीत की कठोरता समझ में नहीं आ सकती। कमरे को चारों तरफ़ से बन्द कर के रोयें के ढेर तथा दो रज़ाइयाँ ओढ़ लेने पर भी गरमी नहीं मिली।

रात को भोजन का वह आयोजन। जेठमल भोजराज का वह उदार आतिथ्य आज भी प्रकट हुआ। मगर रज़ाई से हाथ निकाल कर भोजन करने में जो ठण्ड के कारण कष्ट हुआ उसे सिर्फ़ भुक्तभोगी ही महसूस कर सकते हैं। मगर आज मैं अचम्भे में पड़ गया। उस रुई और रोयें के बिछावन पर भी रात भर जाड़े के मारे नींद नहीं आयी।

कारण का पता चला दूसरे दिन सुबह। सम्भवतः अमावस्या के योग से ही यह दुर्योग उत्पन्न हुआ था। वर्षा उस समय भी अविराम हो रही थी। बाहर निकल कर देखा, जिसे देखने के लिए ज़रा भी प्रस्तुत नहीं था। सम्पूर्ण गैंगटाक के चारों ओर के पहाड़ों पर प्रबल तुषारपात हुआ है। कल दोपहर जिन पहाड़ों को निशान

बनाया था, आज उन का सम्पूर्ण रूप ही बदल गया है। राजप्रासाद का आँगन बर्फ़ से भर गया है, ऐसी खबर मिली। एक नौकर ने आ कर बताया, इस वर्ष का यह प्रथम तुषारपात है। पिछले पूस और माघ में भी ऐसा जाड़ा नहीं पड़ा था।

वर्षा का वेग कभी तेज़—कभी मद्धिम। ऐसे में हो जब थोड़ी स्वच्छता मालूम पड़ी, तब जान पाया कि थोड़ी देर बाद हो डाक गाड़ी छूटेगी यहाँ से। जायेगी वह कलिंपोंग। वक़्त नहीं था। जाने के लिए तैयार हुआ। मन में डर समाया था, भोजराज कहीं बिल न भेज दें। किन्तु उन के सौजन्य और सद्व्यवहार से मैं मुग्ध हो उठा। उन लोगों ने मुझ से यह पूछा कि अब कब उन की सेवाएँ लूँगा।

समय क़रीब आठ बजे का था। बड़ी तेज़ी के साथ तुहिनझंझा चल रही थी। और उसी के संग टिप-टिप वर्षा भी हो रही थी। ठण्ड के मारे हाथ-पैर जमे से जा रहे थे। उँगलियाँ कुछ भी मानने को तैयार नहीं थीं। ऐसे में ही नाश्ता कर के उसी ठण्ड और वर्षा से गुज़र कर मोटर में आया। सिर पर टोपी, देह पर वह मोटा ओवर कोट, इन दोनों चीज़ों के लिए शुक्ना जंगल के भूपेन बख्शी के प्रति मन ही मन कृतज्ञता का अनुभव किया। अब हमारी डाक-मोटर नीचे की ओर चलेगी—तिस्ता नदी के किनारे-किनारे। ड्राइवर के पास गोद में कम्बल रख कर आ बैठा। गाड़ी छूटी।

[१३]

मोटर बस उतरती जा रही रंगपो की ओर रंगित नदी के तट पर। सिक्किम से लौट रहा हूँ। पथ ढाल का है, टेढ़े-मेढ़े पथों से गाड़ी उतर रही है कि उतरती जा रही है। बीच-बीच में ठहरती है, डाक घरों के सामने। मेल बैग उतार देती है और नये-नये बैग चढ़ा लेती है। पथ बीहड़ है। गैंगटाक में बर्फ़ पड़ी है मगर नीचे आ कर शिंगताम की हाट पार कर महसूस किया, गरम कोट की अब ज़रूरत नहीं है। धूप के दर्शन हुए, मीठी तपन मालूम पड़ रही है।

शिंगताम के हाट में देख आया हूँ, एक मारवाड़ी लड़की ससुराल जा रही है—वर-वधू मेरी ही गाड़ी पर चढ़े हैं। उन की विदाई के अवसर पर मारवाड़ी महिलाएँ कोरस में गीत गाने लगी थीं। उस गीत का भाव था, विच्छेद की पीड़ा। शिंगताम की वह हाट पार कर वह पीड़ा आस पास की पर्वतीय भूमि पर छा गयी थी। पार्वती को विदाई देते वक़्त दक्ष की आँखें जैसे भर आयी थीं। नील आकाश पर जैसे शरद् की व्याकुलता देख पा रहा हूँ।

रंगपो का पुल पार कर बंगाल तथा भारतवर्ष में प्रवेश किया। ऊपर कलिंग-पोंग, नीचे से चला गया है हमारा पथ। तिस्ता अब चल पड़ी है मेरे बगल से। रंगपो से तिस्ता बाजार पन्द्रह-सोलह मील है। हम अपने पूर्व परिचित पथ से जब तिस्ता बाजार पहुँचे, तब दिन के बारह बजे थे। कुल चालीस मील के पथ का किराया लिया गया सात रुपए। कुछ अधिक ही है।

जेठमल भोजराज की महाजनी गद्दी में जा ठहरा। धूप तेज मालूम पड़ रही थी। ललाट पर पसीना चुहचुहा आया। रात का तुषारपात और अन्धेरा यहाँ स्वप्नवत् लगता है। ऋतु के साथ ही बदल गया है मन और दृष्टिकोण भी। जिस असम्भव आबोहवा से कुछ देर पहले गुजर कर आया, यहाँ ठण्डा पानी का गिलास हाथ में लेने पर अवास्तविक प्रतीत हुआ। धूप चिलचिला रही है।

यहाँ भी वही प्रागैतिहासिक रूप। हरिद्वार छोड़ कर ऋषिकेष पार कर लछमन झूला के पुल के ऊपर खड़े होने से जिस रूप को दोनों आँखों में भर लेने की इच्छा होती है। यहाँ से लौटने के पथ पर थोड़ा मुड़ कर जाने से मिलेगा मंगपू, जहाँ है मैत्रीय देवी का रैन बसेरा और जहाँ रवीन्द्रनाथ कई बार ठहर चुके हैं।

बस मुझे उतार कर कलिंगपोंग की ओर चली गयी। यहाँ से मेरा सिलीगुड़ी जाने का इरादा था। परन्तु, इशारे से पुकारा सामने का वह पथ जो उत्तर-पश्चिम को छूता हुआ ऊपर उठता गया है दार्जिलिंग की ओर। इस का नाम है पेशक रोड। बाजार के अन्दर से, सरकारी बंगलों को पीछे छोड़ कर निकल गया पतला सा टेढ़ा-मेढ़ा पथ। यह इतना संकीर्ण है कि बेबीऑस्टीन के सिवा और कोई मोटर नहीं पास हो सकती। समग्र दक्षिण दार्जिलिंग जिला और सिक्किम में यही पथ सर्वापेक्षा अच्छा मगर दुस्तर है। जो इस पथ से आ-जा चुके हैं, वह अच्छी तरह जानते हैं। परन्तु बहुत दिनों से दार्जिलिंग गया नहीं। इसी पथ के किनारे से जाऊँगा, और पुराने मित्रों से बिना मिले आऊँ यह कैसे हो सकता है! पुराने मित्र पुकार रहे हैं मुझे हर पहाड़ से।

चारों ओर है पहाड़ों का अवरोध, खूब ऊँची दीवारों की पंक्ति और बीच में है यह तिस्ता। हवा शुद्ध है, ऊपर से धूप के कारण गरमी खूब बढ़ गयी है। धूप चिल-चिला रही है। खुले में खड़ा नहीं हुआ जाता। प्रायः तीन घण्टे ऐसे में बिताने के बाद कलिंगपोंग की ओर से एक बेंच लगी जीप उतर कर आयी। जायेगी वह दार्जिलिंग। भोजराज की गद्दी से हमें सूचना मिली कि दार्जिलिंग पहुँच कर मैं छह रुपये किराया दे दूँ। इस तरफ़ किराये का दर हमेशा से अधिक है।

जीप के छूटने में लगभग चार बज गये। कुल मिला कर अन्दर छह आदमी बैठ सकते हैं। मगर ड्राइवर सहित हो गये दस आदमी। जिन में चार औरतें, एक पुलिस अफसर, दो मारवाड़ी और बाक़ी स्थानीय लोग थे। औरतें सभी भूटिया थीं। दस आद-मियों के अतिरिक्त दो बच्चे भी थे और माल-असबाब के दस बोझे भी। पैर के पास बैठे तीनेक आदमी। उस में जगह बनाना सहज नहीं था। किन्तु डेढ़-दो घण्टे के सफ़र की

वजह से किसी ने खास आपत्ति नहीं की ।

बाजार का अंचल पार कर कुछ दूर तक जब चढ़ाई-पथसे गाड़ी ऊपर चढ़ी तब ध्यान से देखा कि सभी ने खूब शराब पी रखी है। स्त्री-पुरुष सभी जुट बैठे हैं और उस गठरी, मोटरी, बक्स, बिछावन के ढेर के बीच किसी के लिए अलग-अलग बैठना सम्भव नहीं है। इस लिए सब मिलकर एकाकार। पुलिस अफ़सर थे भूटिया और गोरखा के मिले-जुले रक्त का एक नेपाली। मंगोलीय आँखें और बहारदार नाक। परन्तु शराब के नशे की वजह से उस की गम्भीरता हलकी हो गयी थी। गोरखे सिपाही से हमेशा डरता आया हूँ। वे होते हैं निर्दयी—कर्तव्य-बोध के प्रतीक। पर यहाँ हँसी के संग अभिनय देख भूटिया औरतें आनन्द के मारे ऐसी गद्गद हो उठीं कि एकदम लोट-पोट। उन के धक्के बार-बार सहने पड़ते थे। मेरी फजीहत इस लिए थी कि मैं एक-मात्र स्वस्थ व्यक्ति था। उन के लिए मुश्किल थी यह कि वे मुझे एकमात्र अस्वस्थ व्यक्ति मान बैठे थे।

मन में डर था। पथ ऊपर उठता जा रहा था। गाड़ी चल रही थी बहुत तेज़। खुद ड्राइवर भी शराब में मस्त था। घबराहट में पानी-पानी हो कर निगाह गड़ाये था उस को स्टीयरिंग के ऊपर। वह पान चबा रहा था तथा बाँये हाथ में सिगरेट थामे था। अन्दर की हो-हुल्लड़ से स्टीयरिंग पकड़ने के बावजूद वह मस्ती में भरा था। उस की ज़रा सी चूक से पलक में हम किसी भी परिस्थिति में पड़ सकते थे, यह सोच कर मैं घबरा रहा था। मगर कोई चारा नहीं। इस के पूर्व जीप के बारे में बहुत कुछ सुन रखा था। इस की गति इतनी तेज़ है कि यह असाध्य को साधती है। यह जब उलटती है तब सभी मरते हैं मगर गाड़ी बची रह जाती है। सब को डुबाती है और अपने को छूने तक नहीं देती। इस गाड़ी के संग अमरीकी प्रवृत्ति का योग है।

भूटिया औरतें बैठी हैं, मुझे दबोच कर। इसी बीच उन की सिगरेट की चिन-गारियाँ उड़ कर दो बार मेरे चेहरे पर आ पड़ीं। बार-बार उन के घुटनों की मार खा रहा हूँ। उन के पहाड़ी जूते से कुचला मेरा पैर टूटता सा जा रहा है। कभी-कभी उन की ओढ़नी उड़ कर मेरे मुँह को ढक लेती हैं। अजाने पुरुष से बारम्बार उन के अंग रगड़ खा रहे थे। पर कोई प्रतिक्रिया नहीं। मुझे वे पुरुष मानती भी हैं, इस में सन्देह है; और मेरे अस्तित्व को स्वीकारा गया है, इस में तो और भी सन्देह है। कभी-कभी तो ऐसा लगता था कि वे मेरी जेब में हाथ डालना चाहती हों। मगर नहीं मेरा अन्दाज ग़लत निकला। उधर एक मारवाड़ी के संग एक अन्य औरत हँसी-मज़ाक में जुटी थी। इसे देख कर पुलिस अफ़सर बेचारा सुध-बुध खो बैठा है। स्टीयरिंग पर हाथ रख कर ड्राइवर भी आनन्द विभोर। कण्डक्टर शायद अधिक पी लेने की वजह से रह-रह कर बाहर झुक-झुक जाता था। उसे पकड़ कर खींचती है कानों में बाली पहने एक भूटिया बहू, जो मेरे बिस्तर पर पड़ी गठरी पर बैठी है। दोनों की बोलियों की जड़ता में मस्ती अनुभव कर के पुलिस अफ़सर तो हँसी में जैसे लोट-पोट

हो गया। उसी परिमाण में मुझे जैसे काठ मार गया। उन में एक स्त्री कुछ प्रौढ़ थी—ओढ़नी से मुँह ढक कर हँस रही थी। अब तक कुछ भाव है उस में। सहसा मेरी निगाह पड़ी, पुलिस अफ़सर के पैरों के ऊपर। अपने पैरों की उँगलियाँ दबा-दबा कर वह प्रौढ़ा टेलीग्राफ़ी की तरह बातें कर रही है। तो क्या सभी एक ही तरह के हैं? सोचता रहा था मन ही मन। सचमुच मैं क्या प्रेम फांस बिछे किसी लोक में हूँ!

संकीर्ण चढ़ाई पथ। पथ के दोनों ओर घनी झाड़ियों का अन्धेरा सारे वन में। दिन ढलता आ रहा है। मध्य में दोनों ओर गहरे खन्दक और देवदारू के पेड़ हैं। उसी के बीच दीखती हैं, हिमालय की दूर-दूरान्तर में फैली शोभा। वस्तुतः पूर्वी भारत के और किसी अंचल से हिमालय का ऐसा विस्तार सहसा दृष्टिगत नहीं होता। कलिंगपोंग गैंगटाक, दार्जिलिंग, घूम, कर्सियांग—किसी भी शहर में ऐसा विस्तार पहले कभी नहीं देखा। सैकड़ों मील विस्तृत तुषार किरीट की शोभा पर आँखें सिर्फ़ इस पेशक रोड को पार करने के बाद ही पड़ती हैं। सूर्य किरणों के संग इस एकान्त में वायुस्तर और मेघों की छाया मिलने से किरण रश्मियाँ टेढ़ी हो गयीं। इस कारण तुषार की धवलता बहुवर्णी हो उठी है। परिणामस्वरूप कहीं गेरुआ, कहीं हरी-नीलाभ छाया फैलाये हैं। दिग्वलय के अर्द्ध अंश में उस महा हैमवंत के बिछे स्वर्ण सिंहासन को एकमात्र यहीं से देखा जा सकता है। पहाड़ की चोटियाँ नहीं लगतीं, लगती हैं जैसे वे अलग-अलग मन्दिर के स्वर्ण-शिखर हों। सम्भवतः अदूर की शंख-घण्टे की ध्वनि हमारे कानों में नहीं आ रही।

धक्का लगा मेरे हाथों में। देखा, भूटिया नवयुवती खुशी के मारे झूम रही है। खुलेपन की वजह मर्यादा की ओर उस का ध्यान नहीं है। उस का यह अपराध नहीं है, इसी प्रकार वह जीती आ रही है। औरतों की लज्जा और जड़ता ही इतने दिनों तक उस के लिए बाधा बनी रही। इस संकोच से खेलता रहा है पुरुष। औरतें लज्जा की बात लज्जा के रूप में स्वीकार नहीं करतीं, तभी तो पुरुषों के अति-आचार थे अधिक। औरतें घूँघट से अपना मुँह ढकती हैं, तभी पुरुषों में इतने दिनों तक उसे हटाने की लालसा थी। किन्तु आज औरतों ने घूँघट हटा दिया है, तभी तो है पुरुषों में भय और नारी समाज में अपनेपन की चिल्लाहट। औरतों को अब अचानक संकट में डाल कर भागा नहीं जा सकता, क्योंकि पुरुषों के भागने की राह वे जान गयी हैं। घूँघट नहीं है तभी आखें खुल गयी हैं।

ऐसा लगता है कि मेरे यहाँ नहीं बैठने से वह औरत खुश होती। फैल कर बैठती और उस टोपी वाले छोकरे को वह अपने से सटा कर बैठती। वह छोकरा गठरी बना उस के पैर के पास बैठा है। नहीं, मैं देखना नहीं चाहता—जाने क्या हो रहा है मेरी बग़ल में। ड्राइवर ने गाड़ी की स्पीड और भी तेज़ कर दी। कबूतर की तेज़ गति जैसी ही जीप चल रही है। ढुलक रहा हूँ। सँभल रहा हूँ। भीतर बैठे लोगों के सर आपस में टकरा रहे हैं। मगर एक-एक बेंड पर मोड़ लेते वक़्त अन्दर से असंगत हो-

हुल्लड़ बाहर बिखर रहो है। और उन के बीच सिकुड़ कर बैठा मैं उत्कण्ठित हो कर चुटीला होता जा रहा हूँ। सुन चुका हूँ कि खूब शराब पी लेने पर नाभी की अँतड़ियों में उद्दाम उत्तेजना उत्पन्न हो जाती है। इस से लौकिक और व्यावहारिक मर्यादा का खयाल बिलकुल ही नहीं रहता, और गम्भीर संयमी एवं शान्त प्रकृति का व्यक्ति भी अचानक अपने जीवन के सम्भव-असम्भव किसी भी तरह की सुनीति और दुर्नीति कथाएँ तथा दुस्साहसिकता की कहानी सुनाने लगता है। मगर औरतें ? वे क्या भावनाओं की उत्तेजना पुतली नहीं हैं। उन की हालत भी क्या ऐसी ही होती है ? नारी क्या कामिनी होती है ? देवी—दानवी ?

फिर कुहुनी से चोट लगी। मेरे हाथ में पड़ी सिगरेट की चिनगारियाँ बिखर गयीं, पर मेरा नथुना बच गया। सिगरेट की चिनगारियों से पटसन के गोदाम में आग लगती ज़रूर है लेकिन जीप का कुछ नहीं बिगड़ता। सिगरेट का जला हिस्सा गिर पड़ा था, वह तत्क्षण उसे दोनों उँगलियों में उठा कर मसल देती है। भूटिया औरतों की उँगलियाँ कठोर नहीं होतीं। फिर भी वह जली नहीं। मैं ने खेद प्रकट करने की चेष्टा की मगर उसे उस की परवा भी नहीं थी।

मैं बार-बार अपमानित हो रहा हूँ उस से। मगर वह ज़रा भी सचेत नहीं है। आश्चर्य है, एक व्यक्ति उस से सट कर बैठा था। मगर गठरी के जैसा ही वह निर्जीव सा है। ऐसा उस ने मान लिया है। बोध-अबोध दोनों तरह का प्रेम व्यापार चला रहा था, और मैं था उस का गूँगा-बहरा दर्शक। इस से उन का कुछ बनता-बिगड़ता नहीं। इन में कितना कवित्व और कितना हर्ष-रोमांच है, यह महसूस करने के पहले ही ऐसा एक धक्का मुझे लगा कि त्राहि मधुसूदन। मुझे यदि मुक्ति मिल जाये तो दार्जिलिंग के पथ-घाट पर रो-रो कर प्राण बचा लूँ।

घूम में आ कर कई लोग उतरे। वह औरत उतर गयी अपने यौवन संभार के साथ—छोकरे को छोड़ कर, पुलिस आफ़िसर के संग। कैसा आश्चर्य है—'उद्धव की बला, माधव के सिर।' किन्तु अन्दर जो लोग रह गये थे वे भी ढुल-मुल। पर अन्दर थोड़ी जगह हुई अब। इतनी देर में तेज़ जाड़ा पड़ने लगा है। घूम से एक पथ चला गया है ऊपर टायगर हिल को, दूसरा सन्दकपू। अगल-बग़ल अनुस्वार स्वरूप कई गाँव छोड़ आया हूँ। उन के नाम कभी भी मुझे स्मरण नहीं हो पाये। मगर गाड़ी कुछ आगे बढ़ी कि देखा, अजब हाल। चारों ओर बर्फ़ पड़ी है। फागुन के प्रथम दिनों में बर्फ़। शाम अब भी हुई नहीं, मगर घूम का बाज़ार अभी से ही जन-हीन हो गया है। जाड़े के मारे मैं काँप रहा था। पहाड़ों पर पथ के अगल-बग़ल दुकान-हाट के किनारे-किनारे गिट्टियों जैसी बर्फ़ का पहाड़ बन गया है। छोटी रेलवे लाइन शहरों के ऊपर से चली गयी है दार्जिलिंग की तरफ़। पाँच-एक मील और आगे बढ़ कर जाने के बाद गाड़ी दार्जिलिंग के एक होटल के सामने आ खड़ी हुई। तब जान पाया, उत्ताप की मात्रा ३१½ डिग्री से कम हो गयी है। सड़क जन-हीन। मेरे हाथ पैर ठिठुरे जा रहे थे। तीन घण्टे

पहले तिस्ता बाजार की प्रखर धूप की चर्चा यहाँ स्वप्नवत् लगेगी। पहाड़-पर्वत बर्फ़ पड़ने से उजले हो गये हैं। इस वर्ष की यह प्रथम बार बर्फ़ है।

सामान ले कर उतरा। पथ के इस पार है होटल और उस पार धर्मशाला। धर्मशाला बुरा क्या है? इसी वक़्त कण्डक्टर ने भाड़ा माँगा और मैंने छह रुपये निकाल कर दिये।

छह रुपये? नशे में चूर व्यक्ति ने आगबबूला हो कर कहा, "छह रुपये नहीं लेंगे, आठ रुपये दो।"

मैं ने कहा, "योगीराज ने छह रुपये से अधिक देने से मना किया है?"

"तो नहीं देगा?" उस की दोनों आँखें अंगारे जैसी हो आयीं।

"नहीं।"

अचानक वह भयंकर हो उठा। अपने कोट तथा पेंट की जेबें टटोलने लगा, भुजाली कहाँ है। सड़क सुन-सान। धर्मशाला के अन्दर से एक औरत निकल आयी थी। वह फिर अन्दर जा घुसी। ड्राइवर कुछ बक-झक करता रहा। जब जेबों में वह अस्त्र नहीं मिला तब उस ने आखें फाड़ कर कहा—दस मिनट ठहरो, हम आता है। यानी कुकरी या भुजाली ले कर वह दस मिनट में आयेगा। वह आदमी ख़ूनी है, यह उस के चेहरे से झलकता है।

गाड़ी ले कर वह चला गया। मैं ताकता रहा उस के पथ की ओर। ठीक कहना कुछ मुश्किल है जाड़े से काँप रहा था या भय से। तन-मन दोनों ही को शायद उस वक़्त एक प्याले चाय की बहुत ज़रूरत थी। होटल या धर्मशाला में जा ठहरूँ और वह आदमी अभी ही पहुँच कर वहाँ एक हंगामा मचाये इस से अच्छा तो रास्ते पर ही खड़ा रहूँ। खड़े-खड़े एक सिगरेट सुलगायी। वह ख़त्म हुई तो और एक। उसे भी ख़त्म कर तीसरी सिगरेट सुलगायी। शाम बीत गयी सामने के किसी-किसी घर की खिड़की के शीशे के भीतर दीये की रोशनी नज़र आयी। ठण्ड से हाथ-पाँव अकड़ने लगे हैं। आधा घण्टा बीत गया। इस के बाद अब प्रतीक्षा सम्भव न रही। धर्मशाला छोड़ उस पार होटल में आ ठहरा। सामने के उस गोल शीशे के कमरे में रहने का बड़ा चाव था। इस दफ़ा तय भी कर लिया था कि किसी जाने-पहचाने घर में नहीं ठहरूँगा।

कमरे में दो व्यक्ति के रहने की व्यवस्था थी। मगर मौसम प्रारम्भ होने में अभी देर थी। ग्राहक नहीं हैं। मतलब मैं ही अकेला उस कमरे में रहा। मगर चाय पीने के बाद भी राहत नहीं मिली। वह आदमी अभी तक नहीं लौटा। अचानक अगर वह कमरे में आ जाये कुकरी ले कर? तो रुपये दे कर उसे शान्त करूँ या नहीं—यह सोचने लगा। तय किया नहीं, रुपए नहीं दूंगा।

पर इस प्रकार बेकार बैठे रहना भी सम्भव नहीं था और जब कि संध्या की बर्फ़ानी दार्जिलिंग मेरी देखी हुई नहीं थी। ठण्ड से पीड़ित बर्फ़ से ढकी माल, वह

आबजर बैटरी की तरफ़ उधर नीचे की ओर गिरजा के बग़ीचे में जाने की राह, जल-पहाड़ों वाला निर्जन अंचल, वही मेरी पुरानी कई बेंचें। उन सब को ज़रा देख आऊँ। उन्हें देखे चौदह वर्ष हो गये हैं। मतलब उसी पोशाक में दोनों हाथ जेब में डाले निकल पड़ा। होटल के मल्लिक साहब ने ज़रा उत्कण्ठित हो कर कहा, यदि न जायें तो हर्ज क्या है!

लगता है, उन्हें भय था उस खूनी आदमी का। मगर मेरा विश्वास है, कि इतनी ठण्ड में उस का नशा बहुत कुछ उतर चुका होगा। मल्लिक साहब को भरोसा दे कर मैं नीचे की राह पर उतर गया। अँधेरा हो आया है।

फ़रवरी का अन्त होने को आया है। कुल चारेक दिन शेष हैं, अब कुछेक दिनों बाद ही मार्च की हवा बहने लगेगी। उस हवा के बाद ही वसन्त उतर आयेगा। लेकिन आज की कुहासाच्छन्न ठण्ड भरी रात वाली इस दार्जिलिंग की कल्पना हास्यास्पद है। सड़क पर कहीं भी बत्ती नहीं है। एक भी दुकान खुली नहीं है। आदमी नजर तक नहीं आते। और जब कि आठ भी नहीं बजे हैं। इस राह से शौक़िया घोड़े पर सवार हो कर कितनी बार आ-जा चुका हूँ। लेवंग के रेसकोर्स की सड़क इधर से ही निकली है, बार्च हिल की सड़क ऊपर चली गयी है। उधर से जाने पर स्टेशन मिलता है। नीचे उतरने से लुइस जुबली के चौधरी का मोटर कारखाना पार कर बायीं ओर बढ़ने से मिलता है चाँदमारी बाज़ार। मैं एक अंधेरे से दूसरे अँधेरे में सुनसान दार्जिलिंग में चक्कर काटता रहा। आसमान पर तारे नदारद। बदली घिरी है शाम से ही। बाज़ार के उस पार के उस मन्दिर से बाजे की मधुर आवाज़ आ रही है। आज है रविवार, पर सभी गिरजे जैसे साये में पड़े हैं। दूर, बहुत दूर मटमैली रोशनी वाली बत्ती जल रही है, और उस की रोशनी में कहीं कुछ नज़र नहीं आता। ऐसा निस्संग सर्वहारा, जन-चिह्न-हीन दार्जिलिंग मुझे देखना बाक़ी था। दो घण्टे तक चक्कर काट कर मैं तब तो लौट आया अपने होटल में। तापमान और भी उतर गया है। हाथ-पैर ठण्ड के मारे ठिठुरते जा रहे हैं। गले से एक चीख निकलने ही वाली है। बर्फ़ीली हवा हड्डियाँ कँपा रही हैं।

उपयुक्त पोशाक और बिछावन इस बार नहीं था, शायद इसी वजह से आराम नहीं मिल रहा था। रात गहरी होती जा रही थी, मगर नींद छूमन्तर। किसी भी समय वह पागल भूटिया आ कर मेरी हत्या कर सकता है, इस की दुश्चिन्ता भी है। मन उस पथ पर ही लगा रहा। यह अंचल पहले सुनसान था। इस सुनसान पथ से ही कभी चाँदनी की रजत रश्मियों के द्वारा जादू-नगरी में जाया जाता था—मायामृग की खोज में।

याद हो आयी है बहुत दिनों पहले एक हेमन्त की एक मध्यरात्रि की। एवरेस्ट होटल के पास श्रीमती आभा मेरे रिक्शे पर बग़ल में आ बैठी थीं। यह आभा नाम

सही नहीं है, पर इसी नाम से उन्हें जाना जाये। उस समय बंगाल में क्रान्ति की लहर आयी हुई था। एण्डरसन थे उस समय के बंगाल के शासक। श्रीमती आभा यहाँ नाम बदल कर छिपी थीं। इतनी रात को घूम पहाड़ की ओर किसी स्त्री का जाना संगत है क्या? यह सवाल उस क्रान्तिकारिणी से उस समय करना व्यर्थ था। राजनीतिक कारणों से उस रात एक कुमारी लड़की को पत्नी का स्वांग भरना पड़ा था। जो भी हो, रिक्शा दो व्यक्ति खींचेंगे और पीछे से धक्का लगायेंगे दो और। आने-जाने का किराया था मात्र पाँच रुपया। उस समय रात के दो नहीं बजे थे। शुक्ल पक्ष था। अक्तूबर अभी समाप्त नहीं हुआ था, मगर ठण्ड खूब पड़ रही थी। दार्जिलिंग से घूम अन्दाज़न पाँच मील है। रेल लाइन से सटी-सटी सड़क चली गयी है। उन दिनों चोर डकैतों की अपेक्षा पुलिसों का डर अधिक था अर्थात् शहर की सीमा पार करते ही श्रीमती निडर हो गयीं। घूँघट की ज़रूरत अब नहीं थी। आगे दूर से एक और रिक्शा चला जा रहा था, इस के अलावा उस गहन रात में कहीं कोई नहीं था। दूर-दूर पहाड़ों पर फैली थी शुक्लपक्ष की उजियारी, जो एक तरह से नैर्गिक छाया सी थी। योग निन्द्रा में हिमालय उस दिन अचेत था।

घूम जब पहुँचा, तीन बजने में कुछ देर थी। कई अमरीकी टूरिस्ट नर-नारी वहाँ घोड़े पर आये थे। वह भी टाइगर हिल की चोटी पर जाने वाले थे। सामने की सड़क बाज़ार को दाहिनी ओर छोड़ कर ऊपर चली गयी है। श्रीमती आभा ने पहले क़दम उठाया। सम्भवतः दो मील होगा और बीच में लगभग दो हज़ार फ़ुट ऊँची घाटी पड़ती थी। बड़े-बड़े देवदार और सेगुन, शाल की पंक्तियाँ और नीचे की ओर उतर गया है झिलमिल चन्द्रलोक। दिन के समय यह पथ हो उठता है वास्तविक किन्तु रात को काव्यमय। प्रत्यक्ष के ऊपर वास्तव का आवरण। दिन के समय लगता है जंगल और चाँदनी रात में जैसे हो वह जादूनगरी। ऐसे ही पथ को पार कर रात को साढ़े तीन बजे जा पहुँचे टाइगर हिल की चोटी के ऊपर। ज़रा मुड़ कर जाने पर मिलता है सेनचल। टाइगर चोटी के ठीक नीचे है रेस्ट हाउस।

इस प्रसंग के विषय में अन्य स्थलों में कह आया हूँ। फिर भी अमरीकी दल की अभव्यता ने उस दिन कितने ही भद्रमनों को पीड़ित किया था, इसे भूलना कठिन है। सूर्योदय देखना उन के लिए गौण था मुख्य था यौन उत्सव। अमरीकियों के आपत्तिजनक आचरण से परिचित हम थे। उन के प्रकट रूप से घृणित कारनामे का एक नमूना उस आखिरी रात के समय टाइगर हिल की चोटी पर नज़र आया था। नर-नारी के उन्मत रस-रंग को देख कर हम सभी अवाक् थे। नारियों की मदमस्ती और पुरुषों की हँसी-मज़ाक से सभी विस्मय विमूढ़ थे। मुश्किल हो रही थी आभा के लिए। ऐसा होगा, यह अगर जानता तो उसे साथ ले कर नहीं आता। इस के अलावा वह कुमारी होते हुए भी थोड़ी बालिग थी और क्रान्तिकारियों के दल में वह अपनी स्वच्छ निर्मल भावना के लिए विख्यात थी। मैं मुँह कहाँ छिपाऊँ, यह भी सोच नहीं

पा रहा था। ऊपर से चन्द्रलोक इतना साफ़ था कि साहब-मेमों का कोई भी क्रिया-कलाप अस्पष्ट या अदृश्य नहीं था। हाँ, अँधेरी रात होती तो बहुत कुछ छिपा रह जाता। जो देखने के लिए यहाँ आया उसे छोड़ कर लौटा भी नहीं जा सकता। ऐसा साफ़ आकाश हमेशा नहीं रहता। और डेढ़ घण्टा यहाँ रुक कर सूर्योदय देख कर ही लौटना है। फिर आभा भी सम्भवतः अधिक दिनों तक बाहर नहीं रहेंगी। किसी भी वक़्त वह गिरफ़्तार हो सकती हैं। यह सब कुछ सोच-विचार कर हम लोग कई अभ्यागतों के बीच जा खड़े हुए। पर हमारे पीछे, पास में ही दस-बारह अमरीकी युवक-युवतियों को मदमस्ती भरा राग-रंग बढ़ता गया।

श्रीमती आभा हतप्रभ और मैं अवाक्। न हम कोई किसी से आँखें मिला पा रहे थे और न बोल ही फूट रहे थे। ठीक ऐसे में ही शून्य दिगन्त रेखा पर असंख्य रंगों की लहरें अतल से निकल कर आने लगीं। हम सभी की दृष्टि उस परम विस्मय की ओर टँग गयीं। पृथ्वी उस क्षण नींद में अचेत थी। आकाश चाँदनी से भरा हुआ। दूसरी तरफ़ सूर्य का नवजन्म हो रहा था। भयंकर ठण्ड में सिर से पैर तक गरम कपड़ों से लदे सभी निस्तब्ध खड़े रहे।

अपनी उस दिन की डायरी से कुछ पंक्तियाँ यहाँ उद्धृत कर दूँ। रात के आखिरी प्रहर में समग्र दार्जिलिंग घोर नींद में अचेत पड़ा था। शुक्ला चतुर्दशी का चाँद जब पश्चिम पहाड़ी की चोटियों पर उतर रहा था, उसी समय विशाल तिस्ता घाटी के दिगन्त में पृथ्वी सहास्य विदीर्ण हुई—उन सर्पिल दरारों के भीतर से धरित्री का हृदयपिंड प्रकट हुआ। लाल, बैंगनी, नीली सुबह—रक्तोच्छ्वास....उस भाँति-भाँति के फेनिल रक्तप्लावन में उच्छल आभा युक्त एक छोटा सा अग्नि पिण्ड। वह है शिशु सूर्य। अँधेरी वसुन्धरा की सीमा-रेखा से रक्त-रश्मि निकल कर गौरीश्रृंग के ललाट पर जा पड़ी। कंचनजंघा और गौरी श्रृंग की चुटीली ललाट में से झर कर चू पड़ी केशरिया धाराएँ। यहाँ रवीन्द्रनाथ को स्मरण किया जाये—

टूटे द्वार आये ज्योतिमय,
तुम्हारी हो जय।
तिमिर विदाई का उदार अभ्युदय,
तुम्हारी हो जय।

रेस्ट हाउस में आ कर उस प्रत्यूष वेला में चाय पी कर क्रान्तिकारिणी दूसरे किसी पथ से चली गयी। दिन में श्रीमती से मिलना-जुलना मना था।

बीते जीवन की उस कहानी की याद करने में ही रात खत्म हो गयी। बिछावन छोड़ चाय पी बाहर निकल पड़ा। ठण्ड इतनी कि पलक मारते ही जैसे सारा शरीर बर्फ़ हो जायेगा। अभी भी दार्जिलिंग की नींद खुलने में देर थी। हर मकान मेरा

जाना-पहचाना है। उन की दर-दीवारों पर जैसे मेरा स्नेह चिपका है। बायीं ओर है पाषांग बिल्डिंग। वहाँ रह चुका हूँ मैं और शशांक चौधरी। खूब याद है कि एक दिन आचार्य जगदीशचन्द्र की मायापुरी से उतर कर आ रहा था कि रास्ते में ही वर्षा होने लगी। दौड़ते हुए बाजार के निकट उतर कर हम लोग एक गन्दे घरनुमा गुफा में जा छिपे। अन्दर कालिख से ढँका लालटेन जल रहा था। अगल-बग़ल गन्दे भूटिया औरत-मर्द और उन के बीच में टेबुल के सामने एक खूबसूरत यहूदी युवक बैठा था। देशी शराब की तेज दुर्गन्ध फैली थी। बहुत से लोग शराब की बोतल ले कर यहाँ आ जाते हैं—खाना खाने के इरादे से।

बाहर मूसलाधार वर्षा हो रही है, हमारे लिए जाने का कोई चारा नहीं। भय भी लग रहा था। खून-खराबा होने पर बाहर खबर तक नहीं पहुँच सकती। अगर कोई सब कुछ छीने-झपटे तो चिल्लाने पर भी कोई सहायता नहीं मिल सकती। इसी समय हमारे पास एक और गोरखा आ बैठा। उस की पीने की ताक़त खूब थी। निरीह शशांक गुमसुम था। वह कमजोर दिल वाला है, किसी भी प्रकार का आघात सहन नहीं कर सकता। देखते-देखते ही गोरखा और यहूदी से मेरी मित्रता हो गयी। गोरखा एक प्रेम-कहानी सुनाने लगा। वह कहानी थी मीठी लेकिन दुःखान्त। हवा बदलने के लिए कोई बंगाली नौजवान आया था। वहाँ जहाँ चौधरियों का मोटर गैरेज है, उस के निकट दोमंजिले पर वह रहता था। सम्भ्रान्त परिवार का लड़का था किन्तु एक भूटानी लड़की के प्रेम में पड़ कर वह यहीं रह गया। वह लड़की लिखना-पढ़ना जानती थी और सुसभ्य थी। अचानक एक दिन पता चला कि उस का पूर्व-पति अभी मौजूद है और इधर इस लड़के से भी उस ने विवाह कर लिया है। सुखपूर्वक दिन बीत रहे थे। किन्तु सहसा एक दिन वह लड़की अपने पूर्व स्वामी के पास चली गयी और उस का घर सँभालने लगी। इधर यह बंगाली लड़का शान्त मन प्रतीक्षारत रहा कि कभी तो उस की भूटिया पत्नी लौट कर आयेगी। बहुत दिनों तक वह प्रतीक्षा में रहा, मगर जब वह नहीं लौटी तब उस ने एक पत्र लिखा। पत्र में लिखा : 'तुम हो, मैं हूँ, सत्य है।' वह आदमी आज भी उस मकान में रहता है। बीस वर्ष होने को आये लेकिन वह आज भी प्रतीक्षा में बैठा है। उस की पत्नी है कि अब भी अपने पहले-पति के संग। इन बीस वर्षों से दोनों में कभी मुलाकात नहीं हुई। सुनी है, ऐसी प्रेम-कथा कभी ? कितने अचरज की बात है!

शराबी प्रौढ़ भूटिया चुप हुआ। इसी बीच वर्षा रुक गयी। हम दोनों भारी मन से निकल पड़े। यह बहुत पुरानी बात है।

आज मैं एकदम निस्संग हूँ। माल पकड़ कर सीधा चल पड़ा। गहरे कुहासे में डूबे दार्जिलिंग का सवेरा। चेहरे पर जलयुक्त शीतल हवा लग रही है। कहीं कुछ नजर नहीं आता। कुहासे के समुद्र में सब कुछ डूब गया है। हम बढ़ गये गवर्नर के प्रासाद से ऑबजरवेटरी के सामने वाली विस्तृत घाटी पर। यहाँ से बहुत सारे पथ चले

गये हैं नीचे की ओर। अभी भी आदमी नज़र नहीं आते। सिर्फ़ जब ऑबजरवेटरी के पास से गुज़रा तो देखा एक साहब कुत्ता लिये निकल रहे हैं। धूप की चमक घने कुहासे में दीख रही है। आशा है, आज गरमी मिलेगी।

इस पथ के हर घुमाव पर पत्थर मेरा जाना हुआ है। लगता है, चौदह वर्ष बाद मैं अपने घर लौटा हूँ। जैसे एक जन्म से जन्मान्तर में आ पहुँचा हूँ। प्रत्येक मूल पत्थर मुझे देख रहा है। वही मैं, आया इतने दिनों बाद! मन ही मन उन का कुशल-क्षेम पूछता हुआ बढ़ रहा हूँ मैं। वहाँ हम लोगों का अड्डा जमता था, जवानी, उमंगों की महफ़िल। इधर प्राचीन चीड़ की छाया में आज भी वैसा ही लगता है। यहाँ है पूर्ववत् ही निभृत निर्जनता। मेरे अगल-बग़ल खड़े हो कर पता नहीं कौन बातें कर रहा है। पीछे से कोई पुकार रहा है। सामने से कोई बुला रहा है।

बग़ल से कई तिब्बती लामा गुज़र गये। फिर वही भुतही निर्जनता। तेज़ी से क़दम बढ़ा रहा हूँ। पीछे उस प्राचीनता की नींद टूट रही है। इस पथ पर खोया हूँ बहुत, खो चुका हूँ अनेक बार। कितनी बार इन कालप्रहरी, देवदारु के नीचे खड़े हो कर हँस चुका हूँ। उन के तन पर हरियाली की छुअन लग गयी है। मेरी जैसी उन की भी हज़ार वर्ष उमर बढ़ गयी है। ये मानो आज मेरे जीवन की स्वीकारोक्ति सुनना चाहते हों। सुनना चाहते हों, मेरी भूल, भ्रान्तिमय भावुकता, भृकुटी का इतिहास। भूले-बिसरे पुराने दिनों की कहानियाँ। प्रतारित, प्रतिहत, प्रवंचित का इतिवृत्त। खो चुके हैं कितने नाम, कितने व्यक्ति, कितनी हँसी, कितनी रुलाई। असहनीय सुख, महिमामय पीड़ा हर्ष-रोमांच की। निविडतम अकल्याण, नाटकीय घात-प्रतिघात का उत्कट व्याकुल भावावेग। यह कुछ नहीं है—है सिर्फ़ मेरे मन में सूखे पंखों की भीड़, मरी हुई मधुमक्खियों का कंकाल, समग्र दार्जिलिंग के पहाड़ों पर के असंख्य विलीन पदचिह्नित स्मृति की परती में जैसे मुझे वे आज घेरे हैं।

धूप निकली। कुहासा मिटता जा रहा है। चलते-चलते उतर पड़ा बाज़ार की ओर। धूप बाज़ार के प्रशस्त पथ पर उतर आयी है परन्तु बर्फ़ीली हवा बिना रुके बह रही है। अगल-बग़ल बैठे परचून अपने बेचने-खरीदने में संलग्न हो चुके हैं। इस तरफ़ है मोटर स्टैण्ड। देखे-सुने गाँवों में इधर-उधर चक्कर काटना ही था मेरा अभिप्राय। बाज़ार में लोग जम रहे थे।

सहसा पीछे से एक भूटिया हँसते हुए मुझ से लिपट गया। मुड़ कर देखा, कल वाला वही शातिर था। उस ने कहा, क़सूर माफ़ कीजिए, बाबू। मुझे छह रुपये ही लेना था, कल समझ में नहीं आया था। यहाँ आ कर योगीराज की दुकान पर मैं ने पूछा, तब पता चला। माफ़ कीजिए।

जेब से आज दो रुपये निकाल कर देते हुए कहा, यह लो तुम नाश्ता करना। मैं भी ज़िद्द में आ गया था, कुछ खयाल न करना।

दो रुपये पा कर वह आदमी मुग्ध विस्मय से ताकता रहा। मैं अन्यत्र चला

गया। इस चाँदमारी के पास से जो सड़क नीचे की ओर चली गयी है उस की दाहिनी तरफ़ था थियेटर हॉल और ज़रा आगे बढ़ने पर मोड़ पर लाइब्रेरी थी। इस थियेटर हॉल में एक बार मित्रवर वरेन्द्र के साथ तन्मय हो कर नाटक देख रहा था। अचानक एक सी० आई० डी० को अपना पीछा करते देख वरेन्द्र अदृश्य हो गया था। फिर दार्जिलिंग में वह नहीं दीखे। वे थे क्रान्ति के दिन। बाद में जान पाया कि हिंसात्मक राजनीतिक क्रियाकलाप तथा संगठन करने के जुर्म में उस पर एक भयानक मुक़दमा चल रहा था। इस घटना के चार वर्ष बाद सुदूर शिमला पहाड़ के नीचे एक मुसलमान बस्ती से सट कर गुज़र रहा था। तब उसी शाम को बस्ती के अन्दर से वरेन्द्र निकले। सिर पर पगड़ी और सिर से पैर तक छद्मवेश में उसे देख कर पहचानना मुश्किल था। उर्दू भाषा में वह डर-डर कर अपने भागे हुए जीवन की रोमांचक कहानी सुनाने लगा। वह था रूपवान् तथा धनी घर का लड़का। आजकल वह एक पहाड़ी से ब्याह कर के उसी जीवन में रम गया है। पति और पिता के रूप में उस की ज़िम्मेदारी कम नहीं थी। इस के बाद उस से फिर कभी मुलाक़ात नहीं हुई। इतना कहना ही बहुत होगा कि कलकत्ता पहुँच कर उस की सूचना मुझे यथास्थान पहुँचानी ही पड़ी थी।

लाइब्रेरी के पीछे से एक पतला, सुन्दर पथ ऊपर की ओर चला गया है। उसी पथ पर एक दिन वासन्ती के घर अमिता ठहरी थी। उस लड़की ने कांग्रेस का झण्डा फहराने के अपराध में छह महीने की सज़ा काटी थी। अमिता थी कम उमर की विधवा। इस कारण उस में पीड़ा-बोध था। ऐसे दिनों में ही कलकत्ते का बीमार नीरेन्द्र मेरे कहने से लुइसजुबली के यक्ष्मावास में आ कर भरती हुआ था। नीरेन्द्र था यादवपुर में, वहाँ से यहाँ आया। भयंकर रोग, बचने की आशा कम थी। मैं एक दिन उस से मिला। नीरेन्द्र उस समय खून उगल रहा था। आवाज़ टूटी हुई थी। हँसते हुए उस ने कहा, "दादा, आप के कारण ही मुझे यहाँ बिना फ़ीस के जगह मिली। इस ऋण से उऋण नहीं हो सकता। अभी भी आशा टूटी नहीं है।"

अमिता थी दार्जिलिंग में। वह नीरेन्द्र को शाम-सवेरे गीत सुनायेगी, साथ रहेगी—ऐसी व्यवस्था थी। पहले से ही नीरेन्द्र को देख कर अमिता मुग्ध थी और एक महीने के अन्दर ही श्रीमती अमिता ने उस यक्ष्मा के रोगी को अपना मन-प्राण सौंप दिया। नीरेन यह समझ भी नहीं सका। अमिता ने रो-रो कर मुझे लम्बा पत्र लिखा था। नीरेन के बिना उस का व्यर्थ जीवन और भी व्यर्थ हो जायेगा। वह नीरेन को निरोग करेगी और उस से ब्याह करेगी। मैं ने लिख दिया—यह प्रस्ताव उत्तम है।

बाद में क्षय का रोगी बिलकुल निरोग हो गया था। इस के पाँच वर्ष बाद नीरेन और अमिता दोनों ने ब्याह कर लिया। मगर नीरेन की पत्नी और अमिता का पति दोनों ही भिन्न व्यक्तित्व के थे। नीरेन अपनी पत्नी के साथ आजकल टालीगंज में रहता है—और अमिता अपने पति-पुत्र के साथ रहती है मानिकतल्ला में। दोनों ही आज सुखी हैं। एक से दूसरे की कभी मुलाक़ात नहीं होती।

चक्कर काटते हुए एक समय जा पहुँचा कवि मित्र अच्युत चट्टोपाध्याय के पास। वे यहाँ उन दिनों सरकारी नौकरी में किसी ऊँचे पद पर नियुक्त थे और यहाँ के एक विशिष्ट जनप्रिय नागरिक थे। मगर बदक़िस्मती से मुलाक़ात नहीं हुई। वे उस वक़्त कलकत्ते थे। जैसे-तैसे एक पत्र लिख कर लौटना पड़ा।

जाने-सुने घरों में नहीं जाऊँगा ऐसा सोच रखा था। परन्तु चाय के लालच में अन्त में जाना पड़ा। कुटुम्ब के घर पहुँचते ही चिल्ला-चिल्ली शुरू हो गयी। चाट कर, चूस कर, घोट कर उन की आतिथेयता को तृप्त करना पड़ा। देखते-देखते धरती फोड़ कर निकल आये स्वजन-परिजन बन्धु-बान्धव आदि। परन्तु रहा कुल दो ही दिन। इस के बाद मोटर से शुक्ना जंगल को रवाना हुआ। शरीर पर पड़े ओवरकोट और सिर पर की टोपी लौटानी जो थी मित्रवर भूपेन बख्शी को। वे, वे हैं गुल्मामोहरंग चाय-बग़ीचे के मैनेजर।

मोटर चल पड़ी तेज़ चाल में रेल पथ से बाज़ी लगा कर। धूप पार कर कार्सियांग सोनादा को पीछे छोड़ते हुए तिनधरिया की ओर। साथ में थी प्लेन से दमदम पहुँचने का टिकट। आज अपराह्न में बागडोगरा से प्लेन से उड़ूँगा और शाम से पहले ही कलकत्ता।

द्वितीय खण्ड

पुराण में देवी धरित्री प्रश्न उठाती हैं : भगवन्, तुम ने अपना स्वरूप कहाँ छिपा रखा है ? मानव के आकार में तुम प्रकट क्यों नहीं हो ? क्या तुम ने उस उदार गिरि शृंग-माला के विशाल मौन में ही स्वयं को अभिव्यक्त किया है ?

पद्मनाभ श्री विष्णु उत्तर देते हैं : प्रिये, मानव के क्षुद्र आकार में महाहैमवन् का वह प्रसन्न आनन्द रूप कहाँ ? वहाँ तो पत्थर की कठिनता में देवतात्मा का प्रकाश है। वह विराट् तुषार-शैलाधार सभी दुर्योगों से, सभी प्रकार के शीतातप, भय, मृत्यु, वेदना, जरा, जयोल्लास आदि से परे है। महत् स्थाणु के मध्य देवतात्मा योगासीन हैं। वे अजर हैं, अव्यय हैं, अमेय हैं।

धरित्री अपने शिरोदेश में धारण किये हुई हैं महाजटाजूटधारी तुषारकिरीटी उन देवादिदेव को, जिन के नेत्र चिरतन्द्रा में निमीलित हैं और जो आत्मस्थ योगासन में आसीन हैं। सुदूर दक्षिण में महाजलधि अपने तरंगरंग में धरित्री का चरण-चुम्बन करते हैं।

इस भुवनमनोमोहिनी तुषारकिरीटिनी की ओर मुग्ध नेत्रों से निहार रहे हैं सम्राट् अशोक। ध्यानस्थ, आत्मसमाहित इस जगद्वरेण्य पुरुषश्रेष्ठ की दृष्टि भारतवर्ष के सुदूर भविष्यत् की ओर लगी है—साम्प्रतिकता के आवरण को परे हटा कर। बात कोई दो हज़ार दो सौ वर्ष पहले की है।

पाटलिपुत्र में तृतीय बौद्ध महासम्मेलन अभी-अभी सम्पन्न हो चुका है। सम्राट् ने राज-धर्म को कल्याण-धर्म में रूपान्तरित करने का प्रस्ताव ग्रहण किया है। संसार की प्रथम मानव-सभ्यता का प्रवर्तन करने की प्राथमिक नीति उन्होंने भगवान् बुद्ध के जीवनादर्श के अनुरूप पंचशिला पर उत्कीर्ण करा दी है। किन्तु फिर भी उन के मन में कोई आनन्द नहीं है, ललाट पर चिन्ता की लकीरें हैं और दृष्टि में विषाद ही विषाद है। आँखें शोक-मग्न। देश-देशान्तर से आये संन्यासियों ने उन से पूछा, हे अमिततेज ! तुम अब भी तुष्ट नहीं हो क्या ? क्या आसमुद्र हिमाचल ने तुम्हें वरण नहीं किया ?

प्रियदर्शी धर्माशोक ने उत्तर दिया, महात्मन् ! मैं तो भिक्षु हूँ, कल्याण का बुभुक्षु हूँ। विश्वमानव के दुःख, मृत्युभय, निरानन्द-दशा आदि के विदूरित हुए बिना मुझे शान्ति कहाँ ? अथवा इस देवभूमि भारत को ही आनन्द लाभ कहाँ ? सभ्यता की श्रेष्ठ अभिव्यक्ति कहाँ ?

हे भिक्षुपते, कर्तव्य का आदेश करें।

गैरिक-वसन, नग्नपद, निराभूषण, सम्राट्-भिक्षु संन्यासियों के चरणों में नतजानु हो गये। अश्रु-विगलित नयनों से निवेदन करने लगे : महात्मन्, मेरे जीवन का व्रत यही है कि भगवान् बुद्ध के योग-धर्म का प्रचार विश्व भर में हो, पृथ्वी के सातों खण्डों में उन की वाणी नव-कल्याण-चेतना लाये, बुद्ध की दैव-सत्ता प्रत्येक मनुष्य के चित्त में प्रतिष्ठित हो। त्याग के संसार, अहिंसा के मन्त्र में दीक्षित हो, प्रेम के मन्त्र से पुनरुज्जीवित हो, मन्त्र से उसे सिद्धिलाभ हो, शान्तिमय सहजीवन के मन्त्र से उसे नवजीवन-वेद की व्याख्या सुलभ हो। अपने निर्वाण से पहले विश्व-जीवन की यह सार्थकता देख लेने का अभिलाषी हूँ, महात्मन् !

इतिहास में इस बात की सूचना मिलती है कि राज-भिक्षु की वह अनन्य लालसा पूरी हुई थी। बौद्ध-धर्म के प्रचार की कामना से सम्राट् अशोक ने सब से पहले इसी कश्मीर में रुक कर पश्चिम में गान्धार की ओर एवं पूर्व में तिब्बत और मध्य एशिया की ओर संन्यासी भिक्षुओं को भेजा था। एक यूनान को छोड़ कर पृथ्वी का और कोई भी तब तक जागा न था। मंगोलिया और मिस्र उस समय भी तन्द्राच्छन्न थे; बैक्ट्रिया, असीरिया, यारकन्द, चीन आदि सभी सोये थे। यूरोप जंगल-जंगल और सागर के किनारे-किनारे नंग-धड़ंग भटकता फिर रहा था। अमरीका का तो अभी जन्म भी नहीं हुआ था। सम्राट् अशोक की प्रेरणा के फलस्वरूप बौद्ध भिक्षुओं ने तिब्बत में, मध्य एशिया में और गान्धार में बौद्ध सभ्यता की कीर्ति स्थापित की। उस कीर्ति का ध्वंसावशेष कुनलुन पर्वतमाला के उत्तरी डांडे के पार ताकलामकान के विशाल मरुदेश में, यारकन्द में, खुतन में और किरिया नद के दोनों तटों पर आज भी मौजूद हैं। उन के नाम हैं मसारताग, कराडंग, दंदान उइलिक, आइपा इत्यादि। शत-सहस्र वर्षों के रेतीले झकोरे इन ध्वंसावशेषों को आज तक भी मिटा नहीं पाये हैं। आज भी बलुआ पत्थर के इन के परकोटे गौतम बुद्ध की वाणी धारण किये हुए हैं।

सम्राट् अशोक की इस विश्व-बौद्ध वाणी-साधना के प्रथम केन्द्र के रूप में परिणत होने का सौभाग्य कश्मीर को मिला था। कश्मीर से निकले भिक्षुओं के दल ने सर्वप्रथम अशोक-शासित उस गान्धार में प्रवेश किया था जिस पर कभी महाभारत के युग में चन्द्रवंश का प्रभुत्व था। आज की तरह उस समय भी गान्धार का प्रमुख प्रवेश-पथ वह पुरुषपुर ही था जिसे आज पेशावर कहते हैं। सम्राट्-भिक्षु अशोक ने राजधानी पुरुषपुर को केन्द्र बना कर समग्र गान्धार में बौद्ध सभ्यता प्रतिष्ठित की थी।

बौद्ध सभ्यता ने भारत के उत्तर की दिग्विजय-यात्रा कश्मीर से ही शुरू की थी। उन दिनों पड़ोसी राष्ट्रों की स्वातन्त्र्य-सीमा आज की तरह चिह्नित नहीं थी। उधर फ़ारस का पथ और इधर तिब्बती-मंगोलिया का पथ बिलकुल खुला हुआ था। मानव-धर्म-नीति और सुशासन के प्रभाव से उन दिनों सभी जातियों के मनुष्य सहज भाग से अधीनता स्वीकार कर लेते थे। इस लिए पश्चिम एशिया, तिब्बत, चीन, मंगोलिया, और दक्षिण में सिंहल और समग्र दक्षिणपूर्व एशिया सम्राट् अशोक की धर्म

और मानवता की नीति के आगे आत्म-समर्पण कर के प्रसन्न हुए थे।

यह कीर्ति थी भारत की संस्कृति की। कन्याकुमारी से कशमीर तक इस संहृति-मन्त्र का प्रधान केन्द्र था। इस की विश्रुति की दाय-धारा और इस की सभ्यता शत-शत उत्थान-पतन देख चुकी है और उन्हीं के भीतर से हो कर आगे बढ़ती आयी है। महाप्रलय और झंझा, संहार और सृजन, दानवीयता की दाढ़ों के अनगिनत दंशन, असुरों की कराल दृष्टि और संख्यातीत संन्यासियों तथा दैव-मानवों की भीतिहीन प्रतिभा का स्वाक्षर, इस संस्कृति की पोर-पोर पर काल-कालान्तर का सारा इतिहास अंकित रह गया है। मगर यह सच है कि ढाई हजार वर्ष पूर्व गौतम बुद्ध के जन्म के ही साथ-साथ सनातन भारत का भी नवजन्म-लाभ घटित हुआ था।

हम कशमीर की ओर बढ़ रहे थे।

सीधे उत्तर में खड़ी है धौलाधार पर्वत-श्रेणी। उस की शाखा-प्रशाखाएँ उत्तर की ओर से ले कर पूर्व की ओर तक फैली हैं। यह पहाड़ नंगे फ़क़ीर की तरह ऊर्ध्वबाहु है। मानो बुभुक्षा और वंचना का मारा चिर-दरिद्र हो। हमारी राह धौलाधार की ओर नहीं जाती, हमें तो उत्तर-पश्चिम की ओर जाना है। इरावती नदी पार कर के जम्मू की ओर। पुराने ज़माने के चक नामक एक बर्बर पहाड़ी जाति ने कशमोर के ऊपर प्रबल अनाचार किया था, सम्भवतः उन्हीं के नाम का अनुसारी चक्की नामक एक चुंगी-नाका पार कर के हम पठानकोट से आगे माधोपुर और लखनपुर की ओर बढ़ रहे थे। पिछली रात को हम जलन्धर से पठानकोट तक शतद्रू और विपाशा लाँघ आये हैं। वस्तुतः कशमीर के परिभ्रमण के दौरान कभी न कभी पंचनद और सिन्धुनद पार करना ही पड़ता है। नदी से मिले-भेंटे बिना पहाड़ों के प्रदेशों में आना-जाना सम्भव नहीं होता। असम में ब्रह्मपुत्र, भूटान में रायलाक और कालचोनी, सिक्किम में तिस्ता और रंगीत, दार्जिलिंग में महानन्दा, नेपाल में बागमती, कुमायूँ में कोसी और गंगा-यमुना, जहाँ कहीं भी जाओ, जिस किसी भी पहाड़ पर, जिस किसी भी हिमालय में जाओ, वहीं नदी-योग उपस्थित होता है। प्रभात की प्रथम रक्त-रश्मि की छाया में देख आया हूँ शीतलसागर ह्रद, पार कर आया हूँ विपासा की गेरुई धारा। देख आया हूँ कि इस सुदूर उत्तर में भी बांगला-देश बिखरा पड़ा है। यहाँ की राह-बाट में, परती-पाँतर में, धन-खेतों और गुल्म-लताओं में अपने समग्र नीलाभ ऐश्वर्य-संभार से परिपूर्ण ऐन बांगला देश की झलकियाँ जहाँ-तहाँ दिखाई दे जाती हैं। दूर-दिगन्तों पर धूम्राभ पर्वत-श्रेणियों के प्रत्येक स्तवक में उतरते श्रावण के वर्षण-क्लान्त मेघों के दल विश्राम कर रहे हैं। तितलियाँ और पतिंगे धूप निकलते ही सैर को निकल पड़े हैं।

पठानकोट से जम्मू तक का रास्ता जो अब तक किसी काम का न था, अब चिक्कण और मसृण हो गया है। पहले सियालकोट से जम्मू तक रेल-पथ था, मगर अब

सियालकोट पश्चिम पाकिस्तान में है। पठानकोट से जम्मू मोटर-मार्ग से जाने पर सड़सठ मील दूर पड़ता है। समग्र कशमीर दो भागों में विभक्त है। पीरपंजाब के इस पार जम्मू उपत्यका है और उस पार कशमीर उपत्यका। जम्मू बहुत समय तक पंजाब के अन्तर्गत रहा। जम्मू हिन्दू-प्रधान है, और कश्मीर वर्तमान काल में मुसलिम-प्रधान।

माधोपुर पीछे छूट गया और हम इरावती का पुल पार कर के और लखनपुर को भी पीछे छोड़ कर चले पश्चिम की ओर। सखुए, सागौन और शीशम-वनों से छायामय और पक्षियों के कलरव से गूँजती उपत्यका की सड़क मन को बड़ी प्रीतिकर लगती है। दक्षिण के हैदराबाद की तरह इधर पंजाब का भी कोई सुदीर्घ अचल पठारी अधित्यका है। रूखा रक्तवर्ण पहाड़ों का लता-गुल्म-विजड़ित चौरस सानुदेश। इन्हीं अंचलों के अन्दर कहीं-कहीं पीरपंजाल की जंगली नदी की रक्तवर्ण धाराएँ भागी चली जा रही हैं। इस सड़क से सियालकोट की सीमा बहुत ही निकट है। यह रक्तवर्ण धारा इरावती की ही शाखा-प्रशाखाओं में से है। उतरी आ रही है धौलाधार पर्वतश्रेणी के किसी उद्‌गम से। मूल उत्स सम्भवतः पीरपंजाल में है। धौलाधार पीरपंजाल का ही क्रोड़पर्वत है। मगर इतनी लाल, बिलकुल रक्त की सी धाराएँ कहीं और देखने में नहीं आयीं। हो सकता है, रक्तगंगा इसे ही कहा गया हो।

निस्तब्ध दुपहरी में एक गाँव पार कर आया। नाम था शम्बा। शम्बा का अर्थ है बिजुरी की आँकी-बाँकी रेख, अगर शम्ब है तो यह है वज्र दण्ड। छोटा सा पहाड़ी गाँव पूरब से पश्चिम की दिशा में फैला है, दाहिनी ओर पहाड़ी क्रोड़-भूमि है। वनमय उपत्यका और आँकी-बाँकी पहाड़ी नदियों की शिलाहत धाराओं ने निस्पन्द मध्याह्न को और भी निविड़ बना दिया है। निगाहें टिका कर देखिए तो दूर दिगन्त पर पंजाब के मैदानी इलाक़े को यहाँ से देखा जा सकता है। हिमालय की पहाड़ी शिराएँ-उपशिराएँ उसी मैदानी इलाक़े के मेरुदण्ड की तरह उत्तराखण्ड की ओर फैलती चली गयी हैं। ये ही हैं हिमालय की बुनियादें, उस के भू-तात्त्विक पंजर-बन्धन की काठियाँ।

मन में कुछ अस्वस्ति सी थी, या कहिए कि कुछ शंका सी थी। दिल्ली से चलते समय किसी-किसी ऊँचे अफ़सर ने डरा दिया था, कशमीर में खून-खराबा मचा है, उधर न ही जायें तो···· १९५३ के अगस्त मास का मध्य-भाग चल रहा था उस समय। लगभग सप्ताह भर पहले शेख़ अब्दुल्ला गद्दी-च्युत हुए थे और कई सप्ताह पहले डॉ० श्यामाप्रसाद मुखोपाध्याय श्रीनगर में नजरबन्द अवस्था में ही अचानक मर गये थे। अनजाने भविष्यत् की सोच में सारा कशमीर उद्विग्न था।

खेद के साथ ही सही, स्वीकार तो करना ही पड़ता है कि छुटपन से ही खून-खराबे देखते-देखते हम बड़े हुए हैं, क्योंकि हम बंगाली जो हैं। जीवरक्त हमारा खाद्य है। टटके मीन-मांस के हृत्पिण्ड से क्षरित रक्त को देखते ही हमारे मुँह में पानी भर आता है। रक्ताम्बर हमारी दृष्टि में पवित्र परिधेय है। रक्तलोभातुरा महाकाली हम लोगों की इष्टदेवी हैं। बलिदान का पुण्यरक्त देखते ही हम भावाप्लुत हो उठते हैं।

सन्धिपूजा की असुरनाशिनी चण्डी का स्तोत्र सुनते-सुनते हम भावावेश में आ जाते हैं। रक्तजवा (अड़हुल) और रक्तपद्म हमारे लेखे पूजा के उपचार हैं। हमारी स्त्रियाँ पैरों में लाल महावर लगाती हैं और सींथ पर लाल सिन्दूर धारण करती हैं। लाल किनारे की साड़ी उन का सभी मंगल-उत्सवों का पहनावा है। बंगाली कवि उदयास्त-गगन की रक्तच्छटा से काव्य की प्रेरणा पाते हैं। राजनीति में भी ठीक यही हाल है। १९०५ से १९५० तक का इतिहास बंगाली के रक्तक्षरण की कहानी है। शैव भारत की राजनीति ने बंगाली को अभिभूत नहीं किया, उसे तो बस रक्त-विप्लव में ही आनन्द मिला। नेताजी सुभाषचन्द्र जिस दिन संहारमूर्ति बन खड़े हुए, उस दिन बंगाली ने उन के निमित्त प्राणों का श्रेष्ठ नैवेद्य सजाया। बंगाल का सरकारी प्रतीक है बाघ : रायल बंगाल टाइगर। रक्त से बंगाली को डर नहीं लगता। अभी कल की ही बात है, ट्राम के भाड़े का कुल एक पैसा बचाने के चक्कर में बंगाली ने खून की होली खेली है। किन्तु फिर भी ठीक उस समय जब कि साम्प्रतिक राजनीतिक विपर्यय के परिणाम-स्वरूप जम्मू और कशमीर के जनसाधारण विस्मय-विमूढ़ और किंकर्तव्यविमूढ़ हों, उस अनजाने देश में प्रवेश करना अन्देशा का कारण तो है ही। जहाँ देखो वहीं एक दबी हुई सी उत्तेजना दिखाई देती है, कशमीर मिलिशिया की कर्म-तत्परता नाना प्रकार से और नाना दिशाओं में प्रकट हो रही है। कौन जाने आग कब भड़क उठे।

देखते ही देखते बहुत दूर निकल आया हूँ। कितने ही मोड़ मुड़ चुका हूँ, उपत्यका और अधित्यका की सर्पिल गति हमारी बस को अनेक चढ़ाइयों-उतराइयों से घुमा-फिरा कर ले आयी है। तपती धूप की मूर्ति में ढली दुपहरी लगभग ढल सी चुकी है। मैदानी इलाक़े का कलरव-कोलाहल अब कहीं भी सुनाई नहीं पड़ता। जब-तब लाल माटी की अधित्यका के सखुआ-सागौन-शीशम वृक्षों के छायानिबिड़ वनों में पक्षी-समाज का विश्रम्भालाप कर्णगोचर हो जाता है।

पहाड़ी पंजाब हिन्दू-प्रधान है, शिव और शक्ति का पुजारी है। इसी कारण जम्मू उपत्यका में प्रायः हर कहीं हिन्दू मन्दिर हैं। कहीं रघुनाथ, कहीं रुद्रेश्वर तो कहीं भैरव विराज रहे हैं। राजपथ से हट-हट कर निराले सुनसानों में पेड़ों के घने झुरमुटों के बीच पूजा-पहर के घड़ी-घण्ट की आवाज़ सहसा सुनाई पड़ जाती है। कहीं पट्ट-वस्त्र पहने पुजारी ब्राह्मण देवल के बाहर आ खड़ा होता। पहाड़ी की उस बहुत ऊँची टेकड़ी पर वह जो सफ़ेद और लाल पताकाएँ फहरा रही हैं, वे शायद त्रिशूली के मन्दिर की हैं। कहीं कोई एक भी मसजिद दिखाई नहीं देती, कहीं कोई एक भी सिख-गुरुद्वारा दिखाई नहीं देता। कशमीर की धमनियों में हिन्दू और बौद्ध-भारत का रक्त सदा से प्रवाहित है।

दुपहरी ढल गयी। हमारी बस जम्मू शहर में पहुँच कर रुकी। घण्टे भर के लिए छुट्टी मिली। जम्मू का मतलब है पंजाब और कशमीर का संगम-क्षेत्र।

शहर बड़ा है। उस का बाज़ार भी खासा बड़ा और फैला हुआ है। पहाड़ की

नाति-उच्च प्रशस्त उपत्यका पर यह शहर बहुत ही प्राचीन है। इधर पंजाब और उधर श्रीनगर के होने से यहाँ आयात-निर्यात का कारोबार खूब होता है। बाहर से नाना सम्प्रदायों के व्यवसायी यहाँ आ कर बहुकाल से अपनी सौदागरी का राजपाट जमाये बैठे हैं। सड़कें सँकरी हैं, जैसी कि अकसर पहाड़ी शहरों में होती हैं। किसी ओर ढालू तो किसी ओर ऊँची चढ़ाईदार। यहीं कशमीर के महाराजा की शीतकालीन राजधानी है। आज महाराजा हरीसिंह अपने कृत-कर्म की बदौलत कहीं और निर्वासित हैं। उन की गद्दी पर विराज रहे हैं उन्हीं के नौजवान पुत्र कर्णसिंह। वे ही आजकल कशमीर के सदर-ए-रियासत अर्थात् बहुत-कुछ राज्यपाल के से पद के अधिकारी हैं।

पूरे कशमीर और जम्मू में प्रधान खाद्य गेहूँ नहीं, चावल है। यह देख कर कुछ-कुछ विस्मय में पड़ जाता हूँ कि बंगालियों के अति-परिचित भोज्य उपकरण कशमीर में प्रायः सर्वत्र प्रचलित हैं। लौकी, बैंगन, केले के थम्भ का गाभा, कच्चा केला, झिंगुनी-तुरई, चठैला-करैला, डूमर-गूलर, कुहड़ा, लटिया साग और कुँहरे की डंठल का सिरा। यह सोचना भूल होगा कि कशमीर के हिन्दू-मुसलमान उग्र स्वभाव के और बलिष्ठ हैं। उन की प्राणशक्ति का कोई भी प्रबल परिचय कहीं भी नहीं मिलता। ऐसी निरीह जाति भारत भर में कहीं नहीं है। इस लिए यहाँ वाले सदा से मार खाते आ रहे हैं। फिर भी सिर इन्होंने कभी एक बार भी नहीं उठाया। कभी एक बार भी यह नहीं सुना गया कि उत्पीड़ित कशमीरियों ने विप्लव की घोषणा कर दी है अथवा यह कि दस्युदल को मार भगाया है। ऐसी कोई बदनामी इन की नहीं है। शक्ति के मामले में ये बंगाली की अपेक्षा बहुत अधिक दुर्बल हैं। असल में ये हैं प्राचीन आर्यजाति के महाविनाश के साक्ष्य। ये तो केवल मधुर स्वभाव के, केवल अतिथि-परायण, केवल परम शान्त भर हैं, बस। मगर न तो इन में कोई व्यक्ति-स्वतन्त्रता की भावना है और न ही आत्म-सम्मान को। चाहे किसी भी श्रेणी का कोई शासक बाहर से आ कर इन के ऊपर प्रभुत्व क्यों न जमा ले, ये आत्म-समर्पण के लिए तैयार हैं। इसी अति कोमल प्रकृति के भीतर से वज्र की कठोरता ले कर उठ खड़ा हुआ है आज एक इनसान—बख्शी गुलाम मुहम्मद।

जम्मू का चावल भारत-प्रसिद्ध है। भरावदार दाने बड़े ही सुडौल आकार के होते हैं, स्वाद भी बहुत ही बढ़िया होता है। एक गुजराती होटल में दोपहर का भोजन निपटा कर सड़क किनारे की एक मनिहारी की दुकान पर जा बैठा। मैं बंगाली हूँ, यह सुन कर दुकानदार ने बड़े आदर से आसन दिया। कशमीर के लिए सर्वान्तिम आत्म-बलिदान एक बंगाली ने ही दिया है, यानी डॉक्टर श्यामाप्रसाद ने। समग्र कशमीर आज बंगालियों के जय-गान से मुखर है। कहते-कहते मुसलमान छोकरा बहुत ही उत्साहित हो उठा। उस का खयाल है, श्यामाप्रसाद की अकाल मृत्यु के लिए 'शेख साहब' ही पूरी तरह जिम्मेदार हैं। "हम कशमीरी हूँ, कभी झुट नहि बोल्ता सा'ब। दुनिया भर इनसान को मालुम होगै।"

हमारी मोटर-बस अब जम्मू भी छोड़ चली। दोपहर के बाद का समय है। गाड़ी एन० डी० राधाकिशन कम्पनी की है। लाल रंग की यानी डाकगाड़ी। ड्राइवर अत्यन्त ही भद्र और सौम्यदर्शन कश्मीरी हैं। नाम बख्शी जी। पहाड़ी रास्ते के विपद्-संकुल टेढ़े-मेढ़े मोड़ों से हो कर गाड़ी निकाल ले चलने के लिए जिस धीर विचार बुद्धि और सचेतन दृष्टि की आवश्यकता होती है, उस का प्रमाण बख्शी जी की अनन्य साधारण योग्यता में पग-पग पर मिल रहा था।

जम्मू से ऊधमपुर कोई बहुत दूर नहीं है। अब रास्ते में थोड़े-बहुत पहाड़ी उठानों के शैलप्राचीर भी जहाँ-तहाँ आसपास खड़े मिलने लगे हैं। चढ़ान के रास्ते हम धीरे-धीरे ऊपर की ओर उठते जा रहे हैं। ऊधमपुर निस्तब्ध है। अदूर सघन कुंज में बट-अश्वत्थ की छाया से सर्वथा आच्छन्न अन्तराल में कोई मन्दिर दिखाई दे रहा है। लगता है आज वहाँ कोई विशेष पर्व था। सड़क के मोड़ पर किसी राजा की उद्यानवाटी का विशाल तोरण है। उस के ही नाके पर फ़ौजी पोशाक पहने सशस्त्र पहरेदारों का जमावड़ा है। बाग़ का फैलाव बहुत बड़ा है, और दूर से ही नज़र आता है। एक पहाड़ी टीले के ऊपर एकमंज़िला राजभवन। वहाँ आजकल शेख अब्दुल्ला साहब नज़रबन्द हैं। अन्तरित बन्दी तो वे अकेले हैं, किन्तु रहते हैं सपरिवार। देश की निरापदता की खातिर उन्हीं के अपने प्रमुख शिष्य बख्शी ग़ुलाम ने उन्हें बन्दी बना रखा है, मगर शिष्य से गुरु अपनी दक्षिणा नियमित पा रहे हैं, यानी नज़रबन्दी की दशा में भी उन्हें स्वच्छन्दता की पराकाष्ठा के उपभोग का अवसर दे रखा गया है। अखबार, रेडियो आदि का उन के लिए भरपूर बन्दोबस्त है। उन की गतिविधि राजभवन के बाग़ तक ही सीमाबद्ध है। इस भवन के बरामदे से पूरी जम्मू-उपत्यका नज़र आ जाती है।

ऊधमपुर छोड़ने के बाद गाड़ी अब चढ़ाई की राह पकड़ कर तेज़ी से छूट चली। अब जैसे शतदल का एक-एक दल उन्मीलित होता जा रहा है। पूरब की ओर अब धौलाधार का विस्तार हमारे समानान्तर चल रहा है और हम प्रवेश कर रहे हैं उत्तर में पीरपंजाल की टेढ़ी-मेढ़ी चढ़ाई वाली राह के यात्रा-पथ में। गोधूलि में अब और देर नहीं है। हमारे दोनों ओर जहाँ-तहाँ उतर रही हैं गिरि निर्झरिणियाँ, उन की पायल की झंकार सुनाई पड़ रही है। साथ ही सुनाई पड़ रहा है कलकण्ठियों का गुनगुन गान। मैदानी दुनिया में कहीं भी इन के दर्शन नहीं होते। ये हिमालय के पारिजात-कानन की आड़-ओट में रहते हैं। आज है शुक्ला सप्तमी। हिमालय की राज-सभा का अधिवेशन आज चन्द्रभागा के किनारे-किनारे होगा। उसी के लिए तैयार हो रही हैं ये। 'सुन्दरी झर्णा तरलित चन्द्रिका चन्दनवर्णी' इन्हीं का बिरुद है।

खद नाम की पहाड़ी बस्ती के पास पहुँच कर चाय पी गयी। यहाँ के निवासी इसे 'कुद' कहते हैं। कहीं कुछ नहीं है, बहुत ही ऊँचे से बहुत ही नीचे तक चली गयी है यह बस्ती। तीर्थ पथ में इसे साधारण चट्टी कहा जाता। यहाँ दो उल्लेख योग्य जलधारापात निगाह में पड़ते हैं। पूरा खद चन्द्राकार है। अश्वखुराकृत। प्रपात ठीक

वैसा ही है जैसा कि मसूरी पार कर के कामठी प्रपात देखा था या जैसा कि चेरापूंजी की जलधारापात देख आया हूँ। अब तक हम समुद्र-सतह से लगभग पाँच हज़ार फ़ुट ऊपर तक की ऊँचाई पर पहुँच चुके हैं। हवा हलकी है। मुँह-चोर स्निग्ध हवा ने हम में नये जीवन का संचार कर दिया है। सन्ध्या की छाया में हम छोटे से पहाड़ी स्वास्थ्य-केन्द्र बाटोटे आ पहुँचे। हम कुल कोई पचीस यात्री हैं। सब कह रहे हैं कि इस बार सैलानियों की भीड़भाड़ कम है। राजनीतिक कारणों से सभी त्रस्त हैं। किसी-किसी की धारणा है कि पाकिस्तान की ओर से हमला हो सकता है। हमारी गाड़ी में स्त्रियाँ भी हैं। दो-चार बच्चे भी हैं। कई ने उलटियाँ शुरू कर दी हैं यानी इन्हें चक्कर लग गया है। एक हैं मद्रासी। सरकारी कर्मचारी। नाम अय्यर। उन की आर्थिक अवस्था का चाकचिक्य हमारे चारों ओर बिखरा पड़ रहा है। अय्यर अपने स्वास्थ्य के उद्धार की कामना से कश्मीर जा रहे हैं। युवक इन्हें कहिए तो ठीक न होगा, प्रौढ़ कहना खटकता है। लगता है, किसी ने इन्हें कह रखा है कि दूध खूब पीना और फल उस से भी अधिक खाना। फल यह है कि इन के दोनों हाथों में कोई न कोई फल हरदम होता है। झोले में फल, जेबों में फल। गाड़ी कहीं भी रुकी नहीं कि ये दूध की दुकान खोजने दौड़ पड़ते हैं। सवेरे से कोई बारह अधसेरा दूध पी चुके हैं। फलों का रस इन की कोट-पतलून से टपकता ही रहता है। बाटोटे के छायान्धकार में अय्यर साहब कुछ देर को अन्तर्हित हो गये थे। बख्शी जी ने उन के लिए बार-बार हार्न बजाया। बड़ी देर बाद अय्यर साहब दौड़ते हुए आये। हाथ-मुँह गीले ही लिये हुए। परम प्रसन्न। गाड़ी में सारे दिन इन के रंगढंग पर दबी हँसी, बोली-ठोली और नैन-सैन चलती ही रही है। अय्यर ने कभी भ्रूक्षेप तक नहीं किया। दाक्षिणात्य के साथ आर्यावर्त वालों की रुचि-मेल आज तक सध नहीं पाया।

गाड़ी छूटी। मगर अब डर लगने लगा था। पहाड़ी राह अन्धेरी हो गयी है। गाड़ी की हेडलाइट जल रही है। रात अपने दिगन्त डैने फैलाये हुए पीरपंजाल की चोटी-चोटी पर उतर आयी है। दिनमान में जो हिमालय शोभा और सौन्दर्य का प्रतीक है, रात के अन्धेरे में उस की दानवाकार मूर्ति हृत्कम्प ला देती है। बहुत ऊँचाई पर चढ़ना पड़ रहा है, और दिक़्क़त यह है कि राह चौड़ी नहीं है। कोई जरा सी भूल हुई नहीं, मनोयोग में कोई रंचमात्र विघ्न आया नहीं, या दृष्टि को ही किसी विभ्रम से पाला पड़ा नहीं कि हमारे अस्तित्व का अवलोप अवश्यम्भावी है। आम तौर से रातों की ओर अभिमुख समय में पहाड़ी रास्तों पर मोटर चलाना निषिद्ध है। लेकिन कई विशेष क्षेत्रों में वह निषेध-नियम मानने से काम ही नहीं चलता। कहना न होगा कि निरुपाय दृष्टि से बाहर की ओर ताकते हुए हम रुद्धश्वास हो कर गाड़ी में बैठे रहे।

जिधर खड्ड है उधर ही मैं हूँ। गाड़ी के पहिये और मौत के बीच सिर्फ़ कुछेक इंच का व्यवधान है। हेडलाइट की रोशनी में मैं प्रतिक्षण उस का परिमाप कूतता

रहा। लेकिन आतंकमय विमूढ़ता का भी कभी न कभी अन्त तो होता ही है। सहसा कहीं से वन-फूलों की सुगन्ध का कोई झोंका आ जाता तो मृत्युभय भी मधुर हो उठता। पलकों में समाती, शुक्ला सप्तमी की म्लान चाँदनी सहसा हिमालय के उस कृष्णकाय दैत्य-दल के वक्षपट पर अपनी विशाल तिर्यक् छाया डालती दिखाई दे जाती तो हत-चेतन विस्मय के ऊपर से अनन्त का तोरण-द्वार खुल जाता। किसी एक बिन्दु पर ठहर कर वर्तमान थरथर काँपता रहता।

हम चन्द्रभागा के धारा-पथ का अनुसरण करते हुए बढ़ रहे थे। उस की रक्त-वर्ण खर-धारा में भँवर नाच रहे हैं। भँवरदार पानी के बीच मायामयी चाँदनी में सैकड़ों चन्द्र-प्रतिबिम्ब चूर-चूर हो रहे हैं। उतराई के पथ से हम रामबाग़ पुल की ओर उतरते आ रहे हैं। वन-तल अन्धकारमय है। चन्द्रभागा के जल-तल पर चन्द्र-हास रात उतरती जा रही है। उस के खरतर प्रवाह में ज्योत्स्ना लाख-लाख वैदूर्य-मणियों की तरह जल रही है।

सामने के रत्नांचलों की चोटियों के ऊपर आकाशलोक में सप्तर्षि आ खड़े हुए। पुराणों-महाकाव्यों से एक-एक कर के कितनी ही अप्सराएँ निकल आयी हैं: चाँदनी रात में लज्जावसन विसर्जित कर के वे अवगाहन के लिए उतरी हैं। वन्य केसरी के रक्ताक्त पदांकों का अनुसरण करता सिंह-अहेरी वल्कलधारी किरात नदी की बालुका-बेला पर आ खड़ा हुआ। नग्नकान्ति विद्याधरा भूर्जपत्र पर रक्तस्वर्णाक्षरों में प्रणय-संगीत लिखी जा रही है। हिमालय की गुहा के रन्ध्र से निर्गत शीतल श्वास निकटवर्ती बँसवाड़ी में प्रवेश कर के अपने मर्मर से मधुर स्वरयोजना कर रही है। मोरपंखी किन्नर-दल उस के ताल-ताल पर नृत्य करता जाता है। आरण्यक ऐरावत विशाल देवदारु काण्डों में अपने गात्रों का घर्षण कर जाता है। घर्षण-क्षत काण्डों से निकली सुगन्ध से पर्वत-शीर्ष सुवासित हैं। हिमालय की वन्य ज्योतिर्लता की आभा से आलोकित गृहाभ्यन्तर में अरण्यचारी किरातगण और यक्षिणीगण की विलोल-विह्वल लज्जा-हरण रस-रंगलीला चलती रही है। अन्ततः मेघ उतर आते हैं और गुहामुख पर यवनिका का आवरण डाल देते हैं। प्रातःवेला में स्वर्णपुष्प चयन के लिए सप्तर्षि पधारते हैं। वे तुषार-प्रान्तर-प्रति के शतदल सरोवर पर टहल कर लौट जाते हैं।

उसी ज्योतिर्लता और शतदल-कुसुम की टोह में उस चाँदनी रात में मेरी उत्सुक दृष्टि उस तारका-स्पर्शी हिमालय की चोटी-चोटी पर फिरने लगी। रामबाग़ पार कर के हमारी गाड़ी फिर उसी अँधेरे-उजाले पर्वत-गात्र के विपज्जनक पथों से चढ़ाई तय कर के चली। आतंक और आनन्द के रंगों में रँगा वह पथ विचित्र है। उस भय को भय कहना भी ठीक नहीं, विमूढ़ विस्मय है वह तो। अन्देशे के मारे सभी गुमसुम हैं, बात कोई नहीं करता। गाड़ी थर्ड गीयर में है। उस की अविराम गों-गों से कान बहरे हो रहे हैं। जिन्होंने चाँदनी रात में विमान से गगन-विचरण किया होगा, वे इस स्वर को खूब जानते होंगे। विमान स्वप्न-सागर में बहा जा रहा है। भय की चेतना विलुप्त

हो गयी है। विमान विकल हो कर नीचे जा पड़े तो क्या हो। क्यों परिणति के विषय में मन अनुभूतिशून्य रहता है। नीचे की धरती दिखाई जो नहीं देती। कुतुबमीनार की चोटी पर चढ़ने से डर इस लिए लगता है कि गिर पड़ने से जिस कठिन भूमि के साथ शरीर-संघात होगा उसे हम स्पष्ट देख पाते हैं। ज्योत्स्ना लोक में दस हज़ार फ़ुट की ऊँचाई पर शून्य में विमान पर आरूढ़ हो कर तो हम एक अवास्तविक मायामय व्योमलोक मात्र ही देख पाते हैं—वह लोक शब्द-जगत् से ऊर्ध्वतर है। वहाँ तक पक्षी की पहुँच सम्भव नहीं। वहाँ प्राण की कोई चेतना नहीं। अनन्त गगन में वही आश्चर्यकर मात्र है शून्य। घण्टे में तीन सौ मील की गति में विमान बढ़ चला है मगर इस वेग का अनुभव किसी को भी नहीं होता। प्रचण्ड गति, प्रचण्डतर वेग और फिर भी विमान मानो स्थिर का स्थिर है, तनिक भी हिलता-डुलता नहीं। अचंचल है वह, गति-चेतना-विहीन है वह। चन्द्रमा नहीं हिलता, तारे नहीं हिलते, महाशून्य नहीं हिलता। आरोही आराम-गद्दियों पर सोये नींद में खोये हैं। हो सकता है कि किसी विवश तन्वंगी के मुखचन्द्र पर काँच की खिड़की से स्थिर चाँदनी आ पड़ी हो।

यहाँ तो बात ही और है। गिरिवक्ष पर चन्द्रिका है और नीचे खड्ड का तलदेश भीम-भीषण अन्धकार से आच्छन्न है। खड्ड के इस पार दीवार लगे सूत्रपथ पर मोटर-लारी दौड़ी जा रही है। साफ़-साफ़ देख पा रहा हूँ कि पहिये के पास दो हजार फ़ुट गहरा काला गह्वर है। साफ़-साफ़ देख पा रहा हूँ कि मृत्यु मुँह बाये घात लगाये बैठी है। पग-पग पर उस से कतरा कर भाग जाना चाह रहा हूँ।

रात के लगभग साढ़े नौ बजे गाड़ी बनिहाल बस्ती के उतराई-पथ पर आ पहुँची। शरीर के नस-नस को अवसाद ने जकड़ लिया है।

कई दुकानों में थोड़ी-बहुत रोशनी है। टिमटिमाती हुई बत्तियाँ जल रही हैं। धूमिल चाँदनी में अगल-बग़ल कुछ भी नज़र नहीं आ रहा है। हम लोगों की गाड़ी एक यात्रीशाला के पास आ कर रुक गयी। आज का नैश-निवास यहीं होगा। यात्रीशाला के रक्षक एक मारवाड़ी हैं। दो रुपये किराये पर एक कमरा मैं ने ले लिया।

चारों तरफ़ पहाड़ हैं। उन के मध्य में है यह बनिहाल अधित्यका। चाँदनी की रोशनी में अन्दाज़ा लगाने से पता चला कि पास ही कहीं कोई पहाड़ी नदी है। यहाँ-वहाँ कई दुकानें हैं। सामने ही कहीं कोई बैटरी-चालित रेडियो है। मेरे नीम-अन्धेरे कमरे की गोद में बरामदा है, जहाँ तरह-तरह के लोगों के तरह-तरह के जमावड़े हैं। बाहर ठण्ड पड़ रही है। कल सवेरे सात बजे हमारी गाड़ी फिर चल पड़ेगी।

पहाड़ी नदी से घिरी तलहटी की वनमय अधित्यका में वह परम सुन्दर चाँदनी रात उस रेडियो के चीत्कार से प्रतिक्षण सूचिकाबिद्ध हो रही है। इतनी झुंझलाहट कभी भी नहीं हुई थी इस यन्त्र से। मगर मैं चूँकि बहुत-कुछ अन्यमनस्क था, इस लिए असल विषय के प्रति सजग नहीं हो सका था। ग़ौर से देखा, यह पहाड़ी गाँव सशस्त्र

पुलिस के पहरे से घिरा है और पास की ही एक दूकान पर बहुत से लोग उस रेडियो सेट के चारों ओर भीड़ लगाये खड़े हैं। पाकिस्तान के कई विशिष्ट नेता और राजपुरुष कराची से रेडियो पर अत्यन्त ही उत्तेजित और क्रुद्ध कण्ठ से कशमीर निवासियों के सुनने के लिए भाषण झाड़ रहे हैं।

भाषण की भाषा उर्दू है। बात थोड़ी-बहुत समझ में आ रही थी : 'शेख अब्दुल्ला के गद्दी से उतारे जाने और नजरबन्द किये जाने के समाचार से सारा पाकिस्तान आज मर्माहत है और अपने ही आँसुओं में बहा जा रहा है। कशमीरियों के प्रति भारत का अमानवीय अत्याचार कितना बर्बरतापूर्ण है, यह सारा संसार जानता है। सर्वजन-श्रद्धेय शेख अब्दुल्ला के साथ भारत ने जैसा विश्वासघात किया है और भारतीय सैनिक सारे कशमीर में बच्चों और नर-नारियों की जो अन्धाधुन्ध हत्या कर रहे हैं, उस का बदला लेने के लिए पाकिस्तान बिलकुल तैयार है। अतएव हम क़ुरान पाक की क़सम उठाते हैं कि अगले एक हफ़्ते के अन्दर ही हमारी तरफ़ से हथियारबन्द स्वयंसेवक तुम्हें इस सर्वनाशी संकट से उद्धार करने के लिए श्रीनगर की ओर अभियान करेंगे। इस्लाम आज खतरे में है, तुम एक जुट हो कर शेख अब्दुल्ला साहब के अपमान का बदला लो।'

शेख अब्दुल्ला के प्रति इस प्रेमपूर्ण समाचार को सुन कर सहसा याद हो आयी पाकिस्तान के भूतपूर्व प्रधानमन्त्री उन जनाब लियाक़त अली खाँ की बातें, जिन की रावलपिण्डी में हत्या कर दी गयी। उन्होंने कभी अपने एक भाषण में जरा उत्तेजित हो कर शेख अब्दुल्ला के सुनने के लिए कहा था : 'कशमीर आप के बाप की मिलकियत नहीं है!'

श्रीनगर में खड़े हो कर शेख अब्दुल्ला ने हँसते हुए जवाब दिया था, 'बात ठीक है। फिर भी कशमीर में हमारे पुरखे रहते आये हैं। भारतवर्ष के उत्तरप्रदेश से पहुँच कर अगर कोई व्यक्ति पश्चिम पंजाब के ऊपर अनुचित शासन करे, तो ऐसी बात उसी को सुनानी उचित होगी, मुझे नहीं।'

नवाबजादा लियाक़त अली खाँ ने यह सुन कर चुप्पी साध ली थी क्योंकि वे रहने वाले थे उत्तरप्रदेश के। और आज सहसा रेडियो पर उन्हीं अब्दुल्ला के प्रति यदि ऐसा प्रीति-प्रदर्शन किया जाता है तो इस के पीछे कोई रहस्यपूर्ण कारण है भी या नहीं, यह अब तक जान नहीं पाया।

मेरे लिए मुश्किल यह थी कि एक सप्ताह के अन्दर पाकिस्तान के स्वयंसेवक यदि हरबे-हथियार से लैस हो कर कशमीर के उद्धार के कार्य में आ जुटते हैं तो मैं भाग कर जाऊँगा कहाँ? फिर अभी तो मैं ने कशमीर-उपत्यका में प्रवेश भी नहीं किया है, अभी तो जम्मू-प्रदेश में ही हूँ। इस लिए यह मान ही क्यों न लूँ कि कराची के श्रद्धेय नेता सत्य ही कह रहे हैं। मेरी धारणा कुछ ऐसी है कि नेता मात्र ही सत्यभाषी होते हैं। तो क्या सचमुच सामूहिक हत्याकाण्ड के ऐन बीच में आ पहुँचा

हूँ ? अभव्य प्रादेशिक मुहावरे में ही कहना पड़ेगा कि मैं थोड़ा सा भड़क सा गया।

सराय को लौटा तो कमरे में घुसते ही यह देख कर दंग रह गया कि हमारे स्वास्थ्यान्वेषी फलाहारी मद्रासी सहयात्री भद्रजन कौपीन मात्र को लज्जा-निवारण का सम्बल बनाये दण्ड-बैठक लगाने में व्यस्त हैं। उन का मुखमण्डल शीर्ण हो चुका है। इस वय में वरजिश कर के स्वास्थ्य की उन्नति कर लेना कहाँ तक सम्भव होगा, कहना कठिन है। मुझे देख कर वह कुछ अचकचाये, कुछ हतबुद्धि से हुए और हाँफते-हाँफते अँगरेज़ी में बोले कि बुरा न मानिएगा, आज से मैं ने यह सब करना तय कर लिया है, ज़रूरी है।

मेरी मुखमुद्रा और आँखें प्रश्नमयी थीं। वह फिर बोले, मान लीजिए कि कल कश्मीर पर हमला हो जाता है। ऐसे में हमारा प्रस्तुत हो लेना ज़रूरी है कि नहीं। देश के लिए, क़ौम के लिए....

मगर सात दिन के अन्दर आप का शरीर युद्ध के उपयुक्त हो भी पायेगा ?

भद्रजन बोले : सो नहीं, मगर यह तो आप जानते ही होंगे कि 'मेहनत' करने से आदमी साहसी होता है।

जान गया।

वह फिर बोले : कम से कम भाग खड़े होने भर की शक्ति तो चाहिए ही। आज कुछ-कुछ उमस है। आप कृपा कर के बरामदे में ही सो जायें। मैं जैसे-तैसे इस कमरे में ही रह लूँगा। देखता हूँ, खाट भी है।

अब तो लाचार बोलना ही पड़ा : बेहतर तो यह हो कि आप ही बरामदे में सो लें। वरजिश के मारे पसीने से लथपथ आप की देह थोड़ी सी स्निग्ध हो लेगी। कोई घण्टे भर पहले मैं मारवाड़ी को दो रुपये दे भी चुका हूँ।

भद्रजन ने एक बार मेरा मुँह निहारा। फिर न जाने क्या सोच कर कुरता पहन लिया और कमरे से प्रस्थान कर गये। उस रात वह एक स्नानघर में घुस कर भीतर से कुण्डी बन्द किये रहे। सुबह तक दरवाज़ा खोलना उन्हें मंज़ूर न हुआ।

उन के इस बन्द-स्नानघर-निवास का इतिहास शायद कुछ और भी था। खाने-पीने से निबट कर थोड़ा सा सुस्थिर हो कर मैं कमरे में जा कर बैठा ही था कि तीन-एक जन स्थानीय अधिवासी खासा हो-हल्ला मचाते हुए मेरे कमरे में आ घुसे। बाहर भी कुछ-कुछ हंगामा सा मचा था। भीतर आने वालों में दो जन मुसलमान थे और तीसरे सज्जन इसी सराय के खिदमतगार थे। बाहरी दोनों आगन्तुक वय में युवक ही थे। उन में से एक ने थोड़ी सी अधिक पी ली थी। देशी शराब ने उन्हें थोड़ा सा धुत्त कर दिया था। जल-कलकल सी भाषा में बहक रहे थे।

चीख-पुकार सुन कर बरामदे के उस ओर के सभी कमरे के पट बन्द हो गये थे। मगर इधर हाल यह था कि वह धुत्त युवक सँभाले सँभल नहीं पा रहा था। दूसरा युवक उसे शान्त करने की कोशिश कर ही रहा था कि उस ने छुरा तान लिया। उस

की इच्छा अपने शान्तिवादी साथी की हत्या कर डालने की थी। आसपास लोग हँसी उड़ा रहे थे। 'खून के प्यासे' को मेरे बिस्तरे पर बिठा तो दिया जा सका, पर छुरा छोड़ने को राजी वह किसी भी तरह हो ही नहीं रहा था। जैसे खून तो उसे करना ही हो।

लालटेन में तेल कम था। लौ बुझ चली थी। बात यह थी कि कराची का प्रसारण सुन कर इन दोनों साथियों में बहस छिड़ गयी थी। होश में रहते हुए साथी को छुरा मारने में संकोच होता, इस लिए पी कर छुरा ले दौड़ना ही उसे ठीक लगा था। हत्या अभी ही कर डालनी थी, मगर उस के पहले मेरे जैसे किसी निरपेक्ष व्यक्ति की अनुमति ले लेना ज़रूरी था।

युवक को सिगरेट दे कर मैं ने खुद ही सुलगा दी। देखा, उस की आँखें लाल टेसू हो रही हैं। हँस कर पूछा, छुरा मारने वाले को भला कभी किसी की अनुमति लेनी होती है ?

खूब ज़ोर से कश लगा कर और लाल-लाल आँखें उठा कर युवक बोला : तो आप मना कर रहे हैं ?

मैं बोला : नहीं, मना क्यों करने लगा ? हाँ, इतना करो कि इसे कल सवेरे मारो। वरना तुम जैसे भद्र लड़के के नाम पर यह बट्टा लग जायेगा कि तुम ने नशे में खून किया है। तुम्हारा उद्देश्य तो तभी सिद्ध होगा जब तक खूब ठण्डे दिल से और खूब सोच-समझ कर ही इसे मारो।

लड़का सहसा उल्लसित हो उठा : ठीक कहते हैं, इसे मार कर अगर पहाड़ लांघ लूँ और पुंछ की ओर निकल जाऊँ तो मुझे फिर कौन पकड़ता है ! सलाम लीजिए, सा'ब !

कमरे से निकलने के बाद उसे फिर अपने उस 'दुश्मन' मित्र का ही सहारा लेना पड़ा। उस के दोनों पैर बुरी तरह लड़खड़ा रहे थे।

सवेरे उठने पर देखा, पहाड़ी गांव खामोश है। उस समय भी बनिहाल की नींद अच्छी तरह टूटी नहीं थी। रंग-बिरंगे पंछी पीरपंजाल से अधित्यका पर आ उतरे हैं। बस्ती के उत्तरी छोर पर उपलाहत पहाड़ी नदी की कल-कल ध्वनि सुनाई पड़ रही है। चारों ओर पहाड़ों ही पहाड़ों के अवरोध खड़े हैं। उसी के बीच थोड़ी-बहुत खेती-बाड़ी हो रही है। पर दुकानें अभी भी खुली नहीं हैं। रात जो उत्तेजना थी, सवेरे उस का कोई चिह्न तक न था। कशमीर तो राजनीतिक भूकम्पों से चिर-परिचित है। इस सामान्य विपर्यय पर वह कोई खास भ्रूक्षेप तक नहीं करता।

हमारी गाड़ी सवेरे सात बजे तैयार हुई। गाड़ी के रवाना होने के पहले रात वाला वह दूसरा युवक हँसता हुआ आ धमका, जिस की हत्या शायद आज इसी घड़ी कर दी जायेगी। बड़ा ही सज्जन मुसलिम युवक है। रात का धुत्त साथी उस का

सगा चचेरा भाई है। नाम शेरगुल। युवक ने बताया : शेरगुल की उत्तेजना अत्यन्त क्षणस्थायी होती है। छुरे को वह अपने इसी 'शत्रु' भाई के पास जमा करा के लम्बी ताने सो रहा है। अब कोई भय नहीं।

गाड़ी उत्तर के पहाड़ की चढ़ाई चढ़ चली। देखते-देखते हम मीठी धूप के इलाक़े की ओर आ निकले। हम चल रहे हैं बनिहाल गिरिसंकट की ओर। हवा धीरे-धीरे स्निग्ध होती जा रही है। वर्षा से फल खूब हुए हैं। पहाड़-पहाड़ पर फूलों की सेज बिछी है। धौलाधार गिरिश्रेणी की तरह यहाँ बात-बात में पत्थरों के हाड़-पंजर नहीं मिलते। सावन की नूपुर-झंकृति सुनते ही मृत-पिण्डों में से मौसमी फूल वर्षा की अगवानी में निकल पड़ते हैं। यही सामग्री पीरपंजाल की प्रकृति है। यही अकृपण दाक्षिण्य उस का स्वभाव है। हवेलियन, ऐबटाबाद, मुजफ्फराबाद, मीरपुर, जहाँ भी जाओ पीरपंजाल ऐश्वर्य में समृद्धिशाली है। कहीं प्राचीन वनस्पति की छाया पड़ी है तो कहीं काव्य-व्यंजना की सकरुण माया। अपने प्राणों का सुर मैं यहाँ के प्रत्येक गुहा-गह्वर में रखे जा रहा हूँ। अपने मर्म का बन्धन। अपनी माया का क्रन्दन मैं यहाँ की प्रत्येक गुल्म-लता पर गाड़े जा रहा हूँ।

देखते ही देखते ज्योतिर्मय दिगन्त फैलता जा रहा है। पिछली रात मैं अन्धकार के तलदेश में पड़ा था। वहाँ जहाँ मनुष्य की क्षुद्रता से इतिहास नित्य रचित हो रहा है। जहाँ चित्त का विद्वेष परिपार्श्व को पल-पल विषाक्त करता रहता है। स्वभाव के विकार से, चरित्र की ग्लानि से, संशय और धिक्कार से जहाँ बात-बात में नाटक की सृष्टि होती रहती है। मगर यहाँ पूर्व दिगन्त के इस रत्नगिरि-द्वार पर पहुँचते ही सब तुच्छ हो जाता है। यहाँ हिमालय की हवा क्षुद्र को पुनः-पुनः बृहत् बनाती रहती है। जितनी ऊँचाई, उतना ही विस्तार, उतना ही फैलाव। यहाँ से और भी बृहत्तर देव-जीवन को पुकारो, हाथ बढ़ा कर यदि सम्पूर्ण आकाश का आलिंगन कर लो, सम्पूर्ण क्षुधार्त प्राण यदि पंख खोल कर पीरपंजाल के ऊपर से उड़ते हुए हिमालय को भी छोड़ कर कहीं भी लापता हो क्यों न हो जायें, तो भी कोई हर्ज नहीं। रुकने से काम नहीं चलेगा, आगे बढ़ना होगा। वैसे ही जैसे आकाश-पथ में राजहंस डैने फैलाये चलता जाता है किसी अनजाने अखोज लोक को उड़े चले जाते हैं। वैसे ही जैसे वे परस्पर बातें करते रहते हैं कि यहाँ नहीं, और कहीं, और कहीं।

चढ़ाई पार कर रही है मोटर-बस—भयंकर घरघराहट की ध्वनि गूँज रही है। दीवार ऊँची होती जा रही है। खूब लम्बा जिग-जैग पथ कभी पूरब, कभी पश्चिम की ओर फैलता नजर आ रहा है। गरदन मोड़ कर देखो—बहुत पीछे छूट गयी बनिहाल बस्ती, उस से भी और दूर समतल भारत प्रायः दस हजार फ़ुट नीचे। क्रमशः हमारी गाड़ी आ पहुँची पहाड़ की चोटी के क़रीब, कम चौड़ी एक मालभूमि में। बिलकुल अप्रत्याशित रूप में दिखाई पड़ा कि सशस्त्र सामरिक प्रहरी ने बनिहाल गिरिगह्वर के प्रवेशपथ में ट्रैफिक नियन्त्रित किया है।

कशमीर और भारत के बीच यही एक मात्र सुरंग-पथ है—और कोई पथ है नहीं। यह पहले कशमीर महाराज का अपना पथ था। जाड़े के कई महीने इस गह्वर-पथ के इस पार और उस पार बर्फ़ जमी रहती है इस लिए आजकल नीचे की तरफ़ एक पथ का निर्माण-कार्य चालू है। काम समाप्त होने पर कशमीर-भ्रमण सुगम हो जायेगा। हमारी गाड़ी कुछ देर ठहरी। इसी बीच एक मिलिटरी गाड़ी का काफ़िला गुज़र जाने पर हमारी बस चल दी उसी अन्धकार गह्वर लोक में। लम्बा पथ, घोर अँधेरे से घिरा। पीछे है जम्बू, आगे है कशमीर।

ठीक याद नहीं, शायद मिनट तीन तक। सच कहूँ, ठीक ऐसी धारणा मेरी पहले नहीं थी। अँधेरे से रोशनी में आने पर कशमीर का दृश्य विस्मय से झकझोरता है, यह विचित्रता है। कुछ क्षण के लिए चेतना विलुप्त हो जाती है। सौर विश्वलोक के किसी वातायन से यदि सृष्टिकर्ता अपनी आश्चर्यमय सृष्टि की ओर निमेष-निहित चक्षु से अभिभूत हों, तो वह यही एक मात्र वातायन हो सकता है। वायुस्तर में जो सूर्य किरणों का कम्पन है, वैसा ही उत्तर मेरु में कम्पन करता होगा, दोनों आँखों से देख कर यह विश्वास लिये जा रहा हूँ। चारों तरफ़ सैकड़ों मीलों में परिव्याप्त है चिरतुषारमय हिमालय, उसी की गोद-गोद में भासमान है मेघ-खण्ड चित्रवत्। ऊपर से देख रहा हूँ, नीचे की ओर उतरते जा रहे हैं वे—और उन के भीतर पल-पल में इन्द्रधनुष तरंगित हो रहे हैं—विविध वर्णों में। वायु-लोक में परिव्याप्त सूर्य-किरण यह विचित्र इन्द्रजाल उत्पन्न कर रही है हर क्षण, फलस्वरूप हमारी दृष्टि भ्रमित हो रही है पलक-पलक में। लगभग दस हज़ार फ़ुट की ऊँचाई पर हूँ तभी यह दृष्टि-भ्रम तथा यह अनिर्वचनीय विस्मय है। समतल में उतरते ही दृष्टि होगी स्वच्छ। पृथ्वी को हम ने देखा है एक ही रूप में लाखों—लाख वर्षों से, विपरीत रूप से इसे कभी नहीं देखा। किन्तु भिन्न ग्रहों में खड़े हो कर यदि परिचित पृथ्वी को देखता, तब दृश्य वैचित्र्य का अनुसन्धान कर पाता। बग़ल के मकान की छत पर खड़े हो कर अपने मकान को देखने से वैचित्र्य-बोध का स्वाद मिलता है। महाकवि रवीन्द्रनाथ बनिहाल के इस सुरंग-लोक से यदि कशमीर में प्रवेश करते तो उन से हमें एक कविता प्राप्त होती।

मिनट दो हतबुद्धि सा हो रहा। वहाँ उतर कर एक बार देख लिया देवता का शीर्षलोक। श्वेत चोटियाँ एक के बाद एक पश्चिम, उत्तर और पूर्व में फैली हुई। दीख पड़ती हैं धूमिल सी हिन्दुकुश और काराकोरम की चौड़ी चोटियाँ, गिलगिट के पार दुमानी, देख रहा हूँ नांगार की चोटी, गोद में देख रहा हूँ हरमुख, सोनामार्ग और जोजिला, बलुचिस्तान के पूर्वी ओर गासे का क्रम और मासे की कतार, उस के दक्षिण में देवसाही, लद्दाख और जास्कर पर्वत श्रेणी का अन्तहीन तरंग लोक।

गाड़ी अब उतरने लगी है ऊपर मुण्डा के पथ से। नीचे की ओर। बहुत दूर पर नीचे है वही जगत् प्रसिद्ध 'पपला का एवेन्यु' पथ चित्रवत् नज़र आता है। समग्र विराट उपत्यका नीलाभ-हरित तथा वर्षा के अन्तिम दिनों में पहुँच कर सजल श्यामल

शोभा में झिलमिल कर रही है। समझा जा सकता है कि कशमीर क्यों इतना लोभनीय है, क्यों इस मानहोना, सर्वहारा अनाथिनी के सर्वांग में हज़ार दो हज़ार वर्षों से विभिन्न बर्बरों के दल अपने हिंसक दाँतों और नखों के दाग़ छोड़ गये हैं।

ऊपर से उतर कर समतल पर गाड़ी चली। चौबीस घण्टे बाद समतल देखा। और भी बीस मील उस पपला के मध्य पथ से गुज़र कर काँजीकुण्ड में पहुँच कर बस रुकी। यहाँ नाश्ता कर लेना होगा। काँजीकुण्ड से श्रीनगर, जहाँ तक याद है, चालीस मील होगा।

यह पथ खनवल तक जा कर विभक्त हो गया है। एक चला जाता है उत्तर-पूर्व में पहलगाँव की ओर, दूसरा उत्तर में अवन्तीपुरा हो कर सीधा चला जाता है श्रीनगर की तरफ़। छोटे-छोटे पहाड़ एक ओर और दूसरी ओर बहुत सारे धान और ईख के खेत। शाक-सब्जियों के बाग़ यहाँ-वहाँ। गाँव के घर-घरौंदे की तरह प्रत्येक में शिल्पी मन कार्य कर रहा है। इस प्रकार के घर-द्वार भारतवर्ष में नहीं देखा। सस्ते में तरह-तरह के फल राह-घाट पर बिक रहे हैं। अभी भादो की शुरुआत है, बाज़ार में सेब आता है थोड़ा-बहुत। रसभरे अंगूरों के गुच्छे निचोड़ कर पी रही हैं कशमीरी नारियाँ। काली आँखों की प्रसन्न दृष्टि से वे विदेशियों की अभ्यर्थना कर रही हैं। किन्तु वे क्या जानती हैं कि अजाने विदेशियों की पैशाचिक विश्वासघातकता के आघात से उन की माटी के घरों की गृहस्थी युग-युग में मिट्टी में मिल गयी है? इतने दिनों से मार खा कर भी कशमीरियों के स्वभाव की कोमलता नष्ट नहीं हुई, यह उन के लिए गौरव की बात है—ऐसा मैं नहीं सोचता।

वितस्ता का गेरुआ-रक्तिम बाँका स्रोत बह रहा है बग़ल से। आश्चर्य है, इतनी बड़ी पहाड़ी उपत्यका में चट्टानों की जटिलता कहीं नहीं दीखी। चारों ओर मुलायमियत और तरबतर। पहली बार देखा, 'चिनार' और 'सरपत' की झाड़ियाँ। चिनार के छितनारी पेड़ों ने पथों पर छाया कर दी है। पहाड़ों पर भेड़-बकरियाँ और गायें चर रही हैं। कहीं-कहीं नज़र आते हैं कशमीरी पण्डित और पण्डितानी।

गाड़ी तेज़ चाल में चली जा रही है। चली जा रही है दूर से दूरान्तर में। दोपहरी की तीखी धूप में से गुज़र कर हमारी मोटर-बस आ पहुँची आधुनिक श्रीनगर के एक मोटर स्टैण्ड पर। वहाँ ताँगे वालों की भीड़ लगी है।

लगभग आधे मील की दूरी में कशमीर खालसा होटल में जा ठहरा।

हरमुख पर्वत के पाद-भू भाग में प्राचीन काल में था विशाल जलाशय। उस का पौराणिक नाम है सतीसायर। देवी पार्वती जब उत्तर आतीं तुषार-चूड़ा से तब इसी जलाशय में नौका विहार करतीं। इस के बाद बहुत दिन बीत गये। हर-पार्वती गयी लोभनीय मानस सरोवर में। इसी अवसर में जलोद्भव नामक एक असुर ने सतीसायर पर अधिकार जमा बैठा। मनुष्य के ऊपर दानवों का अत्याचार चलता

रहा अनेक कालों तक। उधर ब्रह्मा के पुत्र कश्यप मुनि इस अनाचार के प्रतिकार के लिए एक हज़ार वर्षों से तपस्या कर रहे थे। उस तपस्या से खुश हो कर देवी ने उन के पास एक पंछी को भेजा। उस पंछी के चोंच में था पत्थर का टुकड़ा। उसी पत्थर के टुकड़े को उस ने जलोद्भव असुर के सिर पर फेंक दिया और क्रमशः वही पत्थर विशालतर होता गया। इस के परिणामस्वरूप जलोद्भव सतीसायर के नीचे समाधिस्थ हुआ और आज का हरिपर्वत उठ खड़ा हुआ। सतीसायर का पानी चला जाता है बराहमूल की तरफ़, मृन्मयभूमि चारों तरफ़ से पर्वत को घेरे अधित्यका में दिखाई देने लगी और आगे चल कर इसी भू-भाग का नाम पड़ गया—'कश्यप-मीर'।

ठीक ऐसी ही उपकथा सुनी है नेपाल के काठमाण्डू में। मंजुश्री के खड्ग के प्रहार से वाग्मती का निर्माण हुआ। नेपाल उपत्यका का जन्म तभी से है। उन के पूज्य हैं मंजुश्रीदेव।

इन सभी उपकथाओं के पीछे एक सत्य आज भी वैज्ञानिकों की दृष्टि में स्पष्ट है, कशमीर की 'सूखी उपत्यका' किसी ज़माने में 'अनव तप्ता' मानस के पद्मसरोवर की भाँति विशाल जलाशय था। आज भी इस वैज्ञानिक युग में पहाड़ के ऊपर बहुत हिस्सों में उस ज़माने के उसी सागर-उद्भूत जीवाणुओं में तरह-तरह के प्राणवन्त कोषों का पता चल रहा है। भू-तात्त्विक चमत्कृत हैं।

ईसा पूर्व दो हज़ार वर्ष आगे किसी निर्दिष्ट राजशक्ति का पता न चलने पर भी राजा दयाकरण और राजा रामदेव की कथा सुनी जाती है। इस के बाद इतिहास के युग में आये राजा प्रवरसेन और राजधानी का नाम हुआ प्रवरपुर। यही है वर्तमान में श्रीनगर। ईसा पूर्व ढाई सौ वर्ष पहले सम्राट् अशोक ने आ कर बौद्ध धर्म को राष्ट्रधर्म में परिणत किया। इस राज-भिक्षु के महत् आदर्श का वरण कर सनातनी भी बौद्ध धर्म के प्रचार में व्रती हुए। इन के बाद आते हैं राजा जलक। उन्होंने पर्वत की चोटी पर एक प्रस्तर मन्दिर का निर्माण किया। वह आज भी खड़ा है—किन्तु उस का नाम है शंकराचार्य। इस काल में तातार-डाकुओं के जत्थों ने कशमीर पर आक्रमण किया। क्रमशः सम्राट् कलिंग आ खड़े हुए और उन के शासन-काल में डाकू प्रताड़ित हुए। कनिष्क के युग में ही कशमीर के बौद्ध मठ में बौद्ध धर्म का कोई एक ऐतिहासिक महासम्मेलन आयोजित हुआ। इस के बाद के सैकड़ों वर्षों तक कशमीर था बौद्ध धर्म में दीक्षित। ईसा के सातवीं सदी के प्रथम में श्वेत हूणों ने इस भू-स्वर्ग पर आक्रमण किया। बीभत्स अनाचार के द्वारा कशमीर को उन्होंने श्मशान के रूप में परिणत कर दिया। इन आक्रमणकारियों में प्रधान हुए बौद्ध विरोधी मिहिरकुल। चीनी परिव्राजक ह्वेनत्सांग कशमीर का यह सर्वनाश देख गये थे—मिहिरकुल के द्वारा उस समय बौद्ध विहार प्रायः सभी एक-एक कर ध्वस्त हुआ, बौद्ध भिक्षु भाग जाते हैं तिब्बत की तरफ, वहाँ निर्माण करते हैं वे अनेक बौद्ध मठ। श्रीनगर से कई मील दूर हरवन के अंचलों में आज भी उस ज़माने के भू-गर्भस्थ बौद्ध विहारों की खुदाई का काम चल रहा है।

इस के बाद कशमीर में हिन्दू राजत्व आरम्भ हुआ। कवि कल्हण ने 'राजतरंगिणी' में कहा है, नृपतिश्रेष्ठ ललितादित्य आये, आये अवन्तिवर्मन, एक के बाद एक हिन्दू नरपति। समग्र कशमीर में अद्यावधि बौद्ध और हिन्दू के अलावा अन्य किसी जाति की संस्कृति, सभ्यता और स्थापत्य-कीर्तियाँ नहीं हैं। राजा ललितादित्य आज भी कशमीर में सर्वापेक्षा प्रसिद्ध हैं। सम्राट् अशोक और कनिष्क के बाद ही उन का आसन निर्दिष्ट है। इस उपत्यका में उन की कीर्ति सर्वजन-स्वीकृत है। मार्तण्ड जनपद में उन का मन्दिर और कशमीर भू-भागव्यापी उन की स्थापत्य-कीर्तियाँ आज भी उन की चरित्र-महिमा के साक्षी हैं। उन के लिए आठवीं सदी का प्रथमार्ध रहा स्वर्णोज्जवल गौरव का युग।

राजा ललितादित्य समग्र उत्तर भारत खण्ड में सुशासन की प्रतिष्ठा कर के ही शान्त नहीं हुए। आश्चर्य की बात यह है कि तुर्क इतिहास में उल्लेख है कि ललितादित्य ने तुर्किस्तान एवं मध्य एशिया का एक प्रधान हिस्सा अपने शौर्यबल से विजय किया था। समग्र मध्य एशिया की असभ्य जातियों के सम्मुख उन्होंने ला रखा था हिन्दू और बौद्ध संस्कृति को कालजयी महिमा को। सुप्रसिद्ध मुसलमान इतिहासज्ञ अलबेरूनी कहते हैं, दिग्विजयी सम्राट् ललितादित्य के ज़माने में उन की दिग्विजय-महिमा को यहाँ तक गौरव मिला था कि प्रति वर्ष कशमीर में विराट् एक उत्सव का उल्लास छा जाता।

हिन्दू राज्य की चौदहवीं सदी में पहाड़ी उपजातियों में दामड़ा और तन्त्रियों ने कशमीर के कल्याण-यज्ञ को बार-बार नष्ट करना चाहा था। आग लगाना, लूट-खसोट, हत्या, नारी-अपहरण—यही था उन का पेशा। कवि कल्हण ने अपने प्रत्यक्ष अनुभव से इस का वर्णन किया है। वे बारहवीं सदी के मनुष्य थे। 'राजतरंगिणी' में उन्होंने कहा है, सदियों के बाद सदियों तक हिन्दू राजत्व के काल में कशमीर भारत के श्रेष्ठ भू-खण्ड के रूप में परिणत हुआ। साहित्य, काव्य, ज्योतिषशास्त्र, भगवत्-दर्शन में और शैव वेदान्त संस्कृत में कशमीर अद्वितीय था। जनसाधारण समग्र रूप से धर्म और मानववाद के चरम पर पहुँच गये थे।

चौदहवीं सदी में तातार लड़ाकू ज़ुल्फी क़ादिर खाँ कशमीर आते हैं। भयानां भयं भीषणं भीषणानाम्! उस के एक हाथ में शाणित तलवार, दूसरे हाथ में मशाल था। उस के दानवीय कुकर्मों से कशमीर आग की लपटों में घिर गया है। वापसी में वह पचास हज़ार ब्राह्मण नर-नारी को क्रीतदास बना कर लेता गया। मगर उस के उस रक्त-रंजित पथ में भयानक बर्फ़ीला तूफ़ान आया, वह स्वयं अपनी उपजाति के दस्युओं के गिरोह और उन पचास हज़ार नर-नारियों सहित बर्फ़ में दब गया। आज भी उन के नर-कंकाल खोज में मिलते हैं—हुंजा पर्वत और कोहिस्तोन के मैदानों में, हिन्दू राज्य पर्वत श्रेणी के आस-पास और पामीर की पठार भूमि के अतल में। उस ज़माने में कशमीर में था ज्ञान और विद्या, काव्य तथा संस्कृति, पर न थी क्षत्रिय-शक्ति, न था राज-शौर्य। फिर भी कशमीर के इतिहास में अनाचार यहीं शेष नहीं हुआ। देखते ही

देखते आ पहुँचा गजनी का महमूद, आया फिर तातार लड़ाकुओं का जत्था। इसी प्रकार पठान-आक्रमण के युग में कशमीर पर राज्य किया एक से अधिक हिन्दू रानियों ने— तातार और पठानों से अनेक बार उन्होंने आपसी समझौता किया—उन में एक नारी बहुत दिनों तक कशमीर में राज कर चुकी है—जब उन के स्वामी प्राण भय से राज्य छोड़ भाग गये तब एक पठान को उन्होंने अपना अन्यतम मन्त्री बनाया था। किन्तु उक्त मन्त्री शाह मिर्ज़ा ने षड्यन्त्र के द्वारा सिंहासन दखल कर राजरानी को पत्नी के रूप में पाने के लिए हाथ बढ़ाया था। विश्वासघाती चाकर के आगे आत्मसमर्पण करने की अपेक्षा रानी ने प्राण त्याग दिया था।

और फिर एक सौ वर्ष तक पठान सुलतानों के हाथों कशमीर उत्पीड़ित होता रहा। देव-देवियों की मूर्तियाँ चूर-चूर होती रहीं, स्थापत्य की श्रेष्ठ कीर्ति-मन्दिरों को तोड़ा गया। मार्तण्ड, पाण्ड्रेथान, गणेशबल, व्रजविहार आदि जनपद एक-एक कर ध्वंस स्तूपों में ढँक गये। सुलतान सिकन्दर की बीभत्सता के प्रमाण आज भी कशमीर के पथों में वर्तमान हैं। तातार और पठानों की कलंक कहानियों से कशमीर भरा पड़ा है।

मगर एक समय इसी दैत्य-कुल में से प्रह्लाद आ खड़े हुए। वे थे बादशाह जैनुल आबदीन। वे थे कशमीरियों के अतीव सुहृद्। उन्होंने मन्दिरों की मरम्मत करवायी, नहरें निकलवा कर बाढ़ों के आतंक से कशमीर को निरापद किया। काग़ज़, रेशम, शाल आदि के कारखानों की स्थापनाएँ कीं। फलों के बग़ीचे को सरसब्ज किया। कशमीरियों को उन्होंने पलकों पर बैठाया। आज भी बहुत से इलाक़ों में जैनुल आबदीन को विषय बना कर लोक संगीत प्रसिद्ध है, आज भी श्रीनगर में स्थित 'जयना कदल' में उस की समाधि राष्ट्रीय पुरातत्त्व विभाग द्वारा सुरक्षित है।

मगर पठान और तातारों का अनेक सदियों तक के संघर्ष से जैनुल आबदीन का राज्य काल कितना होगा ही ? दार्द देश से आये गाज़ीखान और फिर एक के बाद एक पाँच-सात दस्यु-नरपति आये। आघात और अपमानों से कशमीरियों की पीठ फिर चुटैल हो गये। मानवता की शेष दशा में वे आ खड़े हुए। रोते-रोते अवसन्न हो गये कशमीरी।

अन्त में सम्राट् अकबर के हिन्दू सेनापतियों ने कशमीर में उन की विजय पताका फहरायी। 'सुषी उपत्यका' पर एक ज़माने के बाद शुभ-सुयोग आया। जनसाधारण शान्ति की साँस ले कर फिर उठ खड़ा हुआ। अकबर ने पुनः हरिपर्वत स्थित प्राचीन दुर्ग का पुनः संस्कार किया। उन के पुत्र सलीम उर्फ़ जहाँगीर बाग़ बनवाने बैठे—भेरीनाग में, नसीम में, शालीमार में, निशात में। चिनार के बीज ला कर सर्वत्र लगाया। नूरजहाँ ने बनवाया पत्थर का मसजिद। जहाँगीर के पुत्र शाहजहाँ ने भी पिता का अनुसरण किया। इस के बाद औरंगज़ेब के ज़माने में फिर कशमीर के ऊपर उत्पात शुरू हुआ। पण्डितों के ऊपर तरह-तरह के अंकुश लगे। दूसरे बहुत से कर देने को वे विवश हुए। औरंगज़ेब की मौत के बाद जब मुग़ल दरबार में अन्तर्द्वन्द्व दीखा, उस समय मुग़ल

राजाओं के प्रतिनिधियों की मनमौजी प्रवृत्ति, अनाचार और उत्पात ने कशमीर में दानवीय रूप ग्रहण किया। अफ़गानी ऐसा अवसर क्यों छोड़ते ? अठारहवीं सदी के मध्य उन का पाशविक आक्रमण हुआ। अहमद शाह दुर्रानी ने कशमीर को फतह किया। इस के बाद के साठ वर्षों तक सर्वव्यापी ध्वंस और नारियों के सतीत्व वे नष्ट करते चले। यह उन के लिए गौरव है, यही उन का इतिहास है। उन के पाशविक अत्याचार ने कोई जाति-भेद नहीं स्वीकारा, मगर हिन्दुओं का सर्वनाश करना ही उन की श्रेष्ठ कीर्ति है। हज़ारों-हज़ार बेबस कशमीरी नर-नारियों को धर्मान्तरित किया गया। जो राज़ी नहीं होते उन्हें आग में झोंकना, जीते जी गाड़ देना, फाँसी पर लटकाना, जंगली जानवर के पिंजरे में डाल देना या जीवित देह को बोरों में बाँध कर डल झील में डाल कर हत्या करना—यही सब होता रहा। डल झील के एक कोने में एक कोने का नामकरण किया गया है—'बट-मजार', अर्थात् हिन्दू-समाधि। इसी तरह से कशमीर में अहिन्दुओं की संख्या बढ़ी है। परवर्तीकाल में यही हज़ारों-हज़ार हिन्दू जब लाखों-लाख में परिणत हो गये, उस समय उन्होंने सदलबल अपने पितृ-कुल-धर्म में लौट आना चाहा—मगर देर बहुत हो चुकी थी—वाराणसी के सनातन पन्थियों ने उन का आवेदन मंज़ूर नहीं किया। आज उसी आचरण का प्रायश्चित्त हो रहा है।

यह इतिहास नहीं है, कशमीर के हृदय में जो दर्द है उस की कहानी है। मगर यही अन्त नहीं है। अफ़गानी जब्बर खान के अत्याचार से अस्थिर हो कर पण्डित बीरबल धर लाहौर से रणजीतसिंह के सेनापति राजा गुलाबसिंह को बुला लाये। वे पीरपंजाल पार कर आये और जब्बर खान को प्रताड़ित किया। उन्नीस सदी का यह तीसरा दशक। कुछ अँगरेज़ कशमीर का भ्रमण कर रहे थे। उन्होंने कहा, सिख अफ़-गानियों से खुदगर्ज कम नहीं हैं। अभागे दरिद्र कशमीरी राज्य कर नहीं सके अतएव वे नेस्तनाबूद होने लगे। देश में भूचाल, हैजा, अकाल, बाढ़—आने लगे जब-तब। विचार नहीं, अन्याय का प्रतिरोध नहीं, हत्यारे को दण्ड नहीं, अन्न-वस्त्र कहीं कुछ नहीं—चारों तरफ़ हाहाकार।

ऐसे में ही रणजीतसिंह की मौत हुई। सिख हार गये। कशमीर राजा गुलाबसिंह के अधीन हुआ। उन का हृदय कठोर जरूर था, मगर प्रखरयुक्ति और न्यायबुद्धि के गुणों से उन्होंने कशमीर में सुशासन की प्रतिष्ठा की। गुलाबसिंह के पौत्र प्रतापसिंह के कोई पुत्र नहीं था, इसी वजह उन का भांजा हरिसिंह महाराज बने। हरिसिंह के पुत्र हुए युवराज कर्णसिंह।

देखते-देखते डल झील के किनारे सन्ध्या उतर आयी। बत्तियाँ जल रही हैं हाउस-बोटों और नेहरू पार्क के तम्बुओं में। लौट चला शहर की ओर।

श्रीनगर दो किनारों में बँटा है—बीच से वितस्ता नदी प्रवाहित है। सात पुलों के ज़रिये नगर के दोनों किनारे मिले हुए हैं। वितस्ता को देख कर कालीघाट की, आदि-

गंगा की याद हो जाती है। नौका, शिकारा और हाउस-बोटों की जमघट क़दम-क़दम पर। मैं ठहरा था लगभग शहर के नाभि-केन्द्र में, जन-कोलाहल में—इस की मुझे जरूरत थी, हाट-बाजार की भीड़ के मध्य गन्दी बस्तियों के मध्य में टाँगे और मोर-वालों के अड्डे पर, फल वाले, फेरी वालों के टोले-महल्ले में—मेरे कौतुक की सीमा नहीं थी। हरिसिंह हाई स्ट्रीट की बग़ल में राधाकिशन का मन्दिर, पंचमुखी हनुमान् जी और महारानी का राम जी का मन्दिर—ये हैं नगर के कोलाहल से भरे गाँवों में। वितस्ता के किनारे राजा गुलाबसिंह के प्रासाद के मध्य मिला गदाधर का मन्दिर। इसी प्रासाद के एक हिस्से में आज हैं सरकारी दफ़्तर। प्रासाद के पश्चिम में है गाँधी मैदान। एक दिन महात्मा जी ने यहाँ खड़े हो कर कशमीर-वासियों को भाषण दिया। वह था भारत के स्वाधीनता का जमाना। इसी प्रासाद के नीचे से अपनी मनमौत वितस्ता चली है। उस पार दूर पर हरिपर्वत का दुर्ग दीख रहा है।

शंख-घण्टे से नदी का तीर मुखर है, कशमीरी पण्डितों की महिलाएँ सूर्य-प्रणाम कर रही हैं। पुरोहित मन्त्रोच्चारण कर रहे हैं। नामहीन अजाने मन्दिर अनगिनत हैं। ललाट पर चन्दन-तिलक, सिर पर लाल अथवा सफ़ेद पगड़ी, वर्ण गौर—ये हैं हिन्दू। सरकारी दफ़्तरों, डाकघरों, टेलीफ़ोन में, बैंक में, काम-काज में—जहाँ भी देखो, वही पण्डित। मुसलमान का मतलब ही है मजदूर। किसी मुसलमान के दाढ़ी नहीं, उन में से अधिकांश नमाज नहीं पढ़ते। गाय काटते नहीं कशमीरी। साम्प्रदायिक भावना की गन्ध भी कहीं नहीं। हिन्दू परिवारों में बिना रोक-टोक मुसलमान काम करते हैं। सिख होटलों में बिना विरोध के मुसलमानों को रखते हैं। जाति-भेद तनिक भी नहीं। मुसलमानों का छुआ कोई भी खाता है, ढलाव पर बसे हैं दोनों संग-साथ। एक दृष्टि में यह देश अजब लगेगा—भारत और पाकिस्तान के बाहर। हिन्दू पण्डित और आर्य मुसलमान निवास कर रहे हैं कश्मीर के हर घर में।

लौट रहा था पैदल ही। शेर-ए-कशमीर पार्क के आसपास, या वितस्ता के किनारे-किनारे, मैदान के अगल-बग़ल, घनी छाया वाले बग़ीचेदार मकानों वाले मुहल्ले में। मन अशान्त था दो कारणों से। पाकिस्तान का स्वयंसेवक जत्था कब आ पहुँचे, जाने कब खून-खराबा श्रीनगर में शुरू हो जाये। मेरी धारणा ग़लत है। मेरे आने के कई दिनों पहले खालसा होटल के पास की दो-चार दुकानों के सामने एक दिन हल्ला हुआ, दो-एक आदमी शायद पुलिस की गोली से मारे गये, इस के बाद सब शान्त। जैसा चल रहा था वैसा ही। पीरपंजाल की चोटी ताक रही है कशमीर की तरफ़, ताक रही है हरमुख की चोटी शाश्वत काल से—सदा से—नीचे इतिहास बातों ही बात में बदलता रहा है। दरिद्र कशमीरी—अभागे कशमीरी—उन के घरों में है विदुर का तण्डुल और शीतल जल। परन्तु न है सोना, न है कोयला, न है तेल, न ही लौह धातु। समग्र जगत् आ कर कशमीर को मुट्ठी भर भीख दे जाता है—रूप और गुण में वह है लोभनीय। पठान, तातार, हूण, मुग़ल, ये आये और पाँति लगा कर

खा गये हैं, जाते वक़्त अभागों की गृहस्थी तोड़ गये, लड़कियों को लूट ले गये। सतीत्व-नाश और धर्मनाश—यही है कशमीर के मध्य युग का इतिहास। स्वभाव की कमनीयता को उन्होंने समझा नहीं, समझा नहीं न्याय और नीति का मर्म, समझा नहीं ज्ञान, विद्या-संस्कृति की महिमा—कुछ भी नहीं समझा। जी भर कर देख रहा हूँ, मैदानों के तृण शैय्या में फूल फूटे हैं, अति सुन्दर कारपेट की तरह। नदी का किनारा, पहाड़ों और सरोवर की गोद—हर जगह फूल। परित्यक्त कूड़े-कर्कटों का ढेर, नाले-पनाले का बहाव, बस-स्टैण्ड पर के गन्दे चबूतरे, मक्खियाँ भिनभिनाती दुकानों के गन्दे पानी के पास उन्हीं के बीच हज़ारों-अनाम फूल। फ़ुटबाल के मैदानों में फूल रौंदते हुए लड़के फ़ुटबाल खेलते हैं। भेंड़, बकरियाँ, गाय फूलों को रौंदती हुई चढ़ती हैं। पहाड़ों पर फूलों को रौंदते हुए यात्री बढ़ते हैं अमरनाथ की ओर दुर्गम पहाड़ी पर। कटे धान के खेतों में फूल भर जाते हैं बातों ही बातों में। भुरभुरी कशमीरी मिट्टी में से हवा के संग-संग ढेर-ढेर से फूल निकल आते हैं। इतने फूल फूटते हैं तभी तो कशमीर की महिलाएँ नरम होती हैं—अंगूर के गुच्छे और सेब के गुद्दे में रस इतना होता है तभी वे मदालसा हो कर रह गयीं, यह ठीक नहीं है। खुश होता अगर देख पाता कशमीर में कँटीली लताओं की अधिकता, अगर सुनता कि प्राच्य के इस नन्दन कानन में मिलते हैं विषैले सर्प, अगर पता चलता कि जंगलों में मिलते हैं ख़ौफ़नाक जानवर।

सौन्दर्य के साथ अगर स्वभाव में दृढ़ता होती तो कशमीर ठीक लगता। कशमीर में पत्थर नहीं है इसी लिए इस में कठोरता नहीं है। उस की दृष्टि में है भद्रता, आचरण में नम्रता, चाल-चलन में भव्यता। जाति-भेद है, किन्तु अस्पृश्यता नहीं है, रुचि-भेद है, मगर उस की अभिव्यक्ति में रुक्षता नहीं है। उन की भाषा एक है, संस्कृति और भोजन एक सा है। उन की राजनीति में विरोधियों का ध्वंसात्मक षड्यन्त्र नहीं है—वे सभी एकाकार हैं। जिन से मत नहीं मिलता, उन्हें घर बुला लाते हैं विरोध मिटाने की ख़ातिर। उन का कोई उग्र राजनीतिक या अर्थनैतिक मतवाद नहीं है। उन की मात्र लालसा है, युग-युगान्तरों के दस्युओं के हाथों से कशमीर को बचाये रखना। अब जिन्दा रहने की नीति का अनुसरण उन्होंने किया है।

देखा है खनबल, देखा अनन्तनाग और मार्तण्ड, देखा है आइसमोकाम और गण्डारबल—भावों का विरोध नहीं कहीं भी। निरीह जीवन-यापन अनाहत शान्त। हर खेतों में खेती हो रही है धान की, मन्दिरों में गूँज रहा है घड़ीघण्ट, वितस्ता में स्नान कर के चले जा रहे हैं नर-नारी, केले के बग़ीचे के किनारे लौकी की मचान के बग़ल में खेल रहे हैं बच्चे, बिछावन को धूप में डाल रही हैं महिलाएँ। ऊपर की ओर दिगन्त में है देवतात्मा हिमालय का आदि-अन्तहीन अवरोध। अनन्त पर्वत शृंखलाएँ गगन के इस प्रान्त से न जाने किस प्रान्त को चली गयी हैं—मानो वह दिशाहीन निरुद्देश है। इन्हीं पर्वत शृंखलाओं के अज्ञात-अनाम गिरिसंकटों के भीतर से सदा से

दानव और देवताओं का आवागमन होता रहा है। सब से प्राचीन, सब से दुस्साहसिक विजयाभियान चला आया है इस हिन्दूकुश के नीचे-नीचे। प्राचीन सभ्यता की वाणी चली गयी है इस पार से उस पार तक। उन्होंने पार किया है कृष्णगंगा और सिन्धु, पार कर गये हैं टाँगीर, कोहिस्तान, हिन्दूराज, चित्रल, पार कर गये हैं अगण्य पहाड़ी पथ, अतिक्रम कर गये हैं एक के बाद एक दुस्साध्य गिरिसंकट; उन्हीं प्राणीहीन, तरु-लताविहीन, जलहीन दुर्गम तुषारकान्तार के भीतर से। अगणित नामहीन गिरिसंकट आज भी मानचित्र में नहीं आ पाये हैं। चित्रल के भीतर से दोरान, पंच शिर पर्वत-श्रृंखला से बलियान पथ—एक के बाद एक चला गया है जाने कहाँ आमू दरिया का प्रवाहपथ पकड़ कर टारमेज की ओर।

टारमेज ! चौक पड़ा। याद हो आया प्राच्य की मानव सभ्यता का, उसी समय प्रथम जन्म हुआ है भारतवर्ष का। वह दिन स्मरणीय काल से भी अतीत है। आर्य जप करने बैठे थे हिमालय पर, उन का वही बीजमन्त्र से भारत सभ्यता का प्रथम उद्‌बोधन हुआ। कोई भी नहीं था उस वक़्त पूर्व और पश्चिम में। जन्तुओं की खाल ओढ़ कर मनुष्य चक्कर काटते थे—क्या नारी, क्या नर, लज्जा उस समय तक नहीं आ पहुँची थी उन के अंगों में। इस के बाद ख़बरें फैल गयी मध्य-प्राच्य के टोले-टोले में, हिमालय के उपवनों और तपोवनों में साम गान गूँजने लगा। वेद-रचना के बाद वेदव्यास लग गये थे वेद-विभक्ति में। इस के बाद देखते-देखते व्यतीत हुआ बहुत सा काल। न जाने कितने ही युग-युगान्त। ऐसे ही एक काल में इसी हिमालय के गहन रहस्यलोक से प्रकट हुआ एक तरुण सुकुमार राजकुमार—उस का नाम था शाक्यसिंह। जीवन क्या है, मृत्यु क्या है, पथ क्या है, ईश्वर क्या है ?—ये ही प्रश्न उसे उस दिन अस्थिर किये था, तभी भारत का इतिहास फिर मुड़ कर खड़ा हुआ। वही ढाई हज़ार वर्ष पहले, उस समय भी जन्मे नहीं थे दिग्विजयी अलेक्ज़ेण्डर, हेलास, स्लाव, मंगोल, अरब—इन का नाम सुना किसी ने नहीं; गन्धार तब थे मगर कनिष्क आ नहीं पहुँचे थे; उस समय असभ्य जाति से युरॅप था अध्यूषित; इंगलैंड था उस समय आदिम सामुद्रिक जाति का इलाक़ा। उस समय इसी हिमालय के अन्तर्गत कश्मीर और हिन्दूकुश की शाखा-प्रशाखाओं में समग्र गन्धार को छोड़ कर कश्यप झील पार कर वही शाक्यसिंह की पृथ्वी विजयिनी सभ्यता अपने अपराजेय वीर्यवत्ता को प्रकट किया था सम्राट् अशोक के उद्यम से।

इसी आमूदरिया की सीमान्त में थी—भारतीय सभ्यता की सीमा। प्रायः आठ सौ वर्ष बाद चीनी परिव्राजक ह्वेनत्सांग ने यहाँ प्रथम बार पदार्पण किया, देखी थी पृथ्वी का विराटतम बुद्धिमूर्ति। इस महाकीर्ति के प्रथम प्रतिष्ठाता थे सम्राट् कनिष्क—भारत और मध्य-प्राच्य के वे गौरव थे। कनिष्क ने अपने शासन काल में सम्राट् अशोक के आदर्श का पालन किया था और उन्होंने समग्र गन्धार में अगणित बौद्ध मठों का निर्माण किया। गन्धार से उत्तर भारत एवं आर्यावर्त तक था उन का साम्राज्य। उसी गन्धार के एक बौद्धमठ में ह्वेनत्सांग बहुत दिनों तक रहे। इस हिन्दूकुश और आमूदरिया

के मध्यवर्ती प्राचीन बैक्ट्रिया की सभ्यता अभी हाल तक जाज्वल्यमान थी, मगर मंगोल द्वारा मात्र छह सौ वर्षों आगे उस सभ्यता का सम्पूर्ण नाश हुआ। ह्वेनत्सांग ने कहा है, हूणों के भयंकर ध्वंसात्मक आक्रमण के होने के बावजूद सातवीं सदी तक बैक्ट्रिया की राजधानी में सौ से भी अधिक बौद्ध गुफाओं में प्रायः तीन हज़ार बौद्ध भिक्षु उस समय भी थे।

इस टारमेज और आमूदरिया के किनारे पर आ खड़े थे दिग्विजयी अलेक्जेण्डर। उन की पोशाक थी जानवरों की खालें और लतापत्र। इस टारमेज और आमूदरिया के प्रान्त तक भारत की राजनीतिक सीमा थी—जिस पर सम्राट् अशोक का प्रभुत्व था। उत्तर में ऐसे ही था बृहत् पामीर—अलताई पर्वत शृंखला की शेष सीमान्त तक। इतिहास युग आया बहुत बाद को किन्तु कशमीर के उत्तर, पश्चिम और पूर्व दिशा में हिमालय के अन्तर्गत काराकोरम उर्फ़ कृष्णगिरि के चप्पे-चप्पे में—और आलताई, हिन्दूकुश, को-ही-बाबा, कालापंजा, हरिरुद्र, हेलमन्द, पंचशिर, कपिश, त्रिचिमीर, सेवक शिवराग—आदि इलाक़े सदा से भारतीय भूगोल के अन्तर्गत थे। अनेक नाम बदल गये हैं, मगर आज भी उन की गुफाओं में बौद्ध संस्कृति बची है—पथ-प्रान्तों-उपत्यकाओं, मठ और मन्दिरों के ध्वंसावशेषों में शिला-शिला में खुदी है अशोक और कनिष्क की अनुशासन लिपि। आज का अफ़गानिस्तान, उन दिनों नीचे से ऊपर तक बौद्ध धर्म में दीक्षित था, था गन्धार के अन्तर्गत—जहाँ ग्रीक और भारतीय संस्कृति के संयोग से अभिनव शिल्प-कला को जन्म मिला। परवर्ती काल में जिस का नाम पड़ा—गन्धार शिल्प। किन्तु इस स्थापत्य और ललितकला को बौद्ध संस्कृति से जन्म मिला था। सम्राट् अशोक के शासन काल में बृहत्तर कशमीर और गन्धार में स्वर्णयुग का ऐश्वर्य दीखा था। श्रीनगर शहर प्रथमतः उन्हीं का प्रतिष्ठित किया हुआ है।

लौट आऊँ ऐतिहासिक युग के कशमीर में। उस हिन्दूकुश की उपत्यका के पथ पर खड़े हो कर फफक-फफक कर रो चुके हैं गन्धार नर-नारी। वहाँ के स्निग्ध, श्यामल प्रान्तों में अन्धड़-तूफ़ान मचा है, बालू की आँधी आमूदरिया से उठी और हिन्दू राज पर्वतमाला पार कर मध्य एशिया तक फैली—रक्त से तर तलवार हाथों में ले कर मंगोल शासक चंगेज़ ख़ाँ दौड़े आये भारत बहिर्प्रान्त में। क्षण-क्षण में चंगेज़ चंचल हो उठा था। शत-शत कोटि स्वर्णमुद्रा मूल्य के जड़ाऊ, जवाहिरात, परम सुन्दरी अनन्त यौवना कशमीरी उर्वशियों, झील-गुफाओं-उपत्यकाओं से घिरे शस्य शोभामय कशमीर और भारत—आकुल-व्याकुल हो उठा तातार सम्राट् चंगेज़! वृष का खाल पहने, कण्ठ में खून का प्यासा, मृत्यु-बवण्डर सा बढ़ता आया।

चंगेज़ ख़ाँ ने कहा था : सिर्फ़ चाहिए जीत की खुशियाँ। हारे हुए दुश्मन की छाती पर खड़े हो कर जीत का झण्डा फहराऊँ। मेरी खुशी इसी में है। तोड़-फोड़ लूट-मार और सभी टूटे भहराये स्तूपों पर खड़े हो कर रोयें—यही मनोहर नज़ारा देखना चाहता हूँ। औरतें और लड़कियों के ऊपर अत्याचार करूँ—यही मेरा मक़सद है।

आग, खून, लूट, हत्याएँ ध्वंस ही मेरा श्रेष्ठ परिचय है।

अनगिनत नरबलि चंगेज़ ने दी। मध्य एशिया के अनेक खण्ड जनशून्य होने लगे। लपलपाती आग की लपटों में वह झुलसने लगा। एक के बाद एक नगर ध्वंस-स्तूपों में बदल गये राजप्रासाद और मन्दिर-मठ। इस के बाद और भी बहुत समय बीत गया। इस के बाद फिर आया इस चंगेज़ का वंशधर तैमूरलंग, वह भी पार कर के ही आया था आमूदरिया का तीरवर्ती क्षेत्र टारमेज। वह पहुँचा दिल्ली तक। सहस्रों नर-मुण्डों से खेलते हुए उस ने भी एक लाख बन्दी भारतीयों की निष्ठुरता से हत्या की। ज़ाहिर है, तैमूर के एक-एक सेनापति अपने साथ डेढ़ सौ बच्चों, औरतों और मर्दों को ग़ुलाम बना कर ले गया। उन सभी ने समरकन्द में लौट कर करोड़ों स्वर्णमुद्राएँ, हीरे-जवाहिरात और खूबसूरत औरतों को आपस में बाँट लिया। हिमालय की गिरि-गुफाओं की खन्दकों में उन की रुलाई अनेक कालों तक प्रतिध्वनित होती रही है।

आमूदरिया की अश्रु-नदी आज भी बहती है टारमेज के किनारे-किनारे।

हिमालय के गर्भ में उसी पुराने इतिहास की पुनरावृत्ति हुई कशमीर में अभी उस दिन—१९४७ में। उस का भी ज़िक्र करूँ।

कशमीर में मेरे नव-उपलब्ध पत्रकार मित्र एम० के० धर की प्रेरणा से और अधिकारियों के सहयोग से कैप्टेन गाब्ले आये गाड़ी ले कर सवेरे-सवेरे। जीपगाड़ी में और भी एक तरुण मित्र हैं मिस्टर आचारी। मुझे ले जायेंगे वे युद्धरत सीमा की तरफ़, जो अभी कशमीर की 'सीज़फ़ायरलाइन' है।

पीरपंजाल का उत्तुंग पहाड़ी इलाक़ा सदा से विश्वासघाती है। उस पहाड़ की चोटी की तरफ़ देखते हुए आज भी हर कशमीरी का हृदय काँप जाता है। महिषासुर के मुण्ड की भाँति पीरपंजाल की एक-एक चोटी कराल-दृष्टि से देखती रहती है कशमीर को। जब कि समग्र कशमीर वंशपरम्परा से अहिंसा-यन्त्र में दीक्षित है। युद्ध करना इन्होंने सीखा नहीं, जानते नहीं आत्मरक्षा के निमित्त आत्मोत्सर्ग का अभियान। इसी वजह कभी भी किसी दुश्मन को रोक भी नहीं पाये।

श्रीनगर पार कर के मील चार-एक दूरी पर मिलता है सालाटेंग—यहाँ तक आ कर उस दिन पाकिस्तानी उपजातीय पठानों को रोका गया। यहाँ सड़क दो भागों में बँटी है। सामने है खूब फैला हुआ धान का खेत, अगल-बग़ल गाँव के वासियों का आकुल जीवन। मगर इसी धान के खेत से ही कशमीर के मिलिशिया पुलिस और स्वयंसेवकों के जत्थे ने उन का रास्ता रोका था। नगर में वे कहीं घुस न आयें। मगर यह प्रतिरक्षापूर्ण क्षमता जब कम होने लगी थी तभी वायुयान के द्वारा भारतीय सेनाएँ और सहायता श्रीनगर में पहुँची थी।

उपजातीय पठानों के साथ पाकिस्तान की सद्भावना मगर नहीं थी। ये थे अफ़ग़ानिस्तान के सीमान्त की सन्तानें परन्तु पाकिस्तान के चेले नहीं थे। वे अँगरेज़

और पाकिस्तान दोनों के प्रति बेरुखे हैं। लेकिन इन में जो बिलकुल ही हिंसक वृत्ति के हैं, जैसे हजारा ज़िला निवासी तुर्की-रूसी 'कारगिज कज्जाकी' लोग उन्हें उत्कोच दे कर जबरदस्ती वशीभूत किया था। धन-दौलत उन्हें मिलेगी, खेत-खलिहान मिलेगा, मनपसन्द औरतें मिलेंगी—यही आश्वासन पा कर उन्होंने हमला किया था। इन के पीछे रहा पाकिस्तान—जो अस्त्र और रसद पहुँचाता रहा। इस लिए दानवकाय उन्मत्त हाथियों का दल बृहद् एक दस्यु-दल बन कर रावलपिण्डी, मरी, हवेलियन, नाथियागली (नाथूला), कोहला और दूमेल की राहों से वितस्ता के किनारे-किनारे से कशमीर में घुस कर अनारकिक आक्रमण शुरू कर दिया। खून, आग और नारी अपहरण जैसे सर्वनाश बाढ़-वेग में चला।

कैप्टन पाब्ले खुद गाड़ी चला रहे थे। जाति के वे सिख हैं। जैसे सभ्य-शिक्षित, उतने ही शान्त स्वभाव के। हम सीधे बरमूला की राह पकड़ कर चल रहे थे। राहों में नज़र आ रहा है राजा ललितादित्य का कीर्ति-अवशेष, राजा अवन्तिवर्मा के अनेक स्मृति-चिह्न सम्राट् अशोक के ज़माने का कुछ-कुछ स्थापत्य। बहुत ही प्रशस्त सड़क पर मधुर धूप निखरी है, अगल-बग़ल के टीले पहाड़ियों पर रंग-बिरंगे चिड़ियाँ आगतप्रायः शरद्ऋतु का गुहार मचा जाती हैं। इधर-उधर सेब के बग़ीचों में ज़रा-ज़रा रंग पकड़ रहा है।

पाब्ले हँस कर कह रहे थे : इस राह से जा तो रहा हूँ मगर अभी उस दिन यहाँ बहुत खून बहा है। मगर बात क्या है, जानते हैं, दुनिया में शान्ति और अहिंसा का प्रचार करना एक बात है, और लड़ाई की रीति-नीति की बारीकी और विधि-व्यवस्था के ऊपर राजनीतिक प्रभाव डालना दूसरी बात।

गाड़ी चल रही है। बातें न समझ पाने की वजह से उन के मुँह की तरफ़ देखा—उन्होंने कहा, लगता है आप समझे नहीं, कशमीर की इस लड़ाई को हम ने पूरी तरह से जीत के क़रीब ले आये थे। मगर क़िस्मत हम लोगों की बुरी है। आखिरी और ज़ोरदार हमला करने ही वाले थे कि हमें ठिठक कर ठहर जाना पड़ा।

क्यों ?

कैप्टन हँस पड़े। फ़ौरन दुःखी गले से बोले : राष्ट्र की नीति अहिंसा और सहृदयता पर क़ायम रह सकती है मगर लड़ाई के वक़्त की सिर्फ़ नीति होती है बर्बरता को नेस्तनाबूद करना। हमारी उस नाटकीय विजय के समय अचानक राजनीतिक निर्देश ने लड़ाई के हमले को नियन्त्रित कर लिया। कशमीर की जनता हाय-हाय करने लगी हमारी कमज़ोरियों पर।

इस के बाद ?

इस के बाद सीज़फायर ! छाती चौड़ी कर दुश्मनों के खून से सराबोर दस्युदल उस पार जा खड़ा हुआ और उसी तरह छाती फुला कर ब्रिटिश-अमरीकी साज़िशदाओं ने भेज दिया राष्ट्रसंघ के प्रतिनिधियों को। आँखों से देख लीजिए दोनों तरफ़ तम्बू

तान बैठे हैं—साजिशें हो रही हैं इस पार और उस पार। हर तम्बू में औरत और शराबखोरी हुड़दंग। सादी गाड़ी दौड़ाते वे आते हैं श्रीनगर—बदचलन ब्रिटिश-अमरीकी लड़कियाँ हैं उन की जासूस। उन की गन्दी हरकतें सभी जानते हैं। आप लोग तो जानते ही हैं, एक अंगरेज़ महिला के जासूसी की कहानी। बख्शी गुलाम मुहम्मद ने उसे कशमीर से निकाला दिया। मगर हम में सभी ताक़त होते हुए भी हम बेवक़ूफ़ बने रहे।

श्रीनगर से बरमूला उत्तर-पश्चिम में कुल चौंतीस मील है। दूर पर पहाड़ की चोटी पर शंकराचार्य का मन्दिर दीखता है। बीच-बीच में सड़क के दोनों तरफ़ चिनार और पपलार की पाँति। जिधर नज़र जाती है, जिस तरफ़ मुड़ता हूँ—कोमल कशमीर—खूबसूरत, मुलायम, स्निग्ध। छोटे-छोटे टीले-पहाड़ इधर-उधर, इस खेत में और उस खेत में—लगता है, आगामी वर्षा में सभी गल जायेंगे।

पाटन कब का पार कर आया। यही एक राह है। इसी राह से जैसे आया था पठानकोट से जम्मू और श्रीनगर, वैसे ही यही राह सीधी चली गयी है बरमूला, उड़ी, दूमेल और कोहला झेलम नदी का पुल पार कर सनीबैंक हो कर रावलपिण्डी की तरफ़।

सहसा एक टीले के नीचे पहुँच कर कैप्टन ने जीप खड़ी कर दी। अन्दाज़न पचास फ़ुट की ऊँचाई। हम ऊपर चढ़े। सामने ही एक काले पत्थर की यादगार। १९४७ के अक्तूबर में लेफ़्टीनेण्ट कर्नल डी० आर० रे ने इसी पहाड़ी पर खड़े हो कर पठानों का प्रतिरोध किया था, यहीं बही हैं उस दिन खून की नदियाँ। वह खून बह गया है खेत-खलिहानों में, और अदूरवर्ती वितस्ता के गैरिक स्रोतों में। मगर हज़ारों की क़तारों के सामने कर्नल जैसे खड़े नहीं रह सके, उसी तरह एक इंच पीछे हटना भी नहीं चाहा, परिणामस्वरूप यहीं गोली से घायल हो कर वे मर गये। उन्हीं असीम साहसी योद्धा के हृत्पिण्ड से इस स्थल पर खून की पहली बूँद गिरी, इसी कारण उन की याद में काला पत्थर यहाँ रखा गया। तारीख अंकित है पत्थर के ऊपर अक्तूबर २७, १९४७।

बरमूला आ पहुँचा, करीब डेढ़-एक मील में फैला छोटा शहर, प्रवेश पथ पहाड़ से घिरा हुआ। इस का प्राचीन नाम था बराहमूल। समाचार-पत्रों में पढ़ी हुई उस दिन की बीभत्स कहानी याद कर के दोनों पैर बोझिल हो गये। सामने ही है वही मिशनरियों का सुप्रसिद्ध सेंट जोसेफ़ कन्वेण्ट। कैप्टन ने कहा : आइए अन्दर चलिए।

अन्दर अस्पताल और विद्यालय है, अगल-बग़ल मनोरम बाग़ और बैठने-उठने के कमरे। इसी में घुस कर दस्युओं ने जिन कई-कई गोरी रमणियों पर पाशविक अत्याचार किया था, उन में से एक को बुला कर कैप्टन ने परिचय कराया। शान्त, नम्र स्वभाव की महिला थी। उस महिला ने उन भयावह दिनों की बीभत्स कहानी का वर्णन करते हुए कहा : हमारे एक मित्र किसी अँगरेज़ कर्नल की स्त्री ने उस समय

एक बच्चे को जन्म दिया था और उसी दिन पठान आक्रमण का समाचार पा कर स्वयं कर्नल आये और अपनी पत्नी और नवजात शिशु को विलायत ले जाना चाहा, मगर यह सम्भव नहीं हुआ। दस्युओं ने पति-पत्नी की कन्वेण्ट में ही हत्या कर दी और बच्चे को आग में डाल कर खुशी में नाचते रहे। उन के सांघातिक आक्रमण से सारा कन्वेण्ट तहस-नहस हो गया। यह जो देख रहे हैं, यह सब नये तरीक़े से सहेजा गया है। मैं सिर्फ़ अकेली उस दिन से प्रेतनी हो कर बास कर रही हूँ।

कैप्टन का सिर झुका हुआ था। मैं घूम-घूम कर चारों तरफ़ देखने लगा। पीरपंजाल तक की सीमा में आ कर यह सब मुझे देखना पड़ा।

मरे हुए मन से हम कन्वेण्ट से निकल कर शहर घूमने के लिए निकले। लग रहा था, कल ही सारा शहर जल कर लकड़ी के कोयले की भाँति हो गया है। सड़कों पर हर कहीं ध्वंस का स्तूप। कैप्टन दिखला रहे थे, बेधड़क लूट और हत्या का केन्द्र, सैकड़ों नर-नारी जल कर मर गये हैं इसी एक अग्निकुण्ड में, पथ के एक-एक मुहाने में दस्यु अनगिनत स्त्रियों को नंगा कर के उल्लास में नाचते रहे थे। पतियों के दोनों हाथ काट कर उन्हीं कटे हाथ-पैरों के द्वारा नग्न औरतों पर प्रहार किया गया था। बहुत सी उत्पीड़ित आतंकित नंगी औरतों ने भाग कर वितस्ता में अपनेआप को सदा के लिए छिपा लिया था। अनगिनत औरतों की खून से लथ-पथ देह नालों के किनारे पड़ी रही लावारिस। पत्थरों पर पटक, पछाड़ कर अनगिनत औरतों और बच्चे-बच्चियों की हत्या की गयी। जल कर भस्म हो चुका है बरमूला। जिस दिन मौत सी शान्ति लौट आयी, उस दिन मालूम पड़ा कि बरमूला के अँधेरे श्मशान में कोई रोने वाला तक नहीं है। जाते समय दस्यु ले गये सैकड़ों स्त्रियों और लड़कियों को। बरमूला का यही इतिहास है।

मुसलमानी शहर, मगर एक भी मसजिद नज़र नहीं आती। आगे बढ़ कर, देखा, सँकरी वितस्ता के उस पार के मन्दिर में उस समय भी बज रहा है शंख और घण्टा। एक चिनार के छितराये पेड़ की छाया पड़ रही है मन्दिर के सुवर्ण कलश पर। कलश पर काली लकीरें पड़ी हैं। सुना, उस पार भी आग लगी थी। मन्दिर के आँगन में पण्डितों की आवाजाही नज़र आ रही थी। वितस्ता के तीर पर अवगाहन, स्नान और पूजा-पाठ हो रहा है।

बाज़ार के जन-संकुल एक पथ पर पहुँच कर कैप्टन खड़े हो गये। सामने ही कशमीर-केसरी मक़बूल शेरवानी का भहराया हुआ दोमंज़िला मकान था, और उस की ईंट की दीवार पर आज भी गोली के निशान दीख रहे हैं। इस इतिहास-प्रसिद्ध वीर के घर-मकान में आग लगा कर उसी के सामने उस के परिवार के प्रत्येक नारी और बच्चे की एक-एक कर हत्या की गयी। इस के बाद दस्युओं ने शेरवानी से सवाल किया : अब भी वह पाकिस्तान को आत्मसमर्पण करने को तैयार है, या नहीं ? शेरवानी ने घिन से भर कर हत्यारे दस्युओं के प्रत्येक सवाल का विरोध किया।

उस के अपमानजनक तिरस्कार से बिगड़ कर दस्युओं ने उसी के मकान की दीवार में उन्हें कील से जड़ कर उसे गोलियों से छलनी बना दिया।

शेरवानी को आज नित्य प्रणाम करता है कशमीर!

वापसी में। 'संग्रामा' हो कर 'सोपोर'। इस का प्राचीन नाम था सुइयापुर। बहुतों का कहना है: राजा अवन्तिवर्मा के जमाने में 'सुइया' नामक एक इंजीनियर ने झेलम की बाढ़ के ग्रास से कशमीर को बचाने की खातिर यहाँ एक नदी काट निकाली थी। जो भी हो, सोपोर का भी यही इतिहास है। नदी के उस पार से आते हैं उपजाति पठान और पीछे से बढ़ आते हैं बरमूला से दस्युओं के जत्थे। दोनों का अभिप्राय था लूट-मार और नारी अपहरण। उसी भयंकर संकटकाल में कई परिवारों के पुरुष अपने-अपने हाथों से अपने परिवार की नारियों की हत्या कर, अन्त में खुद नदी में कूद गये। उसी नाटकीय संकट काल में चारों तरफ़ से भारतीय सेना ने दस्युओं पर हमला किया। कैप्टन ने धीर कण्ठ से कहा: मुसलमानों के ऊपर मुसलमानों द्वारा यह अमानुषिक बर्बरता पृथ्वी के इतिहास में और नहीं मिलती।

रक्त से तर भू-स्वर्ग अब शायद मौत और अपमान से भीषण मूर्ति धारण कर खड़ा होना चाहता है। बेबस, त्रस्त, मृण्मयी अब अपनी धूल-धूसरित बिखरी केशराशि में वेणी गूँथे। तप्त कराल दृष्टि उठा कर अब पुकार कर कहे: 'हे विधाता, मुझे अब मत रखो वाणीहीना, रक्त में मेरे बजती है रुद्रवीणा!' अब पोंछ ले वह अपने आँखों के आँसू। क्षत-विक्षत रक्ताक्त देह से पुकारे उस हरमुख हिमालय के वज्रपाणि को—पशु-हनन के लिए पाशुपत उठा लें।

सिहरन दुबकी बैठी थी किसी एक तराई की बस्ती में। उस की चोटी की ओर पश्चिम-मुखी एक मसजिद इतने दिनों में पहली बार दीखी। वास्तविक नाम था, जनक महल, लेकिन नाम अब बदल चुका है—जैसे ऐश (आयेश) मोकाम! वास्तविकता यह है कि समस्त कशमीर में बौद्ध और हिन्दू स्थापत्य कीर्ति ही की प्रधानता रही है। इन में कहीं-कहीं और दो वास्तु-कलाओं का प्रभाव भी दीखता है। एक है ग्रीक और दूसरा तिब्बती, जिस का मूल साँचा है मंगोलियन। सम्प्रति तीन-चार सौ वर्षों में कुछ-कुछ मुग़ल साम्राज्य की भी छाया पड़ी है, इस में सन्देह नहीं। श्रीनगरके निकट जो मसजिद है—अर्थात् शाह हमदान—इसे बौद्ध मसजिद कहा जा सकता है। यह मसजिद जहाँ उठ खड़ी हुई है, वह स्थल है देवी कालीश्वरी के प्राचीन मन्दिर का प्रांगण। कशमीर में सब से बड़ी जुमा मसजिद भी ऐसी ही है, प्राचीन देव-देवियों के बीच ही उस की बुनियाद है। मगर क्या यहाँ के अलावा और कोई जगह नहीं थी? थी क्यों नहीं! मगर हिन्दू स्थापत्य स्थान निर्वाचन में सदा से पारदर्शी रहा है। पुरी का जगन्नाथ, समुद्र के किनारे कोणार्क, पश्चिम पाकिस्तान के अन्तर्गत झेलम शहर के नदी तट पर का विशाल

शिवशक्ति का मन्दिर, पूरब पाकिस्तान में समुद्र शोभा समन्वित चन्द्रनाथ, बिलोचिस्तान के अघोर नदी के तट पर ज्योतिर्लिंग, हिंगुलादेवी, अग्नितीर्थ का सोमनाथ, ब्रह्मपुत्र के पार कामाख्या, बम्बई की महालक्ष्मी, काशी के वेणीमाधव और आदिकेशव गिना सकता हूँ एक के बाद एक। गिना सकता हूँ राजगृह, जैसलमेर, जोधपुर, पूना और रामेश्वरम्—और भी बहुत से नाम। पहाड़ों में, समुद्रों में, जंगलों में, नदी किनारे—प्रत्येक हिन्दू स्थापत्य का स्थान-निर्वाचन है सौन्दर्यबोध का प्रतीक। मगर इस के कारण का अनुमान लगाने में विलम्ब नहीं होता। कश्मीर है बाढ़ वाला देश, अचानक बाढ़ आती है—बहा कर ले जाती है सब-कुछ। ऊँचाई पर स्थिर रहना निरापद है।

मार्तण्ड शहर में आया। कशमीरी पण्डितों को देखा है, अब देख रहा हूँ पण्डों को। इन के पूर्व पुरुषों ने एक समय धर्मान्तरित कशमीरी हिन्दुओं को अपने बीच ठौर नहीं दिया था। जैसे गया में, काशी और वृन्दावन में, मथुरा, हरिद्वार और कलकत्ते के कालीघाट में—ये भी ठीक वैसे ही हैं कट्टर। वही एक पेशा पुण्य वितरण का। यहाँ सरोवर के तीर पर सूर्यनारायण का मन्दिर बहुत प्रसिद्ध है—नाम है मार्तण्ड मन्दिर। इस का स्थापत्य, कारूकला एवं अवस्थिति सचमुच प्रशंसा के योग्य है। मार्तण्ड शहर का वर्तमान नाम है इसलामाबाद, क्यों यह नाम पड़ा—इस की खोज नहीं की, मगर मार्तण्ड को बहुत लोग माटान भी कहते हैं। यहाँ से थोड़ी दूर पर राजा ललितादित्य का सर्वप्रथम स्थापत्य मौजूद है। कशमीर को उन्होंने अपने हाथों गढ़ा था।

अनन्तनाग के शान्त गाँव में आ पहुँचा। ऊँचे-नीचे, गली-कूचे, वन-बगान, झुरमुट-झाड़ों से घिरा गाँव। क़रीब के एक गन्धक-झरना के ही निकट एक देवस्थान। सचमुच जहाँ जाओ, जिधर देखो—देवस्थान के सिवा और कुछ नहीं। चलते-चलते ही देख लिया विष्णु और राधाकिशन, राम-लक्ष्मण और सीता, सत्यनारायण और सूर्य। पर्वत श्रृंखलाओं को तरफ़ ताको—अधिकांश नाम हैं, हरमुख, हरमहेश, कृष्णगिरि, शंकराचार्य, हरिपर्वत, श्रीनाग, भैरवघाटी, अमरनाथ आदि। नदियों की ओर दृष्टि फेरो—वितस्ता, चन्द्रभागा, कृष्णगंगा, नीलगंगा, दूधगंगा, रोमहर्षी, भृंगा, सहस्रा, रामविहारा, मदमति आदि। नगरों को देखो—सुखनाग, नरनाग, नागमार्ग, अवन्तीपुर, व्रजबिहार, आशुनाग, रामपुर, रामघाट, चण्डीगाँव इत्यादि। ताल-तलैयों की चर्चा यदि करो तो कृष्णसागर, विष्णुसागर, गंगा और मानसबल, वुलर—जिसे कहा जाता है उलवरबुद्धबल, गान्धारबल, नरबल, अमरसायर, तरसायर आदि-आदि। संस्कृति-सभ्यता और स्थापत्य में कशमीर है ऊपर से नीचे तक आर्य हिन्दू और आर्य बौद्ध। जो मुसलमान जनता नज़र आ रही है उस की प्रकृति, आचरण, अभ्यास, जीवनयापन, शारीरिक गठन, आकार, भाव-भंगिमा, आँखें और नासिका, सामाजिकता—सब कुछ है मुसलमान विरोधी। उत्तर भारत अथवा पश्चिम पाकिस्तान के मुसलमान उन के सामने आ खड़े होते हैं तो वे अचरज में डूब जाते हैं; तातार, मुग़ल या पठान मुसलमानों को देख कर वे अपने घर के द्वार बन्द कर लेते हैं। मुग़ल ज़माने के मुसलमानों के साथ उन का मेल

आज भी नहीं हो पाया है। उन के सब से अधिक निकट पड़ते हैं—कशमीरी हिन्दू—जैसे पूर्व बंग के मुसलमानों के परमात्मीय हैं पश्चिम बंग के हिन्दू। दोनों में आत्मीय परिचय बहुत ही घना है। एक ही रक्त के सन्तान हैं ये। राजनीति है बाहरी रंग, रक्त-नीति है आन्तरिक रंग।

सात पुलों (कदल) के द्वारा श्रीनगर इस पार और उस पार से जुड़ा है। पहले पुल का नाम है 'अमीराकदल'। कदल का अर्थ है पुल। अमीराकदल के उभय पार ही है लगभग नगर का मध्य बिन्दु अर्थात् नाभि। उसी के आस-पास खालसा होटल में इस के पहले ठहरा था। इस बार पड़ाव डाला है इम्पीरियल बैंक के बाग़ में तम्बू लगा कर।

उस दिन अप्रत्याशित भाव से एक निमन्त्रण पत्र आ पहुँचा सदर-ए-रियासत के यहाँ से—सुनहली लाल स्याही में छपा। यह जान लिया कि पत्रकार मित्र मिस्टर धर का उत्साह इस के पीछे है। अपराह्न साढ़े चार बजे युवराज कर्णसिंह जलपान के माध्यम से सम्मानित करना चाहते हैं।

श्रीनगर का दक्षिण अंश है घनी बस्ती। बाज़ार का हिस्सा पार करते ही मिलती है आधुनिक आबोहवा। शेख अब्दुला को गद्दी से उतारे अब तीन सप्ताह बीत चुके हैं, आतंक भाव अब नहीं है। अवस्था स्वाभाविक है। प्रधान मन्त्री के रूप में सरकारी शासन का भार लिया है कशमीर के लौह पुरुष बख़्शी ग़ुलाम मुहम्मद ने। यानी अभी उस दिन तक के शेख अब्दुल्ला के दाहिने हाथ बने हुए थे। मगर राजनीति की चालें विचित्र हैं। देशद्रोहिता के अपराध में शेख अब्दुल्ला को प्रधान मन्त्री पद से रातों-रात हटा दिया गया और दूसरे दिन वे जब गुलमर्ग से अपने सहयोगी मिर्ज़ा अफ़ज़ल बेग को साथ ले कर पाकिस्तान अधिकृत कशमीर इलाक़े में भाग गये, उस समय रास्ते में ही उन्हें गिरफ़्तार कर लिया गया। प्रजा परिषद् का सन्देह अक्षरशः सच निकला।

यह बात यहीं साफ़ हो, यह अनिवार्य है। राजनीति या इतिहास की खोज मेरा अभिप्राय नहीं है। मगर कशमीर के एक विशेष संकट-सन्धिकाल में वहाँ जा पहुँचा, इस लिए इसे नज़रअन्दाज करना मुश्किल था। शेख अब्दुल्ला कशमीर के अविसम्वादी नेता थे। उन्हें कहा जाता रहा 'शेर-ए-कशमीर', मगर १९५३ के मार्च-अप्रैल के बाद से सहसा उन का राजनीतिक अभिमत मुड़ जाता है और कशमीर को स्वाधीन कह कर घोषित करने का एक अद्भुत प्रयत्न वे करते रहते हैं। बहुतों की धारणा है कि वे किसी अमरीकी नेता और दो-एक पाकिस्तानी स्थानीय नेताओं के षड्यन्त्र में शामिल हो गये। स्पष्ट है, इसी समय कशमीर की प्रजा परिषद् के नेताओं को इस षड्यन्त्र का आभास मिला और उन के हाथ तत्कालीन कशमीर-मन्त्री मिर्ज़ा अफ़ज़ल बेग लिखित कई पत्रों की नक़लें लगीं। प्रजा परिषद् ने डॉ० श्यामाप्रसाद मुखर्जी को निमन्त्रित किया था। श्यामाप्रसाद कशमीर पहुँच कर वास्तविक तथ्य के उद्घाटन में समर्थ हुए और जानकार

सूत्रों की धारणा यह है कि उन्होंने कई पत्र नेहरू को दिखाये थे। नेहरू ने इस पर यक़ीन नहीं किया। शेख अब्दुल्ला उन के बीस वर्षों के मित्र हैं और नेहरू थे मित्र-परायण। मित्र से बिना बातचीत किये वे कोई धारणा नहीं बना सकते थे।

इसी बीच शेख अब्दुल्ला के विरुद्ध प्रजा परिषद् का प्रबल आन्दोलन शुरू हुआ। इस आन्दोलन की सम्मानजनक निष्पत्ति की खातिर श्यामाप्रसाद श्री नेहरू और शेख अब्दुल्ला से पत्राचार करते रहे। मगर उस प्रयत्न के व्यर्थ होने के बाद उन्होंने स्वयं परिस्थिति के निरीक्षण के लिए कश्मीर में प्रवेश करने का निर्णय लिया और शान्तिपूर्ण उपायों से सभी को निष्पत्ति हो सकती है या नहीं यह शेख अब्दुल्ला से पूछा। अब्दुल्ला इस पर भी राजी नहीं हुए। तब श्यामाप्रसाद ने स्थिर किया कि वे भारत के अन्तर्गत कश्मीर में बिना पारपत्र के प्रवेश करेंगे। कश्मीर सरकार का अपना कोई पारपत्र नहीं है। यह भारत सरकार के द्वारा ही प्रवर्तित है। अर्थात् श्यामाप्रसाद को कश्मीर-प्रवेश में किसी प्रकार की बाधा नहीं पहुँचायी गयी, यहाँ तक कि माधोपुर चेकपोस्ट से इरावती नदी के पुल के ऊपर तक स्वागतपूर्ण ढंग से ही उन्हें ले जाया गया।

"To see that entry into the state without permit was facilitated."—यह था भारत सरकार के अधीन गुरुदासपुर के अफ़सर का निर्देश। स्थानीय जिला मजिस्ट्रेट ने श्यामाप्रसाद के आगमन पर शुभ कामना प्रकट की थी। वह दिन था ११ मई १९५३। पुल के उस पार पहुँचते ही उन्हें गिरफ़्तार कर लिया गया। विचित्र थी यह गिरफ़्तारी। कश्मीर अथवा भारत—किस पक्ष ने किस क़ानून से इस भारत प्रसिद्ध क़ानून विशेषज्ञ को गिरफ़्तार किया, कुछ समझ में नहीं आया। लेकिन श्यामाप्रसाद को सिर्फ़ दो महीने के लिए नज़रबन्द रखने का निर्णय एक नये प्रकार का था, कारण उन्हीं दो महीनों तक पण्डित नेहरू थे विशेष व्यस्त। उन्हें जाना था इंग्लैण्ड को रानी एलिज़ाबेथ के राज्याभिषेक के निमन्त्रण और यूरोप के भ्रमण में।

किन्तु पण्डित जी के मन में शान्ति नहीं थी। वे गये कश्मीर अब्दुल्ला से मिलने। शेख साहब ने इस बार कुछ भिन्न बातें कीं। इस बार पण्डित जी का स्वागत श्रीनगर में नहीं हुआ। इस के बाद बख्शी ग़ुलाम मोहम्मद और श्यामलाल सर्राफ़—इन दोनों मन्त्रियों के साथ शेख साहब का मनमुटाव असर करता रहा और वे कश्मीर के भिन्न-भिन्न स्थानों में तरह-तरह के विरोधाभासपूर्ण और हिन्दू भारत-विद्वेषी भाषण देते रहे।

गिरफ़्तारी के एक महीने ग्यारह दिनों बाद २३ जून को सहसा अन्तिम रात में श्यामाप्रसाद की मृत्यु हो गयी। यह मृत्यु स्वाभाविक कारणों से हुई या नहीं, यह सवाल समग्र भारत ने उठाया। पश्चिम बंगाल के राज्यपाल डॉ० हरेन्द्रकुमार मुखोपाध्याय ने खुले हृदय से यह घोषित किया कि श्यामाप्रसाद बिलकुल ही साम्प्रदायिक मनोभाव वाले नेता नहीं थे। पूर्व बंग से जनाब फ़ज़लुल हक़ ने कहा, इतना उदार राष्ट्र-निष्ठावान् कर्मी उन्होंने देखा तक नहीं। वे सहोदर के विछोह जैसा अनुभव कर

रहे हैं। ऐसे समय में ही खबर आयी : श्यामाप्रसाद की डायरी कश्मीर पुलिस को प्राप्त हुई है, वह वापस नहीं की जायेगी।

लौट आये नेहरू। उन्होंने श्यामाप्रसाद की जननी श्रीयुक्ता योगमाया देवी को सान्त्वना दी। मगर बंगाल के शार्दूल स्वर्गीय सर आशुतोष की सहधर्मिणी ने वह सान्त्वना स्वीकार नहीं की। उन्होंने अभियोग पेश किया भारत सरकार और पण्डित नेहरू के खिलाफ़। मगर इस अभियोग का युक्तियुक्त जवाब देने अथवा श्यामाप्रसाद की आकस्मिक मृत्यु को निरपेक्ष जाँच की माँग से सरकारी और ग़ैरसरकारी लोगों की नियुक्ति—ये दोनों काम पण्डित जी के लिए असुविधाजनक थे। सम्भवतः उन के मन में यह डर था कि जांच से कहीं भारत में पुनः साम्प्रदायिकता न भड़क उठे। मगर इतने दिनों में शेख अब्दुल्ला की सरकार के प्रति भारत की प्रायः सभी राजनीतिक पार्टियों में एक गहरा सन्देह उत्पन्न हो चुका था। श्यामाप्रसाद की गिरफ़्तारी और मृत्यु से उस दिन यह पता चल गया कि दुनिया के सब से श्रेष्ठ गणतन्त्र देश भारतवर्ष में भी एक सत्यवादी, न्यायनिष्ठ, निर्भीक, देश-हितकारी साधक का मूल्यवान् जीवन भी संकट से परे नहीं है—यदि उस के साथ शासन का मत विरोध हो तो।

श्यामाप्रसाद की मृत्युपुरी उस दिन देख आया निशातबाग़ के पीछे।

शाम चार बजे गाड़ी आ खड़ी हुई तम्बू के सामने। अब था नया पथ। श्रीनगर सुन्दर होता जाये अगर शहर-बाजार छोड़ कर आगे बढ़ा जाये। चिनार-सरपत को काटते हुए प्रत्येक पथ कहाँ से कहाँ झुरमुटों में पहुँच कर किस ओर के जंगल-झाड़ियों में खो गया है—मेरे सपनों के संसार की तरह ! अगल-बग़ल दीखता है, देवदार-पपलार—चिनार-सरपत के निकुंज में मैं देख रहा हूँ। महाकाव्य के पन्ने-पन्ने पर अंकित होता जा रहा है इस हिमालय का अन्तः इतिहास—जब लौट कर जाऊँगा, गूँगी दीवार होगी आँखों के सामने, पाठ करूँगा तब इस महाकाव्य का प्रति पृष्ठ उलट-उलट कर। दृष्टि से मन यदि मुक्त नहीं रहता, तो कुछ दीखता नहीं। अन्यमनस्क भाव से ताकता रहा था—यानी दृष्टि थी मगर मन था अन्यत्र, इसी से कुछ देख नहीं सका—बहुत से लोग ऐसा कहते हैं। शकुन्तला ताकती रही क्षुधित-प्यासे दुर्वासा की तरफ़, मगर मन की आँखें लगी थीं दुष्यन्त की ओर; इसी से दुर्वासा को वह देख नहीं सकी। भू-स्वर्ग हिमालय को तरफ़ मेरा मन था, तथ्यों के संग्रह पर दृष्टि नहीं थी।

श्रीनगर की सतह से एक उपत्यका की तरह ऊपर चला गया है युवराज कर्णसिंह के प्रासाद को जाने वाला पथ। यहाँ-वहाँ खुले हुए उद्यान। मेरी गाड़ी आ खड़ी हुई सन्तरी से घिरे प्रासाद प्रांगण में। पश्चिम में विशाल डल झील—उस की लहरें सूर्य-किरण और बादलों की प्रतिच्छाया से झलमल कर रही थीं। उस के एक हिस्से में है हरिपर्वत का दुर्ग, दूसरे हिस्से में पर्वत की चोटी पर शंकराचार्य का प्राचीन

मन्दिर। उत्तर में है महाराजा गुलाबसिंह का पुराना प्रासाद। मगर युवराज का यह नवनिर्मित प्रासाद बंगला पैटर्न जैसा है, जिस प्रकार चारों तरफ़ आधुनिक सुरुचि की शोभा, वैसे ही सौन्दर्य-बोध का परिचय। नगर के शोरग़ुल से दूर, एकान्त जीवन-यापन। हम युवराज के बैठकखाने में आये।

पूरे कमरे में कशमीरी कारपेट और मखमल का काम। यहाँ-वहाँ पढ़ने-लिखने के उपकरण। किसी-किसी गुलदस्ते में मौसमी फूलों का रंग-बिरंगा गुच्छा, एक टेबुल पर कई चित्र—राजेन्द्रप्रसाद, नेहरू, गाँधी—इन तीनों के। एक तरफ़ स्वामी विवेकानन्द की एक सुन्दर सी तसवीर टँगी है। रवीन्द्रनाथ को ढूँढ़ने पर नहीं पाया।

युवराज सपत्नीक आये। बहुत ही खूबसूरत नौजवान। बड़ी-बड़ी काली कशमीरी आँखें। एक पैर में कुछ खोट है, मामूली भचक कर चलते हैं। वे पहने हैं सादा पैंट और बन्द गले का कोट। हँसते चेहरे से हम लोगों के बीच आ बैठे। नमस्कार किया उन्होंने।

उन की पत्नी की उमर बहुत कम, बीस वर्ष के लगभग। जितनी सुन्दरी हैं, उतनी ही सुडौल तिब्बती रमणी—उन के साथ आये कई अँगरेज़ गवर्नेस। वे बैठ गयीं एक तरफ़।

कुल दस-बारह लोग हम थे और सभी थोड़े-बहुत परिचित थे, मैं नया था। नमस्ते के आदान-प्रदान के बाद उन्होंने कहा, आज आप मेरे नये अतिथि हैं, बहुत दूर के आदमी हैं आप। आप की यह धोती-पोशाक हमें चकित करती है।

मैं ने कहा, यही पोशाक थी भारत-कवि रवीन्द्रनाथ की, मगर आप के कमरे में उन का चित्र नज़र नहीं आता?

हँसते हुए युवराज ने कहा, कहिए मत, रवीन्द्रनाथ के चित्र की माँग यहाँ इतनी है कि बार-बार इकट्ठा करने पर भी हम अपने कमरे में रख नहीं पाते। कोई आया और उन का चित्र ले कर चला गया। जल्दी ही उन का चित्र मँगवाऊँगा।

हम चमचे से खा रहे थे, युवराज प्लेट में सिंगाड़ा हाथ में ले कर खा रहे थे। इसी बीच कहा, आप की 'यात्रिक' फ़िल्म देख कर बड़ी खुशी हुई थी, जीवित लेखक की जीवन-कहानी, इस के पहले कभी फ़िल्म में नहीं देखी। फ़िल्म देखी है इस लिए पहचाना आप को। भारतीय फ़िल्में मुझे बहुत अच्छी लगती हैं।

गुहातीर्थ अमरनाथ की चर्चा चली। सिर्फ़ गत मास पति-पत्नी वहाँ गये थे। पूर्ण तुषार लिंग का फ़ोटो वे खींच लाये हैं। आश्चर्य की बात है, उन की पत्नी ने पूरी यात्रा पैदल ही की। युवराज खुद गये थे डाँडी से। स्वामी विवेकानन्द की बात चली। वे प्रत्यादेश पा कर आये थे क्षीर भवानी में, इस के बाद गये वे अमरनाथ। वहाँ इस प्रकार आत्म-समाहित हुए कि तीर्थयात्रीगण उन्हें ही अमरनाथ समझ कर पूजने लगे थे। विचित्र थे वे महापुरुष, उन के चरण-स्पर्श से कशमीर धन्य हुआ। उच्छ्वसित युवराज आगे बोले, दुःख यही है कि उस विवेकानन्द का बंगाल मैं ने आज भी नहीं देखा।

नक़्शे में देखता हूँ, बंगाल बहुत दूर है। बंगाल देखने को साध मेरी बहुत दिनों से है। अगर कभी गया तो पहले जाऊँगा बेलूड़मठ, पहले देखूँगा श्री रामकृष्ण का मन्दिर। बंगाल है भारत का गौरव।

मैं ने कहा—बंगाल आप को कश्मीर से बाहर नहीं लगेगा। यहाँ के खेत-खलिहान में बड़ा मेल है बंगाल से।

जलपान के बाद हम बाहर आये। युवरानी हँसती हुई नमस्कार कर के अन्दर चली गयीं। कुछ समय तक फ़ोटो खींचे गये। इस के बाद एक-एक कर के मित्र विदा हुए। बाग़ के एकान्त में गया युवराज के साथ—प्रायः अन्दर महल के दरवाज़े के क़रीब-क़रीब। वहाँ बरामदे के चबूतरे पर वे उकड़ूँ हो कर बैठ गये। उन का यह साधारण-स्वाभाविक बैठना देख कर बड़ी हँसी आयी। यह युवराजोचित नहीं था।

श्यामाप्रसाद की आकस्मिक मृत्यु की बात मैं ने ही छेड़ी।

युवराज बोले, डॉ॰ श्यामाप्रसाद से बातें कर के मैं मुग्ध हुआ था। वे साम्प्रदायिक मनोभाव के व्यक्ति थे—यह धारणा पूरे तौर पर ग़लत है। उन के जैसा न्यायी और सत्यवादी बहुत कम हैं। मैं खुद उन की मौत का सटीक कारण आज भी नहीं जान सका; इस आकस्मिक दुर्घटना से हमारे घर के सभी शोक में दुःखी थे।

मैं ने अपनी नोटबुक उन की तरफ़ बढ़ा दी। उसी के एक पन्ने पर उन्होंने यह वाक्य लिखा :

"I have been asked by Shri P. K. Sanyal to send a message to the people of Bengal. All I can do is to send the people of that great land my best wishes. I hope to some day visit your State which has played such a noble and dynamic role in the history of our nation.

Karan Singh"

Karan Mahal, Srinagar
29th August, 1953.

युवराज का यह कथन यथासमय दिल्ली और कलकत्ता के 'हिन्दुस्तान स्टैण्डर्ड' में प्रकाशित हुआ।

मात्र तीन सप्ताह पहले सारी दुनिया चौंक उठी थी कश्मीर के एक नाटकीय समाचार से। इस नौजवान राजकुमार ने सिर्फ़ एक रात में एक चलती सरकार को खास अधिकार से अपने हाथ तोड़ दूसरी एक सरकार की प्रतिष्ठा की। इस के पीछे दिल्ली का सहयोग कितना था, या था भी कि नहीं, यह सवाल यहाँ नहीं उठता।

जो भी हो, इस समय के मेरे कई लेख 'कश्मीर की चिट्ठी', 'आनन्द बाज़ार पत्रिका' और 'हिन्दुस्तान स्टैण्डर्ड' में बे-नाम से नियमित छप रहे थे। उन में से आखिरी

पत्र में युवराज कर्णसिंह के सम्बन्ध में नीचे लिखी कई पंक्तियाँ थीं :

"His eagerness for visiting Bengal has led me to think that we ought to bring him down to Bengal and give him a befitting reception. I hope, such a visit would help to clear up the misunderstanding between Bengal and Kashmir that has cropped up as a sequel to Dr. Mookherjee's sudden death in Kashmir. Perhaps the Yuvaraj also knows this. If the West Bengal Governor Dr. H. C. Mookherjee and Dr. B. C. Roy can consider this suggestion, it will be better still."

इस के बाद चार महीनों के बीच युवराज कर्णसिंह को सादर कलकत्ता लाया गया और वे बेलूड़मठ और यहाँ-वहाँ कुछ दिनों परिभ्रमण कर के उन्होंने विशेष आनन्द प्राप्त किया।

'देवतात्मा हिमालय' के प्रथम खण्ड में एक बंगाली महिला का ज़िक्र है। पहलगाँव के होटल में आ कर उन्होंने मुझ से परिचय किया था। हिमांशु बसु थे मेरे संग। महिला आधुनिक युग की थी। नाम था श्रीमती माया। वे खास तौर पर अपने श्रीनगर के मकान में आमन्त्रित कर गयीं। अतएव अमरनाथ से लौट कर पूर्व वचनबद्धता की खातिर पता ले कर श्रीनगर के एक मकान में खोजने के बाद मिलीं। उस मकान में चार-पाँच परिवारों में दो बंगाली थे। हमारा नाटकीय आविर्भाव देख कर उन्होंने उसी सन्ध्या को सोल्लास एक आयोजन किया। उन के पति हवाई जहाज विभाग में कार्य करते हैं और आजकल हैं दक्षिण भारत में।

एक उद्यान वाटिका में वे दोमंज़िले पर रहती हैं। शहर से प्रायः ढाई मील दूर बड़ा जेला नामक एक गाँव में। रामबाग़ का पुल पार कर के महाराजा गुलाबसिंह की समाधि—उद्यान पीछे छोड़ कर जो सड़क हवाई अड्डे की तरफ़ चली गयी है, उसी सड़क के किनारे पॉपुलर की जंगली तराई की तरफ़ उन का उद्यान-वाटिका है। गाँव बहुत ही एकान्त में है—मकान से सट कर गाँव की तरफ़ एक पथ चला गया है, जंगलों के जमघट के बीच से पहाड़ सा जा मिला है।

श्रीमती माया पूर्व प्रतिश्रुति की याद दिलाना भूली नहीं, कि मैं यहाँ कई दिनों तक अतिथि हो कर रहने को बाध्य हूँ। साथ में अगर हिमांशु होते तो वे परम कृतार्थ होतीं। मगर हिमांशु ने उसी समय कह दिया था, कुछ दिनों तक हाउस-बोट में रहने को लालसा से आये हैं कश्मीर—उन की वह लालसा पूरी हो, यह बहुत ज़रूरी है। हाउस-बोट मुझे लेकिन पसन्द नहीं आया। डल झील के इधर-उधर और जमे हुए गन्दे पानी में हाउस-बोट का बाहरी चेहरा देख कर मानिकतल्ला के खाल की महाजनी नौकाओं की याद हो आती है। दूसरी बात मछुए-मल्लाहों को आज़ादी दे कर

पानी के बीच हाथ-पैर सिकोड़ कर बैठे रहना भला नहीं लगा। अवश्य प्रत्येक बोट के अधीन 'शिकारा' नामक छोटे-छोटे घिरी-ढँकी डोंगियाँ मुस्तैद हैं जब जो चाहे पार जाओ-आओ। जो भी हो, जितनी कविता उस से जुड़ी हो, मगर उन्मुक्त स्वाधीनता क़दम-क़दम पर कुण्ठित होती है—ऐसा मेरा विश्वास है।

हम उस दिन खा-पी कर फिर अपने तम्बू में लौट आये। दूसरे दिन सवेरे माया हमारे तम्बू में आयेंगी, यह तय था।

सवेरे लगभग नौ बजे आयीं माया और कुण्डू स्पेशल के श्री शंकर। तम्बू के सामने हमें बैठा कर श्रीमान् फ़ोटो खींचने लगे—एक के बाद एक। श्रीमती माया की सादी रेशमी साड़ी की वजह से अच्छा फ़ोटो धूप की चिलचिलाहट में उठता ही नहीं, यही थी समस्या। तम्बू के सामने चाय-पार्टी जम गयी। घण्टे भर के बाद तय किया गया, आज हम मुग़ल गार्डन देखने चलेंगे। आज हम तीनों ही दिन भर के लिए उन के अतिथि हैं।

शहर का जो हिस्सा घनी आबादी वाला है वह गन्दा और बहुत सँकरा है। छोटे-छोटे अँधेरे घरौंदे में गन्दे जीवन-यापन—उसी में बहुत सारे धिक्कारित जीवन किलबिल करते हैं। गली-कूचे गन्दे पानी से भरी बस्तियाँ जिस प्रकार भारत में प्रायः सभी शहरों अगल-बग़ल में दीखती हैं, यहाँ भी उन की कमी नहीं है। इसी लिए क्षयरोग जगह-जगह प्रबल रूप से वर्तमान है। इस के बाहर जाने पर कहीं मिलता है भू-स्वर्ग। जो कश्मीर देखना चाहते हैं, वे कश्मीरियों का यथार्थ जीवन देखना पसन्द नहीं करते। वे जा कर रुपये बिखेर कर मनोरंजन खरीदते हैं। गन्दे घरों में फटे-चीथड़े बिछावन, उच्छिष्ट कोने-कोने में, शिकारा और हाउस-बोटों के तख्ते की ओट में, दुकानों के नीचे, हाट-बाज़ार-गलियों में, गाड़ियों के अड्डे पर, वितस्ता के घाट-घाट पर, पुलों के अगल-बग़ल, गृह उद्योगों की ओट में जो भूखी दरिद्रता और निराश-हताश नर-नारी और बच्चे चलते-फिरते रहते हैं, वे ही हैं सच्चे कश्मीरी—वे भीख माँगते हैं, टूरिस्टों के सामने हाथ फैलाते हैं। जिधर से निकलो भिखमंगी, जहाँ जाओ बख्शिश। दौड़ कर गाड़ी बुलाया, दो बख्शिश; रास्ता बताया, दो भीख; साथ-साथ चले, शायद मिल जाये कुछ जूठन। गृहस्थ घरों की बहुएँ, घरों की गृहिणियाँ, खेत-खलिहानों के खेतिहर—दौड़े आये पथों के किनारे, क्योंकि टूरिस्ट आ रहे हैं, शायद दो-चार पैसे बख्शिश मिल जाये। कोई रसोई बनाते छोड़ कर दौड़ा आया, खाट छोड़ कर रोगी दौड़ पड़ा, खेलना भूल कर बालक-बालिकाएँ दौड़े आये, खेतों की सिंचाई छोड़ कर खेतिहर दौड़ा आया। आयी टेढ़ी चितवन वाली सुकण्ठी, शर्मीली; आया हँसमुख बच्चा, आया अस्सी बरस का बूढ़ा—आयीं चारों तरफ़ से हिमालय की सन्तानें, उन्होंने सुन रखा है, इस राह से यूरोप के टूरिस्ट गुज़रेंगे, गुज़रेंगे भारत के सेठ और महाजन—वे आशा लगाये पथों के किनारे आ खड़े हुए हैं। वे हैं भू-स्वर्गवासी, मगर प्राकृतिक सौन्दर्य के कर्ज़ खाये नहीं हैं। वे जानते नहीं राजनीति, जानते नहीं साम्प्रदायिक भेद-भाव। वे जानते हैं

सिर्फ़ मार खाने वाले दैन्य-दरिद्रता के नरक-कुण्ड कशमीर को। मुट्ठी भर खाना पा कर वे खुश हैं, जीवन-यापन की मामूली सुविधा पा कर ही वे सन्तुष्ट हैं। उन की वह भयंकर ग़रीबी देख कर कलेजा मुँह को आ जाता है।

श्रीनगर से निकल कर तीन मील आगे बढ़ने पर ही एक-एक कर मुग़ल गार्डन मिलते हैं। बग़ल में ही है फैली हुई डल झील—लताओं से लदी हुई, इसी से इस झील का नाम है डल, या दल, या डाल। कमोबेश पन्द्रह वर्ग मील की परिधि है। कहीं घने लता-दलों के ऊपर ढेर-ढेर सी मिट्टी डाल-डाल कर तैरते हुए बग़ीचे बनाये गये हैं, फल-फूल से वह घिरी है। कहीं-कहीं तैर रहा है श्वेत और लाल पद्म-दल—उन्हीं से छन-छन कर डल में छायाएँ पड़ती हैं चारों तरफ़ से ऊँची-ऊँची पहाड़ी चोटियों की। सूर्यास्त का वर्ण-वैचित्र्य लहरों में घना होता जाता है।

हम एक के बाद एक बग़ीचे देखते घूमे। पहाड़ों के ऊपर के इन बग़ीचों में विभिन्न तरीक़ों से लाये गये हैं एक-एक झरने। ये बग़ीचे मुग़ल बादशाहों के हैं। चश्मा-शाही, शालीमार, निशातबाग़, नसीमबाग़ आदि। ये मुग़लकालीन रुचि और सौन्दर्य-बोध के प्रतीक हैं। श्रीनगर से प्रायः बारह मील दूर एक सुनसान जंगली हिस्से में हमें मिला हरवन। यह सुरक्षित है एक बड़े से तालाब के कारण। यहाँ से राजधानी को पानी मिलता है। इस का रूप देखते ही याद हो आती है जमशेदपुर से आठ मील दूर पर अवस्थित 'डेमना' तालाब। कुछ लोग इसे कहते हैं—डेमला। दोनों तालाबों का एक ही उद्देश्य है। यहाँ भी पहाड़ों से घिरी उपत्यका है और खेती-बाड़ी, वहाँ भी ऐसा ही दलमा पहाड़ की गोद में। हम हरवन के बाँध के ऊपर से उतर कर एक सरकारी 'ट्राउट' मछलियों के खेत की ओर बढ़े। जंगलों के जमघट वाले छायाकुंज लोक में पहाड़ी पंछियों का कलरव मचा है। फिर शंकर ने फ़ोटो खींचा हम लोगों को खड़ा कर के।

श्रीमती माया के लिए यह सभी कुछ नया है। मित्रमण्डली के संग-साथ उन्होंने घूमा है सिर्फ़ पहलगाँव तक—कुल पन्द्रह दिन पहले ही। आज वे बाहर आ कर मुक्त विहंगिनी हो उठी हैं। पहाड़ों के झरने थे रुके हुए, अब वे झर-झर बहने लगे हैं। पति साथ नहीं है, इस लिए कुछ खिन्न हैं, कुछ अनमनी, मगर उन के स्वभावगत स्वच्छन्द उल्लास में इस से कुछ भी रुकावट नहीं आयी है। हमारे नये परिचय की खबर इसी बीच उन्होंने भारत में दूर-दूर रहने वाले अपने स्वजनों को दे दी है—पति को सब से पहले।

सवेरे से दिन भर मोटर विहार हो रहा है। मोटर प्रायः सभी जगह चलती है। सड़कें बहुत अच्छी हैं। हज़ारों वर्ग मील हिमालय में घूमा हूँ, मगर जैसे राह भूल कर चला आया हूँ, नाच-गान की मजलिस में। यहाँ हिमालय की तराइयों में घूँघरू की झंकार सुन रहा हूँ, पग-पग पर सुनता हूँ ठुमरी के बोल। हिमालय का वह महागम्भीर घनघोर जंगलों का प्रशान्त, उदार गाम्भीर्य का आभास नहीं मिलता, वह

कलकल निनादनी जननी जाह्नवी का पुण्य पार्वत्यलोक ब्रह्मपुरा नहीं है, जटा भस्म से पूर्ण नग्न देह वाले संन्यासियों का वह वेद मन्त्र ध्वनिमुखरित पार्वत्य गुहा-गह्वर कहीं भी नहीं दीख रहा है—यह मानो सहस्र भोगविलासी, उल्लसित, मदमस्त, लालसाओं में विवश नशीली नयना रसीली उपत्यका हो। यहाँ रुपये लुटाये जाते हैं, मनोरंजन बटोरे जाते हैं। हर पहाड़ के कोने-कोने में है आमोद-गृह, हर तम्बू का रहस्य है उस के अन्तराल में, चिनार, सरपत, देवदार के जंगलों के अन्तराल में. आधी रात के घोर अँधेरे में फैली चाँदनी में कहीं-कहीं उच्छ्वसित अनुराग अपने वासना की असह्य यन्त्रणा में छटपटाता रहता है। लोभ और आनन्द का ऐसा जमघट हिमालय में और कहीं नहीं है। इसी कारण मुफ़्त के पैसे हाथ में ले कर छड़ी नचाते हुए जो रंगीन तबीयत यहाँ घूमने आते हैं, वे कश्मीर को कहते हैं—पूरब का नन्दन कानन।

थकी सन्ध्या उतरी आ रही है डल झील में। हरिपर्वत और शंकराचार्य की चोटी पर रक्तिम आभा निखरी है। हरमुख की तरफ़ बादल दिखाई दे रहे हैं। ठण्डी हवा तेज़ी से आ रही है उधर से।

शंकर ने मुसकरा कर अब बिदा ली। इस महिला को भी जाना है बहुत दूर। मगर ताँगे पर सवार हो कर उन्होंने कहा, श्रीनगर में बिजली की बत्तियाँ कितनी कम हैं, जानते तो हैं न ? इस के बाद मैदान पार करने से तो बिलकुल ही नहीं। अकेली मैं जा नहीं सकूँगी, मुझे पहुँचा आइए, चलिए। दूरी बहुत है।

दूर है, सन्देह नहीं। मगर यहाँ के रास्तों में डर नहीं है। मेरा विश्वास है, भारतवर्ष में चोर-डकैतों का उत्पात सब से कम कश्मीर में है—इतना निर्भरशील इलाक़ा खोजना कठिन है। पैसे-वैसे ये माँग लेते हैं, बख्शिश लेते हैं, यहाँ तक कि फन्दे में फाँस कर ये टानते भी हैं मगर चोरी व छीन-झपट नहीं करते।

अमीर कदल पार कर, बायीं ओर के बस्ती-बाज़ार पीछे छोड़, हमारा ताँगा चला जा रहा है रामबाग़ की ओर।

रामबाग़ का पुल पार कर के ताँगा दाहिनी ओर मुड़ा। यह सड़क सीधी चली गयी है श्रीनगर के हवाई अड्डे की ओर। नीचे से नदी की धारा पहाड़ की तराई को काटती हुई अँधेरे में कहाँ चली गयी है, अनुमान नहीं लगा पाया। जहाँ भी जाये, मगर यह धारा जा मिली है मूल वितस्ता में।

महाराजा गुलाबसिंह की समाधि और शंकर सम्प्रदाययुक्त बंगाली स्वामी ब्रह्मानन्द के द्वारा प्रतिष्ठित 'नारायन मठ' की बग़ल से ताँगा एक समय आ रुका उसी बस्ती से दूर एक मकान के बड़े फाटक के सामने। ताँगे से उतर कर श्रीमती गुप्ता ने बात पक्की कर ली—कल दोपहर को सामान-वामान ले कर सीधे चले आइएगा, कोई संकोच न कीजिएगा।

मुझे भी यह पक्का कर लेना पड़ा कि तीन-चार दिनों से अधिक मेरे लिए

कशमीर में रहना सम्भव नहीं है। जल्दी ही हमें हिमाचल प्रदेश घूम कर दिल्ली लौटना है।

तांगे की बत्ती की रोशनी में ही खड़े हो कर हम लोग बातें कर रहे थे। श्रीमती गुप्ता ने कहा, सब बातों पर एक सच बात यह है कि आप को, लेखक को कभी देखा नहीं था। वे कैसे होते हैं, कुछ नहीं जानती थी। कैसे वे किताबें लिखते हैं, कैसे वे कल्पना बटोर लाते हैं ? यह सोचने पर अवाक् रह जाती हूँ।

मुसकराता हुआ तांगे पर चढ़ा—ठीक है, कल आऊँगा।

ठहरिए ज़रा पहले मैं अन्दर चली जाऊँ। यह कह कर वे डरती हुई लपकीं अँधेरे मैदान को पार कर भीतर की ओर।

तांगा चल पड़ा। अचरज है, उस समय मुझे ज़रा भी ध्यान नहीं रहा कि हिमालय का एक प्राकृतिक दुर्योग मेरे इस भ्रमण में एक नाटकीय अघटन घटायेगा।

कशमीर के आकाश पर बदली की छाया दीखी। बादल भागे जा रहे हैं पीरपंजाल की गोद में, हरमुख और हरमहेश की चोटियों पर, जास्कार और देवशाही के पत्ते-पत्ते में। छाया पड़ी है वितस्ता और सतीसायर पर, जिस का आधुनिक नाम है डल झील।

हरमहेश की कालीजटा के अँधेरे में गम्भीर जय-ध्वनि गूँज रही है, दीख रहा है सदा का सर्वहारा संन्यासी, नांगार के रुद्रनयन का क्वचित् कालकटाक्ष। असुर-नाशिनी चण्डी और महिषासुर का रण-डंका बज रहा है हरमुख की गोद-गोद में। देवदारु और पपलार के जंगल बादलों में दिशाहारा हो गये हैं।

आज जन्माष्टमी है। अगस्त ३१, १९५३।

मामूली वर्षा हुई दोपहर के पहले ही। कशमीर की वर्षा का परिणाम बंगाल की तरह नहीं है। मौसमी हवा आती है पश्चिम पाकिस्तान और राजस्थान के ऊपर से बह कर। मगर मरुभूमि और शुष्क भू-भाग के ऊपर से आते समय हवा सूख जाती है। इस लिए अवशिष्ट हवा पीरपंजाल की दक्षिणी गोद पार कर उत्तर पथ पर मामूली पहुँचती है। उसी कारण पचीस से तीस इंच से अधिक वर्षा कशमीर में नहीं होती। आज देखते-देखते वर्षा के साथ ही मटमैले आकाश से उतर आयी ठण्डी हवा। यह ठण्ड आकस्मिक है—जैसा कि पहाड़ों पर सदा से होता आया है। मगर उस की झलक अत्यन्त उपभोग्य है। उपभोग्य होने पर भी चिन्ता का तो कारण है ही।

हमारे होटल के ठीक पश्चिम में कई ग़रीब गृहस्थों की बस्ती है जिस पर प्रायः सारा दिन नज़र पड़ती है। वहाँ पड़ोसियों में झगड़ा सबेरे से ही हो रहा था। घरेलू झगड़े में स्त्रियों की भूमिका जैसी सब जगह है, वैसी ही यहाँ भी। मगर सभी तरह की उत्तेजना में यहाँ किसी-किसी औरत को हँसते पाता हूँ, यही है मज़े की बात। कशमीरी बोली कशमीर के बाहर विशेष कोई समझता नहीं। किन्तु इस बोली की उत्पत्ति संस्कृत से हुई है। इस में हिन्दी और उर्दू दोनों मिली हैं, जैसे मिल गयी है फ़ारसी।

कश्मीरी बोली से कश्मीर का काव्य-साहित्य और लोक-संगीत की बहुत उन्नति हुई थी कभी। इस में से स्त्रियों ने रचना की है नृत्य-गीत और प्रणय-गीत—यह गीति का बहुत बार अतीन्द्रिय व्यंजनाओं में परिणत होती है। धानों के खेतों में, दर्जियों के मुहल्ले में, ग्वालों के घरों में, मछुए-मल्लाहों के गिरोहों में, गायिकाओं की मजलिसों में, बढ़इयों के अड्डों पर, मजदूरों की बस्तियों में—मिल कर लोक-संगीत गाते हैं मर्द और औरतें। गीत गाया जाता है बीमारों के घरों में और अन्नप्राशन-उत्सव में। गीत सुनते-सुनते पालने में बच्चा सो जाता है।

विरहिणी नायिका अपने आकण्ठ अनुराग से पुकारती है, वितस्ता के इस प्रान्त से; जंगल-जंगल में फूट रहा है फूल, हे प्रिय, तुम्हें क्या मिली नहीं मेरी खबर, पहाड़ों-उपत्यकाओं में तरसायर में अनगिनत रक्तकमल तरंगों में झूमता, क्या तुम ने मेरा संवाद कुछ सुना नहीं ?

उस प्रान्त के जंगलों से नायक की पुकार आती है, मोती लाया हूँ सागर मथ कर तुम्हारे दाँत सँजाने को, तुम्हारे होठों की लाली मेरे हृदय के रक्त सा है।

वर्षा उतर आयी दोपहर के बाद। वर्षा से पर्वत-प्रकृति में तेज़ी से परिवर्तन होता है—जैसे शिलांग में, दार्जिलिंग में, फ़र्क़ इतना ही है कि यहाँ बर्फ़ीली चोटियाँ क़रीब पड़ती हैं, इस लिए बर्फ़ीली हवा तीव्र गति से चलने लगती है। नगरों पर तुहिन का एक परत चढ़ जाता है।

मित्रवर मिस्टर धर के साथ ऐसी व्यवस्था हुई कि आने वाले कल को शाम के पहले वे मुझे ले जायेंगे बख्शी गुलाम मुहम्मद के पास। उन के घर पर ही बातें होंगी। दो-एक मन्त्री और कई सरकारी कर्मचारी भी वहाँ होंगे। इस लिए देर न कर के मैं निकल पड़ा रामबाग़ की तरफ़। शाम होने में देर नहीं थी। वर्षा की बौछार चल रही है। भींगते हुए जाना होगा।

रामबाग़ का पुल पार कर के गुलाबसिंह की समाधि पीछे छोड़ जब बड़जेला में पहुँचा तब बदली उतर पड़ी थी फैले हुए बाग़-बग़ीचे के पपलार के झुरमुटों पर। सड़क पर आदमी कहीं भी नहीं, मकान की खिड़कियाँ और जंगले सभी बन्द। दूसरी मंज़िल के सामने सभी कमरों के जंगले में शीशे का चेसेस। एक के सामने ही मायादेवी खड़ी थीं। ताँगे में मुझे आते देख, नीचे आ गयीं। ताँगे के कोचवान के सहारे असबाब ऊपर पहुँचाया गया। ठण्ड के मारे हाथ-पैर ठिठुरे थे।

स्वागत में उल्लास था। छोड़िए उस बात को। दो बच्चे दीखे, और कोई पास नहीं था। मकान में नीचे पीछे की तरफ़ के फ़्लैट में रहता है एक बंगाली परिवार, ये दोनों बच्चे उन्हीं के थे। ऊपर की मंज़िल के दूसरे हिस्से में रहता है एक मराठी परिवार, जिन की बोलचाल कम सुनाई पड़ती है। इस फ़्लैट में श्रीमती माया अकेली रहती हैं। उन के जिम्मे में हैं ये दोनों कमरे। ये कमरे लगभग खाली ही रहते हैं।

इसी बीच इस कमरे में आ गयी है एक चारपाई, उस पर है एक तोशक और एक रजाई और तकिये ।

दो बच्चियाँ बड़ी भली लग रही थीं । जैसे उन्होंने इस मंजिल की मरुभूमि में बिखेर रखी है मोह-माया । बच्चों की तरह ऐसी निस्संगता का अवलम्ब और कुछ नहीं है । उन के साथ बैठ कर गप-शप शुरू कर देनी पड़ी । श्रीमती गुप्ता ने कहा, यहाँ आप को संकोच करने की ज़रूरत नहीं है । ठहरिए, खूब भींग गये हैं आप, मैं चाय बना लाऊँ ।

तेज़ हवा का झोंका और मूसलाधार वृष्टि बढ़ती ही जा रही है । अन्ध-मूढ़ दिक्-दिगन्त सब एकाकार । मेघ गरज रहा है पल-पल में बिजली चमका-चमका कर । दो बच्चों के संग गप-शप में मशग़ूल हो गया । एक प्याला गरम चाय और टोस्ट व आमलेट ले कर श्रीमती गुप्ता आयीं । बाद को उस कमरे से एक हलकी कुरसी ले कर खुद बैठीं । बोलीं, गुप्ता साहब, मेरी ही तरह साहित्य के बड़े भक्त हैं, समझे आप ? वे होते तो आज नाच उठते । आप का हालचाल जानने के लिए आज भी उन की चिट्ठी आयी है । सच कहती हूँ, लेखक हम लोगों ने कभी नहीं देखा, आप तो हमारी तरह के ही मनुष्य हैं ।

तेज़ हँसी से अब कमरा मुखर हो उठा ।

कहा, अच्छा वे बातें अभी छोड़िए, आप अकेली इस तरह रहती हैं, कोई असुविधा नहीं होती ?

तो सुनिए, ये दोनों बच्चे मेरे दिन भर के साथी हैं और जिस बूढ़े पण्डित की बात बता चुकी हूँ, वे हैं मेरे मददगार—हाँ उन्हें कुछ देना-लेना पड़ता है । आजकल कभी-कभी आते हैं सत्वती और मदनलाल, यहाँ के पोस्टमास्टर भी कभी-कभी खोज-खबर लेते रहते हैं ।

ठण्ड में चाय अच्छी लग रही थी । उन के पति कब लौट रहे हैं—इस सवाल के जवाब में माया ने कहा, वे हैं मैसूर में, अभी लौटने में दो महीने बाक़ी हैं । मुझे ऐसे रहना पड़ रहा है, इस के लिए उन्हें कितना कष्ट है, क्या कहूँ ?

गरदन ऊँची की । वर्षा की बौछार खिड़की के शीशे पर पड़ रही है । घड़ी में देखा, सन्ध्या उत्तीर्ण हो रही है । सम्पूर्ण कश्मीर जैसे उलट-पुलट हो रहा है, पपलार का घनघोर जंगल महादैत्य की भाँति अन्धे आक्रोश में सिर के बाल नोच रहा है, उसी का वह हिंसक निश्वास बौछार मार रहा है जंगले के शीशे पर ।

यह है हिमालय की दानवीय क्रान्ति । भयाल, कराल तुहिन झंझा सर्वग्रासी मृत्यु की विभीषिका ले कर आती है चारों ओर से, गर्जन से, तर्जन से, प्रलय रण से दुनिया की किसी भी वस्तु को क्षमा नहीं करती । उड़ा कर, बहा कर, भगा कर जैसे लाखों उन्मत्त हाथी की तरह पर्वत-पर्वतों में, जंगल-जंगलों में उद्दाम रूप से उछल-कूद मचाये है ।

जंगले की खिड़की के शीशे-पल्ले बौछार की वजह से अब तक रह-रह कर काँपते थे। अब वे झटके के साथ खुल गये। वर्षा का तूफ़ान जिस उद्दाम वेग से अब तक बाहर चल रहा था, वह अब अचानक अपने उन्मत्त रूप में कमरे में तड़प कर आ गिरा। हम दोनों अवाक्—दूसरे ही क्षण दौड़ कर श्रीमती गुप्ता ने दोनों पल्लों को पकड़ कर दबा रखा। कहा, आप की खटिया और बिछावन बिलकुल भीग गये। लकड़ी की छिटकिनी टूट गयी है, जैसे भी हो इसे बन्द कीजिए। यह क्या कर रहे हैं, खटिया खड़ी करने से क्या होगा? वे हँसते-हँसते दुहरी हो गयीं। फिर बोलीं, आप देख कर पकड़िए, मैं कुछ उपाय निकालती हूँ।

मैं ने खिड़की के पल्लों को सँभाला और वे दौड़ी गयीं दूसरे कमरे में।

समुद्री तूफ़ान में एक बार भ्रमण किया था—बंगोपसागर के जहाज़ में। रात का समुद्र था लहलहाता हुआ। काले-काले बादलों की विभीषिका देख कर बहुतों की बुद्धि चरने चली गयी थी; बहुत से लोग तो रेलिंग के पास ही जहाज़ के डूबने की प्रतीक्षा में थे। आज रात को देवतात्मा के रूप में देख रहा हूँ नटराज का वही रुद्र ताण्डव—वे अपने एक अभिनव रूप प्रकट कर रहे हैं। पूरे आकाश में असुर शक्ति का प्रदर्शन—यक्ष, रक्ष, प्रेत, पिशाच, दैत्य-दानव, डाकिनी-शंखिनी—सभी नाच रहे हैं उन्मत्त विभीषिका में। राक्षसरूपिणी रात आयी है रुद्राक्ष महेश्वर को संग ले कर। इस पार, उस पार पीरपंजाल और हरमुख को गोद में सर्वनाशिनी वही महाकाली अपने काले केशों की राशि बिखेर कर पिशाची नृत्य की उन्मादना में दिशाहीन ज्ञानशून्या हो उठी है। छिन्नमस्ता अपना ही मुण्ड ले कर खेल रही है।

ऐसे में ही तीन बजे एक जीप बग़ीचे के दरवाज़े पर रुकी और वर्षा में भीगते हुए मिस्टर घर दौड़ते हुए ऊपर आये। जीप सरकारी थी और आ रही थी 'नारपीर-स्थान' नामक एक गाँव से। मुझे इसी समय जाना होगा उन के साथ।

पता चला वर्षा की दशा अच्छी नहीं है, वितस्ता आज मध्याह्न से ही फूलने लगी है और पीरपंजाल की खबर बुरी है। बाज़ार-हाट आज सभी बन्द हैं। कल रात से कोई प्लेन दिल्ली से नहीं आया और आज यहाँ से भी कोई प्लेन उड़ा नहीं। डाक बन्द है।

अन्दाज़ तीन मील जाना है। प्रतापसिंह कॉलेज पार कर के मैदान के किनारे से जीप आ खड़ी हुई सरकारी वार्ता विभाग के दफ़्तर में; हमारे पूर्व परिचित मित्र मिस्टर शर्मा के घर के सामने। वे इस विभाग के सर्वेसर्वा हैं। यहाँ इन लोगों ने कुछ जलपान करने के लिए बाध्य किया। दो घण्टे बाद उसी वर्षा में हम वहाँ से निकल कर अन्दाज़ डेढ़ मील सुनसान पथ से गुज़रते हुए बख्शी ग़ुलाम मुहम्मद के मकान पर पहुँचे। पहरा तैनात है अगल-बग़ल, मगर सभी विस्मयजनक रूप से उन्मुक्त। एक साधारण सज्जन का जैसे मकान हो। हर कोई भी आ-जा रहा है, किसी भी कमरे में। प्रधान मन्त्री और दफ़्तर के बड़े बाबू में कोई अन्तर नहीं। मज़दूर, व्यापारी, पत्रकार,

स्वयंसेवक, मन्त्री—सभी ।

इसी बीच पता चला, बख्शी जी आँसू बहाते हुए डॉ० श्यामाप्रसाद के शव को कन्धा दे कर हवाई अड्डे तक गये थे और अपनी एक पुत्री का नाम रखा है श्यामा। ऐसे कुण्ठारहित, सत्यवादी बहुत कम होते हैं। उन्होंने कहा, कशमीर का मतलब है भारत का ही एक अंश—जैसे है हैदराबाद, मणिपुर, भोपाल। जम्मू-कशमीर में हिन्दू-मुसलमान कोई नहीं है, हैं सिर्फ़ कशमीरी। प्रजा-परिषद् में अनेक मुसलमान हैं जैसे नेशनल कान्फ्रेंस में डोंगरा और पण्डितों का जमघट। पूरा कशमीर उन के नख दर्पण में है। मैदान, हाट-बाज़ार सभी जगह उन की पैठ है। कहीं लड़ाई-झगड़ा हुआ तो वे पहले ही हाज़िर हैं। दफ़्तर का क्लर्क बीमार पड़ा, वे दवा खरीद कर ले गये। दूकानदारों के पास अड्डा मार आये। मज़ाक़ करने में उन का जोड़ नहीं, वे वक्तृता देने लगे तो श्रोता हँसी में लोट-पोट। वे सदा से कर्मठ और स्वयंसेवक के रूप में ही सभी से परिचित हैं। आज सहसा अति-परिचित घर का आदमी ही प्रधान मन्त्री हुआ है, इस लिए सभी उन की बग़ल में आ खड़े हुए हैं।

रात आठ बजे बख्शी जी के यहाँ से चिट्ठा निकला, सम्पूर्ण श्रीनगर बाढ़ से पीड़ित है। सात अंचलों के बाँध टूट गये हैं, पानी भरता आ रहा है चारों तरफ़ से। कशमीर सभ्य-संसार से बिलकुल कट गया।

कई मिनट बाद कशमीर के आकाशवाणी से यह अशुभ समाचार प्रसारित हुआ। श्रीनगर का दक्षिण-पश्चिम और उत्तरी हिस्सा समुद्र में परिणत हो गया है। खेत और गाँव पानी से भर गये हैं।

उस दिन मित्रों के अगल-बग़ल खड़े हो कर देखा, कशमीर के लौह मानव को। बाहर मूसलाधार वृष्टि, अन्धकारमय श्रीनगर, तीन तरफ़ के पहाड़ों से उतरी है बाढ़। नदी, नाले और तालाब फैलने लगे हैं, नगर के चारों ओर के बाँध टूट गये हैं। इसी शक्ति-परीक्षा के काल में अपरमित आस्था और आत्मप्रत्यय के साथ संकट के सामने आ खड़े हुए बख्शी ग़ुलाम और श्यामलाल सर्राफ़। वर्षा हो रही है झमाझम। न मोटर, न जीप—फिर भी दलबल-सहित उस बरफ़ानी ठण्डी रात के अँधेरे में पैदल ही चल पड़े बख्शी—तन-बदन पर फ़ौजी पोशाक। हम ही भला कैसे रहते वहाँ। हम भी चल पड़े उन के संग। इसे ही कहते हैं उत्तेजना, नेतृत्व की प्रेरणा। रास्ते पर आ कर देखा, चारों तरफ़ सन्नाटा—दुर्योग की रात में कमरों की सभी खिड़कियाँ बन्द। मगर कोई भी नागरिक यह जान नहीं पाया कि उन का प्रधान मन्त्री उन की सुरक्षा के लिए दौड़ पड़ा है। वर्षा में भाग रहे हैं बख्शी ग़ुलाम, वहीं क़रीब से खड़े हो कर देखा, लौह-मानव के चेहरे पर प्रतीक्षा की दृढ़ता और देख लिया कशमीर का भविष्य। प्रशंसा करने में डर लगता है, क्योंकि शेख अब्दुल्ला ने हम सभी को समुचित शिक्षा दी है। किन्तु उस रात उस बाढ़ के संकटपूर्ण नाटकीय मुहूर्त में लगा, ऐसा दृढ़चेता, स्वस्थ, निडर और अक्लान्तकर्मी मुसलमान जननेता समग्र भारत और पाकिस्तान में दूसरा

नहीं है। लौह-मानव की प्रकृति-स्वरूप उपलब्ध करने की खातिर ऐसे दुर्योग की ही ज़रूरत थी।

दौड़ा-दौड़ा चला गाड़ी के अड्डे पर। पानी बरस रहा है। शरीर पर पट्टू का कोट और गरम पैण्ट भीग कर तरबतर हो गया है, आखिरी ताँगा बहुत खुशामद करने के बाद मिला। उसे डर था, हमें पहुँचा कर उसे अकेला लौटना पड़ेगा—इस अँधेरे दुर्योग में। इस लिए तीन गुणा भाड़ा मंज़ूर किया, गाड़ी तेज़ नहीं चल सकती, अगर घोड़े का पैर बिछल गया तो। अमीरा कदल के ऊपर चढ़ कर देखा। पुल के निकट की दुकानें पानी में डूब गयी हैं। झेलम का पानी प्रायः बीस फ़ुट ऊपर चढ़ आया है। नदी का पाट टूट गया है। हमारी गाड़ी चली निकट की बस्ती की राह पर मैदान की ओर से। याद है श्रीमती माया के भण्डार के लिए खाद्य सामग्री खरीदनी थी। एक मील आ कर गाड़ी ठहरी। कोचवान उतर कर घुटने तक कीचड़ पार कर एक दुकान के दरवाज़े पर दस्तक दे कर आवाज़ दी। दुकानदार ने दरवाज़ा खोल दिया, मगर उसे विश्वास नहीं हुआ कि ऐसे समय में भी किसी को दाल-चावल-घी-मसाले की ज़रूरत हो सकती है। जो भी हो, ढेर सारी चीज़ें खरीद कर गाड़ी में आ सवार हुआ। सर्वांग कीचड़ और पानी से तरबतर, सिगरेट पीने का कोई उपाय तक नहीं। गाड़ी फिर चली।

सहसा अँधेरा नज़र आया। गाड़ी के दो बग़ल आतंकित जनता भाग रही है विपरीत दिशा की ओर। बच्चों का समूह ले कर भागी जा रही हैं महिलाएँ, बच्चे-बच्चियाँ भाग रही हैं, बोझ ले कर भाग रहे हैं मर्द—सैकड़ों-हज़ारों।

उधर जाने का कोई उपाय नहीं है। किसी अफ़सर ने कहा—आप को कन्धे पर भी ले कर पार किया जा सकता था, मगर पानी सिर से दस फ़ुट ऊँचा चढ़ आया है। आप भागिए, पानी इधर ही बढ़ा आ रहा है।

लेकिन मुझे तो बड़जेला तक पहुँचना ही होगा।

असम्भव। बड़जेला के ऊपर से ही बाढ़ आयी है। घर-मकान तोड़-ताड़ कर नदी बह चली है। आप अब यहाँ खड़े न रहें।

क़दम उठता नहीं, व्याकुलता छिपा कर अस्थिर भाव से पूछा, वहाँ की खबर क्या है? हमारे आदमी हैं वहाँ?

भले मानस दौड़ कर भागने के पहले कह गये—कुछ कहा नहीं जा सकता। क़िस्मत के भरोसे छोड़ दीजिए। सब डूब गये हैं।

थर-थर काँप रहा था। अवाक् खड़ा रहा।

रात के साढ़े ग्यारह बजे हैं, इस समय फिर जनता का रेला आया। पानी दौड़ा आ रहा है सामने से। कोचवान ने फ़ौरन हमें गाड़ी पर सवार किया और एक सेकण्ड का विलम्ब किये बिना, मेरी एक भी सुने बग़ैर गाड़ी हाँक दी विपरीत दिशा

की ओर। उस की जानी हुई हैं ऐसी घटनाएँ। लाचार हो कर एक समय उसे ही खाद्य-वस्तुएँ उपहार में दे दीं।

जब लौट कर खालसा होटल आया तो रात के बारह बज चुके थे।

सवेरे सो कर उठा, देखा दुर्योग शान्त हो गया है। बूंदा-बांदी हो रही थी। मगर बादल फट गया है। सूर्य की आभा नज़र आ रही है। हिमांशु के प्रस्ताव के अनुसार दस बजे आगे बढ़ा गया। उन्होंने कुछ खाने की चीजें लीं और एक बालटी पीने का पानी। बाढ़ के विषय में उस का अनुभव था। आज दोपहर को वे चले जायेंगे हाउस बोट पर—तीन सप्ताह तक रहने की जगह मिल गयी है। आज रात के बाद होटल में उन की मीयाद शेष हो रही है।

रामबाग़ पुल के पास जा कर देखा, विचित्र दृश्य। तीन दिनों तक जिस सड़क पर आवाजाही करता रहा हूँ उस सड़क पर नदी और नाव। पुल खड़ा है मगर अगाध नदी बह रही है वहाँ, जहाँ कल रात मेरा ताँगा खड़ा था। पानी की बालटी ले कर नौका के द्वारा उस पार पहुँचा, एक जंगली सड़क से बड़जेला के उसी मकान के किनारे जा पहुँचा। बग़ल की बस्ती और पड़ोसियों का कहीं पता नहीं। घर टूट गया है, लोग भाग गये हैं। हम लोगों को देखते ही श्रीमती माया चिल्ला पड़ीं। उन के मकान के दोतल्ले की सीढ़ी तक बाढ़ पहुँच गयी है। नीचे के कमरे में रहने वाले बंगाली परिवार ढूँढ़े नहीं मिले। वे घर-द्वार छोड़ कर कहाँ चले गये हैं, कौन जाने, पीने के पानी का योगायोग नष्ट हो गया है।

हम ऊपर आये। वे सामने आ खड़ी हुईं। वे सोये बिना, रात-जागरण, भूख-प्यास के आतंक से श्रीहीन थीं। लगता है, रात भर रोने से हो आँखें फूल आयी हैं। पहली रात नदी की तरफ़ जा कर चिल्लाती रही हैं—मेरा नाम ले-ले कर, फिर बाढ़ की वजह एक तरह से तैरती हुई वे लौट आयीं। बाढ़ आयी और इस मकान को चारों ओर से घेर ली। मगर उन के अतिथि किसी एक समय अवश्य लौटेंगे, इस लिए सभी के चले जाने पर भी वे यह मकान छोड़ कर गयी नहीं। प्रायः आठ फ़ुट पानी जब नीचे के तरफ़ से ऊपर चढ़ आया तब वे सिर्फ़ अँधेरे में दोतल्ले तक दौड़ती रहीं। बिजली की बत्तियाँ और पानी का पाइप—सभी नष्ट हो गया है। अतिथि की प्रतीक्षा में उन की रात कटी।

श्रीमती माया रोने लगीं। इस के बाद बोलीं, मैं अब यहाँ नहीं रहूँगी, किसी भी तरह नहीं। यह मकान मैं छोड़ दूँगी। मैं शहर में रहूँगी।

हम प्रतीक्षा में रहे, वे ख़ुद अपनी गृहस्थी तोड़ कर अपने हाथों सब बाँधने-सहेजने लगीं।

कुछ सामान ले कर हिमांशु पहले ही चल पड़ा। वे जा कर होटल में कमरे ठीक-ठाक करेंगे। श्रीमती माया को खूब दौड़-धूप करनी पड़ी। मराठी परिवार को

कमरे का किराया चुकाया, धोबी की खबर ली, पण्डित को गालियाँ बक उस का पावना रख गयीं, जमादार को बिदा दे दी। अन्त में हमें साथ ले कर प्रायः मील एक दूर गाँव के इलाक़े में जा कर पोस्टमास्टर से बिदाई ली। गाँव के दक्षिणी हिस्से में बाढ़ नहीं पहुँची थी। नदी के घाट पर से दो कुली लाया और घर से माल-असबाब ले कर चलते-चलाते दोपहर के तीन बज गये। भाग्य का परिहास यह हुआ कि उस दिन शाम को हिमांशु के साथ हमारी चाय की मजलिस जमी। तब दीखा, स्निग्ध मखमल जैसे नीले अम्बर पर हीरे के टुकड़े की भाँति ज्योतिष नक्षत्र झिलमिला रहे हैं। कभी कोई दुर्योग था आकाश पर, कभी बारिश और बाढ़ के आतंक से लोग भाग खड़े हुए थे—इस का आभास मात्र भी नहीं। माया हमारे बग़ल वाले कमरे में रह रही हैं। बहुत से सामानों से उन का कमरा भर गया है।

श्रीनगर से गुलमर्ग पश्चिम अट्ठाईस मील पर है। राह बहुत चिकनी और प्राकृतिक शोभामय है। मगर मोटर-बस पहाड़ के ऊपर चढ़ती नहीं, टनमार्ग तक जाती है। वहाँ से चढ़ाई पर घोड़ा, या पैदल जाया जाता है। चारों तरफ़ पीरपंजाल का, देव-दारु का जंगल, बीच में सुनसान गुलमर्ग। यह छोटा सा जनपद गॉल्फ खेल के लिए संसार-विख्यात है। इस का चेहरा विदेशी है और इस नौ हज़ार फ़ुट की ऊँचाई पर जो आते हैं, वे यूरोपीय रुचि और प्रकृति के ही होते हैं। वस्तुतः कश्मीर के प्राकृतिक सौन्दर्य का परिचय मिलता है, श्रीनगर की समतल भूमि से ऊपर जाने पर। सोनमर्ग, गंगाबल, गान्धारबल, महादेव चूड़ा, विष्णुसायर, गढ़सायर, बलताल, जोजिला अथवा कोलाहाई की सड़क, पहलगाँव—ये हैं निखालिस स्वर्गलोक। गंगाबल झील कश्मीरी हिन्दुओं का गंगातीर्थ—यह है बिलकुल शेषनाग की तरह। बरफ़ानी नदी उतरती आती है ऊपर से, सरोवर का वर्ण नीलाभ से हरित में बदलता जाता है, सूर्य-किरणों से रंगीन मेघों के टुकड़े उतर आते हैं उस के जल-चुम्बन के लिए। चाँदनी से अपार्थिव जादूनगरी में बदल जाती है। कश्मीर यहीं भू-स्वर्ग है।

हरि पर्वत के क़िले की चहारदीवारी के नीचे से मोटर गुज़र रही थी—क्षीर भवानी की तरफ़। साथ में थीं श्रीमती माया। निकट थी गान्धारबल पर्वत की चोटी, उस के नीचे एक तरफ़ फ़तेहपुर बस्ती के दक्षिण में थी अनछार झील—वहाँ से एक परनाला चला गया है डल झील की तरफ़। हमारे दोनों ओर हरे-भरे खेतों में फ़सल अभी परिपूर्ण है। श्रीमती माया कश्मीर में बहुत दिनों से हैं, किन्तु पहलगाँव के अलावा और कहीं वे गयी नहीं। धूप झिलमिला रही है—सड़क और मैदानों पर। उस दिन के दुर्योग से पहाड़-पहाड़ पर तुषारपात हुआ है। दोपहर बीत जाने पर भी हवा बहुत मीठी है।

जंगलों से घिरे एक गाँव के भीतर से गुज़र कर गाड़ी आ ठहरी क्षीरभवानी के मन्दिर के निकट। अन्दर की ओर चिनार के पेड़ों की छाया झिलमिल कर रही

है। अन्दर घुसते ही अचानक दक्षिणेश्वर के पंचवटी के दृश्य पर दृष्टि जा टिकती है। किसी-किसी चिनार के पेड़ के फैलाव की गोद में वेदी बँधी है। स्वामी विवेकानन्द अपने हिमालय परिभ्रमण काल में देवता का आदेश पा कर यहाँ आये थे और महाराजा प्रतापसिंह के प्रयत्न से उन्हीं की देखरेख में इसे तीर्थस्थान की प्रतिष्ठा मिली। यहाँ लक्ष्मीनारायण की युगल मूर्ति की प्रति-स्थापना है, उन के साथ हैं पार्वती, गणेश इत्यादि। बहुतों की धारणा है कि यह मूर्ति मिली थी मन्दिर से सटे कुण्ड के नीचे से। कुण्ड रेलिंग से घिरा है। सुना गया, तिथि-माहात्म्य के अनुसार इस कुण्ड के जल का रंग अपनेआप बदल जाता है। कभी सादा और कभी लाल। मन्दिर के उत्तर-पूरब में है एक धर्मशाला। क्षीरभवानी के उत्तर की तरफ़ है विराट् पर्वताकार।

हम लोगों की दोपहरी कटी यहाँ-वहाँ। बहुत कुछ देखना शेष रह गया। बहुत सारे दृश्य पीछे छूट गये। अब स्वर्ग से विदा होने का समय उपस्थित हुआ।

श्रीमती गुप्ता जानती थीं, मेरी यह यात्रा पूरी हो गयी। मुख्य था गुहा तीर्थ अमरनाथ, यह सभी गौण थे जो कुछ देखता, घूम रहा हूँ। मुझ से उन का परिचय बहुत थोड़े समय का है और हमारी गति विपरीतमुखी है। अचानक उन्होंने अपनी गृहस्थी उठा दी बाढ़ के सम्मुख हो कर—वह बाढ़ जो अब वहाँ नहीं थी।

होटल से हिमांशु चले गये हैं हाउसबोट में, इस लिए उन का कमरा मेरी ही दख़ल में था। रात को खाने की मेज़ पर मायादेवी ने कहा, इस प्रकार होटल में छोड़ कर आप का चला जाना सम्भव है? मैं तो एकदम अकेली हो जाऊँगी। बड़जेला वाले फ़्लैट में भी अब लौटा नहीं जा सकता।

कुछ क्षण वे सोचती रहीं। फिर बोलीं, मेरे भसुर हैं दिल्ली की लोदी कालोनी में। अगर दिल्ली में मुझे उतार दें तो? फिर उन्होंने कहा, आज सवेरे गुप्ता साहब को पत्र लिखा है, सब कुछ लिख दिया है। वे बहुत घबरा उठेंगे जानती हूँ, पर आप हैं यह जान कर उन्हें बड़ा भरोसा मिलेगा।

एक समय वे हँस पड़ीं, धन्य अतिथि हैं आप। बाढ़ में घर-द्वार बह गया। लेखक को देखने की चेष्टा अब सार्थक हुई।

कहना जायज़ था। मैं भी हँस पड़ा। कहा, दिल्ली क्या आप को जल्दी ही पहुँचना है?

श्रीमती ने कहा, भसुर जी को भी पत्र लिख दिया है। वे भी चिन्ता करेंगे, इस में क्या शक। आप क्या सचमुच हिमाचल प्रदेश जाना चाहते हैं?

—मेरा प्रोग्राम यही है। उधर भी घूमता जाऊँ, ऐसा ही सोचा है।

—तो चलिए, मैं भी चलूँ। रास्ते से ही पत्र लिखूँगी गुप्ता साहब को।

दूसरे दिन हाउसबोट में जा कर हिमांशु बाबू का रहन-सहन देखा गया। एक दिन बिताने के लिए ठीक ही था। दूर और निकट पहाड़, प्रकृति की शोभा, तैरते हुए

द्वीप, शंकराचार्य का मन्दिर, हरि पर्वत का क़िला—सब मिला-जुला कर ठीक-ठाक मगर लम्बे अरसे के लिए रहना थकावटपूर्ण है—ऐसी ही मेरी धारणा है। एक दिन शाम को इम्पीरियल बैंक में चाय का निमन्त्रण था। कई स्थानीय मित्र वहाँ जुटे थे। मिस्टर सरफ, शर्मा, धर आदि। वहाँ मिले दो बंगाली सज्जन। एक थे कश्मीर सरकार के कला विभाग के व्यवस्थापक, डॉ० कन्हाई गांगुली। ये थे मेरे पुराने मित्र। दूसरे थे दामोदर वैली कारपोरेशन के अवसर-प्राप्त चेयरमैन, श्री एस० मजुमदार, आई० सी० एस०। उन्हीं की बहन हैं, श्रीमती सुचेता कृपलानी।

सवेरे आ पहुँचे हिमांशु पूर्व योजना के अनुसार। हमारे संकट-काल के मित्र। बाढ़ के समय उन्हें कई मज़दूरों ने 'महात्मा' कहा था। दीदी सम्बोधन किया उन्होंने श्रीमती गुप्ता को। दोनों ने—भाई-बहन ने—एक-दूसरे को विदा-नमस्कार किया।

खिन्न हँसी के साथ श्रीमती गुप्ता ने विदा ली कश्मीर से।

गाड़ी छूटी। आज रात पहुँचेगी जम्मू। श्रीमती गुप्ता अब सँभल कर बैठीं अपनी सीट पर।

[२]

पीरपंजाल के नीचे-नीचे है पथ। पथ की भिन्न-विभिन्न, शिरा-उपशिराएँ हैं, विभिन्न-विभिन्न शाखा-प्रशाखाएँ। इस पर्वत श्रृंखला की मृत प्रवृत्ति बहुत ही कोमल है—माटी की मोह-मन्दिर गन्ध से विवश हो कर सो गये हैं विविध वर्णों के पुष्पसंभार। वे तृण-शैया की पुष्ट गोद पा कर और जगे नहीं रह सके। रंगीन तितलियाँ और पतंगें उन के कानों में गूंज भरते रहते हैं।

पीरपंजाल इतना नरम है कि बहुतों के पैर धँस गये थे। उन में कोई था इंगेवैक्टेरिया, और कोई था इन्दो-पार्थिय। इस के बाद 'मारो-मारो' करते हुए आये शक-हूण-तातार, आये खोटानी यारकन्दी, उजबेक और कज्जाक, आये तुर्की और अफ़गान खून से सनी तलवार हाथों में ले कर—किन्तु इस पीरपंजाल में उन के विजय-रथ के पहिए गये धँस। उन में कोई भी नहीं हैं आज। सर्वग्रासी राहु ने उन्हें ग्रस लिया है। वही राहु हुआ भारत की चिरकालिक संस्कृति। वही राहु आज भी निगल रहा है एक के बाद एक साम्राज्यवाद, उपनिवेशवाद, फ़ॉसिस्तवाद, साम्राज्य-तन्त्रवाद—इन के धक्के से भारत की एक ईंट भी नहीं खिसकी। मुग़लों को गये एक सौ वर्ष भी नहीं हुआ, अँगरेज़ गये अभी उस दिन—सिर पटक गये सभी एक-एक कर। किसी ने समाधि ली मिट्टी के नीचे, कोई भाग कर जान बचा पाया। कड़ी धातु आती है बाहर से,

मगर यहाँ आ कर वे गल जाती हैं। अब साम्यवाद की बारी है। अधिकांश पृथ्वी जिस के भय से काँप रही है। भारत की माटी में हो सकता है, वह अब समाधि ले ले। इसी मध्य 'पंचशिला' पर सिर ठोंक कर रक्तगंगा साम्यवाद में बहने लगी। इस भारत महामानव के सागरतीर का पथ भूल कर यदि कोई आ पहुँचे तो उस की और रक्षा नहीं। पीरपंजाल उस का सब से बड़ा गवाह है।

ऊपर है हिन्दूकुश और काराकोरम, नीचे की ओर है पीरपंजाल और जास्कार—इन्हीं दोनों के मध्य में है भू-स्वर्ग जैसे मदालसा बेबस देह की टूटन में सोया—गजब के प्रलोभन के जैसे। पुकार रहा है सभी को पिशाची मन्त्र से। चतुर अँगरेज़ भी एक समय डर के मारे ज़रा हट कर खड़े रहे और रणजीतसिंह के हाथों से कशमीर को झपट कर महाराजा गुलाबसिंह से कुछ स्वर्णमुद्रा में बेच कर पीछे हट कर खड़ा हो गया था।

जिस तरफ़ देखता हूँ, खड़ा है भारत का चिरप्रचलित स्वभाव एक ज़माने से। न लोभ, न आसक्ति, न ध्वंस, न दुश्मनी—सभी यहाँ आ कर आसन ले कर बैठे तपोवन की एकान्तिक शान्ति में—जहाँ होमकुण्ड प्रज्वलित कर ओंकार ध्वनि उत्पन्न हो रही है अविराम। यहाँ के अनुसन्धान-गृहों में सभी दर्शन-शास्त्रों की परीक्षा चल रही है। वैदिक, वेदान्तीय, बौद्ध, ब्राह्मण्य, जैन, ईसाई, यूनानी, कन्फ़ुसिय, इसलामी—कोई छूटता नहीं। दिव्य ज्ञान की महान् परीक्षा में भारत है पथ-प्रदर्शक। यहाँ आ कर सिर्फ़ जान जाओ जीवन की व्याख्या, सत्य का भाष्य, धर्म का निहितार्थ।

विचारते-विचारते बहुत दूर चला आया हूँ। मध्याह्न पार कर अपराह्न को छोड़ सन्ध्या के बाद गाड़ी आ पहुँची जम्मू। गाड़ी से उतर कर जम्मू की धर्मशाला में अपने पुराने मित्र मदनलाल से फिर मुलाक़ात हो गयी।

धर्मशाला में अँधेरा है इस लिए मोमबत्ती से ही काम चलाना पड़ रहा है। नीचे होटल है, इस लिए हमारे पैरों के नीचे से धरती खिसकी नहीं। अचरज की बात यह है कि श्रीमती गुप्ता से यहाँ सभी परिचित हैं। पति के साथ बार-बार दिल्ली-श्रीनगर आने-जाने के समय जम्मू में एक दिन बिताना पड़ता है—उसी सूत्र से यहाँ घनिष्टता है। मदनलाल और सत्वती को देख कर वे एकदम नाच उठीं। श्रीनगर में बाढ़ आयी थी, इस से उन की गृहस्थी तहस-नहस हो गयी और आते समय दिन भर उन के चेहरे पर उदासी छायी रही जिसे उन्होंने मुझे भाँपने तक नहीं दिया। अब सत्वती और मदनलाल को देख कर उन की वह उदासी मिटी। उन दोनों को साथ ले कर मेरे पास हाज़िर हुईं। मदनलाल पहने हैं वही गन्दा पाजामा मगर सत्वती पहने है नयी रेशमी शलवार। मोमबत्ती की लौ में झलमला रही है। मदनलाल आये और बिलकुल पैर मोड़ कर क़रीब बैठ गये। बातचीत के बाद पता चला कि वे दो दिन से यहाँ हैं। कल चले जायेंगे।

ठीक है, तुम लोग श्रीमती गुप्ता को दिल्ली छोड़ते जाना। कल पठानकोट का टिकट ले लूँगा। मैं जाऊँगा काँगड़ा की तरफ़, उस के बाद हिमाचल प्रदेश।

पति-पत्नी दोनों हँस उठे। बोले, ताज्जुब है, हम भी तो जा रहे हैं काँगड़ा और कुलू। हम तो वहीं के आदमी हैं, वहाँ मेरा पुश्तैनी घर-मकान है।

श्रीमती गुप्ता ने कहा, देख रही हूँ आप लोगों का दल बढ़ गया। हमें ही शौक़ क्यों नहीं है ? मैं भी कोई कम हूँ ?

सत्वती बोली, तुम्हारे पति अगर यह सुन कर नाराज़ हों ? पहले उन से पूछ लो ?

अँधेरे में श्रीमती का चेहरा साफ़ नहीं दिखा। ज़रा खिन्न स्वर में उन्होंने कहा, पति को जो जानतीं नहीं वे ही पति से डरती हैं। मेरे पति हैं सदाशिव।

मदनलाल कह बैठा, क्या मुसीबत है ? पति की चर्चा चली कि खैरियत नहीं। करना क्या चाहती हो यह बताओ।

माया अब हँसी। बोली, साथ-साथ चलूँगी वरना इतना जंजाल सँभालूँगी अकेले कैसे ? अकेले कभी गयी नहीं। घर-द्वार बहा कर लेखक का संग किया है, देखूँ उस की दौड़ कहाँ तक है। श्वसुर के पास पहुँचने के बाद ही पिण्ड छोड़ूँगी।

पति-पत्नी हँसी में लोट-पोट। आधी रात तक सत्वती और श्रीमती गुप्ता की बातें चलती रहीं। इस के बाद नौजवान मदनलाल गाना गाने लगा खाट पर लेटे-लेटे ही।

कल फिर हम सभी नयी राह के राही होंगे।

पठानकोट से रेल की लाइन चली गयी है योगीन्दरनगर की तरफ़ बहुत दूर तक। यह है हिमालय का शाखा-पथ। छोटी-छोटी पहाड़ी अधित्यका के भीतर से रेलपथ गया है। प्रथम हिस्सा समतल है, इस के बाद लूप की जटिलता शुरू हो गयी है।

धूप से चिलचिला मध्याह्न। हम लोगों की वेश-भूषा में धूल लिपटी है और हम थकान से चूर हैं। ऐसे में ही एक समय चीज़-बसन सहेज-सँभाल कर रखना पड़ा पठानकोट स्टेशन के क्लॉक रूम में। खाना-पीना जैसा-तैसा। अन्त में मध्याह्न के बाद गाड़ी छूटी। सदा प्रसन्न मदनलाल ने बहुत सारी खाने-पीने की चीजें और मेवा-फल आदि का जुगाड़ कर लिया है। मेरे लिए धूम्रपान की व्यवस्था भी की है। एक तरफ़ सत्वती और माया बैठ गयी हैं बहुत सा अखरोट और 'बेगुगोसा' ले कर—उधर मदनलाल सभी की सुख-सुविधा में उलझा है। बच्ची दोनों औरतों के बीच में है। आज वह स्वस्थ है। वे ठण्ड खूब सह सकते हैं मगर गरमी में तकलीफ़ पाते हैं। मदनलाल के पिता हैं शायद लुधियाना के रेशम व्यवसायी—बहुत बड़े सेठ। लड़का है बेहाथ। पत्नी को ले कर घूमता रहता देश-देश। छोटी लाइन वाली गाड़ी चल रही है धीर

गति में। तराई में तेज धूप की वजह उमस महसूस हो रही है।

छोटे-छोटे जंगल से घिरे पहाड़ों की चोटी के बाहर विशेष कुछ नजर नहीं आता। बहुत कुछ जैसे नीचे की तरफ़ लुढ़क आया हूँ। फिर भी पहाड़ की तराई में खेत-खलिहान ने नीलाभ चादर बिछा दी है यहाँ-वहाँ। दोपहर उतर जाने के बाद गाड़ी आ पहुँची ज्वालामुखी रोड स्टेशन पर। यहीं हम ने इस यात्रा में रेल पथ को छोड़ दिया।

यह अंचल है पंजाब में। मगर इस की भौगोलिक सीमा बड़ी जटिल है। काँगड़ा के उत्तर में है हिमाचल प्रदेश, कुलू के उत्तर में कशमीर और दक्षिण में हिमाचल प्रदेश। शिमला पंजाब में है या हिमाचल प्रदेश में, इस का निर्णय आज भी नहीं हो पाया है। जैसे है डलहौज़ी। सभी जानते हैं, चम्बा में है डलहौज़ी—मगर वह शैल शहर है पंजाब के अधीन। पेप्सू हिमाचल, काँगड़ा, कुलू, चम्बा—इन के परस्पर मानचित्र के बिना इन की सीमा का निर्णय करना मुश्किल है।

स्टेशन से ज्वालामुखी गाँव तेरह मील की दूरी पर है। सड़क सुनसान। ऊँची-नीची गिट्टी की सँकरी सड़कें। यह है पंजाब, मगर जनता पंजाबी नहीं है। स्त्रियों की माँग में सिन्दूर है, पुरुषों के सिर पर लाल पगड़ी। ये जाति के शाक्त हैं। कुलू में भी यही, मण्डी में भी यही। पाँच-छह सौ वर्ष पहले राजपूताना मध्य भारत और मध्य प्रदेश में राजनीति का घुन लगने लगा था। तातार, पठान और मुग़ल—इन्होंने राजपूतों को अपनी मातृभूमि में स्थिर नहीं रहने दिया था। इस लिए वे अपनी संस्कृति, शिक्षा और समाज-व्यवस्था साथ ले कर भाग आये हिमालय के इर्द-गिर्द। पेप्सू है वास्तविक पंजाब, हिमाचल प्रदेश है वास्तविक राजपूताना। इन्हीं का अंश बिखर गया है कुमायूँ और नेपाल में। काँगड़ा में आने पर लगेगा पहाड़ी उत्तर बंग या असम उपत्यका। वैसे ही मन्दिर, वही शक्ति-पूजा, वही शिव और भैरव की आराधना, वही स्त्रियों की माँग में सिन्दूर और कलाइयों में सुहाग के चिह्न।

कुल तेरह मील पथ, मगर वट और अश्वत्थ की ऐसी श्रद्धायुक्त पूजा आगे कहीं नहीं देखी। प्रति वट के नीचे देवस्थान, प्रत्येक अश्वत्थ के नीचे शिव। बड़े जतन और अत्यन्त परिपाटी। छोटे-छोटे गाँव मगर कितना शान्त। रानीताल की छोटी सी हटिया—उसी से स्थानीय लोगों की खुशी का ठिकाना नहीं, अधिक की चाह नहीं, विरोध कहीं भी नहीं। प्राचीनता की हवा बह रही है पहाड़ी प्रान्तरों के नीचे और खेतों में पानी से लबालब पोखरें। पश्चिम अम्बर पर धूप म्लान हो आयी है।

हमारी मोटर बस मारवाड़ी धर्मशाला के प्रांगण में आ रुकी। सामने ही खड़ा है ज्वालामुखी का 'कालीधर' पहाड़—भारत का अन्यतम प्रधान पीठस्थान। अगल-बग़ल मामूली कई दुकानें, दो-चार घर बस्ती। इधर-उधर एकान्त है। गाड़ी के रुकते ही पण्डे आ खड़े हुए। यह अंश न कि शहर के बाहर है, मन्दिर के उधर बिना गये जन-समारोह मिल नहीं सकता। माया ज़िद पकड़ बैठीं, वे रहेंगी शहर में ही। सभी के

आगे वे धूल सने पैरों मन्दिर में प्रवेश करेंगी। इधर कुछ मिलता नहीं।

ठीक सुनिर्दिष्ट एक पड़ाव की ओर दोनों जने बढ़ रहे थे, ऐसा कहना उचित नहीं होगा। मुझे शंका थी, अपरिचित पण्डे का शरणागत कहीं न होना पड़े। क्योंकि ऐसे स्थानों में स्वार्थ की वजह अघटन घटता रहता है। मगर मुश्किल यह थी कि हम ठीक पुण्याभिलाषी तीर्थयात्री नहीं थे। फिर वही असुविधा, साथी के रूप में मैं कुछ बेमेल था। श्रीमती माया के चेहरे और पहनावे में अति आधुनिकता थी। सहसा जहाँ-तहाँ ठहरना उन के लिए असुविधाजनक था। पण्डा राह बताता चला। अन्दाज़न आधा मील दूर पर पहाड़ के नीचे एक छोटा सा जनपद, बाज़ार से गुज़र कर हम जा पहुँचे एक गोरखधन्धे में। यही था पण्डे का ठहराव-पड़ाव। जो डर था वही हुआ। दूसरे का मुँह ताकने के सिवा यहाँ और कोई गति नहीं थी। चारों तरफ़ सूखा, कहीं पानी नहीं। बहुत पुराना घर-द्वार—न अर्गला, न परदा। अपने वश में कुछ भी नहीं। सामने के चबूतरे पर एक स्त्री बैठी थी—सम्भवतः घर की गृहिणी थी—जाने क्या सी रही थी। मकान का उत्तर और पूरब का हिस्सा जैसे सुरंग हो। पीछे की तरफ़ पतली खुली हुई पगडण्डी।

सामान एक घर में रख कर मन्दिर की ओर चढ़ाई पथ पर चल पड़ा। 'कालीधर' पहाड़ के ऊपर मन्दिर है। वहाँ है देवी अम्बिका और उन्मत्त भैरव।

दक्ष यज्ञ के विपर्यय के बाद सती की मृत देह कन्धे पर ले कर देवादिदेव शिव इसी पथ से गुज़रे थे। विष्णु के चक्र से कट कर सती की जीभ यहाँ गिर पड़ी थी। वह जीभ आज भी लपलपा रही है ज्वालामुखी पहाड़ के कई छिद्रों और कुण्डों में। बचपन में माँ से यह कहानी सुनी थी। मगर स्त्री की जीभ में इतनी आग होती है, यह नहीं जानता था।

एक चढ़ाई पगडण्डी से पहाड़ पर के मन्दिर के आँगन में गया। मन्दिर का परिपार्श्व प्राचीन नहीं है, हर जगह नये निर्माण का चिह्न मौजूद है; किन्तु जो मुख्य मन्दिर है वह युगों का है, उस का बड़ा इतिहास है। बग़ल में ही एक गुफा में झरने के स्वच्छ पानी से एक कुण्ड बन गया है। राजगृह कुण्ड की याद हो आती है। कुण्ड पार करते ही है मुख्य मन्दिर का प्रवेश द्वार। यह भी गुफा ही है और पीठ स्थान है। दीवारों में छोटे-छोटे छेद बने हैं। सभी में आग की लपटें निकल रही हैं। एक-दो नहीं बहुत सारी। यहाँ-वहाँ और एक ओर सुरंग में कई लपटें लपलपा रही हैं। अन्दर की आबहवा पवित्र है; और सन्देह नहीं, यह एक रहस्य-अनुभूति सौंपती है। देखने से पता चलता है कि हर पहाड़ खनिज पदार्थों से भरापूरा है। गन्धक, खड़िया मिट्टी, फ़ासफोरस और भी अनेक प्रकार के खनिज पदार्थ भरे पड़े हैं इस के पत्थर और माटी के भीतर। हमारे देश में ज्वालामुखी पहाड़ नहीं है। मगर बहुत से पहाड़ों में उस के उपादान का अभाव भी नहीं है। बद्रिकाश्रम में, गौरीकुण्ड में, राजगृह में एवं और भी अनेक जगहों में गरम झरने निकल आये हैं पहाड़ों की सुरंगों में से। कहीं न कहीं पत्थर के अन्दर-

दर-अन्दर धक-धक आग जल रही है—किसी को इस की सूचना तक नहीं है।

एक लौ हाथ से बुझा दी मगर भीतर जब दाह पदार्थ मौजूद है, तो वह फिर जल उठेगी। बाहर की ओर, एक तरफ़ और एक जलकुण्ड में पण्डे ने जाने क्या फेंका कि भक से पानी में ही आग जल उठी। बड़ा अचरज हुआ। बिलकुल पेट्रोल में जैसे आग पकड़ती है, वैसे ही। इस से श्रीमती गुप्ता को बच्चों के खेल जैसा मज़ा मिला। वे बार-बार लौ जला कर देखने लगीं।

बाहर पहाड़ की रेखा चली गयी है दूर-दूरान्तर तक। दक्षिण में है स्पष्ट समतल, उस के पार से विपाशा नदी चली गयी है पूरब से पश्चिम की ओर। अच्छी लग रही है यह अजानी पृथ्वी—यह है हिमालय का सब से निचला हिस्सा। यह है तोरणद्वार, यहाँ से यात्रा शुरू होती है। उत्तर में है विशाल धवलाधार पर्वतश्रेणी, दक्षिण में विपाशा के आर-पार सोलासिंगी अर्थात् शूलश्रृंग गिरिमाला। इन दोनों पर्वत श्रेणियों के मध्य भाग से चली है बीहड़ विपाशा। उस के उत्तर में है काँगड़ा उपत्यका और दक्षिण में सुविशाल पार्वत्य मण्डीराज्य। उत्तर से दक्षिण की ओर तक शूलश्रृंग पर्वत-माला किसी समय विलासपुर राज्य को कई ओर से घेरे थी।

मन्दिर का आँगन बहुत साफ़ है, आधुनिक है। एक तरफ़ है पण्डों की गद्दी, वहाँ पुण्याभिलाषी श्राद्धतर्पण की व्यवस्था करते हैं। यह एक व्यापार है, उस में रस नहीं मिलता मुझे। पूरे मन्दिर को अच्छी तरह देखने में समय लगा। शाम हो आयी।

हम फिर लौट आये धर्मशाला में। अध्यवसायी मदनलाल वहाँ सत्वती के साथ मौज से अस्थायी घर-गृहस्थी जमा बैठा है। बच्ची को आराम से दो तल्ले में सुलाये हैं। वे कल सवेरे मन्दिर जायेंगे। हम लोगों को देख कर सत्वती नाचने लगी।

बड़ा सा मकान। नीचे-ऊपर दर-दालान। कमरे के बाद कमरा। बहुत से यात्री आये हैं उत्तर और दक्षिण भारत से। नीचे की मंज़िल में उन का शोरग़ुल मचा है। नहाने का पानी मिला, चलो प्राण बचा। सड़क पर ही दो-एक भोजनालय, वहाँ किसी प्रकार के खाने-पीने की व्यवस्था है। भूख होने पर जो भी हो वही अच्छा।

भोजनादि कर के ऊपर जाते-जाते रात के दस बज गये।

मदनलाल बहुत उमंग में है। पत्नी से बात-बात में डाँट खा रहा है, उसे विषय बना कर हम सभी हँसी-मज़ाक़ कर रहे हैं, मगर मदनलाल है कि मदमस्त। काम झपट लेता है सभी के हाथों से—ख़ुद करेगा। यह और भी संकट है कि साथ-साथ वह गाना गाने लगेगा। कब तो श्री राधिका गागर ले कर यमुना से पानी भरने गयी थीं, यह मदनलाल का सिर-दर्द है। सत्वती ग़ुस्से में आगबबूला, मायादेवी हँसी में लोट-पोट। एक समय जब असह्य हो उठा तब सत्वती धैर्य खो बैठी, गरज कर बोली, डण्डे से तेरी राधा की गागर मैं तोड़ दूँगी।

मदन क्षुब्ध हो कर बोला, देखिए दादा जी, मेरी बीवी भी नास्तिक बन गयी। हम लोगों की हँसी रोके नहीं रुकी।

पूरे बरामदे और कमरे में बिस्तर बिछ गया है। सामने बरामदे के बाहर कृष्णपक्ष के अँधेरे में है विशालकाया दानवी जैसी ज्वालामुखी का अचल आयतन, उस के ऊपर जल रही है एक ज्योति। चुपचाप आकाश की तरफ़ ताक रहा हूँ। सहयात्रियों की अब आवाज़ नहीं आ रही है। लगता है, सो गये हैं सभी।

जंगलों में समायी काँगड़ा उपत्यका का एक हिस्सा है ज्वालामुखी अंचल। खूब छोटा सा यह जनपद तीर्थ मन्दिर को केन्द्र बना कर स्थित है। इस के परे है जंगलों में किसानों की बस्ती। इस जंगली इलाक़े की कोई नियत सीमा यहाँ ढूँढ़ निकालना कठिन है। भीषणता और जनहीनता के लिए यह जंगल विख्यात है।

खौफ़नाक जन्तुओं की सड़क चली गयी है पहाड़ों के नीचे-नीचे विपाशा के किनारे-किनारे मण्डी और बिलासपुर राज्य में। पश्चिम में शूलश्रृंग पर्वतमाला का भयावना जंगल है, दक्षिण की ओर चली गयी है हमीरपुर की सड़क। वहाँ से 'आधार' और उस के बाद सुन्दरनगर राज्य की शेष सीमा है—जहाँ बिलासपुर पार कर के शतद्रू शूलश्रृंग के दक्षिण में आ मिला है। यह है अखण्ड—अविभक्त भारत के हिमालय का वही दो हज़ार मील व्यापी तराई इलाक़ा—हिन्दूकुश के दक्षिण से जिस की शुरुआत है और असम सीमान्तर के पूर्वांचल में ब्रह्मदेश और चीन की सीमा में जिस का अन्त है। यहाँ केवल निस्संग निर्जन जंगल के शीर्ष पर खड़ी हैं अम्बिका, जो हैं दुर्गा-महा-चण्डी, जिन्होंने अस्त्र धारण किया असुरों के नाश के हेतु—शत्रुओं का हनन करने में जिन्हें दया नहीं आती, कृपा नहीं करतीं, मोह-ममता नहीं है जिन में। उस अँधेरे 'कालीधर' पर्वत की चोटी के ऊपर से वे आह्वान कर रही हैं महाभारत का, युग से युगान्तर में। सभ्यता का यज्ञ जो भ्रष्ट करने आये, भारत के जन-संस्कार को जिन्होंने कलुषित करना चाहा, तपोवन के दर्शन तत्त्व-साधना को जिन्होंने इतिहास के पर्व-पर्व में दानवीयता से आच्छन्न करने की चेष्टा की, ऐतिह्य के अमृत स्वभाव पर जिन्होंने बार-बार आक्रमण किया—महाचण्डी यहाँ से आह्वान कर रही हैं कि उन के विरोध में अस्त्र धारण करो। दैव-अहिंसावाद के ऊपर उठो—हिंसा का हनन करो। यही होगा तुम्हारी सभ्यता के हेतु राजसूय यज्ञ, यही है मंगलकामना के शेष शब्द। संहारिका उस देवी अम्बिका की रण-तृष्णा ले कर जो इस आदि-अन्तहीन हिमालय की चोटियों पर चक्कर लगा रही हैं, वे यहाँ शिव नहीं हैं, सर्वमंगला के कल्याण के प्रतीक नहीं हैं—वे हैं उन्मत्त भैरव; वे देवादिदेव नहीं हैं महारुद्र, जिन्होंने रुद्राणी की घनी केशराशि में अपनी महाजटा एक में मिला दी है—झाड़ी-जंगलों में। यहाँ भी उसी शिव और शक्ति की अभिव्यक्ति हुई है।

दूसरे दिन सवेरे मोटर से चल पड़ा। मदनलाल आदि साथ नहीं आये।

बाणगंगा के किनारे-किनारे पार्वत्यपथ। पुरानी चट्टानों का जमघट उतर आया है नीचे नदी में। शरद्-प्रभात का मधुर समीर बह रहा है देवदार के वनों में। रक्त-

वर्णी धूप की छुअन लगी है पहाड़ों की चोटियों में। नीचे की ओर थरथराती छाया फैली है। रोशनी पहुँच नहीं रही है।

हमारी गाड़ी चली जा रही है एक अनजाने, अपरिचित दिशा की ओर। नये पहाड़ों में आने पर पृथ्वी को नये रूप में पाता हूँ। बृहत् तक पहुँचने के पहले कई तोरण द्वार पार करने ही पड़ते हैं। अचानक मिल रहा है शालवृक्षों का घनत्व, सहसा आ ठहरता है दल-त्यागी सैगुन और चीड़। देखते-देखते एक के बाद एक गिरि-संकट पलक मारते ही अम्बर अपना क्षितिज द्वार खोल देता है। दक्षिण से हम जा रहे हैं उत्तर की ओर जिधर है धवलाधार।

पीरपंजाल पर्वत श्रेणी की सीमा से दक्षिण भू-भाग में शिवलिंग पर्वत श्रेणी की शुरुआत हो गयी है—चली आयी है सीधे दक्षिण में और फैली है पूर्व हिमालय में। मध्योत्तर भारतीय हिमालय का प्रमुख प्रवेश द्वार निकला है इसी शिवलिंग पर्वत श्रेणी के भीतर से—यह है हिमालय का प्रथम स्तर (तह)। कश्मीर, उत्तर पंजाब, हिमाचल, युक्तप्रदेश, नेपाल—समस्त भू-भाग ही इसी पर्वतश्रेणी की चहारदीवारी में जज़्ब हैं। इसी शिवलिंग पर्वत श्रेणी के द्वितीय स्तर में है धवलाधार पर्वतश्रेणी। काँगड़ा, पालमपुर, धर्मशाला और जोगिन्दरनगर के उत्तर में सहसा यह धवलाधार पर्वत बहुत क़रीब आ खड़ा होता है—जैसे श्मशानी उलंग संन्यासी लोक समाज में ठिठक कर आ खड़े होते हैं। देखने में डर लगता है—उस के सर्वांग में कहीं स्नेह का आभास नहीं, माया-ममता कुछ भी नहीं—जनम से ही जैसे सर्वहारा। हरियाली की आभा उस के तन-बदन में नहीं, वर्षा में, वसन्त में उस में भावान्तर नहीं होता, उस का कुछ छिपा नहीं है, यहाँ तक कि जंगल का कौपीन भी उस ने नहीं धारण किया है। वह जैसे अपनी रूखी जटा के भीतर से कराल दृष्टि विस्फारित कर दुर्वासा की तरह खड़ा है। स्थिर दृष्टि से ताकता हुआ काल का प्रहर गिन रहा हो—रुद्राक्ष की माला का जप कर रहा हो, कब आयेगा कालान्त, कब प्रलय, कब आविर्भूत होगा दशम अवतार, कब तहस-नहस होगा इस पृथ्वी का। धवलाधार की विशाल नग्नता देखने पर डर लगता है।

पहाड़ों के बाद पहाड़ छोड़ता आया हूँ, पीछे छोड़ आया बाणगंगा का अतल-स्पर्शी खन्दक, और अश्रांत स्रोत गर्जन, कहीं रख आया दुर्भेद्य वनभूमि की निःशब्दता—रख आया हूँ उस के स्तबक-स्तबक में आनन्द की सिहरन, हृदयगत विजय-अभिलाषा।

दिनमान के प्रथम चरण में आ पहुँचा काँगड़ा के बड़े शहर में।

यह ज़रा बड़ा शहर है। समतल पर अवस्थित। कोर्ट-कचहरी, डाक और तारघर, दफ़्तर-स्कूल, हाट-बाजार, व्यवसाय, वाणिज्य—नगर-सभ्यता का हर उपकरण मौजूद है। परन्तु सभी का आकार छोटा है। हम नगर-सभ्यता के आदमी ठहरे—यह सब कुछ हमारे लिए नया नहीं है। बल्कि हिमालय के भ्रमणकाल में अगर सुयोग-सुविधा और उपकरणों के अभाव में असुविधा में पड़ जायें तो वह सह्य है, उपयुक्त आहार और आश्रय न जुटने पर दुःख महसूस नहीं होता। मगर शहर में आ जाने पर

हमारी माँग बढ़ जाती है, हमें सब कुछ चाहिए और नहीं मिलने पर दुखी होता हूँ। शहर में किसी उपकरण का अभाव होने पर हमें ग़ुस्सा भी आता है।

एक पण्डा आया। उम्रदराज व्यक्ति, नाम है मोतीराम। ज्वालामुखी के पण्डे का नाम था मोतीलाल। उस के व्यवहार से प्रसन्न नहीं था, मगर इस भलेमानस के व्यवहार से आनन्द मिला। श्रीमती माया ने कहा, मोतीराम जी के घर पर चलिए। बिना नहाये चैन नहीं। बड़ी धूप है।

मैं ने कहा, अगर मदनलाल के लोग मोटर स्टैण्ड पर आये और हमें नहीं पाये तो ?

तो क्या ?—उन्होंने कहा, साढ़े तीन बजे के पहले, जब बैजनाथ की बस नहीं छूटती तब वे मोटर स्टैण्ड पर इन्तज़ार करने को बाध्य हैं। हम ठीक समय पर यहाँ आ जायेंगे। चलिए।

बात युक्तिसंगत थी। यदि सत्वती का बच्चा इस राह में सफ़र करने से कहीं बीमार पड़ गया तो बड़ी मुश्किल होगी। वे सन्तान के जनक ज़रूर हैं, पर अभी भी माँ-बाप नहीं बन पाये हैं। बच्चे की आज़ादी का ज्ञान अभी उन्हें नहीं हुआ।

मन में खटका समाया रहा। फिर भी श्रीमती माया का निर्देश मानना पड़ा। हम गली-गली और ठाँव-कुठाँव से होते हुए एक बस्ती में आ कर मोतीराम के मकान में ठहरे। पण्डा जी बड़ी ख़ातिर से नहाने का पानी और मिठाइयाँ ले आये।

सामने ही एकतल्ला मकान है। कमरे में प्रवेश करते ही श्रीमती माया चमड़े की पेटी खोल, काग़ज़-क़लम निकाल, स्वामी को जल्दी-जल्दी पत्र लिखने बैठ गयीं। जैसे भी हो, यह बात सच है—इतने शंकित मन से इतनी आपाधापी में एक गृहस्थी को तहस-नहस कर सड़क पर उतर आना उस के पक्ष में युक्तिसंगत नहीं हुआ है, उस में कुछ धीरज की ज़रूरत थी। मगर यह उन्हें पता था, तीन महीने के भीतर ही पति कश्मीर लौटेंगे और दिल्ली उन की फ़ौरन बदली होना अवश्यम्भावी है। उसे कुछ दिनों बाद जाना ही होता, मगर बाढ़ आ कर उसे जल्दी ही जाने को मजबूर कर गयी।

नहा-धो लेने के बाद मोतीराम अपना बही-खाता ले कर बैठे। उन की माँग कुछ नहीं है, दक्षिणा के लिए वे हाथ फैलाने को तैयार नहीं हैं। हमें यहाँ आनन्द मिले, उन के लिए यही बहुत है। बही खोल कर एक जगह दृष्टि आकर्षित किया तो देखा मित्रवर श्रीयुत् उमाप्रसाद मुखोपाध्याय अपनी पूजनीया माँ के साथ कभी यहाँ आ ठहरे थे। यह सविस्तार लिखा देख कर खुशी हुई।

इस के बाद पण्डा जी हमें ले चले मन्दिर दर्शन के लिए। पथ में थोड़ी चढ़ाई है। इधर-उधर भटकते हुए हम एक बड़े मन्दिर के चबूतरे पर आ खड़े हुए।

बाणगंगा पार करने के बाद से एक खास चेहरे देख रहा हूँ। समग्र काँगड़ा उपत्यका बंगाल का आत्मिक मित्र लगता है। पूजा-अर्चना की रीति पश्चिमी नहीं, व्यवहार-बातचीत, सामाजिकता में बाँग्ला को देख पाता हूँ। साधारणतः हम पंजाब में

देखते हैं दो दल। एक वैष्णव अर्थात् राधाकृष्ण का उपासक, दूसरा शैव-शाक्त मिला-जुला। सिख धर्म नया है, उस की उम्र कम है। एक विशेष सम्प्रदाय की विशेष दीक्षा की सीमा में वह आबद्ध है। मुसलमान धर्म में जैसे है बाहर के लोगों का प्रवेश अवांछनीय, सिख धर्म में भी वैसे ही, प्रवेश-पथ सर्वसाधारण के लिए प्रशस्त नहीं है। हिन्दुओं की बात और है। जो लोग वेद वेदान्त, उपनिषद्, षड्दर्शन, पुराण पाठ करते हैं, जो लोग डूब जाते हैं योग-दर्शन में, ज्ञान और साधना में, उन्हीं को हम कहते हैं परम हिन्दू। बल प्रयोग या पुस्तक-प्रचार कर के हिन्दू अपने स्वधर्मी की संख्या बढ़ाना चाहते नहीं, यह उन के न स्वभाव में है, न जाति में ही। तुम अमरीकी हो, या रूसी, या अँगरेज—जो भी हो, हिन्दू-दर्शन के प्रति तुम में श्रद्धा और अनुराग है, इसी कारण तुम्हें हिन्दू मानता हूँ। चीनी परिव्राजक ह्वेनत्सांग को परम हिन्दू मान कर अनेक श्रद्धा करते हैं। गौतम बुद्ध थे हिन्दू धर्म के एक आश्चर्यजनक उदाहरण, इसे कौन अस्वीकार कर सकता है? समग्र कांगड़ा में घूम कर देखा, बंगाल की शाक्त और वैष्णव संस्कृति सड़क-सड़क पर बिखरी है। दोनों में आश्चर्यजनक साम्य है, एक ही लय में बँधा हुआ।

गाँवों में जा खड़े हो—बिलकुल बंगाल का ग्राम। केले के पेड़ों में फूल या केले के घौद लटक रहे हैं। मचान पर कद्दू—उस के नीचे हरी मिर्च के पौधे। धूप में बैठ कर कथरी की सिलाई एकदम बंगाल के जैसा। रसोई में बिल्ली, खलिहान में बकरियाँ, गाय के सामने सानी के लिए टब। उधर गेंदे और सन्ध्यामणि की झाड़ी, पोखर में कुमुद-फूल। बखरी की दीवारों पर गोबर के गोइंठा—अविकल बंगाल। कांगड़ा में भी ऐसा ही है। औरतें कुएँ पर माथा मल रही हैं, अमरूद के पेड़ पर चढ़े हुए हैं बाल-बच्चे, बंसी ले कर नदी के किनारे है कोई बैठा, धान की कुटाई हो रही है छप्पर के नीचे, पंसारी की दुकान पर चौकड़ी जमी है—लगेगा कि हम भी उन में एक हैं। राह-घाट के इनसानों के चेहरे पर उग्रता का आभास नहीं—जैसे बिलकुल निरीह, वैसे ही निर्विरोधी। पंजाब में अन्यत्र कहीं जाओ—अमृतशहर, गुरुदासपुर, जालन्धर या लुधियाना, फ़िरोज़पुर या भटिण्डा—सभी का रूप कुछ और ही। कांगड़ा में आ कर पंजाब कोमल हो गया, प्रकृति में आ गयी है मृदुता, इनसानों के स्वभाव में आ गयी है शालीनता।

सन्देह नहीं, ये राजपूताना का रस बोध लाये हैं, मगर पंजाब की रुखाई इन्हें मिली नहीं। सभ्यता से जितनी दूर रहा है मनुष्य, उतना ही वह सरल, उतना ही स्वकीय है। यान्त्रिक सभ्यता ने जो पहनावा पहनाया है मनुष्य को, वह पोशाक उसे रास नहीं आयी। परन्तु विज्ञान युग का सब से बड़ा षड्यन्त्र है, एक ही साँचे में पृथ्वी को ढलना। भद्र जापानी और भद्र मिस्री को अगल-बग़ल खड़े करिए—एक जीवन यापन, एक पोशाक, एक ही खाद्य, एक शिक्षा, एक ही आशा-आकांक्षा। खड़े करिए अमेरिकन को बग़ल में आस्ट्रेलियन को, अँगरेज़ों की बग़ल में रूसी को, जरमन की बग़ल में फ़्रांसीसी को—विज्ञान सभ्यता ने उन में पार्थक्य कुछ नहीं रखा। आइए

भारतवर्ष में, अपरिमित विविधता आज भी नज़र आयेगी। आइए हिमालय के पादपर्वत में—इसी काँगड़ा में। यहाँ मनुष्य अपने स्वभाव धर्म में विद्यमान है। सभ्यता की छुअन इन के मन को आज भी छू नहीं पायी, इसी से प्रकृत मानव देखे जाते हैं। पोशाक़ में, व्यवहार में, सामाजिक जीवन में—हर बात में स्वतन्त्र।

एक टीलानुमा पहाड़ के ऊपर वज्रेश्वरी का मन्दिर है। सामने का मन्दिर-द्वार थोड़ी ऊँचाई पर है। हम आये हैं गंगा के देश से। फूल और चन्दन की सुगन्ध यदि मिलती है त्र्यम्बक का बीजमन्त्र यदि पूजा-प्रार्थी के मुख से उच्चारित होते सुनता हूँ तो हमें स्मरण होता है देवी सुरेश्वरी भगवती गंगा की कूल प्लावनी तटसीमा—जिस के तीर पर से गैरिकवसना भैरवी जप कर के उठ गयी हैं, ब्राह्मण जिस के तट पर बैठ मन्त्र-पाठ करते हैं रोज़ ही, जहाँ भारतीय सभ्यता युग-युगान्त अवगाहन कर के पुण्यमयी हुई है।

जाओ राजस्थान या हरिद्वार, पुरी या द्वारका, मदुरा या शिवसागर, अयोध्या या गंगासागर, कराची या चट्टग्राम—सभी को पकड़े बैठा है भारत। काँगड़ा के लिए भी यही बात लागू है। इतिहास ने जिस के बारे में कहा है—जो थे सनातन ब्राह्मण सभ्यता युग में, जो थे बौद्ध जैन युग में, वे हैं काँगड़ा के पहाड़-पहाड़ में। कोई है पहाड़ के ऊपर अंकित, कोई है गुहा-गह्वरों में और कोई है मन्दिर में। मौर्य बौद्ध ज़माने में, गुप्तकाल में, हर्षवर्धन के समय, शक-हूण, ग्रीक ज़माने में पठान-मुग़ल, हालैंडीज-पुर्तगीज़, फ्रांसीसी, अँगरेज़ों के ज़माने में काँगड़ा निस्संग रह गया अपनी महिमा में, अपनी स्वकीयता में, अपने सम्मान में। काँगड़ा की इस विशिष्टता को प्रकाश मिला है उस की चित्रकला में, जिस का नाम है 'काँगड़ा स्कूल ऑफ़ आर्ट'। स्थापत्य और भास्कर्य को उस ने सुन्दर बनाया, ललित कला की व्याख्या में लाया अपनी लावण्यता, जिस की स्वतन्त्रता सभी देशों में स्वीकृत है। भारत के अनन्त वैचित्र्य, यहाँ भी उस का अभिनवत्व प्रकट है। कन्याकुमारी से पामीर, गन्धार से कैलास, ब्रह्मपुत्र से सिंहल—इस का नाम है महाभारत। इस अखण्ड, अविभाज्य, अव्यय भू-भाग को अपनी क्रीड़ा भूमि में धारण किये है देवतात्मा हिमालय, जिसे काव्य और पुराण में कहा गया है कुल पर्वत, कहा गया है मेरु—मान्दारमाल्यशोभित हिमालय।

अकेला बैठा था एक सूनी चट्टान पर। श्रीमती माया घूम आयी हैं इधर-उधर। चढ़ावा चढ़ा रही हैं मन्दिर-मन्दिर में, दक्षिणा दे रही हैं ब्राह्मणों को। मोतीराम हैं उन के साथ-साथ। अचानक सामने आविर्भूत हुए सौम्य-सुघड़ एक व्यक्ति। ये हैं मेरे मित्र और अवकाश प्राप्त अध्यापक श्री हरिचरण घोष। अप्रत्याशित मिलन है, इस में सन्देह नहीं।

आप यहाँ ? आशुतोष कालेज की प्रोफ़ेसरी कब छोड़ा ?

वाह, मैं कहाँ नहीं हूँ ? जहाँ जाइए मैं हूँ। मेरी सरकारी नौकरी है, हम सर्व-

व्यापी हैं। आइए, इस मन्दिर के पत्थरों का काम देख जाइए। चकित हो उठेंगे।

उठने ही वाला था कि मायादेवी आ गयीं। दोनों का परिचय करा दिया। हरिचरण बाबू हैं मज़ाक़िया, वे घूम-घूम कर हमें सब कुछ समझाने लगे। यहाँ उन्हें कई बार आना पड़ा है। अपने काम की रिपोर्ट सरकार को देनी पड़ती है। दो बंगाली सज्जन थे उन के साथ। यहाँ के बाद वे बहुत जगहों का भ्रमण करेंगे। श्रीमती माया के साथ वे खूब गप्प में मशग़ूल हो गये फिर दल बना लिया हम ने।

मन्दिर की चौहद्दी में और कुछ देर रहने की इच्छा थी। पर हरिचरण बाबू ने कहा—चलिए एकदम नाश्ते की दुकान पर, वहीं कुछ देर बैठा जाये।

अचानक मुझे लक्ष्य कर मायादेवी और सब ज़ोर से हँस पड़े। हरिचरण बाबू ने ऊपर से उस में जोड़ दिया—काँगड़ा की धूल-गन्दगी अपने शरीर पर धारण खूब किया है ? क्षौरकर्म कितने दिनों से नहीं किया है ?

इसी प्रकार मज़ाक़ चलता रहा बहुत देर तक। खैर, नाश्ते के बाद हरिचरण विदा हुए और हम भी पण्डा जी के मकान की तरफ़ रवाना हुए। घर में आ कर श्रीमती गुप्ता ने कुछ समय के लिए आराम किया। वे खूब थकी थीं। कशमीर से चलते समय उन्होंने कहा था—इस के पहले लेखक कैसे होते हैं, यह मेरा जाना हुआ नहीं था। लेखक को क़रीब से जानने का अवसर मैं छोड़ूँगी नहीं।

मैं शंकित ! क्या उन्होंने ऐसा देखा, मुझे इस का पता नहीं। जिस भ्रमण में मुझे आनन्द मिल रहा है उस में उन का दिल लग रहा है, या नहीं ? इस से भी मैं अज्ञान हूँ। घण्टा भर बाद वे उठ आयीं। मैं ने कुछ महसूस करते हुए ही कहा—एक निवेदन करता हूँ, चलिए आगे बढ़ने में कोई फ़ायदा नहीं, यहाँ से ही दिल्ली रवाना हों। मैं फिर एक बार आ जाऊँगा इधर।

ज़रा दुखी हुई श्रीमती गुप्ता—तो मैं ने पत्र क्यों लिखा ? जम्मू से मैसूर को पत्र लिखा। आप साथ में हैं—वे निश्चिन्त रहें। मगर मेरा खयाल क्या है, जानते हैं ? मेरी वजह से आप को कष्ट हो रहा है।

मैं खूब हंसा। बोला– अगर कहूँ कि आप का कहना पूरी तरह से झूठ नहीं है ?

असबाब ठीक-ठाक करते समय उन्होंने विचार व्यक्त किया—सच हो, या झूठ, मैं चलने वाली नहीं हूँ, सुन रखिए लेखक जी ! भ्रमण की ऐसी सुविधाएँ और नहीं मिल सकतीं। जितना रुपया खर्च हो, करूँगी ऐसे ही। कटहल यदि तोड़ना ही है तो ब्राह्मण के बेटे के सिर से उपयुक्त क्षेत्र है।

हम लोगों की तरंगित हँसी में मोतीराम भी जुट गया। मगर अब देर नहीं थी, साढ़े चार के पहले ही बस छूट जायेगी। हम जाने के लिए तैयार हो कर मोतीराम को दक्षिणा दे कर निकल पड़े। थोड़ा पहले ही चलूँ, हो सकता है सत्वती और मदनलाल अपने बच्चे को ले कर बसस्टैण्ड पर आ गयी होंगी।

समुद्रसमता से काँगड़ा की उच्चता मात्र प्रायः डेढ़ हज़ार फ़ुट है। मगर ठण्ड यहाँ खूब पड़ती है। अवरोध कहीं नहीं है, इस लिए उत्तरी हवा यहाँ खूब चलती है। ठण्ड पड़ती है, ठण्डक में हवा की वजह से हवा रुकी रहने पर तुषार राज्य भी सहनीय है। काँगड़ा में अभी शरद् ऋतु है—उत्तर की हवा चढ़ नहीं पायी है अतएव गरमी है। धूप में खड़ा रहा नहीं जाता। हम छाये में जा खड़े हुए। मगर इधर-उधर देखने पर भी सत्वती, मदनलाल नज़र नहीं आये। मैं एक बार आगे बढ़ कर कचहरी तक जा कर उन्हें ढूँढ़ आया।

मायादेवी ने कहा कि मुझे लगता है कि लड़का आप से डरता है, इसी लिए वे दल छोड़ कर भाग रहे हैं। ऐसा अभागा हम ने देखा नहीं। सत्वती भी कष्ट पाती है, उस बेसहूरे के संग।

ऐसे बेसहूरे से बहुतों को कष्ट पहुँचता है।

अचानक सन्देह के साथ टेढ़ी निगाह से देखा श्रीमती गुप्ता ने। फिर बोलीं—ठीक, गुप्ता जी होते तो मैं इस का उत्तर देती। लगता है कि आप मुझ से पिण्ड छुड़ा पायें तो लाखों पाये। वह होने का नहीं। आप को जितना घूमना है पहाड़, घूम लीजिए। दिल्ली स्टेशन पहुँच कर ही आप का भूत उतरेगा।

ठीक, भूत नहीं!

भूत नहीं तो भूतनी। चलिए, गाड़ी छूट रही है।

मुसकराते हुए फिर सवार हुआ गाड़ी पर। बैजनाथ की तरफ़ चला।

[३]

वर्षान्त का पीतवर्णी बादल धवलाधार की तुषार शिखर को चूम रहा है—बादल और बर्फ़ एक में मिले हुए। इतना आश्चर्य हिमालय में और कहीं नहीं होता। मोटर-पथ के निकट सहसा उठ गया है धवलाधार, जिस की ऊँचाई कमोबेश सोलह हज़ार फ़ुट होगी। उस पर्वत श्रेणी के ठीक नीचे अन्तहीन फ़सलों के खेत, सम्पूर्ण काँगड़ा में जैसे हरित मखमल बिछा रखी है। उसी के बीच-बीच बारीक जरी के फीते की तरह अनगिनत आँको-बाँको नदियाँ चली गयी हैं, बीच-बीच में नज़र आते हैं किसानों के घर और देवस्थान। पाइन और देवदार के जंगल की रेखा जैसे मन को खींच कर बहुत दूर ले जाती है—जिस ओर उत्तर पूर्व और पश्चिम में—तीनों दिशाओं को जोड़ कर खड़ा है धवलाधार पर्वत की विशाल चोटी-समूह। यहाँ जैसे एक छोटा सा मानचित्र भारत का अंकित है।

पथ समतल है। इधर तराई की गोद में फलों के अन्तहीन बग़ीचे, दूसरी तरफ़ है मैदान और खेत-खलिहान। कहीं जंगल की छाया उतर आयी है, कहीं नदी के निर्जन तीर पर बट की जटा उतर आयी है—जैसे महाप्राचीन ऋषि मौज़ से गंडूष भर कर जलपान कर रहे हैं। कहीं उतर आयी हैं लाहुल की चिड़ियाँ—जो हिमालय छोड़ कर जाती कहीं भी नहीं। हमारा रस्सी का पथ वनवीथिका की भाँति दूर से दूरान्त में चला गया है। रेल-पथ आया है पठानकोट से ज्वालामुखी रोड और जोगिन्दर नगर हो कर नागरोटा तक। नागरोटा के बाद से रेल-पथ नहीं है। मगर इस पार के बैजनाथ के पथ पर से उस का चिह्न ही नहीं मिलता।

अपराह्न म्लान होता आ रहा था। जनसमागम इतना कम है कि अचरज होता है। बीच-बीच में पुरुष नज़र आ जाते हैं—उन के सिर पर है लाल पगड़ी। स्कूल के बच्चों का दल गीत गाता हुआ चला जा रहा है। दीखते हैं यहाँ-वहाँ वे जिन का नाम है गद्दी। वे यहाँ की माटी की सन्तान नहीं हैं। सेब की लाली है 'गद्दी' स्त्रियों के गालों और अधरों पर, टेढ़ी चितवन मानो वन्य अपराजिता के कटाक्ष, सुडौल-मृदुल कण्ठों में प्रवाल की माला में चिपकी हो पथिकों के लिए मौत। भर देह जेवर, मगर पूरी देह ढँकी हुई। माथे पर लाल ओढ़नी। किसी-किसी का कहना है, ये हैं मुग़ल रक्त की धाराएँ, कोई-कोई कहता है आदिम आर्य की अवशेष हैं। लड़के-छोकरे, मर्द भी ऐसे ही। माथे पर रंगीन टोपी, सादे कम्बल से ढँका अंग। पशुओं के लोम की पेटी बँधी है उन की कमर में। सभी हैं रूपवान्। अरण्य से पाया है उन्होंने स्वभाव, धवलाधार की कठोरता से स्वास्थ्य, पार्वती नदी के झनक-झंकार से मिला है हँसी-उल्लास, और सभ्यता चिह्न लेशहीन पार्वत्य प्रकृति से उन्हें मिली है चित्त की सरलता। गाय, बकरी, भेड़ें और भैंस—इन्हें चराना है उन का पेशा। वे फ़सल काटने आते हैं काँगड़ा में, गृहउद्योगों में भाग लेते हैं, चाँदी के ज़ेवर गढ़ते हैं, पशुओं के रोयें से पशम निकाल कर गोले बनाते हैं। इस के अलावा वे मज़दूरी करने इधर के बहुत सारे इलाक़ों में भी जाते हैं। इस के बाद वे निकल पड़ते हैं अन्यत्र। वे जाते हैं जास्कार और धवलाधार पर्वत श्रेणियों से होते हुए लाहुल उपत्यका या लद्दाख या तिब्बत की सीमा के पर्वत लोकों में। कोई बाधा-विघ्न नहीं मानते, एक स्थान से दूसरे स्थान में जाने के लिए वे पारपत्र की परवा नहीं करते। वे सदा से जानते आये हैं हिमालय को, राष्ट्र को नहीं जानते। किस देश से किस का शासन शेष हो गया, किस राष्ट्र की कौन सी सीमा, किसी राजशक्ति का क्या परिचय है—वे इस बात में सिर नहीं खपाते। पहाड़ों को वे पहचानते हैं, जानते हैं दुर्गम पथों का पता लगाना—जहाँ सभ्यता की घुसपैठ कम है। सूर्य के दक्षिणायन होने पर वे देश बदलते हैं डेरा-डण्डा उखाड़ लेते हैं, वे गठरियाँ बाँध कर तुषार की गति-प्रगति का अन्दाज़ लगा कर वे दल बाँध चलते रहते हैं—इस इलाक़े से उस इलाक़े। उन के इस युग-युगान्तर के पगचिह्नों का अनुसरण कर सभ्य और शिक्षित लोग पहाड़ी इलाक़ों में ज़मीनों की सीमा की नाप-जोख करने

में लग जाते हैं और मानचित्र बनाते हैं। वे उसी हिमालय की अनगिनत शाखा-प्रशाखाओं में सैकड़ों-हज़ारों मील व्यापी, जो सभी मकड़ी के जाले की तरह जटिल पगडण्डियाँ हैं, उन्हीं के ऊपर सदा से अभियात्री-दल चलता रहता है। ऋषि-मुनि जाते हैं, जाते हैं दार्शनिक और कवि, जाते हैं तीर्थयात्री और राजलोभियों का दल—जाते हैं सभी युग-युगान्तरों से। उन्हीं के पैरों का निशान देख-देख कर आये तातार और मुग़ल, आये तुर्क, ईरानी और पठान, आये शक और हूण—आये उत्तर तिब्बत की मरुभूमि के अगण्य विलुप्त सभ्यता के ध्वंसावशेष के प्रान्तों से कितनी ही अनिर्णीत जातियों के लोग। उन के पैरों के निशानों को ढूँढ़ते हुए आये यारकन्दी और समरकन्दी। वे जाड़े में काँपते हैं, बर्फ़ीले तूफ़ान से त्रस्त होते हैं, बर्फ़ों के नीचे उन के मुँह के और गोद के बच्चे दब जाते हैं। पशु की खाल के अभाव में उन की हड्डियाँ और चमड़ियाँ निकल आती हैं, बर्फ़ की चोट उन के सर्वांग में नज़र आती है—मगर फिर भी वे चन्द्रभागा और विपाशा के नीचे-नीचे भारत के हरे-भरे समतल में बिना आकुलता के जीवन यात्रा में उतरना नहीं चाहते—कहीं नीचे के वातावरण के दबाव में पड़ कर वे श्वास-अवरुद्ध हो, मर न जायें। या फिर उस बर्फ़ के राज्य में श्वेतछायामय मृत्युलोक में जब नववसन्त की पुकार होती है, कोई अजाना रंगीन पंछी जब ऋतु-राज का सन्देश वहन कर अचानक निस्तब्ध पहाड़ों की गोदों में बोली बोलता है, देवतात्मा की जटाएँ शिथिल हो जाने पर निर्झरणियाँ दल बना-बना कर उतरने लगती हैं—एक भी तृण-फल के पोर में जब एक कली हृदय-विदारक यन्त्रणा का आभास देती है, तब आता है उन के जीवन में मिथुनलग्न। सुनीलनयना फेनवर्णा बाँकी चितवन वाली फिर से कानों में धातु के बहुत सारे अलंकार पहन लेती हैं, कम्बल हटा कटि-वस्त्र धारण करती हैं और मर्द को पुकार-पुकार कर खींच लेती हैं अपने स्वर्णवक्ष की मरण सेज पर। इस के बाद फिर दल बाँध कर निकल पड़ते हैं ये कहीं और।

पालमपुर का चाय बग़ीचा पीछे छोड़ कर चला जा रहा हूँ। अब नज़र आ रही है लोगों की आवाजाही, दर-दुकान और काम-कारबार। निकट ही एक आलोक रश्मि-रंजित जलाशय में एक ही संग खिल उठे हैं श्वेत और रक्त पद्म। एक 'गद्दी' मज़दूरिन लड़की घाट के किनारे लज्जावरणों को रख कर स्नान कर के निकली, देखा किसी ओर नहीं मगर अपनेआप में मुग्धमन डुबकी भी नहीं लगायी ताकि वेणी कहीं खराब न हो जाये। इसी तरह स्नान करना उन का साधारण सा नियम है। राजस्थान में, कशमीर में, गुजरात में, गढ़वाल में, नेपाल में—जहाँ हैं नारी मज़दूरिनें वहीं है यह हाल। सिर्फ़ एक मोटा पहरावा उन का संबल है—उसे पानी में भिगोने से उन का काम ही नहीं चलेगा।

बहुत दूर तक समतल है, इस के बाद पथ चढ़ता है धीरे-धीरे। हरित प्रान्तों को बायीं तरफ़ छोड़ कर बढ़ता जा रहा हूँ। आँखें मुक्त हुई हैं। अब देख पा रहा हूँ, दूर बहुत दूर कहीं-कहीं आँखें जा पड़ती हैं धवलाधार की पादभूमि पर। वन और

जंगल की दुरूहता वहीं जा मिली है। वहाँ से निकलते हैं तरह-तरह के जन्तु-जानवर—बर्फ़ में रहने वाले पहाड़ी चीते, पीले-काले भालुओं का दल और दतैले हरिण। वहाँ से उतर आते हैं वन-हंस—चट्टानों के कोटरों में जो डेरा डाल देते हैं और आते हैं, पहाड़ी कबूतर और मुर्ग़े। हमारी गाड़ी मुड़ चली है बहुत दूर।

बाढ़ आयी थी कुछ दिनों पहले धवलाधार के पंजर से निकल कर उस बाढ़ से योगेन्दरनगर के रेल-पथ में टूटन आ गयी है, गाँव बह गये हैं, पहाड़ धँस गये, फ़सलें चौपट हो गयीं। पहाड़ों की बाढ़ विश्वासघातिनी होती है। इस का कारण है, कल पहाड़ों पर वर्षा हो चुकी है, इस का किसी को पता न होना। सभी पहाड़ों का इतिहास यही एक। वर्षा उतरी नहीं, मगर बाढ़ से विध्वस्त होते हैं तराई के गाँव और शहर। जैसे नेपाल से उतरती है कोशी की बाढ़, भूटान से शंखोस, सिक्किम से तिस्ता, पीरपंजाल से वितस्ता, कुमायूँ से सरयू, तिब्बत से ब्रह्मपुत्र। इस सभी भू-भागों के ठीक नीचे जो लोग रहते हैं वे सदा तटस्थ हैं। मात्र पर्वत-प्रमाण पानी की दीवार नीचे की तरफ़ दौड़ती आती है; यही नहीं, उस के साथ बह कर आते हैं एक-एक गाँव, विराट्काय पत्थरों की चट्टानें, हज़ारों-हज़ार टनों की धसक, उखड़े हुए बड़े-बड़े पेड़। ध्वंस और मृत्यु की उस भयावह वज्र-गर्जना में सुनाई पड़ती है लाचार यात्रियों और ऐरावतों की अन्तिम चीत्कार, बाघ और भालुओं की रुलाई, अजगर साँपों के झपट्टे और इसी के साथ बहे हुए मनुष्यों की करुण हाहाकार। कोई भी बचता नहीं उस विभीषिका में। यदि कोई जानवर प्रकृति की उस सांघातिक प्रताड़ना से आत्मरक्षा करने में समर्थ होता है तो वह विक्षिप्त हो कर निकटवर्ती गाँवों और बस्तियों पर टूट पड़ता है और निरीह गाँव के रहने वालों से बदला चुकाता है। यही बाढ़ जब चली जाती है और पार्वत्य प्रपात जब शान्त हो जाता है तब जंगली जानवरों की विकृत मृत देह स्रोत की चट्टानों के अगल-बग़ल पड़ी नज़र आती है। हाथी, गेंड़े, बाघ, भालू, हरिण—कोई छूटता नहीं। उन में मिली है मानव और अजगर की मृत देह। सन् १९५८ में दक्षिण भूटान की टूटन से लगभग दो हज़ार बड़े-बड़े जानवर, मनुष्य और अनगिनत सरीसृप नष्ट-भ्रष्ट हो गये।

बैजनाथ आ पहुँचा। उस समय भी ठीक शाम नहीं हुई थी।

बाज़ार के क़रीब आ कर बस रुकी। रास्तों के दोनों तरफ़ कई मामूली दूकानें, दो-चार व्यापारियों की गद्दियाँ। शहर छोटा सा शहर, और इस राजपथ से बाहर जाने पर कई घरों की बस्ती को छोड़ और खास कुछ नज़र नहीं आता।

निकट ही बैजनाथ का प्राचीन मन्दिर है, मगर मन्दिर-दर्शन के पहले हम मदनलाल और सत्वती को खोजते-ढूँढ़ते सामानसहित जा पहुँचे डाकबंगलों में। बरामदे के बिलकुल नीचे हैं क्षीरगंगा। पहाड़ी नदियाँ पहाड़-पहाड़ पर सिर पटकती हैं मगर वह नहीं जानती कि उस के इस घात-प्रतिघात से कितने अपरूप सौन्दर्य की सृष्टि

होती रहती है। क्षीरगंगा मोड़ लेती है उत्तर से पश्चिम में और अन्त में दक्षिण ओर। उस पार एक पहाड़ की ऊँची चोटी है और पूरब में पर्वत-शृंखला की बग़ल से सट कर मण्डी राज्य की सीमाक्षेत्र को जाने वाला पथ चढ़ाई पर चढ़ गया है। कांगड़ा उपत्यका का प्रायः यहीं शेष है। इस इलाक़े में पंजाब और हिमाचल प्रान्त का संयोगस्थल है।

माल-असबाब उतार कर क़ुली जब विदा हुआ तब इस डाकबंगले के बाग़ के दूसरे छोर में खड़ी एक प्राइवेट कार पर नज़र पड़ी। सम्भवतः किसी कर्मचारी की होगी। मगर उधर से बात-चीत का कोई आभास नहीं मिल रहा है। इसी समय चौकीदार आ खड़ा हुआ सलाम ठोंक कर। जैसा है सर्वत्र वैसा यहाँ भी। उठने-बैठने के सुख कलकत्ते के ग्रैण्ड होटल की तरह। ऐसे एकान्त और निस्संग में जिन लोगों ने निवास स्थान का निर्माण किया उन की सुरुचि और अक़्लमन्दी की प्रशंसा बिना किये रहा नहीं जाता। कमरों की गोद में ख़ूबसूरत बरामदे।

श्रीमती माया को यह देख-सुन कर ख़ुशी हुई और चौकीदार ने जब नाश्ते के लिए मेज़ और कुरसियाँ वहाँ ला रखीं। वे बैठ गयी तो बोलीं—कश्मीर से कांगड़ा किसी भी बात में कम नहीं है। देखिए न यह जगह बिलकुल पहलगाँव की तरह ही है। मगर लोग एकदम नहीं हैं। चौकीदार रहेगा न? तुम रहोगे रात को क्या?

जी हाँ—चौकीदार ने उत्तर दिया।

मायादेवी ने चाय और नाश्ते का आर्डर दिया।

बादल फिर घिर आया है। किसी-किसी पहाड़ पर बिजली की चमक नज़र आ रही है। निकट ही उस ऊँची भूमि के मैदान में कुछ बच्चे खेल रहे हैं। आसमान का रूप देख कर वे मैदान त्याग घर की ओर चल पड़े हैं। बरामदे से अन्दर ठण्डी हवा आ रही है। बाग़ में एक ओर वह कार खड़ी है ज़रूर, मगर किसी के वहाँ होने की शिनाख्त नहीं मिल रही है। उस खेल के मैदान में से एक आँको-बाँकी पगडण्डी बैजनाथ के मन्दिर प्रांगण में जा पहुँची है। बादल का रूप देख कर मन्दिर की तरफ़ जाने का उत्साह नहीं है।

कुछ देर बाद मायादेवी ने अन्दर से गरदन निकाल कर पुकारा। उठ कर अन्दर गया, चारों तरफ़ देख कर मैं अवाक्। ख़ूब बड़ा हाल पूरे फ़र्श पर कारपेट। चमकती हुई कई खाटें और उस पर साफ़-सुथरे बिछावन। हर खिड़की पर क़ीमती परदे झूल रहे हैं। हाल में है साहबी ढंग का बाथरूम, ड्रेसिंगरूम; इधर वाले पार्टीशन से सटी पड़ी है बहुत बड़ी डिनर टेबुल, बहुत सारी क़ीमती कुरसियाँ; उधर एक अलमारी में विविध प्रकार के शीशे के बरतन और चाय के सरंजाम; इधर वार्डरोब, वहाँ बड़ा सा आईना, इधर ब्रैकेट मेण्टलपीस के ऊपर सजे कई खिलौने और रंगीन शीशे के गुलदस्ते—उस के ठीक नीचे फ़ायरप्लेस।

चौकीदार चाय और नाश्ता ला कर बरामदे में आ खड़ा हुआ। उसे बत्ती का इन्तज़ाम करने को कहा, पूछा—यहाँ कम उम्र के एक बाबू और बीवी आये हैं, या

नहीं, जिन के साथ है एक छोटी सी बच्ची भी ?

मायादेवी एकदम उछल पड़ीं—हाँ, हाँ ?

चौकीदार ने अपनी पहाड़ी हिन्दी में बताया कि इसी डाक बँगले में ही हैं हमारे आने के तीन घण्टे पहले आये हैं वे ।

उस तरफ़ के आखिरी कमरे में मदनलाल और सत्वती ठहरे हैं । हमें देख कर ही मदनलाल दौड़ा आया और अपने नियमानुसार उस ने घुटने छू कर आदर प्रदर्शित किया । सत्वती खाट पर आँखें बन्द किये सोयी है । बच्ची मुलायम बिछावन पर आराम से बग़ल में काफ़ी हाथ-पैर फेंक-फेंक कर खेल रही है । यह कमरा भी बढ़िया है ।

पूछा—क्या हुआ है सत्वती को ?

—कुछ नहीं, दादा जी । चक्कर आ गया था । पेट्रोल की बू बरदाश्त नहीं कर सकती ।

कांगड़ा में हम लोग मिले क्यों नहीं ? इस के जवाब में मदनलाल ने बताया—पाँच मिनट से अधिक वे कांगड़ा में ठहरे नहीं, क्योंकि उस मोटर स्टैण्ड पर उन्हें फ़ौरन बैजनाथ की बस मिल गयी । वे ज्वालामुखी मन्दिर के अन्दर भी नहीं गये । यह सुन कर अचम्भा हुआ । मगर मदनलाल ने हमें अच्छी तरह समझा दिया कि इतना मन्दिर-वन्दिर देखने से सफ़र नहीं होता ।

सत्वती सोयी रही, मदनलाल को साथ ले कर हम आये श्रीमती गुप्ता के पास । उसे देखते ही वे ग़ुस्से में भर आयीं । उपयुक्त भाषा में बोलीं—तुम्हारी बेवक़ूफ़ी से हमारा दिमाग़ खराब हो गया है । जान रखो, मदनलाल !

पूछा—अगर राह-घाट, मठ-मन्दिर नहीं देखोगे तो इस बेचारी और बच्ची को ले कर यहाँ-वहाँ क्यों फिर रहे हो ?

मदनलाल ने कहा—दादा जी, घूम तो रहे ही हैं । एक असली बात बताता हूँ, सुनिए । हज़ार छह एक रुपये बाप से ठगा । उन को ओट में रेशम का स्टाक किया था बहुत रक़म का । बड़े एक सेठ से कुछ प्राइवेट खबर मिली, पिता जी को मालूम नहीं था—बस झट से तेरह हज़ार रुपये ब्लैक में मिल गये । तब बाप को बताया । उन्होंने एक हज़ार बख्शिश देना चाहा, मैं ज़रा टेढ़ा हो कर बोला, और भी पाँच हज़ार चाहिए, उन्हें समझा दिया कि आठ हज़ार तो बिलकुल फोकट में मिल रहा है ।

मायादेवी हँसी में लोट-पोट ।

चाय का प्याला ले कर मायादेवी उस तरफ़ गयीं और मिनट पाँच-एक के अन्दर ही सत्वती को संग ले कर लौटीं । सत्वती शर्म में छुई-मुई । क़रीब आते ही मेरा पैर छू कर प्रणाम किया । मायादेवी ने कहा—मुझे जो सन्देह था, वही निकला । आप के डर के मारे सत्वती आँखें बन्द कर के पड़ी थी, सोयी नहीं थी । पूछ लीजिए इन श्रीमान् से, पेट्रोल की गन्ध वाली बात बनावटी है ।

हँसी के कहकहे से गूँज उठी एकान्त निस्संग में पड़े बरामदे की वह शाम।

उत्साही मदनलाल अपना सामान यहीं ले आया। शाम के बाद से ठण्ड मज़े की पड़ गयी है। अमावस्या निकट है—सिर्फ़ तारे टिमटिमा रहे हैं। शाम को बदली थी, अभी बादल साफ़ है। क्षीरगंगा नीचे से चली गयी है बहुत दूर—दोनों तरफ़ के अँधेरे में जा मिली है—बहुत कुछ हमारे अतीत और भविष्य की भाँति। समझ रहा हूँ, शक्ति जा रही चुकती, उम्र जा रही है बढ़ती। बाक़ी रह गये हैं अभी और भी बहुत सारे पहाड़, बहुत सारे स्वर्ग आज भी देखे नहीं गये हैं। थके पैर खींच-खींच चल रहा हूँ। ऐसा अहसास हो रहा है कि समय अब शेष होने को आया। बहुत कुछ बचा रह गया, भूख अभी भी मिटी नहीं। चट्टानों की पसलियों में मेरी निश्वास की मुमुक्षु लगी रह गयी, चिरतुषार के प्रत्येक धवल शिखर को प्रणाम कर लिया—वे मन में बसे रहे देव सिंहासन की तरह। आने वाले कल के जो तीर्थंकर हैं, जो अभियात्री हैं, जो हैं भुभुक्ष, आत्माभिव्यक्ति के लोभ की भूख में व्याकुल, जिन की दृष्टि चिरविरह वेदना में उदास है, परम पिपासा की खातिर संसार का कोई क्षेत्र जिन के मन नहीं भाया—उन की खातिर बचा रहा मेरा चूर-चूर विक्षिप्त भग्नांश। वे पैरों से रौंद जायें यही मेरी खुशी है। दूसरे दिन सवेरे डाक बंगले वाला घरौंदा बिगाड़ कर निकल पड़ा। उन के मन को चोट न पहुँचे, ध्यान उसी तरफ़ था। मन में डर समाया था, कहीं तिलमात्र भी विरक्ति प्रकट न हो पाये। घर अस्थायी ज़रूर था और उस की मीयाद अधिक से अधिक छत्तीस घण्टे की होती थी मगर वह स्थायी नहीं होता इसी लिए भला लगता था। हमारी चाह थी जंगली पहाड़ों की गन्ध, जो गन्ध लिपटी रहती है लतागुल्मों में और चीड़-देवदार के वनों में, जो घुली-मिली रहती है पहाड़ी नदियों के सेवार से सनी चट्टानों के नीचे-नीचे—वह गन्ध डाक बंगले वाले कमरों में रखे बहुत सारे बरतनों और विलासी वस्तुओं में नहीं मिलती।

डाक बंगले का जिन्होंने निर्माण किया उन की सुरुचि की तारीफ़ करता हूँ। यह पहाड़ की चोटी पर खड़ा है मगर त्रिकोणाकार में। नीचे से बह चली है क्षीरगंगा और उधर से आया है रेलमार्ग। परन्तु अभी कई दिनों पूर्व ही भयंकर बाढ़ आयी थी क्षीरगंगा और बाणगंगा में—उसी के पानी के धक्के से टूट गयी है पहाड़ की देह और इस्पात की लाइनें। परिणामस्वरूप लाइन झूल रही है ऊँचाई पर संकटपूर्ण अवस्था में, गाड़ी का चलना बन्द है। यहाँ से योगेन्दरनगर के क़रीब ही। ठीक लगता है, मील पन्द्रह होगा। योगेन्दरनगर अपने जल-विद्युत् उत्पादन की खातिर दुनिया भर में विख्यात है। धवलाधार पर्वत के भीतर से बहुत दूर व्यापी सुरंग मार्ग पकड़ कर इस का पानी प्रायः आठ हज़ार फ़ुट पहाड़ से तेज़ बहाव में नीचे उतर आता है। उसी तेज़ बहाव से विद्युत् उत्पादन का कार्य हर क्षण होता रहता है। 'ऊहल' नामक एक भिन्न पथगामिनी नदी के द्वारा यह जल नित्य जमा किया जाता है। एक शतद्रु को छोड़ हिमालय की

विशेष किसी नदी को इस प्रकार उपयोग में लाया नहीं गया। इस लिए योगेन्दरनगर की प्रसिद्धि विशेष रूप में है।

पठानकोट से रेलमार्ग पहाड़-पर्वतों की उपत्यकाओं से गुज़र कर नदियों को पार कर मुड़ते-मुड़ते आया है योगेन्दरनगर तक। मगर उस का अन्त यहीं है। मोटर-मार्ग बराबर आया है नागरोटा, पालमपुर, बैजनाथ होते हुए योगेन्दरनगर में और वहाँ से चला गया है दक्षिण-स्थित मण्डी राज्य की तरफ़। जो लोग दक्षिण हो कर कुलू जाने के लिए घूम कर जाना नहीं चाहते उन के लिए एक शार्टकट यहाँ है। मगर यह मार्ग सुगम नहीं है और मोटरें जा नहीं पातीं। पहाड़ों में जैसे सर्वत्र घोड़े मिलते हैं यहाँ भी वैसा ही है। तीर्थपथ होने पर पैदल ही जाते बहुत से लोग, मगर यहाँ के लिए यह बात उठती ही नहीं। पहाड़ी लोग पैदल चलते हैं, पर्यटक घोड़ा लेते हैं। इस मार्ग से योगेन्दरनगर से कुलू अर्थात् सुलतानपुर है लगभग पैंतालीस मील—घोड़े से जाने पर दो दिनों से कम समय नहीं लगता। इस मार्ग के मध्य में पड़ता है भावू गिरि—वहाँ नौ हज़ार फ़ुट से भी अधिक दुर्गम चढ़ाई चढ़ना पड़ती है। चढ़ाई उसी हालत में कष्ट-कर है जब वह अचानक सामने आ हाज़िर होती है। जैसे खिलनमर्ग से लद्दाख की राहों में या टनमर्ग से गुलमर्ग की चढ़ाई। भावू के पहले पड़ती है जातिगरी, इस के बाद और भी मील बारह आगे जाने पर मिलेगा शीलभादोवानी। शीलभादोवानी से ही भावू की चढ़ाई शुरू होती है। यहाँ चारों ओर से घेराव किये है धवलाधार की विशाल चोटियाँ। उसी में राह भी खो जाती है, आदमी भी लुप्त हो जाता है। बीच-बीच में ऐसी शब्दहीनता है कि अचम्भा होता है, इतना अपार्थिव है कि दिमाग़ काम नहीं करता। हम लोगों की अभ्यस्त आँखें शहरों-नगरों में उन्मुक्तता की क़ायल हैं, बहुत हुआ तो ज़रा सा बाग़-बग़ीचा, मैदान, नदी-नाले से जा टकराती हैं। या इसी बीच एक बार विन्ध्याचल या शिलांग-दार्जिलिंग। यहाँ वह राज्य नहीं हैं, ये लोग पृथ्वी को पहचानते हैं धवलाधार की उपत्यकाओं में—इस के बाहर की सभ्यता का समाचार कम ही सुन पाते हैं। मगर आदमी का अध्यवसाय कहीं रुका नहीं है। आदमी जानना चाहता है, समझना चाहता है उसी के मध्य से—असाध्य या दुर्गम मान कर लौट नहीं आता। रेलमार्ग आज तक हिमालय में पहुँचा है समुद्र सतह से आठ हज़ार फ़ुट तक, मोटर-मार्ग चला गया है प्रायः दस हज़ार फ़ुट तक। किन्तु वास्तविक हिमा-लय की शुरुआत उसी छोर से है। दार्जिलिंग का घूम, हिमाचल का शिमला और कश्मीर का बनिहाल गिरिसंकट—रेल या मोटर-मार्ग इसी उच्चता से आगे नहीं बढ़ सका है।

शीलभादोवानी से कैरेवान हिमालय के समस्त ऐश्वर्य को धारण किये स्थित है, यहाँ इनसानों का रूप नया है, नये ढंग का साज-शृंगार, स्त्री-पुरुष बहुत ही सुन्दर मगर चेहरे की बनावट से मंगोल से लगते हैं और इसी परिवर्तन के साथ ही उन का जीवन-क्रम भी बदलता रहता है।

कैरेवान से लगभग अढ़ाई हजार फ़ुट उतराई पथ में उतर कर कुलू उपत्यका पहुँचा जा सकता है।

बस्ती-वाशिन्दे बैजनाथ शहर में कम हैं। मगर समतल की तरफ़ जाते ही लोगों की बस्ती का क्रम लग जाता है। पहाड़ी लोग समतल पा कर बहुत ही खुश होते हैं। समतल मिलते ही वे सब से पहले बनाते हैं मन्दिर, एक शिव की स्थापना करते हैं। इस के बाद पथरीली गिट्टियाँ हटा-हटा कर नरम मिट्टी निकालने में लगे रहते हैं। इस काम में स्त्री-पुरुष, बालक-बालिका—सभी का स्वार्थ समान है, इस लिए कोई बैठा नहीं रहता। बैलों की जोड़ी अगर मुयस्सर नहीं होती, खुद ही खेत भुरभुराते हैं। झरना आस-पास मिला तो वहाँ से खास तरकीबों से पानी खींच लाते हैं, इस के बाद अनाज उपजाते हैं। पहाड़ी बकरियाँ उन का बोझा ढोती हैं, वे भेड़ों को पालते-पोसते हैं—उन के रोयें काट कर बनाते हैं कम्बल की पोशाकें। मगर सिर्फ़ एक डर उन के मन में जागता रहता है, वह है बाढ़ का भय। समतल में जब बाढ़ फैलती है तब विनाश सम्भव है। बाढ़ आने पर वे सब खेत-खलिहान, घर-द्वार छोड़ कर पहाड़ की ऊँचाई पर भाग जाते हैं और कभी-कभी तो एक या एक रात के कुछ घण्टों में एक सम्पन्न गृहस्थ सर्वहारा हो कर सड़क पर आ बैठा है। इस के बाद आँखों के आँसू पोंछ कर फिर जीवन-क्रम में जुट जाते हैं। अदम्य उत्साह के साथ सभी स्त्री-पुरुष कमर कस कर काम में लग जाते हैं।

आज शाम के बाद से ठण्ड अधिक पड़ने लगी है। मदनलाल के साथ निकली थीं मिसेज़ गुप्ता—दिन भर वे चलती रही हैं खूब। सत्वती शायद कहीं रास्ते के ढालू पथ में बहती क्षीरगंगा के शीतलजल में स्नान कर आयी है, अपने उस पैर में दर्द होने के बावजूद।

मदनलाल गया था योगेन्दर नगर के उधर, वहाँ से मेरे लिए बेशक़ीमत एक टिन सिगरेट लेता आया था, इस बार वही मुझे उपहार में दिया। सिगरेट ले कर हँसते हुए मैं ने कहा—खबरदार, बहू को अब परेशान नहीं करना।

बैजनाथ के आस-पास चक्कर काट आया था, मगर रात को शयन-आरती देखने की इच्छा थी। मदनलाल और सत्वती डेरे में ही रहे अपनी बच्ची रतन की खातिर। मिसेज़ गुप्ता जाने के लिए तैयार होने लगीं। चौकीदार लालटेन ले कर साथ चला।

मोटर-मार्ग तक जाना नहीं पड़ता, मैदान में ही मन्दिर है। रात का अभी नौ बजा नहीं था, मगर अभी ही पहाड़ी तराई एकदम खामोश। पहाड़ी जीवन-क्रम शाम के संग-संग ही निःशब्द होने लगता है। बदली घिर रही है आकाश में। चौकीदार लालटेन ले कर आगे-आगे मन्दिर की चौहद्दी में घुसा।

मन्दिर देख कर ऐसा सम्भ्रम बहुत अरसे तक नहीं हुआ था। मैं जो ढूँढ़ता फिर

रहा हूँ, यहाँ वही है। वज्रेश्वरी देख आया हूँ, मगर उस की गढ़न बहुत कुछ आधुनिक थी, उस की रूप-सज्जा में बहुत कुछ आधुनिक ज़माने की झलक थी। चित्र, फ़ोटो, झाड़-फ़ानूस संगमरमर के पत्थरों का काम, यहाँ-वहाँ रंग-रोग़न, इन सभी पर मारवाड़ का प्रभाव पड़ा है। यहाँ यह सब कुछ पहुँचा नहीं है, ज़रा रोशनी भी नहीं। ऐसा दरिद्र मन्दिर सहसा नज़र नहीं आता; प्राचीनता का इतना विशिष्ट सौन्दर्य, लगता है, पूरे पंजाब में कम है। सामने ही है बड़ी ड्योढ़ी—सब कुछ प्राचीन पत्थरों का रंग हो जैसे घिसे हुए पैसे का। पत्थरों से पत्थर के जोड़ अलग अलग—दरारें बनी हैं अन्दर तक। धूप-धूना-चन्दन की सुगन्ध नहीं—सुगन्ध है जैसे प्रागैतिहासिक—जो गन्ध होती है पत्थर-पत्थरों में वह अश्वत्थ की शाखों में, उलंग दारिद्रय भूषण संन्यासियों की दहकती धुनी में; मुनिकी रेती के तपोवन में, सदा से बसो भैरव की महिषामर्दिनी के गुफा मन्दिर में, जो सुगन्ध बारम्बार पाता आया हूँ।

सिहरता अँधेरा कुछ साफ़ नज़र नहीं आता। कुछ अस्पष्ट, कुछ मटमैले में और कुछ बिलकुल अज्ञात—मगर इन्हीं के मध्य देखता हूँ बैजनाथ का विग्रह। सामने ही पत्थर का विशालकाय बलिवर्द। गोद के पास नाट्य मन्दिर, खूब ऊँची हैं उस की नींव—सब कुछ प्राचीनता की गवाही दे रहे हैं। कोई सजावट नहीं, अन्न-वस्त्र जुटता नहीं बैजनाथ को, दान-भीख मिलता नहीं—वे हैं नित्य उपवासी।

शयन-आरती का आयोजन हो रहा है। दर्शनार्थियों की संख्या बहुत कम है। दो-चार पहाड़ी औरतें, एकाध जन मज़दूर, दो-एक भक्त। पुजारी देवता को सजा रहे हैं मन्दिर में बैठ कर।

स्थानीय लोगों का कथन है, दो हज़ार वर्ष पहले महाराजा विक्रमादित्य ने इस मन्दिर का निर्माण करवाया था। यह मन्दिर हिमालय के प्राचीन देवस्थानों में अन्यतम है। कोई कहता है, बारहवीं सदी के शेष में यह मन्दिर बना, इस का असली नाम है वैद्यनाथ। ये शिव के ही प्रतीक हैं। पुजारी जो आरती का आयोजन कर रहे हैं, उन के पूर्वज तीन सौ वर्ष आगे बंगला देश से आये थे।

श्रीमती गुप्ता जा बैठीं गर्भ मन्दिर के द्वार के कोने में। उन्होंने पहन रखी थी चौड़ी काली किनारी की साड़ी, उस के पल्लू को गले में लपेट हाथ जोड़ कर वे बैठीं। उन्हें जिन्होंने श्रीनगर या पहलगाँव में देखा है, वे अगर इस पुजारिन को देखते तो अचम्भे में डूब जाते। मेरा विश्वास है, मन्दिर में प्रवेश करते ही वे श्रद्धा और अनुराग में तन्मय हो उठी थीं और उस समय से एक शब्द भी उन्होंने नहीं उच्चारा।

शंख, धूप-पात्र, कुछ फूल और दीप—इसी से पुजारी ने आरती की। धीरे-धीरे गुरु डमरू एक सहयोगी बजाने लगे। दर्शनार्थी शान्त, स्तब्धमुख। वही ध्वनि चली जा रही थी समग्र हिमालय को पार कर जैसे मानव-संसार की ओर, अन्धकार से अन्धकार की ओर। वे हैं वैद्यनाथ, निरोग करेंगे धन्वन्तरि के आशीर्वाद से। विकृत, विकल चित्त, हिंसाश्रयी बृहत्तर जो मानव सभ्यता पाशविक वृत्ति को आज खोद-खोद

कर जगाना चाह रही है—इस आरती का बीजमन्त्र उस डमरू ध्वनि में मिल कर हवा में बहता जाता है वैद्यनाथ का आशीर्वाद और मंगल-वचन ले कर। मनुष्य का चित्त विशुद्ध और निर्मल होगा, स्वभाव में परिवर्तन आयेगा।

सभी के पीछे खड़ा था। आरती शेष हुई या तन्द्रा का भाव मिट गया, ठीक समझ नहीं सका। ऐसी आत्मविस्मृति सचराचर सम्भव नहीं है। सभी कुछ जैसे बहुत दूर में, किसी अज्ञानलोक में जा मिला था, अब सब अपनी-अपनी में देह लौट आये। पलक उठा कर देखा, श्रीमती गुप्ता बहुत देर से मन्दिर की चौखट पर सिर झुका कर झुकी पड़ी हैं। छोटे पुजारी दीप-पात्र अपने हाथ में ले कर बाहर आये और सभी को आरती का उत्ताप वितरण कर रहे हैं। नतमस्तक सभी ग्रहण कर रहे हैं वह उत्ताप। श्रीमती गुप्ता ने अपने पल्लू की गिरह खोल कर जो कुछ लायी थीं, सब चढ़ा दिया। उन की आँखों में और चेहरे पर जैसे दीप्ति प्रस्फुटित है।

नगर की सभ्यता में हमारा पालन-पोषण हुआ है। हर क़दम पर हमें व्यावहारिक जीवन में एक परदा डाल कर चलना पड़ता है। चलते समय प्रभु ने अपना बक़ाया हमारे हाथों से झपट लिया है। फ़ैशन जान कर चलना पड़ता है, नित्य नये के भँवर में भ्रमित चक्कर काट रहा हूँ, हर रोज़ अपनेआप को नये साँचे में ढाल कर युग के अनुसार बनाता हूँ। हँस कर बातें करता हूँ उस से, जिसे एकदम पसन्द नहीं करता; दुख प्रकट करता हूँ उस से, जो व्यक्ति कपटी है। जय-जयकार मानते हैं ऐसों का जो अपदार्थ हैं; खुशामद करते हैं उस को, जिसे कुचक्री जानते-मानते हैं। नैतिक चर्चा करते हैं उसी से, जिस का लोभ और आसक्ति सर्वविदित है। स्त्रियों के पक्ष में भी ऐसा ही है। हीनता में लिपटा है स्वभाव—ऊपर से सरलता का परदा। कुरुचि और स्वभाव का विकार है ढँका हुआ पोशाकों के साज-सँवार से। अहम् और आत्माभिमान में भरी हुई—ऊपर से मीठे बोल की पालिश। यथार्थ परिचय को छिपा रहा है सावधानी से, बाहर कर क़दम पर प्रताड़ित करती हैं अगल-बग़ल को। ज़रा सा स्नेह, ज़रा सा अनुराग, ज़रा मोह-मदिर कटाक्ष—इन्हीं छोटे-छोटे घूस से वशीभूत अनुग्रही प्रार्थियों को, चतुराई से काम निकालते हैं; और इसे ही कहा जाता है सामाजिकता। जो जितना अन्तर्मुखी है, वही है उतना सामाजिक; जिस की प्रताड़ना जितनी तीखी है वह है उतनी बुद्धमति। तथाकथित सभ्य समाज में जो है सरल, सही, आडम्बरहीन, निःस्पृह उस का उड़ाया जाता है मज़ाक़। श्रद्धा, अनुराग, स्नेह, प्रेम—इस का बाज़ार में कोई मोल नहीं है। निस्स्वार्थ मित्रता, महत् आत्मत्याग, अकृत्रिम सेवा, अकृपण दाक्षिण्य—यह है बेवक़ूफ़ी का पर्याय। जीवन के इन सर्वनाशी विकारों के हाथ से छुटकारा पाने की खातिर अगर कोई सभी सुख-सुविधा छोड़ कर निकल पड़ता है अलक्ष्य, उसे हम कहते हैं पागल। वह हमारे मज़ाक़ और उपेक्षा का पात्र बन जाता है।

हम डाकबंगले के बरामदे में आ गये। वर्षा की दो-चार बूँदें हम लोगों के

चेहरों पर पड़ रही थीं। रात के ग्यारह बजे हैं। थकावट खूब थी और कुछ न सोच-विचार कर खटिया पर पड़ कर कम्बल से मुँह ढँक लिया। बत्ती हाथ में ले कर, दरवाज़ा बन्द कर माया चली गयीं पार्टीशन के पार। अनुमान से लगा कि वे पत्र लिखने बैठ गयी हैं। वैद्यनाथ का दर्शन करने के बाद से उन की उद्दीपना बढ़ गयी है।

कब वर्षा हरहरा कर उतरी, पता नहीं। सुबह नींद टूटी तो देखा, आकाश पर बदली छायी है। अविश्रान्त वर्षा हो रही है। सवेरे उठ कर निकल चलने का इरादा था।

वर्षा ज़रा कम हुई, मगर बन्द नहीं। छाता-बरसाती कुछ भी अपने पास नहीं है। ठण्ड बढ़ गयी है खूब। अभी इस समय सवेरे के साढ़े छह बजे हैं, सात बजे बस छूटेगी। इस लिए मदनलाल की आरज़ू-मिन्नत के बावजूद इस वर्षा में हम लोगों को चल देना पड़ा। चौकीदार और कुली दोनों साथ चले।

सामने मैदान और झाड़-झंखाड़ की बग़ल से गुज़र कर जब बस-स्टैण्ड पर पहुँचे तब गाड़ी छूटने में दस मिनट बाक़ी थे। उन लोगों ने माल के ऊपर तिरपाल ढँक दिया। हम गाड़ी में जा बैठे।

[४]

हिमाचल प्रदेश में अब आ घुसा। बैजनाथ छोड़ते ही कांगड़ा उपत्यका शेष हो गयी। हिमाचल प्रदेश आरम्भ हुआ योगेन्दरनगर इलाक़े से। एक शिखर पार कर उस का मेरु पकड़ नये राज्य की तरफ़ धीरे-धीरे बढ़ता चला। बदली के बादल के फाँकों में अब आकाश पर नीली आभा देखी।

वर्षा और शरत् में घुला-मिला पहाड़ी इलाक़ा। सवेरे की मुलायम धूप के भीतर से झाँक रही है वर्षा का झालर। इन्द्रधनुष की रंगीन झिलमिली। उत्तर से दक्षिण है हमारी गति। पीछे खड़ी रही धवलाधार की बर्फ़ीली चोटी—महाकाल के अतन्द्र प्रहरी के जैसा। काले बादलों का झकोरा लग रहा है हम लोगों के चेहरों पर। घने कुन्तल वाली रमणी की भीगी लटें जैसे हमारे चेहरे को छू-छू जाती हैं। प्रकृति के इस परिहास का समाचार पंछियों को मिला है। वे इस धूप-छाया के खेल में भी गुहार मचाते हुए राह में निकल पड़े हैं—हिमालयव्यापी विराट् शरत् अभिनन्दन सभा के लिए।

वनों की छाया की बग़ल से नदियाँ उतरती जा रही हैं तराइयों में—जिधर अभी भी देवदार के वनों में छाया सिहर रही है; वहाँ के दैनिक कार्य अभी भी

निद्रित हैं, हमारी गाड़ी चढ़ाई-उतराई पार कर क्रमशः ऊपर की ओर ही चल रही है। ठण्डी हवा सुबह-सुबह ही चल रही थी—पलकों में बसी नींद—विगत रात की थकावट के बाद की ख़ुमारी की तरह।

हिमालय अपने अन्तःपुर का द्वार खोल रहा है धीरे-धीरे—हम सभी के दृष्टि-पथ में। हम उस पथ पर चले जा रहे हैं जो उस का गहनलोक है, जहाँ विपाशा नदी के किनारे एकान्त के शिलासन पर आसीन चिरवैरागी भारत अपने जय की माला में बीजमन्त्र का पाठ कर रहा है। जरा, जन्म और जातक का अतीत है जो भारत, जिस के क्रमागत युगों के इतिहास का प्रत्येक पर्व प्रति रुद्राक्ष के दाने जप के साथ फिरते जा रहे हैं। अब कहीं आकाश ने अपना निर्मल नील शोभा का विस्तार किया है। उपत्यका पर उतर आये हैं रंगीन पंछी, जो सचराचर समतल भारत में दिखाई नहीं देते।

भारत के मानचित्र में जटिलता नज़र आयी है हिमाचल प्रदेश की उलझी-उलझी सीमाओं से। स्वाधीन भारत इस प्रदेश के लिए नया है, अभी भी इस का शैशव बीता नहीं है। मगर इस के मर्म-मर्म में आ पैठा है पंजाब। एक इलाक़ा दूसरे इलाक़े से कटा हुआ है। दोनों में भूमिगत एकता नहीं। कुलू उपत्यका है पंजाब के अन्तर्गत, किन्तु हिमाचल के एक हिस्से से पंजाब के भीतर बिना गये कुलू पहुँचा नहीं जा सकता। चम्बा और डलहौज़ी है हिमाचल के अन्तर्गत, मगर डलहौज़ी आज भी न जाने क्यों है पंजाब के शासन में, इस का उत्तर कोई देना नहीं चाहता। फिर भी इस की एक कैफ़ियत सम्प्रति मिली है। वह है निश्चय ही उसी पुराने ज़माने की। पठान, तातार और मुग़लों से राजपूताना कभी भी पूरा-पूरा हाथ मिला नहीं पाया। इस के अलावा था राजस्थानियों का आपसी कलह। कोई किसी का अधिकार स्वीकार नहीं करता था। अदम्य साहसिक वीर्यवत्ता और महत् आत्मत्याग से राजपूताना का इतिहास जैसा गौरवगर्वित है—अन्तर्संघर्ष, गृहकलह, स्वजातिद्रोहिता, विश्वासघातकता और आत्मघाती अदूरदर्शिता से भी वह इतिहास कलंक कालिमापूर्ण है। इन में जो थे बहुत से निर्विरोध और स्वजन-सम्पन्न, वे अपने धन-रत्न, आत्मीय परिवार और लोक-लश्कर ले कर एक-एक कर चले गये हिमालय की तरफ़। वहाँ जा कर उन्होंने पहाड़ी आदिवासियों से हाथ मिलाया और एक हिस्से में अपना आधिपत्य विस्तार करते रहे। पठान और मुग़ल बादशाहों ने इन की ओर इतना ध्यान नहीं दिया, इस का एक कारण था, उतने दिनों में मुसलमान शासन समतल भू-भाग में जितना आधिपत्य कर लिया था, उतने को ही वे बिना मोल का लाभ मान बैठे थे। जो भी हो, राजपूतों ने हिमालय में पहुँच कर धीरे-धीरे बीस-पचीस राज्य को जन्म दिया और पंजाबी राज्यों के साथ एक प्रकार से सद्भाव रख कर अगल-बग़ल साँस लेता रहा। विराट् एक-एक पर्वत और उस से जुड़े इलाक़े आपस में बँटते गये। दोनों पक्षों का यह समुदय पहाड़ी इलाक़े और राजपूताना का उत्तर, उत्तर-पूर्व, उत्तर-पश्चिम और पश्चिम—यह विराट्

भू-भाग अभी उस दिन तक अखण्ड और अविभाज्य पंजाब के अन्तर्गत था। मगर भारत की स्वाधीनता के साथ ही समग्र पंजाब प्रकट रूप में चार भागों में विभक्त हो गया। पश्चिम पंजाब चला गया पाकिस्तान में और भारत के अधीन हुए तीनों हिस्से। एक पूर्वी पंजाब, एक हुआ पेप्सू और तीसरा हो गया हिमाचल प्रदेश। पूर्वी पंजाब और पेप्सू हुआ हिन्दू-सिख प्रधान, हिमाचल प्रदेश हुआ ब्राह्मण-क्षत्रिय राजपूत प्रधान। इसी के साथ हिमाचल प्रदेश में बहुत सारे पहाड़ी सम्प्रदाय आ मिले हैं। इस प्रदेश में समतल भू-भाग बिलकुल ही नहीं हैं, ऐसा कहा जा सकता है और यह प्रमुख रूप से उत्तर और दक्षिण में फैला है। इस पहाड़ी प्रदेश के भीतर से पंजाब की तीन नदियाँ बहती हैं—शतद्रू, विपाशा और इरावती। उत्तर में इरावती, दक्षिण में शतद्रू, मध्य भू-भाग में प्रवाहित है विपाशा। हम विपाशा की ओर बढ़ रहे थे। वन्य शतद्रू को छोड़ आया एक दिन किन्नर और बुशाहर राज्य में।

छोटी-छोटी बस्तियाँ पार कर रहा हूँ। कोई ऊँचाई पर है, कोई बहुत नीचे। उन का दुःख-सुख जान नहीं पाता हूँ और न ही उन की गृहस्थी का इतिहास। पैदल है पर्यटन, वरना सिर्फ़ चित्र देखते जाओ—जीवन-दर्शन नहीं हो पाता। पृथ्वी है उन के लिए जो चलते हुए हर क़दम गिन सकें। इनसानों के पास वे जा बैठे हैं, अतिथि हुए हैं, मन मिलाया है, हँसने-रोने में, व्यथा-वेदना में हिस्सा लिया है। अतिथि को भगवान् माना है तब, जब उस ने सेवा की है, ख़ुशियों का चिराग़ ऊँचा उठाया है, शोक में सान्त्वना दी है, आँखों का आँसू पोंछ लिया है। वह भगवान् है, क्योंकि वह निस्स्वार्थ है, वह निरपेक्ष है। पर्यटक ही होते हैं तीर्थ-पथिक, जब वह विशेष लक्ष्य की ओर में बढ़ता है। जो व्यक्ति एक तीर्थ के बाद दूसरा तीर्थ पैदल चल कर पर्यटन करता है, उसे हम कहते हैं, पुण्यात्मा। उस के पैरों में है लगी मात्र तीर्थ-धूल; यही नहीं, उस धूल में लिपटा रहता है मानव-इतिहास—कष्टों की, तूफ़ानों की, संकटों की, दुःसह की इतिवृत्ति; उसी धूल में मिलती है, छोटी-छोटी मानवता, छोटे-छोटे महत्त्व और हृदय का अनुराग, आत्मोपलब्धि और दिव्य ज्ञान का विस्मयजनक आविष्कार। पृथ्वी की प्रदक्षिणा कर के जिस पाण्डित्य को अर्जित किया जाता है, वह है भीख की झोली—उलट देने से ही वह खाली हो जाती है। मगर अन्तर से जो कुछ देखा गया है, क़दम-ब-क़दम चलते हुए राहों के दोनों किनारे पर—यही तो है परम दर्शन, दरिद्र-दीन मज़दूरों के घरों में विदुर का अन्नग्रहण के समय चारों ओर के श्वास-प्रश्वासों के भीतर से जो कुछ जान सका हूँ, वही तो है परम ज्ञान। बिन्दु में सिन्धु देखा हम ने, जीवों में देखा है शिव, नर में नारायण। धर्म-धर्मान्धता की बात यह नहीं है, है उपलब्धि की बात। वस्तु को सत्य मानते हैं, तभी वस्तु में पैठ कर विशेष उपलब्धि में पहुँचना चाहता हूँ। माटी की मूरत है सरस्वती, मगर उसे केन्द्र बना कर ज्ञान और विद्या की उपलब्धि होती है, ऐश्वर्य को प्राप्त करते हैं—लक्ष्मी रहती है हमारी कल्पना में। ऋषियों का दर्शन करता हूँ—अनुभव करता हूँ दर्शन तत्त्व का। मनुष्य के अन्तर्निहित

दैव सत्ता के सम्पर्क में आता है, तभी ईश्वर की कल्पना कर सकता हूँ। वस्तु को धारण करता हूँ, धारण करता हूँ, आकार को—उस के मध्य से पहुँचना चाहता हूँ विशेष लक्ष्य पर। जानने को ही ज्ञान नहीं कहा जाता, उपलब्ध सत्य है ज्ञान।

मनुष्यों को छोड़ता जा रहा हूँ पीछे, इसी से क़दम-क़दम पर वंचित बोध करता हूँ। जानने आया हूँ हिमालय को, मनुष्यों को जाना नहीं गया। इस चीड़ वन के नीचे आसन जमाओ या उस आम्र वन के वहाँ, जहाँ चट्टानों का जमघट के अन्दर से उतर गया है गिरिप्रपात—वहाँ आसन जमा कर पड़े रहो शेष जीवन तक; देख लो, हिमालय की जीवन-धारा। एक बच्चा ठिठक कर चट्टान के पास खड़ा हो गया है, देख लो उस की आँखों में हिमालय का परम विस्मय। लकड़हारा बढ़ा ही चला जा रहा है सिर पर बोझ लिये, देख लो अरण्य का आश्चर्य—रहस्य। एक भोली-भाली पहाड़ी लड़की यौवन साम्राज्ञी की तरह स्थिर हो कर खड़ी है—उस के मध्य से हिमालय के अनन्त सौन्दर्य सम्भार का आविष्कार कर लो। अनार और सेब के वनों की निथरी लाली जैसे आ-आ कर उन के गालों और ग्रीवाओं, ललाटों पर अपनी अधर का स्पर्श छोड़ती जा रही है। मगर क्या जीवन-क्रम उन का पिछड़ा हुआ है। सीमा कितनी है या कितनी है दुनिया की ज़रूरत। एक-एक पत्थरों के चट्टान सजा लिया, बन गयी दीवार, स्लेटी पत्थरों से छा लिया छाजन, माटी की हँडिया, लोहे के बरतन, कम्बलों की सेज, बेकार पेड़ों की छाल से बनी रस्सी की चारपाई, दो-एक टोकरी में खाना-दाना, पोटली में भेली-गुड़, हँड़िया में नमक, लोहे के गगरी में पीने का पानी। इसी के बीच सदा की दरिद्री राजकुमारी की गृहस्थी, इस में होता है सर्वहारे राजकुमारों का जन्म। एक टुकड़ा खेत, दो-तीन गाय-भैंसें, पाँच-सात भेड़ें, एक पालतू कुत्ता, दो-चार मुर्ग़ियाँ, दो-एक पाले हुए तीतर—ये भी मिले हुए हैं उन्हीं में। सुखी है वही परिवार, ऊँची भूमि पर हैं, जिन के खेत-खलिहान—जहाँ बाढ़ का भय नहीं, नाश की आशंका नहीं। जो पहाड़ के नीचे हैं रहते, रोज़ ही सन्त्रास में उन के हैं दिन कटते। यहाँ सड़क के किनारे कोई किये बैठा है दुकान—छोटी मोटी—वे, जो उन में ज़रा सम्पन्न हैं। चने की बरफ़ी का एक थाल—उस पर मँडरा रहे हैं अनगिनत रंगबिरंगे विषैले पतंगे या मिट्टी के ढक्कन में कई सूखे पेड़े, जिस का रस चूस गये हैं पतंगे। कड़ाही में भैंस का दूध उबाल रही घर में बैठी कजरारे नयन वाली घर की बहू, भावे के परतों पर कुन्दी चला रही है। उस से बनेगा कलाकन्द। पाली बिल्ली बड़े चैन से पड़ी है बहू के क़दमों से अपना शरीर सटा कर—वे दोनों पैर मेंहदी से रंगे हुए हैं। जीवन कर्म यहाँ है मन्थर, काम-काज की हाय-हाय कहीं भी नहीं। शान्त, एकान्तिक हलचल से हीन पहाड़ी जीवन—असंयतता कहीं भी नजर नहीं आयी। यहाँ लालच के पीछे पागल हो आदमी भागता नहीं, तेज़ गति के द्वारा किसी की साँस फूलती नहीं। धान, गेहूँ और जौ के खेत दीख रहे हैं, कहीं है एक टुकड़ा चाय बगान, कहीं हो रही है आलू और ईख की खेती। इधर है खन्दक, दूसरी तरफ़ ऊँची भूमि। दूर पर है उत्तुंग धवलाधार—उस की गोद

के निकट है शिशु पहाड़ों का समूह।

हमारी गाड़ी चली जा रही है दूर और दूर। यह गाड़ी दिन भर में दो बार आती-जाती है। पहाड़ों के निकट यही है आधुनिक सभ्यता का वाहक। विचित्र वस्तुएँ कभी-कभार पहाड़ियों के पास ला पहुँचाती हैं, वे ही सब मनोहारी वस्तुएँ गृहस्थों की निगाहों में अचम्भा भर देती हैं। यही एकमात्र पथ है—यहाँ के परे सैकड़ों मीलों में किसी दूसरे प्रकार का यान्त्रिक यान-वाहन नहीं है। इसी वजह से सभ्यता का स्वाद वे नहीं पाते; यान्त्रिक कुशलता द्वारा उत्पादन उन तक नहीं पहुँचता। हाट लगती है उन की किसी-किसी पहाड़ी गाँवों में, उसी हाट में फल खरीदने महाजन आते हैं, वही फल समतल में चालान होता है। इसी हाट में बिकती हैं जानवर और सरीसृपों की छालें, पीतल अथवा चाँदी की ज़ेवरें, विभिन्न प्रकार की औषधियाँ, जड़मूल, हड्डियाँ या रंगीन पत्थरों की मालाएँ, लोहे के विविध अस्त्र। भेड़ों के बालों के टोप—या मखमल या रुई के कुरते, टीन से मढ़े आईने, काठ के कंघे, लाल सिन्दूर और अलता। वे शिव की बग़ल में शक्ति को बैठाते हैं, राम की बग़ल में सीता, विष्णु के साथ लक्ष्मी को। सर्वापेक्षा पूजनीय हैं संहाररूपिणी महाकाली। जानवर और पंछी के मांस से उन्हें अरुचि नहीं है। वे सर्वप्रधान उत्सव के रूप में दुर्गापूजा में दशमी के दिन दशहरा के रूप में मनाते हैं। उस दिन समग्र हिमाचल प्रदेश के प्रधान पाँच जनपद—मण्डी, चम्बा, माहासू, शिरमूर और नया जुड़ने वाला विलासपुर—ये आनन्द और खुशियों में कर्म मुखर हो उठते हैं और खूब नाचते-गाते हैं।

विपाशा नदी में उतरता जा रहा हूँ। उस पार के पहाड़ की गोद-गोद में पक्के मकान दीख रहे हैं। छोटे-छोटे घर, छोटे-छोटे स्वर्ग। इधर-उधर राहें चली गयी हैं—कहाँ गयी हैं, कभी इस का पता नहीं चला। हम गरदन बढ़ा कर सब कुछ उत्सुक आँखों से देख रहे हैं। हिमालय के ऐसे जटिल लोक में आ पहुँचा हूँ—लगता है, एक हज़ार बरस पीछे चला गया हूँ। सभ्यता का मेला लगा है समस्त संसार में, विज्ञान की विजय-यात्रा चन्द्रलोक पर जाने के प्रयत्न में प्रस्तुत हो रहा है, दस हज़ार मील दूर का आदमी आँखों के सामने खड़े हो कर बातें करता है। परमाणु और हाइड्रोजन बम, पृथ्वी की वायु, बरखा, आबहवा और शीत-ताप को परिवर्तित कर देता है—ये खबरें यहाँ कोई जानता नहीं। मगर यह भूल हम लोगों की ही है। इस विज्ञान की कृपा से मनुष्य गौरी शृंग की चोटी पर चढ़ कर साँस ले सका है, निश्चित मृत्यु का परिहार किया है, सुमेरु प्रदेश में सभ्यता का स्वाद पहुँचा दिया है—इसी लिए यहाँ भी उस दुनिया भर की आधुनिकता की बूँद बिखर कर यहाँ गिरे कैसे नहीं। हम उद्ग्रीव हो कर देख रहे थे, शहर आ रहा है।

गाड़ी उतरी उतराई पथ पर। एक मोड़ पार करते ही मिला विपाशा नदी का पुल। बहुत नीचे विपाशा का गेरुआ स्रोत भरी उमंग में आवर्त की रचना कर रहा

है। देखने पर डर लगता है। हमारी गाड़ी पुल के ऊपर चढ़ी। यह वही एक डिज़ाइन का पुल है—कैण्टीलीवर ब्रिज। दोनों तरफ़ पर्वत की दीवार से लोहे के मोटे तारों द्वारा लटका हुआ। यह सुरक्षित है इसी तार के कारण। धरन में इस की भित्ति नहीं होती, क्योंकि पहाड़ी स्रोतों के तेज़ धक्के भित्ति तोड़ देते हैं। ऐसे पुल हिमालय में अनगिनत हैं। तिस्ता में, रंगी में, लक्ष्मण झूला में, विष्णुगंगा में, इरावती में—और भी बहुत सारी जगहों में।

नदी पार कर हमारी मोटर-बस मण्डी के बड़े शहर में पहुँची—शहर अभी ज़रा दूर है। इधर-उधर बड़े-बड़े पहाड़ों के प्राचीर खड़े हैं। बृहत्तर की तरफ़ देखने पर मानवीय कीर्ति अतिक्षुद्र लगती है। चारों तरफ़ के इस विराट् परिदृश्य में मण्डी शहर खड़ा है। एक अजाने से दूसरे अजाने में आ पहुँचा।

सामने है चतुष्कोण वेष्टित क्लॉकटावर। साढ़े नौ बज चुके हैं। मगर ऊपर की ओर से मुड़ा यह गुम्बज मण्डी का पहला द्वार होने का गौरव पा बैठा है। हम आये हैं उत्तर हिमालय के प्रान्त में, जहाँ तिब्बती स्थापत्य की प्रकृति स्पर्श कर चुकी है, पश्चिमी तिब्बत का प्रभाव यहाँ आ पहुँचा है भारतीय मिज़ाज में। जैसे उत्तर कुमायूँ में, सिक्किम-भूटान में, दार्जिलिंग-कालिंगपोंग में, पूरब और उत्तर कश्मीर में और उत्तर-पूर्व पंजाब में। नेपाल इसी स्थापत्य से आदर्शगत रूप में अगल-बग़ल जुड़ा है। यहाँ तक कि कश्मीर को गंगा के किनारे का वह छोटा सा पशुपतिनाथ का मन्दिर भी इस बनावट को धारण किये है। समग्र उत्तर हिमालय में तिब्बती और मंगोल स्थापत्य का प्रभाव बहुत है।

शहर और बाज़ार भीड़ से भरे। समतल राह-घाटों पर धूप की झिलमिली। विभिन्न पथ भिन्न-भिन्न दिशा की ओर चले गये हैं। डाक बंगला यहाँ से डेढ़-एक मील दूर पर है, इस लिए हमारे लिए एक अच्छा होटल ज़रूरी है। क़ुली के सिर पर असबाब रख कर हम लोगों ने एक ताँगा ठीक किया।

एक जगह ताँगा रोक कर मिसेज़ गुप्ता ने अपना वैनेटी बैग खोल कर कल रात जो पत्र लिखा था उसे अपने हाथों लेटरबाक्स में डाल आयीं। फिर आ कर, सँभल कर बैठने के बाद उन्होंने कहा—रात जग कर दो पन्नों में आप के बारे में ही लिखा, मगर असली सवाल ही नहीं किया कि वे दिल्ली आ रहे हैं कब? इस में शक नहीं कि मैं बड़ी भाग्यवती हूँ, ऐसा पति बहुतों को नहीं मिलता।

पति प्रसंग में उन्होंने इतना गौरव बोध किया कि इस से पुरुष मात्र को आनन्द मिलेगा। इस भ्रमण के ठीक एक वर्ष बाद दिल्ली में जिस दिन उन के नौजवान पति मि॰ गुप्ता से पहली बार जान-पहचान हुई उस दिन यह अनुभव किया कि श्रीमती गुप्ता का कथन अक्षरशः सत्य था।

अचानक अहसास होता है कि तिब्बत ने मण्डी को छू लिया। सिर्फ़ वह चीनी-तिब्बती स्थापत्य का नमूना क्लॉकटावर ही नहीं, उस ने बहुत सारे देव-मन्दिरों को भी

छू लिया है। प्रायः दीख पड़ता है— वही ड्रागन की मूर्ति, वे ही तीखे दाँत और फटे हुए जबड़े, दोनों तरफ़ दो डैने। सिंह के सिर पर के बालों का गुच्छा, बाघों के नाखून, मगरमच्छ की पूँछ, गरुड़ के डैने, मानूर की भंगिमा। नशों में खूब तेजी। पूरा गठन, आकार-प्रकार—सब कुछ जैसे भारत के बाहर का सा। लकड़ियों पर अचरज भरा कारूकार्य—उस की रूप-सुषमा, उस की सुसंगति-छन्द—दिन भर देखने के बाद भी मन भरता नहीं। इस की छुअन से बच नहीं सके बहुत सारे हिन्दू मन्दिर। उखीमठ, त्रियुगी नारायण, तुंगनाथ, जोशीमठ, बदरीनाथ—प्रायः सम्पूर्ण उत्तर गढ़वाल में देख लीजिए। सम्पूर्ण गढ़वाल में इस के अलावा और कुछ है ही नहीं। सिक्किम और भूटान में भी ऐसा। अलमोड़ा, नैनीताल के अनेक इलाक़े भी इस प्रभाव से बच नहीं सके।

अजब वेश-भूषा में एक लामा सड़क पर से गुज़र रहा है। सौम्य दीखने वाले लामा को देख कर श्रद्धा पैदा होती है। वे आ कर अनायास इस भूखण्ड में मिल गये हैं। बहुत से लामा वंशानुक्रम से भारत में वास करते हैं, जैसे बहुत से चीनी। नैनीताल इलाक़े में किसी-किसी पहाड़ी भूखण्डों में एकदल चीनियों की बहुत सी जगह-ज़मीनें थीं—पहाड़ों में किसी-किसी को ज़मींदारी भी थी—आज वे हैं, या नहीं, पता नहीं। इस के अतिरिक्त हूण, अरब, तातार, यहाँ तक कि चंगेज़खाँ के वंश-परम्परा के—आज भी हैं भारत में। उस दिन भी देख आया हूँ पश्चिम राजस्थान की मरुभूमि में। दुनिया में और कहीं भारत के जैसी जाति-विविधता शायद ही कहीं हो—अमरीका, आस्ट्रेलिया, अफ्रीका—कहीं भी नहीं।

आखिर में जैसे-तैसे एक होटल मिला। नाम ठीक याद नहीं है, शायद 'स्वराज्य होटल' या ऐसा ही कुछ। होटल के नीचे ही थी बड़ी सड़क, यही है राजपथ—शहर को घेरे है। पूरब की सड़क के उस पार मैदान है, उस के पार एक पहाड़ की ढूह में सरकारी दफ़्तर आदि। यह पहले थी राजधानी, अब है यह ज़िला-शहर। भारत सरकार के डिप्टी-कमिश्नर ने सामन्त राजा से दखल ले लिया है। राजा हैं, वे प्रीवीपर्स भी पाते हैं। मगर आज उन के दखल में सेना अथवा अस्त्र-शस्त्र कुछ नहीं है। लगता है, दो-चार बॉडीगार्ड उन के होंगे, या हो सकता है पंछी मारने वाली एकाध बन्दूक़ उन के पास होगी—इस का पता मुझे ठीक-ठीक नहीं है। होटल में सामान रखवा कर हम खाने-पीने की चीज़ों की तलाश में निकल पड़े। दूध, मिठाइयाँ और सिंघाड़े की दुकान मिली। कहना पड़ता है कि भूख और अध्यवसाय—दोनों हम में खूब हैं। आहार का परिमाण देख कर, हो सकता है, स्वयं दुकानदार भी टेढ़ी आँखों से देखने लगे। भोजन के बाद पान की दुकान देख कर खुशी हुई। मायादेवी पान नहीं खातीं, मगर नये देश के साथ स्वर मिलाये बिना काम कैसे चलेगा? इस के बाद हमारे पास समय कम था। वहाँ बहुत बड़ा स्कूल और कॉलेज है—सभी कुछ को एक-एक कर के

देखना जरूरी है। वे फल-फूल की प्रेमी हैं, इस लिए पहाड़ी फल-मेवे एक टोकरी में खरीद लिये। घूम-घूम कर देखा गया—यह टोला, वह महल्ला। सँकरी-सँकरी गन्दी गलियाँ, उसी में रहते हैं राजपूत नर-नारी। नारियाँ गोरी और पुरुष साँवले, सिर पर लाल पाग, पहनावा चूड़ीदार पाजामा। स्त्रियों का पहनावा साधारणतया साड़ियाँ नहीं हैं—पाजामा, पंजाबी और दुपट्टा। विगत कल तक यहाँ बहुत बड़ा हाट लगा था, आज भी उस उठे हुए हाट की ढेरों चीजें बिखरी पड़ी हैं। घूमते हुए हम निकल गये बहुत दूर। कुछ आगे बढ़ने पर दो नदियों का संगम-स्थल मिलता है। जिन्होंने देखा है गढ़वाल का देवप्रयाग और रुद्रप्रयाग—जहाँ अलकनन्दा मिली है आ कर नीलधारा में, या मन्दाकिनी आ मिली है अलकनन्दा में—वे सहज में इस संगम की कल्पना कर सकते हैं। एक नदी है विपाशा, दूसरी का नाम याद नहीं। दूसरी आयी है दक्षिण से उत्तर—उसी के मार्ग से दक्षिण की तरफ़ जाने पर 'सुकेत' तथा सुन्दरनगर की विशाल उपत्यका मिलेगी। यह मार्ग यहाँ से भी चला गया है दक्षिण में—शतद्रू नदी का अतिक्रम करता है बिलासपुर राज्य। आधुनिक बिलासपुर है हिमाचल प्रदेश के अन्तर्गत।

जंगलों से घिरी तराई—उसी के बीच महाकाली का मन्दिर; वहाँ से पहाड़-पहाड़ से शक्ति का आह्वान हो रहा है, वन-अरण्य में उन्मादिनी विपाशा की लहरों में। एक तरफ़ त्रिलोकीनाथ, उधर शहर में भूतनाथ। यह बहुत प्राचीन हैं। और भी हैं बहुत सारे देवस्थान, हैं मूर्तियाँ, हैं विचित्र स्थापत्य—मगर उन की उस अभिव्यक्ति के साथ अपनी प्रकृति का मेल बैठा नहीं पा रहा हूँ। ये वही तिब्बती-चीनी-मंगोलीय नहीं हैं, ये शुरू से अन्त तक बहुगोत्रीय हैं। इन्हें पहले कभी नहीं देखा, ये भारत में और कहीं नहीं हैं। सिक्किम-भूटान में नहीं, गढ़वाल और नेपाल में उन्हें देखा नहीं, उत्तर कुमायूँ-किन्नर देश में इस धारणा के नहीं हैं—ये नये हैं। इन से अतिप्राचीनता का आभास मिलता है—जब नदी के तीरों पर बैठ कर आदमी ने जप-तप करना सीखा, चट्टानों की छाया छोड़ जब मन्दिर बनाने की कल्पना कर सका—हो सकता है, ये उसी युग के हैं। उस जमाने के भाष्कार्य का जो भाष्य होता, जो व्याख्या वे कर गये परवर्ती काल में वही भाष्कर्य अपने अर्थ में ही खो जाता। किसी कारीगर का नाम नहीं है कहीं भी, कोई कहीं अपना हस्ताक्षर नहीं छोड़ गया। अजन्ता में खड़े हो कर देख चुका हूँ बुद्ध की शयनपरिनिर्वाण मूर्ति, बम्बई में समुद्रगर्भ में हस्ती गुफ़ा की भी मूर्ति, नेपाल के स्वयंभू, सौराष्ट्र में सोमनाथ, पूर्वलोक में कोणार्क—कहीं भी कोई कारीगर अपना नाम नहीं लिख गया। बहुत से स्थापत्यों ने अपना अर्थ खो दिया है मगर हरेक खड़ा है विस्मय-बोधक बना हुआ। मण्डी में आ कर अचम्भा होता है, यह बिलकुल नया है, इन के जाति-गोत्र समतल भारत में नजर ही नहीं आते। दुनिया के किसी देश के सांस्कृतिक इतिहास में मनुष्य का ऐसा आत्मनिवेदन नहीं है; आनन्द और सौन्दर्यबोध की दिशा में बृहत्तर मानवता को अनुप्राणित करने का ऐसा देश भर में आयोजन कहीं भी नहीं है, जनता के उद्दीपन और आनन्दोपलब्धि के प्रति वे

उत्सर्गित हैं।

अपरिसीम कौतूहल संजो कर कई घण्टे हम लोग राहों में घूमते रहे। इस में मिली मात्र एक धोबी की दुकान अर्थात् डाइनिंग-क्लीयिंग। वहाँ सिर्फ़ तीन घण्टे के क़रार पर कई कपड़े धोने को दिये गये। दुकानदार ने अपना क़रार पूरा किया था। इस के बाद मध्याह्न काल पार कर होटल में आ ठहरा। हर जगह स्नान की सुव्यवस्था थी। ऊपर आ कर सचकित देखा, कमरा खुला हुआ है। हम जैसे उड़ गये। जाते समय जल्दी में सिटकिनी लगाना भूल गया था। अन्दर घुसते ही सब से पहली नजर गयी तिपाई पर पड़े रूमाल में बँधे श्रीमती गुप्ता के रुपयों के तोड़े पर, उसे वे वैनिटी बैग में रखना भूल गयी थीं और भी कई क़ीमती चीजें थीं यहाँ-वहाँ पड़ी हुईं।

पीछे आ खड़ा हुआ होटल वाला। उस ने कहा, हम दरवाज़ा बन्द कर के नहीं गये थे, चिन्ता की कोई बात नहीं—वह इसी कमरे की पहरेदारी करता रहा। फिर भी बात यह है कि यहाँ किसी का कुछ खोता नहीं।

यहाँ का भोजनादि बंगाली परिपाटी से कुछ-कुछ मिलता-जुलता है, इस विषय में पूछताछ करने पर नौजवान मालिक ने कहा, यहाँ का भोजन ऐसा ही है, मगर डालडा से बनी चीजें यहाँ का भद्र समाज छूता भी नहीं। डालडा खा कर पहाड़ी लोग अपना स्वास्थ्य नष्ट करने को तैयार नहीं हैं। उसे खाने से अंतड़ियाँ खराब हो जाती हैं और यकृत् बिगड़ जाता है। समय बीत रहा है। हमारे लौटने का वक़्त होता जा रहा है। हमारी गाड़ी छूटेगी अपराह्न में।

मण्डी तक भीड़ रहती है। कारण शहर का बड़ा होना है और शिमला के बाद यह राजधानी होने की अपेक्षा रखता है। इस शहर से विभिन्न पहाड़ों और उपत्यकाओं में सड़कें चली गयी हैं। पूरब की तरफ़ विपाशा नदी का किनारा पकड़ कर विख्यात लारजी उपत्यका की ओर जाया जा सकता है। यह लारजी का पथ पहले नहीं था। यह सिर्फ़ अगम्य ही नहीं असम्भव भी था। एक तरफ़ है छह हज़ार फ़ुट ऊँचा पहाड़—और उसी मृण्मयताहीन पथरीला पहाड़ अत्यन्त संकटजनक परिस्थिति में झुका होता विपाशा के स्रोतों के ऊपर। यह दृश्य बड़ा आश्चर्यचकित करने वाला है, प्रकृति के इस अद्भुत स्वरूप में प्रवेश करने का आदमी को साहस ही नहीं मिलता था। उस दिन लारजी के इस विपाशा-मार्ग से पैदल कुलू उपत्यका जाना भी था कष्टकर। उसी कारण कुलू जाने के लिए योगेन्दरनगर से गुमा और घाटीसानी हो कर जाना ही था अपेक्षाकृत सहजसाध्य। हिमालय यहाँ मानो अपनी आदिम अभिव्यक्ति की तरफ़ पर्यटकों को दृष्टि आकृष्ट करता है।

हमारी गाड़ी छूटी अपराह्न में यथासमय। कुलू की ख्याति आजकल कम नहीं है। बहुतों का कहना है, कश्मीर के बाद ही है कुलू। असम के उत्तर-पूर्व कोण में मिसमी का अजाना अज्ञातनामालोक से आगे जहाँ विराटनामचा बारोया की सीमा है, चमलहरी के नीचे दक्षिण-पूर्व में जहाँ भूटान का अनाविष्कृत एवं मानव-चिह्नहीन हिमालय

का रहस्यगर्भ है, शतद्रू जहाँ राह काटती है। शिपकी का गिरि संकट रंगचूंग इलाक़े में—जो सड़क चली गयी है किन्नर लोक को पीछे छोड़ 'धवलगिरि' के पहाड़ों में अथवा उत्तर नेपाल का जगत् प्रसिद्ध अरुणनद जिस तरफ़ से बीस हज़ार फ़ुट ऊँची चट्टानों को काटती उतर आयी है—लारजी और कुलू का पथ उस प्रकार का अति प्राकृतिक विस्मय से भरपूर है। हम तन्मय हो गये थे।

लगता है, स्थान-काल का प्रभाव मन पर पड़ गया था। जिस भारतवर्ष में रह आया हूँ इतने दिनों से, यहाँ उस भारतवर्ष की छाया नहीं पड़ी थी। अति प्राचीन की इंगित मिलती है इस सर्वकालिक, और सर्वलोक विच्छिन्न हिमालय के अन्तःपुर में। अनन्त सदियों की योग-तन्द्रा में जैसे उस की दृष्टि निमीलित है—चेहरे पर अनादि-अनन्त युगों की क्षमायुक्त स्निग्ध शान्त प्रसन्नता है। मस्तक झुक जाता है उस की ओर देखने से। इस ज़माने की रुचि लाया हूँ साथ में, ले कर आया हूँ इस युग के विज्ञान का अहंकार, ले आया हूँ आधुनिक शिक्षा और सभ्यता की आवर्जना के कुण्ड से अधः-पतित प्रकृति-विकार, लाया हूँ जीवन की बहुत सारी मलिनता का धिक्कार—मगर उस प्राचीन अचलायतन ऋषि का ध्यान भंग नहीं हो पा रहा है। विपाशा की चट्टानों के नीचे, प्राचीन मन्दिर की सीढ़ियों पर, देवदार के वनों में, विशालकाय पाषाणी भास्कर्य में, प्राग्वैदिक भारत के छाया-घनत्वपूर्ण अतीन्द्रिय चेतना में देख लिया है उस महायोगी का चकित पदसंचार, ग्रहण कर लिया है अपने मर्म को रोमांचित सिहरन में उस की नित्य नैमित्तिक वाणी : शान्तं शिवं अद्वैतम् !

ठीक याद नहीं है, अन्दाज़न एक मील दक्षिण में आने पर पहरेदार एक घाटी अर्थात् चेक-पोस्ट मिलता है। यहाँ एक पुराना पुल पार करने के लिए ड्राइवर को सावधान किया जाता है। एक आदमी पीठ पर नोटिस लटका कर गाड़ी के आगे-आगे चलता है, यानी स्पीड एकदम नहीं। अगर स्पीड देना है तो उस आदमी को कुचल डालो। नीचे तख्तों के फाँकों में से मदमस्ती में लहरा रही विपाशा नज़र आती है—गेरुआ तरंगें उस की चट्टानों से टकरा-टकरा कर टूट-बिखर रही हैं। यहाँ है दो नदियों का संगम। लगता है, विगत दो दिनों में जो वर्षा हो चुकी है पहाड़ों में, उसी प्रखर धारा संहार रूप में दोनों धाराओं में उतर आयी है। उन के आघात-प्रतिघात से, संघर्ष और प्रताड़ना से, हिंसा और क्रान्ति-विक्षोभ से चोटियों पर क्षण-क्षण में धुएँ का जाल बन रहा है। उस के इस आत्मघाती मर्मान्तक यन्त्रणा की तरफ़ आरोहीगण चुपचाप ताक रहे थे।

पुल पार कर गाड़ी मुड़ी दाहिनी ओर और दाहिनी ओर ही विपाशा के किनारे-किनारे चल पड़ी सँकरी सकड़ पर लारजी की तरफ़। कुलू उपत्यका जाने के लिए मात्र यही है एक मोटर पथ।

सड़क अच्छी नहीं है, पतली और खुरदरी है। इतनी ऊँची-नीची कि भय होने लगता है। बस आरामदायक नहीं है। जितनी तेज़ चलती नहीं है उतनी भयानक

आवाज होती है। पथ एक तरफ़ा है यानी सामने से कोई गाड़ी नहीं आ सकती। विपाशा यहाँ मोड़ लेती है। उत्तर से दक्षिण की ओर, दक्षिण से पूरब फिर पुनः चली गयी है उत्तर में। हमारी गति है स्रोत के विपरीत दिशा में।

हमारी गाड़ी में हैं एक प्रौढ़ा महिला, और उन की बग़ल में हैं एक नौजवान। निःसन्देह माता-पुत्र हैं। अब तक गौर नहीं किया था। अब अच्छी तरह बिना देखे रहा नहीं गया। महिला की उम्र अधिक थी मगर उन का स्वस्थ स्वरूप, गोरा चिट्टा वर्ण, बारीक बैंगनी पहनावा, उस पर से आजानुलम्बित उजली गाउन, सिर पर रेशमी ओढ़नी और पैरों में सादा मोजा और किरमिच का जूता—इसी में उस का स्थिर, शान्त और निर्विकार दृष्टि, सब कुछ मिला-जुला कर ऐसा एक संभ्रम सूचक व्यक्तित्व प्रकट हो रहा हो, जिसे आज के पहले कभी देखा नहीं था। बग़ल के नौजवान की उम्र कम है, वह बन्द गले का कोट और चूड़ीदार पाजामा पहने है। सभी मिल-जुल कर गाड़ी में बैठे हैं, मगर महिला का सिर सब से ऊँचा है। हम सभी जैसे उस के आगे लघु-आकृति बन गये हैं। लम्बी बाँहें, फैले हुए कन्धे, चौड़ा चेहरा, ऊँचा ललाट, फैले हुए दोनों पैर—और कोई हो चाहे नहीं मगर मैं तो स्वयं में चकित था। और भी एक वस्तु थी तारीफ़ के लायक़। उस की पूरी पोशाक के रंग थे लाल, हरा, पीला, गहरा नीला, गेरुआ—विविध वर्णों का इतना सुन्दर समावेश था कि मेरी कौतूहल की सीमा नहीं थी। उन के इस अनन्य साधारण व्यक्तित्व के गुण से पूरी गाड़ी जैसे अभिनव गौरव पा बैठी थी।

उस की तरफ़ किसी की निगाह नहीं है, सिर्फ़ मैं टकटकी लगाये हूँ, यह श्रीमती गुप्ता की दृष्टि की पकड़ से बचा नहीं। उन्होंने एक समय गला दाब कर कहा—देख क्या रहे हैं? वे पण्डितानी हैं। कशमीर के पण्डित वंश की महिला। ब्राह्मण की बेटी। वे तीर्थ को निकली हैं।

मैं बोला—आप ने कैसे जाना?

वाह!—श्रीमती गुप्ता ने कहा—तीन वर्षों से हूँ मैं कशमीर में, उन के बीच रह चुकी हूँ, मैं नहीं तो क्या आप जानेंगे? आप घबरा उठे, कशमीर आप ने देखा ही कहाँ, इस के अलावा ऐसे के अतिथि बने जिस की गृहस्थी बाढ़ के पानी में बह गयी। सभी लेखकों की क़िस्मत क्या आप ही की तरह खोटी होती है।

हँसी आ गयी। अब चढ़ाई पर गाड़ी चढ़ रही है, इस लिए श्रीमती गुप्ता की बात-चीत गुम हो गयी। उन्हें चक्कर आ जाता है। उन का कहना मगर सही है, कशमीर के एक खास वर्ग को देखा-जाना नहीं गया है जो विद्या-बुद्धि के लिए विख्यात है। वे बहुत ही नम्रव्रती हैं और संस्कृति-सम्पन्न हैं। उन की महिलाएँ प्रायः ही रहती हैं लोक-लोचन के बाहर, कामकाजी और जनता की जमात में वे दीखती नहीं। वे अधिकांश ही अभिजात और सम्पदाशाली हैं। यह महिला उसी समाज की है। माँ-बेटे की आँखों और चेहरे पर सु-शिक्षा की ऐसी दीप्ति थी और प्रसन्न नम्रता की अभि-

व्यक्ति थी कि हम अभिभूत थे। कोई अगर कहता, चरण-रज लो तो मैं प्रस्तुत हूँ।

राह क्रमशः संकटपूर्ण होती जा रही है। एक छोटी बस जाने लायक़ सँकरी सड़क। इधर गहरी खन्दक़—हमारे पैरों के नीचे। विपाशा की भयानक रणरंग लहरें बह रही हैं उस खन्दक़ के नीचे। ज़रा चूक हुई कि हमारी गाड़ी छिटक कर गिर पड़ेगी दियासलाई की पेटी की तरह पाँच सौ या हज़ार फ़ुट नीचे—निश्चित है मृत्यु। पहाड़ों की चट्टानें बिलकुल अतिकाय सर्प फन के जैसा सिर पर झूल रही हैं। मामूली धक्का यदि लगा तो उस के धक्के को चलती गाड़ी किसी भी तरह सँभाल नहीं सकेगी, लुढ़क कर, गिर कर विपाशा में तैरने लगेगी। मीलों के बाद मील इस संकटपूर्ण सड़क पर भचकती हुई चली जा रही है, हम सभी व्याकुल, सन्त्रस्त और आतंक के मारे जैसे सूख कर लकड़ी हो गये हैं।

मगर कुछ क्षणों के लिए उद्वेग और भय को भूल सकें तो सामने एक ऐसा रूप संसार अपना रहस्य आवरण उन्मोचन करता रहता है कि अपना अस्तित्व ही अविश्वसनीय लगने लगता है। अचानक आ पहुँचा हूँ एक जादू नगरी में। हर पहाड़ की गुफ़ाओं ने धारण किया है मन्दिर का आयतन, और अजस्र विचित्र पुष्पलताएँ और गुल्मों से आच्छादित उन गुफाओं के भीतर निःशब्द पूजा-अर्चना हो रही है, यह विश्वास करने का अनायास जी चाहता है। विशाल प्राचीन एक-एक चट्टानों का स्तवक अविकल ऋषियों का रूप धारण किये हैं और बादल के स्तूपों में एकटक देखते रह कर हम जैसे तरह-तरह के अतिकाय जन्तु और विराट् देव और दानवों को खोज-ढूँढ़ कर निकाल रहे हों, यहाँ भी ऐसा ही है, देख रहा हूँ मुनि, ऋषि, योगी एवं अतिमानव को। वे जैसे स्थिर हैं, पलकें उभार कर देख रहे हैं, मानो नये ज़माने के लोगों को। अनगिनत प्रताप और निर्झरिणियाँ उतर रही हैं उन की जटाओं से, उन के वक्ष से। यह अति-प्राकृत विस्मय एक बार मात्र देख आया हूँ अमरनाथ के तीर्थमार्ग स्थित महागुनस में—जहाँ राह के किनारे 'योगी श्रेष्ठ' खड़े हैं। किंवदन्ती है, कहाँ तो वे छह हज़ार वर्ष आगे उधर गये थे और मार्ग की शोभा देख कर थमक कर खड़े हो जाते हैं। उन का शरीर हिम-तुषार से ढँक जाता है और कालक्रम में वह प्रस्तर भूत हो जाता है। अजस्र फूलों के विविध वर्णों और गुल्म-लताओं से उन की विशाल देह थी आकीर्ण। बहुत देर तक अवाक् देखता रहा। यह दूसरी बात है। सभी मानो जीवन्त प्राणमय हैं। समझ में नहीं आती है उन की भाषा, और समझ में आता ही नहीं है उन का निःशब्द समाज। ठीक से पकड़ में अपना अस्तित्व भी नहीं आ रहा है, मगर उन का ही नित्य जाग्रत् अवस्थान ही सत्य है। मैं खुद रूढ़ वैज्ञानिक युग का इनसान हूँ, हमारा यह अतिश्रम देख कर सभी हँसेंगे—जो वैज्ञानिक हैं। मगर यहाँ से गुज़रें तो क्या सचमुच वे हँस सकेंगे? जो मेरे ज्ञान और बुद्धि के बाहर है, वही क्या अविश्वसनीय है? जो आज भी जान नहीं पाया, वही क्या अश्रद्धेय है? यह अहंकार क्यों? आत्मा सर्वव्यापी है—विज्ञान का यही आखिरी आविष्कार है। प्राण पत्थरों में है, हवा में है, परमाणुओं में

है, चेतना के बिन्दुओं में है—यही है विज्ञान का सब से अन्तिम प्रकाश—दृष्टि। उस बिन्दु को भेदना ही है उस प्राण का आभास पाना। सभी कहते हैं, रोको परमाणु और हाइड्रोजन बम वरना संसार रसातल में पहुँच जायेगा। जिस अणु से मनुष्य की उत्पत्ति है, उसी अणु से प्रस्तुत हैं चट्टानें, पहले में मिला सृष्टि का परम विस्मय, दूसरा है अनाविष्कृत—चट्टानें बाते करेंगी, पेड़ की भाषा जान लूँ—इसी की खातिर आज प्रस्तुत हो रहा हूँ। सौ वर्ष पूर्व किसी ने सोचा था क्या, मनुष्य उड़ेगा, बेतार गीत गायेगा, परदे पर इनसानों का रूप स्वरूप पायेगा? जिसे अब तक कहा गया जड़—उन की जड़ता क्या मिटी नहीं? असम्भव शब्द क्या आज भी रहेगा शब्दकोश में?

जंगली गुलाब की झाड़ी सेब-अनार के वन, स्लेटी पत्थरों का पहाड़, खुरदरे पत्थरों का अम्बार, रहस्यगर्भ गुफ़ा-मार्ग और आतंक संकुल विपाशा की खन्दक़ें इन्हीं में से गुज़रती चली जा रही है गाड़ी कुलू।

[९]

प्राचीन ऋषिकुल में मुख्यतः हम दो जनों को पाते हैं, जिन्होंने अधिक बार हिमालय का भ्रमण किया है। उन में एक हैं महाभारत के रचयिता महर्षि वेदव्यास, दूसरे हैं सूर्यवंश के राजगुरु महामुनि वशिष्ठ। महर्षि वेदव्यास प्राकृतिक शोभा-सौन्दर्य ढूँढ़ते-फिरते थे और मन के मुताबिक कोई अंचल पाते ही वे नदी के तीर पर की चट्टान पर, या छायादार गुफा में, अथवा किसी निर्जन हिम शिखर का चुनाव कर लेते थे। राजगुरु वशिष्ठ त्रेता युग के मनुष्य थे। उन के मन को भाता था तपोवन, पुष्पांगन और एक कुटिया। वे थे आश्रमिक, इस लिए वे जहाँ भी गये वहाँ उन्होंने एक आश्रम बनाया। असम के हिमालय से कशमीर के हिमालय तक राजगुरु वशिष्ठ ने अनेक आश्रमों का संचालन किया। एक नये आश्रम की परिकल्पना सँजो कर वे एक समय आये हिमाचल के इस क्षेत्र में—कुलू उपत्यका के उत्तर प्रान्त में। यहाँ के हिमालय का अति आश्चर्य स्वर्गीय शोभा देख कर भावप्रवण हो उठे और हिमालय के कठोर तपस्या में योगस्थविर हो गये। उसी तपस्या में सिद्धि प्रास कर के उत्तर कुलू के एक अति मनोरम एकान्त अंचल में उन्होंने अपना आश्रम प्रतिष्ठित किया। कुलू के अन्तर्गत मनाली जनपद से दो मील दूर में राजगुरु वशिष्ठ का कुण्ड और आश्रम आज भी मौजूद है।

त्रेता और द्वापर में काल का व्यवधान कितना है, हमारा जाना हुआ नहीं है। पत्र में जो भी हो, मगर दस हज़ार वर्ष होगा, सन्देह नहीं! द्वापर युग में महर्षि

वेदव्यास एक दिन निकले घूमने हिमालय। मगर कुमाचक तथा कुमायूँ पर्वत शृंखला में यहाँ-वहाँ छोड़ महर्षि अपना स्मृति चिह्न विशेष रूप में कहीं छोड़ नहीं गये। ब्रह्मपुरा के भू-खण्डों में व्यासदेव सर्वत्र नित्यस्मरणीय हैं।

द्वापर के स्मरणातीत कालों में सम्भवतः महर्षि वेदव्यास के मन में यह कौतूहल जागा हो कि राजगुरु वशिष्ठ ने कहाँ पहुँच कर इस तरह देवतात्मा हिमालय को ढूँढ़ निकाला। शायद पुराने समय में मनस्तत्त्व था अन्य प्रकार का। उस ज़माने में सम्भवतः मनुष्य की सर्वांगीण योग्यता अतिमानवता की अभिव्यक्ति से ही प्रमाणित होती थी। तपस्या की कठोरता और सिद्धि प्राप्ति ही नेतृत्व की कसौटी थी शायद। महर्षि वेदव्यास सम्भवतः अपने पूर्वाचार्य के चरण-चिह्नों का अनुसरण कर इस हिमालय परमाश्चर्य और अनाविष्कृत भू-खण्ड में आ उपस्थित हुए हों। मगर मनाली से दो मील दूर पर जहाँ वशिष्ठ के नाम से एक गन्धक-मिश्रित उत्तप्त जल का झरना मौजूद है, वहाँ तक जा कर ही महर्षि रुके नहीं। हिमालय की मायाविनी, प्रकृति और आनन्दमय ब्रह्मस्वरूप उन्हें आकर्षित कर खींच ले जाता है—और भी दूर उत्तर के भू-स्वर्गलोक में। उसी लता-गुल्महीन, जन-चिह्नहीन तुषार शृंग में आरोहण कर उन्होंने देवलोक का और ब्रह्मलोक का सन्धिद्वार खोला। परवर्ती काल में उसी तुषार-चूड़ा का नाम पड़ा व्यास ऋषिशृंग।

ठीक-ठीक याद नहीं, मण्डी से सुलतानपुर यानी कुलू शहर सम्भवतः अड़तीस मील सड़क है। सड़क सिर्फ़ नयी नहीं है, संहार ही नया है, लोग भी नये हैं। इन्हें काँगड़ा में देखा नहीं, हिमाचल में भी नहीं—ये ठाट-बाट सब बदल कर नये चेहरों में सामने यहाँ आ खड़ा हुआ। किन्नर देश याद हो आता है, मगर ये वे नहीं हैं। ऐसा शिरोभूषण पहले कभी नहीं देखा—तिब्बत को जैसे कोमलतर करती है। सिर पर ढो कर सभी रंगों की विचित्रता ले कर आये हैं। अम्बर से रंग मिला है, लाल गुलाब से क़र्ज़ लिया है, वसन्ती रंग पाया है शैल उपत्यका की वसन्त-बहार से, नारी-नयन से पायी है गहरी नीलिमा और अनारकली से लाल वर्ण ले लिया है। सिर पर का टोप देख कर हम मुग्ध हो उठे।

तिब्बती गुफाओं के गुम्बद की भाँति चतुष्कोण पर ऊपर की तरफ़ ज़रा सा मुड़ी हुई—इस सुन्दर टोप के दो कोने ऊपर की तरफ़ ठीक वैसे ही मुड़ा हुआ। उस पर रंगों की क्या बहार। पथों पर जाती महिलाएँ अकारण अपने मन ही बिहँसती चली जा रही हैं। किसी के सिर पर काला, किसी के सिर पर लाल फ़ीते का मुरेठा बँधा हुआ। पहनावा प्रायः सादे कम्बल का। ज़रा भी ठण्ड पड़ी कि सूती कपड़े आँखों से ओझल हुए।

मायादेवी कुलू की टोप देख कर मोहित हो उठीं। बोलीं—मैं भी बहुत घूम चुकी हूँ, मगर ऐसा टोप मैं ने पहली बार देखा। दो खरीद कर ले जाऊँगी।

अगल-बग़ल अनार का वन। पहाड़ों की अतिकाय चट्टान कहीं-कहीं ऐसे लटक रही है कि देखते ही डर लगता है। पैरों के नीचे विपाशा का तेज प्रवाह बड़ी-बड़ी चट्टानों से टकराता हुआ दौड़ा जा रहा है। कशमीर की वही पण्डिताइन एवं उस का नौजवान पुत्र बाहर झांकते हुए चुप बैठे हैं। गाड़ी चली जा रही है बांकी-बांकी मोड़ लेते हुए। हमारा गन्तव्य अभी भी दूर है।

सिर्फ़ विपाशा ही नहीं। और भी दो नदियों को प्रथम बार निकासी इस पहाड़ी भू-खण्ड से मिली है। एक है इरावती, दूसरी है चन्द्रभागा। कुलू उपत्यका के दक्षिण पहाड़ों के पीछे से वन्यशतद्रू उत्तर-पूर्व से दक्षिण और पश्चिम में प्रवाहित होती चली गयी है। सुन्दरनगर की उपत्यका से कुमारसाँई जाने की राह में जाने के समय शतद्रू को पार करना पड़ता है। कुमारसाँई से कोटगढ़ हो कर नारकण्डा पहुँच पाने पर हिन्दुस्तान-टीबेट (तिब्बत) रोड मिलता है। इस के बाद रामपुर, वाग्टां और चीनी-किन्नर हो कर बुशाहरा राज्य के भीतर से शिपकी के गिरिसंकट पहुँचा जा सकता है। शिपकी से रंगचू उपत्यका का प्रमुख कारवाँ पथ गारटक की तरह चला गया है। गारटक से कैलाश पर्वतमाला के अन्दर से कारवाँ-पथ सीधी दक्षिण में जा पहुँचा है मान-सरोवर में। यह पथ पन्द्रह से सोलह हज़ार फ़ुट ऊँची ऊबड़-खाबड़ भूमि और तराई को पार कर आगे चला गया है। यह पथ बहुत पुराना है। एक सौ वर्ष पहले भी कशमीर महाराजा के विख्यात सेनापति जोरावरसिंह ने इस अंचल में संग्राम कर के लद्दाख आदि पश्चिम तिब्बत भारत के पक्ष में विजय प्राप्त किया था, और इसी अंचल में तिब्बतियों ने उन को मार डाला था।

'आऊट' नामक एक पहाड़ी गाँव में पहुँच, हमारी मोटर-बस रुकी। यह गाँव मण्डी और सुलतानपुर के लगभग बीचोंबीच पड़ता है। रास्ता एकतरफ़ा है, इस वजह दूसरी तरफ़ एक गाड़ी 'वैरियर' के उस तरफ़ अब तक हमारी गाड़ी की अपेक्षा में खड़ी थी। अब वह छूटी मण्डी की तरफ़। इन दोनों को छोड़ आज इधर कोई और गाड़ी नहीं चलेगी।

कई दुकानें और पुलिस चौकी को जोड़ एक छोटा सा गाँव। छोटे-छोटे काठ के घर—मगर उन पर खुदाई का काम बड़ा ही खूबसूरत और मनमोहक था। यों पहाड़ी देशों के घर-द्वार मात्र लकड़ियों के ही होते हैं। लकड़ी की दीवार, लकड़ी का फ़र्श, लकड़ी की सीढ़ियाँ और लकड़ी का ही धरन। मगर छतें अधिकांश स्लेटी पत्थरों की। इधर वाला पथ चला गया है पहाड़ी बस्तियों में। पश्चिम पहाड़ के अधित्यका-अंचलों में मामूली खेती-बारी होती है। अन्य क्षेत्रों में अचानक लग सकता है, कशमीर के किसी एक मनोरम अंचल में आ पहुँचे हों। उधर है एक छायादार जंगली सड़क, जो हमारे आकुल चित्त की भूख का सन्देश लिये ऊपर चढ़ती चली गयी है। मगर वह सड़क कितने दुर्गम में जा पहुँची है, इस की खोज-खबर हम नहीं रखते हैं। नदी पार कर के वह चली गयी है लारजी उपत्यका में, वहाँ से चढ़ गयी है दक्षिण पर्वत के गहन

लोक में—गुफाओं के गह्वरों में, जलधाराओं की शिरा-उपशिराओं में, खौफ़नाक जानवरों से भयभीत आदिम निवासी गली-कूचों में से अनाविष्कृत ओषधि-पर्वत की जड़ी-बूटियों की विचित्र वन्य गन्ध से गुज़र कर यह सड़क जा चढ़ी है एक जगह विशाल पर्वत की चोटी पर—जहाँ 'वनजार' नामक जनपद के प्रान्त में 'वासलेऊ' और 'जलोरी' गिरिसंकट परस्पर संयुक्त हुआ है। अन्त में यह सड़क सुदूर दक्षिण में जा कर शतद्रू का अतिक्रमण कर कुमारसाँई से जा मिली है। बुशाहर राज्य से व्यापारियों का दल इसी सड़क से कुलू में आते हैं। इस सड़क पर जंगली कुत्ते, भयानक सर्प, हिंसक चीते और पीले भालू असावधान पथिकों पर बुरी तरह आक्रमण करते हैं। पहाड़ी बकरियाँ और खच्चरों के अलावा इस सड़क पर चलते थे घुड़सवार पर्यटक, अभी सड़क के कुछ सुगम होने के कारण छोटी जोप जाती है। जाड़े में यह सड़क बर्फ़ की परतों से ढँकी रहती है।

मोटर वाली सड़क पर संकटों की आशंका थी, इस लिए हम बस में अब तक सकपकाये बैठे रहे। 'आउट' में गाड़ी के आ खड़ी होते ही मायादेवी अब कहीं हिली डुलीं। सामने की एक दुकान पर बढ़िया नाश्ते का इन्तजाम देख कर हम खुश हो उठे। उस ओर से पण्डिताइन ने प्रसन्न आँखों से हमें एक बार देख लिया था। उस का देखना निर्विकार स्नेहशीलता जैसे सुख कर हो।

भोजन का इन्तज़ाम किया गया। मायादेवी ने हँस कर कहा—हमारा मुँह का काम कहीं भी रुका नहीं, देख लिया न?

कहा—सिर्फ़ यही नहीं, हाज़मे में भी कोई गड़बड़ी नहीं हुई।

वे खूब हँसीं, और इस के बाद घी की बनी पूरियों और जलेबियों का दौर देर तक चलता रहा।

ठीक इसी वजह गाड़ी यहाँ कुछ देर तक रुकी है। शरीरतत्त्व के अनुसार शोक, ताप, दुख-भय, प्रेम या वियोग जब गहराई में उतरता है तब तरह-तरह भूख बढ़ती है—यहाँ आतंक से हमारी भूख बढ़ गयी है।

गाड़ी छूटी एक समय अभी भी दिन नज़र आ रहा है, यहाँ के बाद सड़क कुछ चौड़ी होती है। कुलू का टोप सिर पर रख कर कितने ही लोग आ-जा रहे हैं, प्रसन्न-बदनाएँ चली जा रही हैं उन के अगल-बग़ल से। लाहूल के व्यापारी पीठ पर बोझा लिये चले जा रहे हैं। वस्तुतः कुलू उपत्यका कहने से जो समझा जा सकता है, वह है विपाशा नदी के आर-पार मात्र। वह कहीं सँकरा है, कहीं लम्बा। आखिर में कुछ समतल है या फिर चढ़ाई और उतराई। किसी-किसी जगह दोनों 'पाट' चौड़ा हो कर दोनों तरफ़ से एक मील से दो मील तक प्रायः समतल भू-भाग में परिणत हो गया है—इतना ही। वहाँ खेती-बाड़ी हो रही है। बीच-बीच में तारों के झूला-पुल के द्वारा विपाशा के इस पार - उस पार की उपत्यकाओं को जोड़ा गया है। असंख्य स्वर्गों में विचरता चला जा रहा हूँ। समग्र सत्ता के सम्मुख क्षण-क्षण में जाने कौन अपने अदृश्य

हाथों से खोल रहा है—अमरावती का द्वार। उस नदी के नीचे शिलासन पर कहीं भी बैठ जाइए या चले जाइए जंगलों की छाया में। सिर्फ़ आप की ज़िन्दगी कट जायेगी यही नहीं—हो सकता है, सहज में ही ईश्वर को भी पा जायें।

ईश्वर। मुँह मोड़ कर चुप हो रहा। ईश्वर को सोचते ही मन में उभरने लगते हैं बहुतेरे दृश्य। तपोवन में, तपस्या में लीन हैं ऋषि, शाक्यसिंह आध्यात्म क्षुधा से आँसू बहाते फिर रहे हैं आर्यावर्त के पथ-पथों में, आसमुद्र हिमाचल में मौर्य सम्राट् अशोक उत्कट प्यास में परिभ्रमण कर रहे हैं, तत्त्व अन्वेषी दार्शनिक अपलक हैं अनन्त प्रश्नों में—जो मन में भीड़ आ लगाते हैं। इस के बाद फिर पटपरिवर्तन होता है। पलकें खोलता हूँ, आदमी हाँफ रहा है अपमान के मारे, लज्जाहीन मलिनता से उस की ज़िन्दगी घिनौनी है, नैतिक अधःपतन से एक जाति का भयावह परिणाम दाँत निपोरती सभ्यता का कुत्सित स्वरूप ! मुड़ कर देखो-फिर नीचे। गन्दगी लपेटे है कोई चेहरे पर, सिसकियाँ सुनाई पड़ती हैं किसी भूखे की, निरुपाय शरणार्थी की बीभत्स मौत हो जाती है आँखों के आगे—ईश्वर जैसे हो उन के बीच। यन्त्रणा में, दुख में, संकट में, पीड़ा में, प्रताड़ना में, ईर्ष्या में, घृणा में, पाशविकता के धिक्कार में—पलक-पलक में देख लिया ईश्वर को।

दुनिया में जो मन्दिर सर्वश्रेष्ठ है—देवता जहाँ नित्य जाग्रत् है—वह है आदमी का मन-प्राण। उस प्राण की मूल शाखा से कितनी ही बार डाल छोड़े पंछी रात के अँधेरे में व्योम को पार कर दुर्लभ नीलपद्म की खोज में उड़ गया है। महाशून्य पथ में बहुत बार आवाज़ लगा चुका हूँ, अपनी भग्न कण्ठ से। मगर आज विपाशा की तटभूमि से गुज़रते हुए पुराने दिनों का हिसाब क्यों चाहूँगा ? फिर भी यहाँ के अभिनव पटभूमि तटभूमि के मध्य दीख रही है अमरावती की वही आश्चर्यजनक छाया। अगर कहा जाये—स्वर्ग यही है तो कोई आपत्ति नहीं। यदि कहा जाये—वे हैं आनन्द-स्वरूप, तो प्रतिवाद नहीं किया जा सकता। वे मुझ से आनन्द उठा रहे हैं, इस में अचरज क्या है। आधी रात के भयावह जंगलों में वे मुझे बुला कर ले गये हैं। झंझा विक्षुब्ध रात्रि-समुद्र में उन्होंने दिखाया है कराल मृत्यु-स्वरूप समग्र भारत के पथ-पथों में भयानक तूफ़ान और बाढ़ में उन्होंने हमें बना लिया था लीला सहचर। इस के बाद इस हिमालय के हज़ारों-हज़ार वर्ग मीलों में पोसे हुए जानवरों की भाँति हर चट्टानों को सूँघता अर्थहीनता को खोजता फिरा हूँ। रुलाया है उन्होंने खूब, मुँह में ग्रास ग्रहण करने नहीं दिया है, दुर्योग के द्वारा आश्रम उजाड़ कर दिया है, संगी को ले गये झपट कर, मौत को दिया है हर क़दम पर।

उपत्यका ज़रा फैल रही है। देवभूम में हम प्रवेश कर रहे हैं। कुलू उपत्यका का दूसरा नाम है, 'देवभूम'—Valley of Gods. चेतना को छा लेती है एक गहरी प्रसन्नता की अनुभूति—इसे ही कहा गया है दैव। यहाँ आने पर मन सोचता रहता है

देवता के बारे में, इस लिए यह है देवभूम । देखते-देखते हमारी बस आ पहुँची 'बजौरा' के एक छोटे गाँव में । यहाँ अनेक सदियों पूर्व से प्रतिष्ठित है अपूर्व शोभायमान बजौरा का प्राचीन मन्दिर—यहाँ शैव और शाक्त—दोनों की उपासना गति पाती है । मन्दिर का रंग है गेरुआ और इस की बनावट है उत्तर भारत के किसी भी मन्दिर के समतुल्य । एक जमाने में चन्देला राजपूत, जिस ने कालजयी प्रतिभा और सौन्दर्यबोध से अनुप्राणित हो कर विन्ध्य प्रदेश में खजुराहो के मन्दिरों का निर्माण किया था, इस मन्दिर पर जैसे उन की ही छाप पड़ी है । बजौरा का यह प्राचीन मन्दिर समग्र 'देवभूम' को मानो परमार्थ प्रदान कर रही है ।

इस देवभूम की चर्चा करते हुए और एक अंचल को याद हो आयी । वह है पार्वती उपत्यका । मनाली से पार्वती उपत्यका की ओर जाना सुविधाजनक है, क्योंकि यहाँ से सवारी की व्यवस्था हो सकती है । 'भुन्तारगाँव' से पार्वती पहुँचने में दो दिन से कम समय लगता है । यह अंचल कुलू के अन्तर्गत ही है, पर प्रकृति में कुछ भिन्नता है । इस को जंगलीपन ही इस की शोभा है । सम्यता से बिलकुल ही विच्छिन्न जीवन-क्रम में जो अतिप्राचीन स्वभाव कौमार्य को कल्पना हम करते हैं—सम्भवतः उसी का चिह्न यहाँ मौजूद है । चारों ओर गगनचुम्बो विराट् पर्वत-चोटियों से घिरी इस बहुरंगी नन्दनकानन से शोभित उपत्यका का जिस ने नाम रखा है पार्वती उन्हें नमन करता हूँ । इस पार्वती के भीतर से प्रस्तर-संकटों से संघर्ष करते हुए जो तेज बहाव वाली नदी उतर आयी है उस के दोनों पार के जनशून्य हिमालय के अतिप्राकृत स्वरूप पर दृष्टि जा टिकती है । नदी आ मिली है विपाशा में ।

बजौरा से दक्षिण की दिशा में बढ़ने पर एकथ उत्तरपूर्व में 'मणिकरण' की ओर चला गया है । कुछ दूर जा कर नदी तीर पर दोनों तरफ़ उत्तुंग पर्वत शिखरों का लोक है । कहीं-कहीं धान के खेत हैं और उस के अगल-बग़ल है चढ़ाई-उतराई । इसी तरह आगे बढ़ते रहने पर पर्वत-दीवारों की गोदों में स्थित मणिकरण पहुँचा जा सकता है । चित्रपट की भाँति है यह छोटा सा जनपद । गाँव के स्त्री-पुरुष बहुत ही सदय और अतिथि-परायण । मानव की धोखाधड़ी, दुष्प्रवृत्ति अथवा नैतिक गिरावट से यहाँ के थोड़े में सन्तुष्ट निवासियों का कोई मेल नहीं है । मन्दिर-मठ यहाँ-वहाँ हैं । निवासी ख़ूबसूरत और भलेमानस हैं । यहाँ के प्रसिद्ध गरम झरने में स्नान करना बहुत हो स्वास्थ्यप्रद है—वात-व्याधि, पक्षाघात, चर्मरोग और अजीर्ण रोगियों के लिए बहुत लाभदायक है । पार्वती उपत्यका 'मणिकरण' की खातिर ही विख्यात है । उपत्यका की महिलाएँ यहाँ से सिन्दूर ले कर अपने-अपने ललाट पर लगाती हैं । सिन्दूर-शोभित नार देखता चल रहा हूँ पथों में । बंगाली महिलाओं का स्वभाव उन के सर्वांग को स्पर्श किये है ।

मध्याह्न में आ पहुँचा 'सुलतानपुर' । यही हमारा गन्तव्य है । इसी का आधुनिक नाम है कुलू शहर । विपाशा नदी के किनारे यहाँ उपत्यका खूब फैली हुई है । यह

शहर प्रमुख रूप से सरकारी केन्द्र है। काँगड़ा, धर्मशाला, पालमपुर और जोगिन्दर-नगर के बाद ही आता है सुल्तानपुर उर्फ़ कुलू। गाड़ी आ ठहरी एक खुशनुमा अति बृहत् मैदान के सामने। मैदान के पश्चिम की ओर है डाकबँगला।

अब ज़रा स्थूल विषय की चर्चा करूँ। बाहर जा कर जिस प्रकार कुलू उपत्यका के बारे में प्रचार किया जाता है और सुख-सुविधा की दृष्टि से कुलू को जिस प्रकार भू-स्वर्ग कश्मीर की बग़ल में रखा जाता है, यह सच नहीं है। होटल नहीं है, यह कहना पड़ता है। खाने-पीने की चीजें सहज प्राप्त नहीं हैं। दिन भर में दो बसों के अतिरिक्त और कोई यातायात का साधन नहीं है। बहुत ही ज़रूरी चीज़ों के लिए दो दिनों पहले से ही गाँव-गाँव में लोग भेजे जाते हैं। परिणामस्वरूप कुलू उपत्यका में जब तक रहा तब तक पैरों में काँटे चुभते रहे।

डाकबँगला में जगह मिली नहीं। धर्मशाला भी दूर पर। आखिर में एक आदमी ने बताया, अनुमतिपत्र लाने पर 'फ़ारेस्ट रेस्ट हाउस' में जगह मिल सकती है। ऐसा ही किया गया। मगर रेस्टहाउस था अँधेरा। न है इलेक्ट्रिक, न केरासिन और न ही किसी तरह के खाने-पीने की सुविधा। बहुत कोशिशों के बाद एक लालटेन मिली। मगर कुछ समय पहले ही पण्डिताइन के बारे में जो सन्देह हम लोगों के मन में पैदा हुआ था, वह सही निकला। उन्हें और उन के पुत्र को कहीं रहने को जगह नहीं मिली। अतएव इस बार हम ने उस युवक को निमन्त्रण दिया। मायादेवी ने आगे बढ़ कर टूटीफूटी कश्मीरी में उस महिला से परिचय किया। वे तीर्थ करने के लिए निकले और मनाली वशिष्ठ आश्रम का दर्शन करने जायेंगे। कल दोपहर में लौटेंगे मण्डी। वहाँ उन के लोग हैं। महिला ने मायादेवी से जब सुना कि हम ब्राह्मण हैं, तब कहीं रेस्ट-हाउस में आ कर सोने को प्रस्तुत हुई, क्योंकि इस निर्जन जंगल से घिरे बँगले में और दो साथी मिले। दो घरों में बत्तियाँ जलीं।

मेरी स्वर्गीया माँ के चेहरे से इस महिला का चेहरा कुछ मिलता-जुलता मालूम पड़ा किन्तु यह मायादेवी से कहने का मौक़ा ही नहीं मिला। सन्ध्या के बाद जब ज़रा हेकड़ी दिखाने के लिए पण्डिताइन को पूजा के लिए पीतल के पात्र में पानी ला दिया— यह पक्षपात देख कर मायादेवी को ज़रा अचरज भी हुआ था। इस के बाद उस युवक को यहाँ पहरे पर मुस्तैद कर के हम जब चौकीदार की निगाह बचा कर अँधेरे वन-बग़ान से महिला को पूजा के फूल ले आये, तब वे मज़ाक़ उड़ाने में चूकी नहीं। बोलीं—खैर बूढ़ी होने में कुछ सुविधा है, राह-घाट पर पुत्र मिलते हैं।

जाने क्या जवाब दिया था, आज मुझे याद नहीं है। फूल हाथों में ले कर दरवाज़े के पास जा कर देखा, महिला अपनी पूजा के आयोजन में लगी हैं। हमें देख खुशी में हँसती हुई आ कर फूल लिया, टूटी हिन्दुस्तानी में कहा—बेटा, जीते रहो।

चौकीदार की सहायता से जैसे-तैसे आहार का जुगाड़ हुआ और हम लोगों ने कम बोलने वाले, नाज़ुक और नम्र स्वभाव के नौजवान को अपने साथ ज़ोर-ज़बरदस्ती

भोजन कराया। एकदम निरामिष भोजन है, यह जानने के बाद ही वह खाने बैठा। रात को मायादेवी पण्डिताइन के कमरे में जगह पा गयीं। नौजवान रहा मेरे साथ।

पंछियों के चहचहाने से नींद खुली। कल की रात के अन्तिम प्रहर में अरण्य-शीश पर कृष्णपक्ष की चाँदनी का दाग़ लगा था—पंछियों को भ्रम हो गया था कि यही है प्रभात। यह भ्रम पकड़ में बाद को आया। मगर चहक रहे हैं वे तभी से। पंछियों के देश आ पहुँचा हूँ।

दिन बढ़ आया है। रेस्ट हाउस इतने सूने में है कि शहर का कोई शब्द पहुँच नहीं पाता। झिल्लियों का रव मचा है पीछे को तरफ़। और नदी के स्वर से मिल कर यह रव इतना एकाकार हो गया है कि उन दोनों का शोरगुल सुनाई नहीं पड़ रहा है।

बाहर निकल कर देखा, बग़ल का घर खाली है। सवेरे को ही मनाली की गाड़ी से पण्डिताइन और उस का पुत्र चला गया है। पाँच मिनट बाद ही मायादेवी आ हाज़िर हुईं। इसी बीच उन्होंने नहा-धो लिया है। कुण्ठा सहित उन से क्षमा माँग लेनी पड़ी।

चौकीदार से सवेरे की चाय की व्यवस्था नहीं हो पायी—कारण, कुछ यहाँ मिलता नहीं। शहर से यह अंचल कुछ दूर है। अतएव जैसे-तैसे तैयार हो कर हम निकल पड़े।

कल सन्ध्या को मैदान के पूरब प्रान्त में विपाशा को देख चुके थे। इधर बहुत कुछ पहाड़ों का अवरोध है। राह-घाट सुनसान, लोग वैसे दीखते नहीं। राजपथ से कुछ चढ़ाई-उतराई पार कर के दाहिनी तरफ़ मुड़ने पर हमें दो-एक दुकान नज़र आयीं। क्षण भर ठहरते ही यहाँ के लोगों की ज़िन्दगी की दरिद्रता का पता चलता है। इस के बाद जंगलों की भीड़ में से विपाशा कुछ दूर जा कर अदृश्य हो गयी है। इधर उपत्यका कुछ समतल मैदानों में फैली है। यह है हिमालय का उत्तर भू-भाग, इस लिए उपत्यका की ऊँचाई कम होने पर भी जाड़े में यहाँ काफ़ी बर्फ़ पड़ती है। इस शरद् ऋतु में यहाँ चिड़ियों का शिकार किया जाता है। जंगली मुर्ग़, पहाड़ी और बर्फ़ीले कबूतर—ये उतर आयेंगे उत्तर हिमालय पर से। समय रहते अब कुलू के निवासी शाक-शब्ज़ियाँ सुखा कर घरों में जा घुसेंगे। लकड़ियाँ ले आयेंगे जंगलों से। अभी से ही भेड़ों के रोम ले कर जाड़े के कपड़े बुने जा रहे हैं। लड़के, बूढ़े, सभी के हाथों में तकली नाच रही है। हवा के उतरने में अब देर नहीं है।

शहर के बीच में आ गये। मगर उँगलियों पर गिन कर कह सकता हूँ, शहर में कितने लोग हैं। काम, कारबार कुछ भी नहीं, शहर का निर्माण हो कैसे—किस की मजाल है भला? माल आयात करे—रुपये कहाँ हैं? माल चालान कर सकने वाले गोदाम कहाँ हैं? इस लिए गाँव की दरिद्रता गाँव में पड़ी है। पर्यटकों को लालच दे कर बुला लाने में दो सौ रुपये यदि उन के हाथ लगे, यही उन का लाभ है। इस लिए

पाँच-सात यात्रियों-लदी गाड़ी जब आ कर रुकती है तब पचीसों क़ुली दौड़ पड़ते हैं। लेकिन क़ुलीगीरी उन का पेशा नहीं है, वे हैं स्थानीय बेकार लोग। खेती करते हैं, घर बनाते हैं, जानवरों के रोमों से कम्बल बुनते हैं।

चाय की दुकानें हैं दो-एक। मगर खाने के सामान के वास्ते सरंजाम करना पड़ेगा ढेरों। सवेरे को कहने से शाम को कहीं मिल पाये। कुल दो अण्डे अचानक पा सकते हो, मगर दस एक साथ माँगने पर गाँव-गाँव में फेरा लगाना पड़ेगा। मांस के लिए पहले जानवर खरीदने की जरूरत है; सब से अधिक लोभनीय मछली है 'ट्राउट'—जैसा है कशमीर में—मगर प्लेट में उस ट्राउट को पाने के लिए पहले होना होगा मछली का शिकारी। यह तुम्हारा दार्जिलिंग-शिलांग नहीं है जो हाट-बाज़ार में दीया जला कर मत्स्यगन्धाएँ वहाँ जम कर बैठी हैं।

दिन का भोजन किया गया दोपहर को। इस के बाद चाय वालों से शाम के खाने का बन्दोबस्त कर के हम निकल पड़े। मनाली की ओर गाड़ी जा रही है। यहाँ से मनाली दूर नहीं है—सिर्फ़ चौबीस मील है। सड़क पक्की है, मगर यह समतल उपत्यका त्याग कर धीरे-धीरे उत्तर में ऊपर चली गयी है जंगलों के अन्तर्लोक में। जैसा हर जगह है, यहाँ भी पहाड़ जितना दो तरफ़ से ऊँचा हो गया है, नदी की गहराई उतनी ही बढ़ती गयी है। प्रकृति जितनी ही अपनी रहस्य-यवनिका खोलती गयी है, मनुष्य की संख्या उतनी ही कम होती गयी है। कुलू से धीरे-धीरे चढ़ाई-पथ पर आठ मील जाने पर 'रायसन' नामक जनपद मिलता है। छोटे-छोटे गाँव जैसे चित्र के बाद चित्र। हमारी दृष्टि में सब कुछ है अवास्तविक, क्योंकि हम इन्हें अभ्यस्त संस्कार में पाते नहीं। दिल्ली, कलकत्ता, बम्बई—इन से हमारी नाड़ी का संयोग है, दृष्टि हमें मिली है उन्हीं के बीच से। बड़े शहरों के नक़्शे में आज कोई विचित्रता नहीं है। नया भुवनेश्वर ढल रहा है, नयी दिल्ली के साँचे में—चण्डीगढ़ के लिए भी यही बात है। पुरानी दिल्ली से आगरा-मथुरा में फ़र्क़ कम है। बम्बई-कलकत्ता के लोग मद्रास बिना गये भी जानते हैं, तामिल शहर कैसा है? इलाहाबाद-लखनऊ एक सा ही है। गया-काशी में मामूली फ़र्क़ है। लन्दन के लोगों को न्यूयार्क में कोई फ़र्क़ नहीं मालूम होता, पेरिस और बर्लिन के नक़्शे में कितना ही अन्तर है? मगर यहाँ इस दूर हिमालय के गहन लोक में विचित्रता भरी पड़ी है। नीलाभ जल-लहरों के किनारे एक रक्तकवरी समस्त पार्वत्य प्रकृति का परमार्थ वहन किये है, अब बर्फ़ीली पंचमोर की चोटी पर शशिकला आ खड़ी होती है, उस सौन्दर्य को महाकाव्य में भी कभी रूप नहीं मिला। एक घर के सुन्दर काठों में की नक़्क़ाशियों—सम्पूर्ण जनपद के स्वभाव को प्रकट करती हैं। तराई का एक छोटा मोड़, एक पेड़ की एकान्त छाया, एक टुकड़ा वनान्तराल, एक झरने की मधुर झंकार—ये जैसे पूरी ज़िन्दगी की रुकी हुई प्यास को जगा देते हैं।

पर्वत-प्राचीर और कमोबेश समतलयुक्त निस्तब्ध वन-भूमि। बीच में विपाशा।

पश्चिम में 'काटराइन' और पूर्व-पार 'नागर'। काटराइन से नदी पार कर के नागर में पहुँचा जा सकता है। इस राह से गुज़रते हैं तिब्बती व्यापारी। पूरब की तरफ़ की विशाल पर्वत-श्रेणियाँ पार करने के बाद मिलती हैं चौड़ी उपत्यकाएँ। नागर से पर्वत-आरोहण किया जा सकता है, मगर अपेक्षाकृत दुर्गम पथ है मनाली का पथ। नागर का जनपद अपनी शोभा और सौन्दर्य लिये नदी के दूसरे पार में तपस्यालीन है, सभ्यता से बहुत दूर।

इस नागर में एक अति सम्भ्रान्त रूसी परिवार की कहानी जुड़ी हुई है। सन् १९१७ में रूसी क्रान्ति के समय एक धनी परिवार ने तत्कालीन ब्रिटिश गवर्नमेण्ट से रहने की इजाज़त माँगी। लगता है, वे साम्यवादी क्रान्तिकारियों के हाथ से छुटकारा चाहते थे। वे एक सम्पत्तिशील ज़मींदार थे। नाम था मि० निकोलस रोरिक। वे थे संसार-प्रसिद्ध चित्रकार और स्वनामधन्य पर्यटक। वे इसी कुलू उपत्यका में आये, और नागर में जगह-ज़मीन खरीद कर उन्होंने घर-द्वार बनाया। उन्हीं के पुत्र जूनियर मि० रोरिक थे एक प्रसिद्ध विद्वान् और चित्रकार। इन के चरित्र, स्वभाव, विनम्रता से मुग्ध हो कर स्वर्गीय चलचित्र-निर्माता हिमांशु राय की पत्नी, भारत-प्रसिद्ध चित्रतारिका श्रीमती देविका रानी ने इन से दूसरा ब्याह किया। एक दिन श्रीमती का आमन्त्रण पा कर उन के दाम्पत्य जीवन का आनन्दमय स्वरूप बम्बई के अस्थायी निवास में पहुँच कर देख चुका हूँ।

नागर के बाद ही एक यूरोपीय परिवार का नाम हर कहीं सुना जाता है। वस्तुतः समग्र कुलू से वह नाम जुड़ा हुआ है। यह नाम है 'वेनन्' परिवार। सन् १८७५ में फ़ौज के कोई एक कर्मचारी मि० वेनन् पहली बार आये कुलू दुर्गम और दुस्तर हिमालय पार कर के। साथ में थे उन के एक और मित्र कैप्टन ली। इस भू-स्वर्ग का लोभ वे संवरण न कर सके—और अवसर पाने के बाद उन लोगों ने मनाली में आ कर समग्र अंचल में फलों के बग़ीचे का निर्माण कर डाला। वे बाग़-बग़ीचे आज भी प्रसिद्ध हैं।

आगे चल कर, 'ली' और 'वेनन्' परिवार यहाँ समृद्ध हो उठे। बड़ा गाँव और मनाली में उन के होटल बहुतों के जाने हुए हैं। हर पहाड़ी उन्हें चीनी साहब के नाम से जानते हैं। हर गाँव में उन की प्रशंसा होती है। पहाड़ी औरतों से उन्होंने ब्याह किया था और बहुत अंशों में शिक्षा-विस्तार में भी हाथ बँटाया था। बहुत अचरज होता है, हिमालय के गहन लोक में जा कर जब पर्यटक इन के बारे में जान पाते हैं। इन के बग़ीचों के सेब और नाशपाती जैसे 'बगुगोसा' बहुत ही मीठे होते हैं।

समग्र कुलू उपत्यका मन्दिर प्रधान है। बहुतेरे तीज-त्योहारों में बहुत सारे देवी-देवताओं की सवारियाँ ससमारोह निकलती हैं। मनाली, नागर, कटराइन, रामसन, बड़ागाँव और दूसरे अंचलों के निवासी भी इन उत्सवों में उतर आते हैं तथा उत्साह

के साथ भाग लेते हैं। इस के अलावा लाहुल, तिब्बत, लद्दाख, यारखंद, खोटान, स्पिति पार्वती आदि विभिन्न अंचलों से अजब-अजब वस्तुएँ ले कर बनिये-व्यापारी कुलू में आ जाते हैं। उस समय सम्पूर्ण उपत्यका में नाच-गान की मजलिस जम जाती है। राग-रंग की लहर दौड़ जाती है। आजकल पूजा का समय है, विजयादशमी में उन का सर्वप्रमुख उत्सव है जिसे कहते हैं दशहरा। उस समय चारों ओर से देव-विग्रह आ पहुँचेंगे और सर्वप्रकार की पूजा पायेंगे रघुनाथ जी। कुलू उपत्यका में उस दिन विपाशा के किनारे-किनारे नाच की मस्ती में बहुतों की जीवन-नैया तट छोड़ कर बह जायेगी अनजाने दिशा की ओर।

ऊँची, ऊबड़-खाबड़ भूमि पर बसा है मनाली गाँव, पाइन और देवदार से सजा है मनाली। उत्तुंग पर्वतमाला स्तर-स्तर होते हुए निकल गयी दूसरी तरफ़। बर्फ़ीली चोटी बहुत क़रीब जान पड़ती है, मगर यह है दृष्टि-भ्रम।

कुछ दूर जा कर पथ चला गया है उत्तर की ओर, विपाशा के किनारे-किनारे। इस के बाद बची रह गयी है हिमालय की स्वाभाविक जनहीनता। पथ चला गया है दूर और दूर चढ़ाई की दिशा में—जिधर है 'रेहला' हो कर 'रोहटांग' गिरिसंकट। दस हज़ार फ़ुट पार करने के बाद तृणफलक का नज़र आना कठिन है। इसी रोहटांग गिरिसंकट के उत्तर में समुद्र तल से पन्द्रह हज़ार फ़ुट की ऊँचाई में है व्यास ऋषि-शृंग। इसी शृंग के तल से रोहटांग गिरिसंकट के अगल-बग़ल जन्म लेती हैं पंजाब की दो प्रधान नदियाँ— एक विपाशा, दूसरी चन्द्रा। चन्द्रा नदी के और भी दो नाम हैं। एक है चन्द्रभागा, दूसरा चेनाव। विपाशा को बहुत से लोग कहते हैं वियास; हिमाचल प्रदेश के लोग कहते हैं वियासा। व्यास ऋषि का ही नाम वे पकड़े रहना चाहते हैं। रेहला के बाद से सभी पर्वत चोटियाँ और अधित्यका—अंचल वर्ष के अधिकांश समय में बर्फ़ से ढके रहते हैं, दस-ग्यारह फ़ुट के बाद ऋतु का नामोनिशान भी नहीं है। बर्फ़ जमती है और बर्फ़ गलती है, बस इतना ही। तुषार झंझावात आने पर सभी ऋतु एकाकार। यदि न हो और साफ़ बादल में अगर धूप हो, तब हो पहाड़ बर्फ़ से ढका रहे, हवा कोई परवाह नहीं। कर्नल हण्ट की पुस्तक में मिलता है, गौरीशृंग के विजय करने के समय मई की अन्तिम धूप की गरमी एवरेस्ट अंचल में उन्होंने कभी-कभी महसूस की थी। रोहटांग गिरिसंकट पार कर के चन्द्रभागा को पीछे छोड़ कर सीधे उत्तर पथ में बढ़ने पर मिलता है उत्तुंग शिखरलोक में 'बड़ा लाचा' गिरिसंकट। यह पथ गया है लाहुल से हो कर अट्ठारह से बीस हज़ार फ़ुट ऊँची पर्वतमाला को भेद कर—जिधर 'हानले' और 'रूपसू' उपत्यका की गोद में मिलता है नमकीन पानी का विराट् मुरारीह्रद। लाहुल उपत्यका के उत्तरांचल से जास्कार पर्वतमाला आ उतरी है दक्षिण में—जहाँ धवलाधार की पूर्वी सीमा में पीरपंजाल गिरि श्रेणी का आखिरी प्रान्त भाग जुड़ा है। इस लिए रोहटांग गिरिसंकट यहाँ है त्रिमूर्ति-स्वरूप—संगम का काम करता है। भारतीय सीमा यहाँ अनिर्णीत है।

मनाली है इन सभी दुर्गम और दुरारोही हिमालय के पथों का प्रथम तोरण-द्वार। यहाँ के वातायन से झाँक कर देखा जा सकता है विचित्र देश के अजाने-अनाम निवासियों को। बहुत बार तो वे हैं नाम-हीन, परिचय-विहीन, मात्र पहाड़ों की सन्तानें। सदा से वे हैं निश्चिन्त निस्पृह—एक के बाद सभ्यताएँ आयीं और गयीं, मगर उन्होंने परवाह नहीं की। सभ्य दुनिया में वे गये नहीं कभी किसी ज़माने में, सभ्यता का स्वाद कभी भी चखा नहीं, उसे परखा नहीं, आँखों से देखा तक नहीं। उन के दुर्ग-प्राचीर के बाहर नीचे की तरफ़ भारत के इतिहास में सैकड़ों वर्षों का विवर्तन घटित हो चुका है। गौतम बुद्ध के बाद उन तक किसी और महापुरुष की वाणी पहुँची भी न हो।

जैसा है बजौरा में, वैसा ही मनाली में—मन्दिर अति प्राचीन। मगर बजौरा का हिन्दू स्थापत्य ज़रा दूर मनाली में आ कर बौद्ध स्थापत्य की शैली से मिल गया है। यह एकदम नया है—दक्षिण से उत्तर के गोत्र का कोई मेल नहीं। हिन्दू हैं, यह ठीक है, किन्तु पहनावे में फ़र्क़ है। मनाली के एक मन्दिर का पता मिला था मित्रप्रवर उमाप्रसाद मुखोपाध्याय से। वह है 'हिडिम्बा' का मन्दिर। मनाली गाँव को पार कर के देवदार के घने जंगलों से घिरे पहाड़ों की प्राचीन वनस्पतियों की शाखा-प्रशाखाओं के अन्तराल में यह मन्दिर जैसे मनोरम कारू शिल्प का प्रतीक। जनहीन वन भूमि के बीच यह मन्दिर बहुत कुछ पगोडे के जैसा है। अँधेरे जंगल में सूर्य की किरणें पहुँचना ही नहीं चाहतीं—चारों ओर है निस्तब्धता। मगर ज़रा निरीक्षण करने पर पता चल जाता है, बन्दद्वार मन्दिर के भीतर से रक्त की धार बह रही है। चौंकिये मत, डरना ही हारना है। प्रतीक्षा करने पर मालूम पड़ेगा, एक रूप-लावण्यमयी रमणी बढ़ती आ रही है—उस के सिर पर है लकड़ी का बोझा, उस के होठों में लिपटी हैं हँसी की रंगीनियाँ—उस से भी बढ़ कर रंगीन है उस की वेश-भूषा। बड़ी-बड़ी आँखों को मटका कर वह हँसी। इस मन्दिर के पुजारी कहाँ हैं ? इस सवाल के जवाब में वह कहेगी, वही पुजारिन है। इस के बाद चुप। वह रमणी एक गुप्त द्वार से मन्दिर में प्रवेश करेगी और सामने का द्वार खोल देगी। दीया जला कर मुसकराती हुई एक कोने की तरफ़ इशारा करेगी। दीये की रोशनी में और गहरे अँधेरे में धड़कते हृदय से इधर-उधर टोह लगाने के बाद अन्त में दीख पड़ेगा—एक विशाल काले पत्थर की शिला। यही है देवी—उसी के उद्देश्य से पशु की बलि चढ़ायी जाती है। दरवाज़े के बाहर ताज़े रक्त में हो सकता है अभी भी उस के हृदय का उत्ताप सटा हो।

रहस्यमयी परम सुन्दरी की हँसी में आत्म-विभोर होने से काम नहीं चलेगा। उस हँसी में, हो सकता है, रक्त की अपेक्षा भयानक संकट का संकेत निहित हो—इसी कारण रहस्य और भी गहरा हो गया है। प्रश्नों के बाद प्रश्नों की झड़ी लग जायेगी तुम्हारे पीछे, मगर उन का कोई हल नहीं है। वे ही प्रश्न हो सकता है तुम्हें आधी रात को दुःस्वप्न में डुबो दें, हो सकता है वे ही प्रश्न उस आदिम अन्तहीन हिमालय के शतसहस्र मीलव्यापी गुफ़ाओं, गह्वरों, मठ-मन्दिरों, अरण्य-तपोवनों, उपत्यकाओं, तुषार

शृंगमालाओं में—सर्वत्र एक विराट् जिज्ञासा के चिह्न—आकार में क्षुधार्त पिशाचिनी की भाँति घूमते फिरें।

[६]

देवराज इन्द्र मर्त्य में उतर आये हैं बहुत बार। स्वर्ग या मर्त्य में वे देवता की अपेक्षा मानवी रूपों में अधिकतर प्रकट हुए हैं। वे थे आमोद-प्रिय, वे नैतिक रक्षा की धारा को कुचलते नहीं थे। देवता की अपेक्षा मनुष्य को ओर खिचाव था उन का अधिक। बहुत बार सक्रिय कौतुक-परिहास के द्वारा वे मनुष्यता के महत्त्व, उदारता, सत्यता, आत्मविश्वास और भयहीन अध्यवसाय की परीक्षा लेते थे।

सृष्टि के प्रतिपालक के आसन पर बैठे हैं श्री विष्णु। आनन्द, पीड़ा, जरा, जयोल्लास, प्रेम और स्नेह-ममता—इन के द्वारा उन्होंने इस अनन्त ब्रह्माण्ड लोक में पृथ्वी नामक एक छोटे ग्रह की प्रशासन व्यवस्था प्रतिष्ठित की थी। मनुष्य की स्वभाववृत्ति को उन्होंने किसी क़ानून में नहीं बाँधा। वे जानते थे, मनुष्य है स्वतन्त्रता-प्रिय, अपनी प्रवृत्ति के दास, अपनी प्रकृति का खिलाड़ी और अपनी विकृति के ही अन्धस्तुतिकारक। देवराज इन्द्र को राज्यपाल विष्णु को इस प्रशासन पद्धति से आनन्द मिलता था। उसी आनन्द की प्राप्ति की ख़ातिर वे मर्त्य में उतर आते थे भेष बदल कर। वे बनते बहुरूपिया। मनुष्य के द्वार पर विचित्र वेश में आ खड़े होते। उन के द्वारा मनुष्य की मनुष्यता की परीक्षा बार-बार हो चुकी है। वे यों हैं स्वर्ग-लोक-वासी, मगर स्वर्ग में विचित्रता कहाँ? नित्य आनन्दमय है स्वर्ग—पर उस में दुख-दर्द से लिपटे मधुर काव्य का स्वाद नहीं है। देवता मात्र ही हैं पुण्यमय, मगर पाप का मनोहारी रंगीन रूप कहीं भी ढूंढ़े नहीं मिलता। पारिजात कानन के किसी पुष्प में कोट नहीं होता, सिंह-शार्दूल बिलकुल अहिंसक होते हैं, सर्पों का दल सदा नृत्य-मग्न रहता है, नग्न कान्ति, चिर यौवना स्त्री कनककामिनी अप्सराओं की भाव-भंगिमा में क़तई आसक्ति-लिप्सा का संकेत नहीं। शोक में, अनुराग में, दुख में, नैराश्य में, महत्त्व में और प्रेम-भाव में इन्द्र का स्वर्ग आलोड़ित नहीं है। इस लिए श्री विष्णु ने शतसहस्र-अयुत-नियुत भू-स्वर्गों को रचना की है इसी पृथ्वी पर। ईर्ष्यालु देवराज ने एक दिन स्थिर किया कि स्वर्ग और मर्त्य के किसी एक सन्धि-स्थल में वे अपनी एक खास राजधानी का निर्माण करेंगे। अतएव वेश बदल कर वे पृथ्वी पर उतर आये—और भ्रमण करने चल पड़े।

शिवलिंग गिरिमाला के मध्य केन्द्र में जहाँ 'महाभारतीय' पर्वत श्रेणी का पश्चिम प्रान्त है, उसी अंचल में मुक्तकेशी योगभ्रष्टा 'शारदा' उतर आयी है उत्तर से दक्षिण की ओर। उस की उन्मत्त तरंगों के आघात से चट्टानें बिखरी हैं क़दम-क़दम पर; झाड़ी-जंगलों के निवासी खौफ़नाक श्वापद दल त्राहि-त्राहि करते हुए प्राणों की आहुति दे रहे हैं उस के थपेड़े से। उस की अनगिनत लहरों के कारण बूढ़े वनस्पतियों की अवलुप्ति हो रही है। शारदा के ताण्डव से सृष्टि रसातल में जा पहुँची है अनेक बार।

मगर 'महाभारतीय' शैल-श्रेणी के प्रान्त में टनकपुर के निकट आ कर शारदा शान्त हो गयी है। यहाँ गूँजती है झनक-झनक नृत्यरत नूपुर की ध्वनि—उस के इस नृत्य से उस अंचल में हरियाली ने अपना मजमा जमा लिया है। भैरवी की आत्मघाती उन्मादना उत्तर प्रदेश के लखनावती के उत्तर आ कर शान्त हुई है।

टनकपुर है मध्य हिमालय का एक प्रधान तोरणद्वार। इस अंचल के पूरब में है नेपाल की सीमा और पश्चिम है दक्षिणी कुमायूँ—अर्थात् नैनीताल। इन दोनों के बीच सीमा रेखा खींचती है शारदा की ही प्रमुख धारा काली नदी। सुदूर उत्तर के हिमालयलोक में हैं धवली गंगा और काली—दोनों आसकोट नाम के पहाड़ी गाँव में जा मिली हैं और दक्षिण में उतर कर शारदा के नाम से प्रख्यात हुईं।

इन्द्र आये, धमका गये इसी दक्षिणी कुमायूँ के एक प्रान्त में। नहीं, यह दृश्य उन के सुखी स्वर्ग का नहीं है। सृष्टि यहाँ परम आश्चर्यमयी है, यह है स्वर्ग और मर्त्य का सन्धिस्थल। यहाँ की एकान्तिक जादूनगरी में छिप-छिपा कर उतर आती हैं अलकापुरी की अप्सराएँ; इस की उदार अनन्त पर्वत-श्रेणियों के नीचे विचित्र जंगली फूलों से शोभित चाँदनीमय उपत्यका में इन की नृत्य-मजलिस जम जाती है। ऊँहूँ, ऐसी चाँदनी स्वर्गलोक में कहीं नहीं है—वहाँ है मात्र नित्यज्योतिर्मय। वहाँ नदी है मन्दाकिनी मधुरभाषिणी, मगर इस नदी की तरह आत्मघाती हृदयविदारक हाहाकार मन्दाकिनी में नहीं है। समग्र विश्व का भ्रमण कर के यहीं खड़े हो देवराज ने तय किया, राजधानी के लिए यही स्थान उपयुक्त है। इस लिए वे वन-उपवन, तपोवन, पर्वत-कन्दरा, पहाड़ी नदियाँ, बाघ-भालू के विचरण क्षेत्रों को पार कर के पहुँचे एक नीलनयना सरोवर के निकट। उस सरोवर की सलिल-कन्दरा में बहुत दिनों तक रही नैनादेवी। उन्होंने उसी पाताली से ऊपर आ चाँदनी मुखरित अम्बर के नीचे खड़ी हो देवराज का स्वागत किया। इन्द्र ने सहास्य बताया—इसी भू-स्वर्ग में उन की राजधानी स्थापित होगी।

नैनादेवी के नाम पर नैनीताल बसा यह ठीक है, मगर नैनीताल का एक प्राचीन नाम भी था 'इन्द्रप्रस्थ'। इन्द्रप्रस्थ की विलुप्ति के बाद नैनादेवी पत्थर हो गयीं, इसी लिए सरोवर के पश्चिम के पहाड़ों की दीवारों पर आज भी पत्थर की देवी की मूर्ति खुदी हुई है। वे शक्तिरूपिणी हैं, इसी कारण वे सिन्दूर से पुती रहती हैं। पहाड़ की गोद में एक प्राचीन छोटा सा मन्दिर भी दीखता है।

'ताल' शब्द का अर्थ है सरोवर। नैनीताल प्रधानतः दो हिस्सों में बँटा है। एक ही ताल के दो भाग हैं—एक है मल्लीताल, जिधर नन्दादेवी, शिव और गणेश, राधाकृष्ण आदि के मन्दिर हैं; दूसरा है दक्षिणांश में, जो है नैनीताल का प्रवेश-पथ। समग्र नैनीताल की शोभा और सौन्दर्य का प्रमुख केन्द्र है नैनी 'ताल'। नैनीताल को छोड़ दक्षिण हिमालय में और कहीं भी इतने जलाशय नज़र नहीं आते। इस लिए इस सब ने हिमालय के उप-पार्वत्य इलाक़ों में बहुत ही आकर्षण पैदा किया है। इन तालों में प्रमुख हैं भीमताल, खुरपाताल, गरुड़ताल, नल-दमयन्ती ताल, सुखताल, रामताल, लक्ष्मणताल, नौकुचियाताल आदि-आदि। सुहाने शतदल की शोभा और कुमुदों का मिलन 'नौकुचियाताल' में देखने लायक़ है।

एक तरफ़ है शतद्रू और दूसरी तरफ़ काली गंगा—इन दो नदियों के मध्य भूभाग को जोड़ कर है समग्र कुमायूँ। कुमायूँ को अगर तीन भागों में बाँट दिया जाये तब नैनीताल पड़ेगा दक्षिणांश में, मध्यांश में अलमोड़ा, उत्तरांश में गढ़वाल। फिर भी गढ़वाल और अलमोड़ा की उत्तर-पूर्व-सीमा तिब्बत से जा मिली है। गढ़वाल पहले था पृथक्, कारण समतल भारत में कहीं भी उस का इलाक़ा नहीं पड़ता था—वह रहा कटा-कटा। अँगरेज़ शासन के बाद टिहरी-गढ़वाल आ मिला कुमायूँ से। असम से कश्मीर के बीच हिमालय के अन्य किसी विभाग में इतनी तुषारावृत चोटियाँ और कहीं भी इतनी क़रीब-क़रीब नज़र नहीं आतीं। समग्र भारत में कोटि-कोटि नर-नारियों ने कभी हिमालय के किसी अन्य खण्ड को अपने जीवन में और अपनी चिन्तना में इतनी श्रद्धा और अनुरागपूर्वक ठौर नहीं दिया। पश्चिम में है यमुना पर्वत, जिसे कहा जाता है 'बन्दरपंच', वहीं से देख कर इन श्वेत गिरि-शिखरों को किसी जरमन विद्वान् ने कहा था—'देवताओं के सिंहासन'। यमुना पर्वत के बाद श्रीकान्त, गंगोत्री, केदारनाथ, बदरीनाथ, शतोपंथ, कामेत, द्रोणगिरि, नन्दादेवी, त्रिशूल, पंचचूली, नन्दकोट आदि शिखर जगत् प्रसिद्ध हैं। इन में नन्दादेवी, कामेत, त्रिशूल, बदरीनाथ—ये सब से ऊँचे हैं। इन के फाँक-फाँक में है अनगिनत गिरिसंकट और कारवाँ पथ, जिस के भीतर से पश्चिम तिब्बत और मध्य एशिया की तरफ़ जाया जा सकता है। प्रधान और प्रसिद्ध गिरिसंकट है ठागा, माना, नीती, कांगड़ीबिगड़ी, दरमा, लिपूलेक आदि के पथों पर एक ज़माने से भारतीय और तिब्बती व्यापारी आते-जाते रहे हैं। बदरीनाथ से माना गाँव या तो शतोपंथ या कामेत के नीचे से सीधा उत्तर में चला गया है 'माना' गिरिसंकट की ओर, वही पथ गया है शतद्रू की तरफ़ भी। शतद्रू के उस पार गारटक का पथ मिलता है।

नैनीताल की पूरबी सीमा है कालीगंगा उर्फ़ शारदा, और पश्चिम सीमा हुई कोशी नदी। इस कोशी नदी का मूल नाम है सम्भवतः 'कौशल्या' और जहाँ तक हम जान पाये हैं यह नेपाल-बिहार के अन्तर्गत सूर्यकोशी, सप्तकोशी या अरुणकोशी की श्रेणी में नहीं आती।

नैनीताल में प्रवेश के लिए प्रमुखतः तीन राहें मिलती हैं। पश्चिम हिस्से में मुरादाबाद, रामनगर, रानीखेत का पथ। यह राह चली गयी है नैनीताल शहर के नीचे से अलमोड़ा की ओर। मध्य पथ सर्वापेक्षा सहज है—बरेली से काठगोदाम मात्र इक्कीस मील का मोटर पथ है। मगर सर्वापेक्षा वैचित्र्यपूर्ण पथ जो है, वह सहज साध्य नहीं है—वह है टनकपुर से नैनीताल की सड़क। इस सड़क में नदी-नाले, उपत्यका, जल-प्रपात, घना जंगल, असाध्य पहाड़ी इलाक़े और प्रकृति का परम ऐश्वर्य भण्डार अभि-यानकारी पर्यटकों का सदा स्वागत करता है। टनकपुर से मोटर-बस की सड़क चली गयी है सीधे उत्तर में—चम्पावत, लोहाघाट को पीछे छोड़ कर पिथौरागढ़ तक। इस इलाक़े में जगत् प्रसिद्ध शिकारी और भारत अनुरागी 'जिमकरवेट' बहुत अरसे तक अपने कृतित्व का परिचय देते रहे हैं। उन के निकट समग्र कुमायूँ आज भी कृतज्ञ है। हर वर्ष उन के नाम पर रुद्रप्रयाग में मेला लगता है।

नैनीताल को केन्द्र बना कर आधुनिक नैनीताल शहर बन गया है। उत्तम भारत के समतल में खड़े हो कर साहब ढूँढ़ते थे ठण्ड इलाक़ा। वस्तुतः अँगरेज़ों की अनुकूलता से ही भारत में एक के बाद एक सुन्दर पहाड़ी शहर बनते गये। डलहौजी, लैन्सडाउन, शिमला, मसूरी, शिलांग, यहाँ तक कि दार्जिलिंग का भी यही इतिहास है। इतिहास कहता है, बैरन नामक एक अँगरेज शाहजहाँपुर से मछली मारने नैनीताल आया। यह बात है सन् १८४१ की। उस ने हो इस सुहावने पहाड़ी इलाक़े की सूचना अपने आक़ाओं को दी। इस के बाद सिपाही विद्रोह के बाद से अँगरेज़ों के लिए यह एक आंचलिक शासन का केन्द्र बना रहा। ताल के चारों तरफ़ हम लोग जो नैनीताल शहर देखते हैं वह है बहुत कुछ निचला हिस्सा। यहाँ उत्तर-पूर्व और दक्षिणांचल मिला कर ही बाज़ार, होटल, निवास आदि प्रतिष्ठित हैं। तरह-तरह के कारबार, मनिहारी की दुकानें यहाँ नज़र आती हैं। ऊपरी हिस्से में है राजधानी और सरकारी दफ़्तर। आज बहुत ज़रूरी न होने पर प्रान्तीय सरकार ग्रीष्मकाल में लखनऊ से स्थानान्तरित न होती। नीचे की तरफ़ कुछ कम ठण्डी हवा बहती है, मगर ठण्ड बहुत पड़ती है। उत्तर-पूर्व के एक हिस्से में, खुला हुआ होने की वजह से, जाड़े में ठण्ड उतर आती है, तब वहाँ के निवासी काम-काज बन्द कर के नीचे की तरफ़ चले जाते हैं। जाड़े में पश्चिम पहाड़ के पीछे से जन्तु-जानवर ताल के जंगल की चौहद्दी में उतर आते हैं। यह ताल है नैनीताल का प्रमुख आकर्षण।

शहर का निचला हिस्सा चहबच्चे जैसा है या नहीं, यह वहाँ खड़े हो कर बहुत बार सोचा है। ताल की शोभा अपरूप है, मगर हिमालय की सुदूर व्यापकता का स्वाद निचले हिस्से में नहीं मिलता। कशमीर का शेषनाग, गंगावल, उलर सरोवर—इन के चारों ओर है अनन्त शान्ति। संसार-विख्यात हिमालय विशेषज्ञ स्वामी प्रवणानन्द का कहना है, मानसरोवर के प्रान्त में जा खड़े होने पर मनुष्य के दिग्भ्रम की कल्पना

कैलास शृंग के चारों ओर सम्पूर्ण आकाश में और तिब्बत में चक्कर काटती रहती है। किन्तु उस की तुलना में नैनीताल का यह जलाशय जैसे अवरोध में अवस्थित हो। स्थानीय लोग यही जानते हैं कि इस का पानी स्वास्थ्यकर नहीं है, इस लिए कभी-कभी इस का पानी निकाल देने के लिए एक नाली बना दी गयी है। मगर नाली के दक्षिण में जो प्रवाह-पथ दीखता है वह प्राकृतिक है। इस के अगल-बग़ल स्थानीय बस्ती का घेराव है। पुराने घर-मकान, गलीकूचे, गन्दगी और पनारे। पहाड़ी शहरों की बस्तियाँ कहीं भी साफ़-सुथरी नहीं हैं। जहाँ भी जाओ—दार्जिलिंग, मसूरी, शिमला, अलमोड़ा—ये सभी एक ही प्रकार के हैं। वर्ष में कुल छह महीने का सीज़न है, बाक़ी छह महीने ग़रीबी।

चारों तरफ़ के अवरोध की जो बातें उठायी हैं, वे प्रत्येक हैं पहाड़ की चोटियाँ। किसी का नाम है 'आयरपट्ट', किसी का 'देवपट्टी। उत्तर हिस्से में है 'चायनापीक', इधर ही हैं आलमा, लारियाकान्ता, शेर-का-डंडा—ये चारों ओर से जैसे ताल को घेरे हैं। मगर हज़ार फ़ुट ऊपर पहुँचिए तो पृथ्वी विशाल ज्ञात होती है। जिधर देखो—उत्तर में अनन्त पहाड़ की चोटियाँ—पूरब में भी ऐसा ही, पश्चिम में भी यही। सिर्फ़ दक्षिण में दीख पड़ता है अन्तहीन हिन्दुस्तान का धूसर-अस्पष्ट समतल। पूर्व-पर्वतों के 'टिफिन टप' के ऊपर चढ़ कर दिन भर केवल मात्र हिमालय की परमाश्चर्य महाश्वेत शोभा निरखते-निरखते ही दिन व्यतीत हो जाता है। जो नैनीताल आते हैं वे पानी के किनारे उतराते रहने में क्षतिग्रस्त महसूस करें क्यों नहीं।

छोटी सी कहानी याद हो आयी है। नैनीताल में नौकाविहार के समय मल्लाह ने कहा—पचास वर्ष पहले एक साधु का यहाँ आविर्भाव हुआ, उस ने अँगरेज़ गवर्नमेण्ट के खिलाफ़ एक बड़ा तूफ़ान खड़ा कर दिया। उसे स्वप्न आया था, कि इस ताल के किनारे नैनादेवी का मन्दिर नहीं बनाने से उस का निस्तार नहीं है। उस साधु ने यह माँग की कि यहाँ नगर का विस्तार किसी भी प्रकार से नहीं करने दिया जायेगा। अँगरेज़ गवर्नमेण्ट को लगा कि वह उसे यहाँ से उखाड़ने की चेष्टा में है। उस साधु के पीछे पुलिस लगा दी गयी। साधु डरा नहीं। उस ने वहाँ बिन बादल की बदली पैदा कर दी कि पूरा नैनीताल थरथर काँपने लगा। आँखें तरेर कर वह कहता—ऐसा भूकम्प वह लायेगा कि लाटभवन धूल में मिल जायेगा। लगता है, उस साधु में कोई अलौकिक शक्ति थी, इस लिए अँगरेज़ ने उस की माँग मंज़ूर कर ली और नैनादेवी के मन्दिर की खातिर कुछ ज़मीन छोड़ दी। मगर फिर भी कई कारणों से दोनों पक्षों में संघर्ष होता रहा, और साधु को समुचित दण्ड देने के लिए जब गवर्नर खुद पुलिस-फ़ौज ले कर आगे बढ़े तो अकाल वर्षा की वजह से पहाड़ ध्वस्त हो कर नीचे गिर पड़ा। साधु उसी समय अन्तर्धान हुआ ज़रूर मगर जाते-जाते यह श्राप दे गया कि चालीस वर्ष के बाद अँगरेज़ी साम्राज्य संसार से रसातल में चला जायेगा।

नौका के मल्लाह ने बड़े गौरव और उत्तेजना के साथ यह कहानी सुनायी। वहाँ

वहाँ आज भी एक साधु देखा है, मगर वह अपने एक भक्त के साथ ताल के किनारे के तल प्रदेश में एक गुफा में रहता है। जल के ऊपर ही उस का डेरा है, और उसी में लतापत्रों से ढकी है वह गुफा—गुफा का मुँह गेंदे के फूलों से ढका हुआ है। वे अपना डेरा उसी जगह डालते हैं जो जगह सब के द्वारा छोड़ी हुई होती है। पेड़ के तले, नदी के किनारे, पहाड़ों की कन्दराओं, मन्दिर के बग़ल में, मार्ग के किनारे—जहाँ किसी को कोई जरूरत नहीं, जहाँ कोई निषेध नहीं। भीख माँगते नहीं वे, मगर आकर्षण पैदा करते हैं। बातें नहीं करते, रहस्य गहरा देते हैं। पलकें उभार कर देखते हैं—मानो आत्मा की निगूढ़ जिज्ञासा का आखिरी जवाब देते हैं। चुप रहते हैं—सृष्टि का सारमर्म समझ लो। चरस की चिलम में दम लगा कर खींचने का मतलब है कि जीवन को फूँक दिया। नमन करो और आगे बढ़ो।

नौका हमारी बह चली। शाम-सुबह बस इस घाट से उस घाट। सूरज ने धूप-किरणें बिखेर कर स्वास्थ्य-सुधार का साधन पैदा कर दिया है। हर पहाड़ की छाया ताल में पड़ रही है—उस में प्रतिबिम्बित है नीलकान्त आकाश। यहाँ शहर जरूर है—मगर सम्पूर्ण शान्त। जल में, आकाश में, पहाड़ में, हवा में जैसे दिन भर प्रश्नोत्तरी का क्रम जारी है। चाँदनी में ताल के तीर पर ओट में बैठे हैं सभी। मानो अब इन्द्र-सभा के नाच की मजलिस जमने वाली है।

बरामदे के नीचे से रह-रह कर गुजरते रहते हैं हवाखोर घुड़सवार। मोटर भी एकाध गुजर जाती है। पहाड़ी शहरों में आने पर भारतवर्ष लगने लगता है सिमटा-सिमटा। छत्तीस जातियाँ बिखरी रहती हैं समतल भारत में, बृहत्तर क्षेत्र में उन्हें ढूँढ़ निकालना मुश्किल है। मगर यहाँ की कम परिधि में वे खुद प्रकट हैं। यहाँ आने पर घर से अधिक बाहर ही रहना है। बाहर आना ही होगा, सभी के बीच रहना ही होगा। इसी कारण हेमन्त की स्निग्ध हवा में उस की मीठी धूप में सर्वव्यापी आनन्द की जो मजलिस जमती है उस में आ उपस्थित होते हैं मराठी और मद्रासी, पंजाबी और राजस्थानी, गुजराती और उड़िया। बालक-बालिकाएँ अपने चमकते चेहरों में लखनऊ से आये हैं, वे पहाड़-पहाड़ों पर जायेंगे 'एक्सकारशन' में। इन की बग़ल में बंगाली लड़के-लड़कियों के निर्जीव चेहरों की कल्पना कर के लज्जा बोध करता हूँ। स्वास्थ्य, शिक्षा एवं कार्य-दक्षता में बंगाली आज भारत में कहीं भी नहीं हैं। आज देश के चारों ओर से भीतर और बाहर जब द्रुत गति जीवन को पुकार रही है, तब बंगाली वात्सल्य आँचल के नीचे खड़े हो कर भिक्षा-पात्र बढ़ा रहे हैं। पोखर में बंगाली पैर डाल कर पड़े हैं, राजनीति ने उन के जीवन में यक्ष्मा को पैदा किया है, दारिद्र्य ने सौंपा है उन्हें दैन्य, अन्तर्द्वन्द्व ने उन के जीवन में संसार भर की पाशविक वृत्तियाँ पैदा कर दी हैं। बाहर के सरल बृहत् उदार और सर्वप्लावी प्राणशक्ति की तरफ़ बंगाली की नज़र नहीं है। सब से पहले चाहते हैं नौकरी, बाद को हड़ताल। आजादी की खातिर जिस बंगाली ने

वरण की थी मृत्यु, आजादी के बाद वही बंगाली जैसे माँग रहा है अपमृत्यु !

भद्र समाज के वातावरण से निकल कर गहराई में उतर कर स्थानीय लोगों की जीवन-यापन-पद्धति देख पाता। बाहर से आये तो बहुत हैं—सब के सब छोटे-छोटे व्यापारी। और भी जो हैं वे हैं नेपाली या गढ़वाली। वे बोझा ढोते हैं, दुकानों में काम करते हैं, घोड़ा रखते हैं, गली-कूचों में पड़े रहते हैं। नेपाली आ कर होटलों में नौकरी करते हैं, ड्राइवरी करते हैं या सैलानियों की ग़ुलामी करते हैं। कुमायूँनी घरों में पड़े-पड़े कम्बल बुनते हैं, दर्ज़ी का काम करते हैं, फल और सब्ज़ी बेचते हैं या फिर हलवाई की दुकानें खोल कर बैठते हैं। इन सब का जो जीवन-क्रम है उस पर दृष्टि का नहीं जाना अच्छा है। जाड़े के चार माह वे कमरे में सिकुड़े पड़े रहते हैं। शाक-सब्ज़ी सुखा-सुखा कर घरों में रख लेते हैं, खेत-खलिहानों में काम रहता नहीं, हारी-बीमारी में दवा जुटती नहीं, बाहर के मकान मालिक उन पर जुल्म करते हैं—किराया चाहिए। चैत का महीना आया कि उन में नयी आशा का संचार हुआ—'चेंजरों' की प्रतीक्षा में घड़ी-पल गिनते रहते हैं। जो खबर रखते हैं वे जानते हैं, पहाड़ी शहरों के निचले स्तर रोग और ग़रीबी से ग्रसित होते हैं। दार्जिलिंग में, मसूरी-अलमोड़ा में, श्रीनगर में—सर्वत्र का यही एक इतिहास है। सरकार देश को खबर से बेखबर, पहाड़ों की खबर हमेशा उन्हें मिलती भी नहीं।

महादेव की चोटी में गंगा जैसे क़ैद हुई, ठीक ऐसे ही है नैनी सरोवर, नैनीताल शहर के घेरे में क़ैद। वहाँ से सात मील नीचे उतरने पर पड़ता है 'भवाली'—एक छोटा सा शहर। उधर से चढ़ा, इधर से उतरा। यह वही प्रधान राजपथ है—जो रामनगर से आ कर अलमोड़ा की तरफ़ चला गया है। सड़क बहुत बढ़िया है और पार्वत्य धूपछाँह के अनुरूप है। यह हमारा परिचित पथ है। फिर भी हम आये हैं बहुत दिनों के बाद। पुराने मित्रों की आत्मीयता मानो बुला रही हो ओक और देवदार के वनों में से। झाऊ के जंगल में हवा घुमड़ रही है, मानो अतीत कथाएँ मुझे पा कर फूल उठी हैं। इस सीज़न के नये वन-पाखियों ने झरने के अगल-बग़ल डेरा डाल दिया है, पहाड़ी नदियों की जीवन-धारा सूख आयी है, चट्टानों से शैवाल झर गये हैं—मानो निश्वास छोड़ा हो सर्वग्रासी महाप्राचीन ने। इधर-उधर ताकता हूँ, मेरी सम्पूर्ण सत्ता एकाग्र हो कर सब कुछ को ग्रहण कर लेती है। हर ग्रेनाइट चट्टानों में, हर आर्किड के बीज में, हर फूल के स्तबकों में, हर निकुंज की पुष्प-लताओं में वही आत्मीयता है इन्हीं हमारे अतिपरिचित महलों में। मगर सम्पूर्ण परिचय के बाहर भी वह हमारे लिए अपरिचित—अजाना है। इन्हें कलेजे से लगाया है कभी, गोद में ले कर रो चुका हूँ कितनी बार। जैसे जन्म-जन्मान्तरों में देखा है, हज़ार-हज़ार वर्षों से जाना-पहचाना है। अनगिन वंश-परम्पराओं में, महाकाल के कल्प-कल्प में मैं उन्हें देखता आ रहा हूँ विवर्तन के मध्य-मध्यान्तर में से। मेरी नसों में से बह गये हैं शत-सहस्र पहाड़ी झरने, मेरे अस्थि-पंजरों की तहों के अनगिनत शिलासनों पर प्राचीन ऋषि-मुनियों ने योगासन

बिछा रखा है, हम अपने ही हृदय को एक छोर से दूसरी ओर तक धारण कर रखे हैं देवसिंहासनों पर हिमालय की अनगिन चोटियाँ। जन्म और मृत्यु का अतीत अखण्ड चैतन्य हमी हैं—वही मैं अपने आदि चैतन्य के कल्पान्तरों में, देहान्तरों में, जन्मान्तरों में, युगान्तरों में विवर्तित है। पुराणों, इतिहासों, अतीतों, आधुनिक भविष्यों में—वही मैं अजर, अमर, अव्यय भारतात्मा का नित्य प्रतीक हूँ। हमारा क्षय नहीं है, हमारी लय भी नहीं है। हमारे अहंकार ने हमें बारम्बार उन के बीच ला खड़ा किया है। उन्होंने भाषा दी है मेरे मुँह में, प्राण डाला है देह में, अँधेरी रात में ताराओं के ज़रिये आमन्त्रण भेजा है, हेमन्त की हवाएँ सुरभि श्वास लेती आयी हैं हमारे वातायनों में कितनी ही बार।

भुवाली के पहाड़ों की गोद में एकान्तिक वन के छायामय अंचल में बना है यक्ष्मा के रोगियों के निमित्त निवास। भुवाली शहर है छोटा सा, मगर इस यक्ष्मानिवास की वजह से यह शहर सभी का सुपरिचित है। अस्वस्थ बिना हुए ऐसा काव्य-मधुर स्थान क़िस्मत में नहीं जुटता—यह जैसे जीवन की एक ट्रेजेडी है। कलकण्ठी पाखी और सरीसृपों की बोलियों के अलावा यह पूरा प्रान्त जन-चिह्न हीन सा है। रोगी निवास से मामूली उतराई पथ पर अन्दाजन आधा मील उतर कर भुवाली का छोटा सा जनपद है। यह चौमुहानी है—सामने पहरेदार खड़ा ट्रैफ़िक नियन्त्रित कर रहा है। पास का मोटर-बस वाला स्टैण्ड कुछ चौड़ा है। पंक्तिबद्ध पहाड़ों के जमघट के पार दृष्टि अधिक दूर जा नहीं पाती। पहाड़ों की देह पर से एक झर-झर झरना उतर आया है।

यहाँ से पाँच मील पर है 'भीमताल'। सड़कें पहाड़ी हैं मगर बहुत कुछ उपत्यका की पगडण्डी जैसी। दाहिनी तरफ़ एक पहाड़ के नीचे ही नीचे दक्षिणांचल की ओर एक सड़क चली गयी है। भुवाली के छोटे से शहर में फिर यथासमय लौट कर आना होगा।

भीमताल की सड़क वैसी चिकनी नहीं है, कुछ ऊबड़-खाबड़ है। यहाँ के किसी ऊँचे पहाड़ पर चढ़ने पर दक्षिण कुमायूँ की तराई का आभास मिल जायेगा। मगर बहुत कुछ कर्सियांग अंचल की तरह धूसर सा है। यह सड़क भीमताल हो कर आँकी-बाँकी होती हुई जैसे कहीं उपत्यका के पथ में खो गयी है। हमारी गाड़ी जब यहाँ पहुँची उस समय मध्याह्न बीत चुका था।

भीमताल का सरोवर परिमाण में नैनीताल की अपेक्षा कुछ बड़ा है, यह मेरी धारणा है। मगर नैनीताल प्रायः दो हज़ार फ़ुट नीचे है, इस कारण यहाँ धूप में तुर्शी अधिक है। ऊँचाई पर हो या निचाई में हो, पहाड़ी इलाक़ों में धूप खूब तेज होती ही है। हेमन्त में हरिद्वार हवा के कारण ठण्डा हो जाता है, मगर ऋषिकेश, लक्ष्मणझूला का इलाक़ा गरम होता है। सिर्फ़ पन्द्रह-सोलह मील के अन्तर में यह फ़र्क़ पड़ जाता है। सिर्फ़ यही नहीं, तुषार राज्यों में भी ऐसा ही है। पंचचूली की शृंग-विजय के वक़्त

जिन्हें पहली बार सफलता मिली थी, उन्हीं दिल्ली के इंजीनियर मि० पी० एन० निकोर का कथन है, "साढ़े बाईस हज़ार फ़ुट के ऊपर तेज़ धूप-किरणें उन्हें क्षण-क्षण में जैसे झुलसा रही थीं। मगर हवाएँ चल रही थीं सर्वनाशी। उसी हवा से बनता है कुहासा, फिर बर्फ़ीली झंझा।"

भीमताल है प्रसिद्ध अपनी अतल गहराई की वजह से। यहाँ आ कर देखता हूँ, ताल बिलकुल निर्जन है, एकदम एकाकी। उस पार है एक विशाल पहाड़ की चोटी और उस का नाम है हिडिम्बा पहाड़। इस इलाक़े में सिर्फ़ यही एक ताल ही नहीं है, यहाँ से कुल तीन-तीन मील के अनन्तर सात ताल मिलते हैं। यह पहले बता चुका हूँ। क़रीब आ कर देखा, भीमताल सरोवर के दक्षिण-पूर्व में एक प्राचीन शिव-मन्दिर है। नाम है भीमेश्वर महादेव। दूसरे हैं पाण्डव भीम, जिन्होंने हिमालय का खूब परिभ्रमण किया। असम में हिडिम्बापुर (डीमापुर), कोहिमा अर्थात् हिडिम्बा पहाड़, नेपाल में भीमपैड़ी, हरिद्वार में भीमगोड़ा—इस के बाद भी पंजाब और कशमीर में कितने निशान मिलते हैं। धर्मराज युधिष्ठिर के नाम पर उत्सर्गित एक भी देवस्थान तो कहीं नज़र नहीं आया। श्रीरामचन्द्र फैले हैं जैसे भारत में सर्वत्र वैसे ही हिमालय भी सर्वत्र। श्रीनगर के उत्तर पथ में सिन्धु नदी अतिक्रमण कर गिलंगिट में प्रवेश करने के तोरण-द्वार का ही नाम है रामघाट। पाकिस्तान अधिकृत कशमीर इलाक़े में पड़ने वाले एक जनपद का नाम है रामपुर। पश्चिम पाकिस्तान के एक बड़े शहर का नाम है—रामनगर, जो है स्यालकोट के दक्षिण में चन्द्रभागा नदी के तीर पर। अर्थात् रामघाट से सेतुबन्ध रामेश्वरम् तक भारतवर्ष एक सूत्र में गुँथा हुआ है।

भीमताल सरोवर के ठीक मध्य में एक छोटा-सा द्वीप आँखों के सामने ही है—कलकत्ते के 'लेक' में जैसा दीखता है। गिरिलोकों में नदियों की बहुलायत है, मगर जलाशयों की संख्या कम है। उसी दिग्घीह्लद सरोवर—इन का आकर्षण अधिक है। इस सरोवर के पश्चिमी पहाड़ों की आदिवासी पहाड़ी महिला थीं परम रूपवती, श्रीमती हिडिम्बा। लगता है उन्होंने भीम की अपार शक्ति की कहानियाँ सुन कर, आसक्त हो, पाण्डवों को यहाँ निमन्त्रित किया था। शायद पहाड़ी नारी की कठोर जवानी पुरुषों को अभिप्रेत रही हैं। भीम आये यहाँ और दोनों प्रेमासक्त हो विवाह बन्धन में बंध गये। सम्भवतः इसी सरोवर के बीच के उस जनहीन द्वीप कानन में उन्होंने सुहागरात मनायी थी। यह घटना ठीक यों ही महाभारत में वर्णित है, या नहीं, स्मरण नहीं।

एक दीवाल के पीछे से भीमेश्वर महादेव के मन्दिर की चौहद्दी में जा पहुँचा। वट वृक्षों की छाया में मन्दिर का आंगन है—निकट ही है बस्ती। झुर-झुर हवा बह रही है। छोटा सा एक पण्डा परिवार यहाँ रहता है। शिव की बग़ल में ही हैं पार्वती। गणेश रहेंगे ही और सिन्दूर से पुते महावीर भी अवश्यम्भावी हैं। हनुमान् हैं शैव भारत के शक्ति-प्रतीक। पत्थरों की बेदियाँ बनी हैं, उन्हीं के एक तरफ़ बैठ कर कुछ क्षण

आराम किया गया। मन्दिर की तरह ऐसी मधुर अनाहत विश्राम की जगह कहीं नहीं होती। पेड़ों की ठण्डी छाया में हिमालय की हवा में एकान्त मन्दिर के एक कोने में पलक झपकाये पड़े रहो—साथ ही अगर हो आकाश-पथ के पथिक की चहक, पास के नालों में सरोवर सलिल की कलकल ध्वनि, तब तो उस सौन्दर्य-चेतना की सिहरन से आकाश की अनन्त नीलिमा भी सिहर उठे क्यों नहीं। बहुतों को विश्वास नहीं होगा—बात-बात में हम स्वर्गलाभ करते हैं।

अनार-वन से सट कर चल रहा हूँ। छोटी-छोटी नारंगियाँ लटक रही हैं पेड़ों पर। 'वासना का सब से श्रेष्ठ सुख है रसना में'—फलों के बाग़ों का रूप देख कर भीमेश्वर महादेव की बात ही भूल बैठा। सूखे गले में फ़ौरन ही दो-चार घूँट रसों का बिना गये जीवन व्यर्थ है। दार्जिलिंग की भोटिया लड़कियों के दोनों गालों की तरह लाल सेबों के ऊपर लाली छायी है—भीमेश्वर सिर-आँखों में रहें। मगर फलों के बग़ीचे सीमा के बाहर हैं—लम्बी साँस खींचने में कोई लाभ नहीं। उन रंग-बिरंगे फलों के पीछे लालची महाजनों का गिरोह लगा रहता है। अन्तर्प्रादेशिक व्यापार का षड्यन्त्र उन का हाथ बँटाता है। फलों को वे सड़ा देंगे। यह ठीक, मगर सस्ते दामों में बेच कर बाज़ार ख़राब नहीं करेंगे। लालच का फन्दा वे डाले बैठे हैं—हर शहर में। निहित स्वार्थी की सफलता फलों के रस में सरस है। हमारी गाड़ी चली जा रही है चढ़ाई पथों पर।

पहाड़ों के नीचे-नीचे अवलोकता चला जा रहा हूँ। नयी फ़सल का काम चालू है। कहीं फूलों के बग़ीचे में प्रयोग-परीक्षण हो रहा है, कहीं लता-पत्रों में नये ढंग का आविष्कार का काम चल रहा है। उसी में फल-फूल भी लग आये हैं, आलू की खेती हो रही है। बहुत सी जगहों में रेशम-कीट और मधुमक्खियाँ पाली जाती हैं।

एक खेतीवाला गाँव पहाड़ से सटा है। इस का नाम शायद 'विनायक' है। हो भी सकता है। मगर यहाँ से एक सड़क चली गयी है मुक्तेश्वर—चौदह मील चढ़ाई और चौदह मील उतराई पार कर के। यह बात शायद लोग भूल चले हैं कि मुक्तेश्वर एक तीर्थ स्थान है। क्योंकि प्रायः साठ वर्ष पूर्व भारत सरकार ने मुक्तेश्वर पहाड़ की चोटी पर एक पशु चिकित्सा और गवेषणागार बनवाया था। आज वे संस्थाएँ बड़ी हो गयी हैं और भारत के विभिन्न अंचलों से काम करने वाले तथा विद्यार्थी यहाँ तरह-तरह के कामों से आते हैं। मुक्तेश्वर के चारों तरफ़ कुमायूँ की मनोरम उपत्यकाएँ फैली हुई नज़र आती हैं और इस मुक्तेश्वर पर खड़े हो कर हिमालय की सैकड़ों मीलों में फैली पूरे आकाश को चूमने वाली चोटियों की छटा का आनन्द उठाया जा सकता है। विनायक अथवा रामगढ़ से मुक्तेश्वर की सड़क पर आज भी गाड़ी नहीं चलती। पैदल या घोड़े पर सवार हो कर ही चौदह मील रास्ता तय करने में सुविधा है।

हमारी गाड़ी आ खड़ी हुई 'रामगढ़' में। यहाँ निकट ही एक डाकबँगला है। यह रामगढ़ व्यापार का एक बड़ा केन्द्र है। मगर शहर नहीं, साधारण एक जनपद है।

ऊपर और नीचे कई कच्चे-पक्के घर नज़र आ रहे हैं। रामगढ़ की चोटी पर की उपत्यका के ऊपर मोटर आ खड़ी हुई। इस के आगे नहीं जा सकती। पहाड़ के बहुत नीचे से बह चली है रामगढ़ नदी। बहुत दिनों की बात नहीं है, सौ-डेढ़ सौ वर्ष पहले यह इलाक़ा चीनियों के क़ब्ज़े में था। वे यहाँ चाय की खेती करते थे। आज 'चायना-पीक' उन की संपत्ति की साक्षी है। यह इलाक़ा जिस के दखल में था, वे थे शायद यहाँ के ही 'हरतोला' स्टेट के राजा कृष्णपाल सिंह। आज भी रामगढ़ के नीचे उन की भाँति-भाँति की राज-कीर्तियाँ स्थापत्य के रूपों में पड़ी हैं। इस के बाद एक-एक कर के आये मि० कामारफोर्ड और मिस्टर ऐलेन। देखते-देखते ही आ पहुँचे थे अजयगढ़ के राजा घनपति बिड़ला और जुग्गीलाल कमलापति। छोटे से रामगढ़ की मजलिस गरम हो उठी।

बर्फ़ीली चोटियाँ बहुत दूर पर हैं, मगर बादल साफ़ हो और वे चोटियाँ बादल से ढकी न हों तो उन का चित्र यहाँ से लिया जा सकता है। उस तरफ़ अपलक दृष्टि से देखता हुआ जब खड़ा था तब एक मामूली आदमी आ कर बोला—पास में वह जो ऊँचे पहाड़ पर घर की तरह दीख रहा है उसी मकान में कुछ दिनों तक रवीन्द्रनाथ रहे।

मेरा चेहरा देख कर उस आदमी ने सन्दिग्ध स्वर में फिर कहा—रवीन्द्रनाथ ठाकुर का नाम नहीं सुना? जिन्हें भारत-कवि कहा जाता है! दुनिया भर के इनसान के प्यारे हैं जो!

मामूली आदमी के चेहरे पर उस दिन जो भारत-कवि के विषय में गौरव-बोध देखा, वह अविस्मरणीय है। रामगढ़ की पहाड़ी चोटी पर सम्भवतः सन् १९१४ में रवीन्द्रनाथ कुछ दिनों के लिए रहे। यहाँ बैठ कर अपने सुदूर-व्यापी तुषार शिखाओं को दृष्टिगत कर के उन्होंने बहुत सी कविताएँ भी लिखी हैं। सिर्फ़ एक ही बार नहीं, कुमायूँ पर्वतमाला में कवि बारम्बार आये। उस दिन यह जान कर अचरज और आनन्द बोध किया था कि यहाँ के अधिवासी रवीन्द्रनाथ के पड़ाव की कहानी को बड़े जतन के साथ निबाहते आ रहे हैं। कवि जिस मकान में टिके थे, वह उन का अपना है या नहीं, यह मुझे पता नहीं। सुनने में आता है कि यह बिड़ला का मकान है।

काठगोदाम से अलमोड़ा तक मोटर-पथ चालीस मील से भी अधिक है और रानीखेत हो कर जाना पड़ता है। मगर इधर से जो जाते हैं—यानी काठगोदाम, भीमताल, रामगढ़ और फिउड़ा हो कर जो सड़क चली गयी है अलमोड़ा, वह है मात्र इकतालीस मील। असुविधा यही है कि रामगढ़ से फिउड़ा के पथ से अलमोड़ा जाने पर प्रायः बीस मील सड़क पैदल या ऊँचे दर वाले 'डण्डी' से अथवा पहाड़ी टट्टू पर सवार हो कर जाना पड़ता है। यह सड़क बंगालियों के लिए बहुत परिचित है। इस सड़क से एक दिन स्वामी विवेकानन्द, जगदीशचन्द्र बोस और देशबन्धु चितरंजनदास गये थे। देशबन्धु अकेले नहीं गये। उन के साथ थीं श्रीयुक्ता वासन्तीदेवी, उन के पुत्र चिररंजन उर्फ़

'भोम्बल' पुत्री श्रीमती कल्याणीदेवी उर्फ़ 'बेबी'। सन् १९२५ के अक्टूबर में देशबन्धु भागलपुर से 'मायावती आश्रम' में जाने के खयाल से रवाना हुए और भीमताल तथा रामगढ़ की सड़क पकड़ कर अलमोड़ा पहुँचे, फिर वहाँ से मायावती की दूसरी सड़क से गये। वे गये थे घोड़ा डण्डी आदि की सहायता से क्योंकि उस समय भारतवर्ष के किसी भी अंचल में मोटर-बस का यातायात प्रारम्भ नहीं हुआ था। मोटर की सड़क भी उन दिनों नहीं थी। देशबन्धु का वह 'मायावती आश्रम' यात्रा की कहानी का वर्णन किया श्री उपेन्द्रनाथ गंगोपाध्याय ने अपने 'मायावती पथे' नामक पुस्तक में।

आज भी मोटर-पथ मायावती तक नहीं है। मगर आज अलमोड़ा तक और इधर रामगढ़ तक गाड़ी मिलती है। अलमोड़ा से मायावती पैंतालीस मील से ज्यादा है। आजकल टनकपुर से पिथौरागढ़ तक मोटर-बस चलती है। इस एक सौ मील लम्बे मार्ग के बीच चम्पावत और लोहाघाट नामक जनपद पड़ता है। 'मायावती वेदान्त आश्रम' लोहाघाट से अन्दाजन तीन मील है। निर्जन जंगल पर्वतीय भू-भाग की आश्चर्यमय महिमा, पहाड़ी नदियाँ और झरने का नयनाभिराम दृश्य के बीचोंबीच 'मायावती अद्वैत आश्रम' प्रतिष्ठित है। इन जनहीन पहाड़ी भू-भाग आश्रम से जुड़ी आधुनिक अस्पताल को देखने पर सचमुच बड़ा अचरज होता है।

कश्मीर में, पंजाब में, हिमाचल में, नेपाल में—जो कुछ कहीं भी इतना साफ़ नजर नहीं आता, वह प्रत्यक्ष हो उठता है कुमायूँ के तीन ज़िलों की पर्वत श्रेणियों के अन्दर ही अन्दर बसे ब्रह्मपुरा, गढवाल में कूर्माचल, अलमोड़ा में और इन्द्रप्रस्थ नैनीताल में। पहाड़ी प्राकृतिक सौन्दर्य हिमालय में प्रायः हर जगह निखरा हुआ है—मगर उन के साथ इतनी आध्यात्मिक जीवन का स्वाद, ऐसा मित्रभाव, ऐसी विरागी मन की पीड़ा कुमायूँ पर्वतमाला की भाँति और कहीं नहीं है, योगी, संन्यासी, वैरागी, भिक्षु, तपस्वी, दार्शनिक, तत्त्वज्ञानी, वेदध्यायी, वेदान्तिक—लगता है हिमालय के दूसरे किसी अंचल में इस प्रकार ये लोग अनगिन नजर नहीं आते। सम्भवतः हिमालय के और किसी भी भूभाग से एक दृष्टि में इतनी बर्फ़ की चोटियाँ अगल-बग़ल नजर नहीं आतीं। इस प्रकार और कहीं से भी हिमालय बुलाता नहीं। समग्र कुमायूँ में अनगिनत गंगा की विकलता व्याप्त है। गौरीगंगा, कालीगंगा, विष्णुगंगा, दूधगंगा, आकाशगंगा, पातालगंगा, भागीरथीगंगा, ऋषिगंगा, केदारगंगा, गरुड़गंगा, पिन्दारगंगा और भी बहुत सी गंगाएँ हैं। मगर सभी गंगा की धाराएँ जा मिली हैं आयावर्त की मूल गंगा में। इन एक-एक गंगा की राह पर लोक-दृष्टि की ओट में साधु-सन्तों ने आश्रम की स्थापना की है, रो चुके हैं बहुत सारे अतृप्त हृदय, सिसकते रहे हैं, अकारण ही, अनेक जीवन।

कोई एक अमरीकी महिला श्रीमती सेवियार अपने पति के साथ कभी मायावती के अरण्य प्रान्त में आ कर ठमक गयीं। तुषार पर्वतराज की शोभा यहाँ अपरूप है। कभी लोहितवर्ण, कभी स्वर्णांग, कभी गैरिक, कभी वे हो उठते हैं हीरक ज्योतिर्मय। भारतवर्ष के मेघाच्छन्न आकाश में प्रभात, मध्याह्न, अपराह्न और सन्ध्या में जो वर्ण-

वैचित्र्य का अश्रान्त राग-रंग दीख पड़ता है, उसी की अपरूप जादूगरी मेरु, मन्दार हिमालय को सम्भवतः उस दिन जादूनगरी में बदल दिया था। इस महिला ने वही दृश्य देख कर मायावती के इस एकान्तिक अंचल को छोड़ना नहीं चाहा। यहाँ उन दोनों ने एक घर, एक बाग़ बनाया। दोनों का सम्भवतः उद्देश्य रहा हो कि यहाँ दोनों ही आध्यात्म जीवन यापन करें। इस के बाद वे दोनों ही स्वामी विवेकानन्द के निर्देशानुसार और स्वामी स्वरूपानन्द की सहायता से एक अद्वैत आश्रम की प्रतिष्ठा की। बाद को जब वह महिला भारत त्याग करती है, तब यहाँ की सारी सम्पत्ति रामकृष्ण मिशन को दान कर गयी। मायावती आश्रम में आज भी वह महिला 'मदर' के रूप में विदित है। उस महिला की उदारता पर स्वामी विवेकानन्द प्रसन्न हुए और सम्भवतया १९०१ में प्रथम बार स्वामी जी मायावती पहुँचे। इस के बाद आनन्दमोहन बसु, भगिनी निवेदिता, शिल्पी नन्दलाल बसु आदि कभी मायावती आश्रम गये थे।

नैनीताल और अलमोड़ा—दोनों हर जगह से जुड़े हैं पुलों के द्वारा—कौन कहाँ से अलग है इस पर कभी सोचने की तकलीफ़ गवारा नहीं की। देखते-देखते ही निकल आया हूँ बहुत दूर। सन्ध्या के अम्बर पर कब तो लाखों दीये जल उठे, दिनमान के अन्तिम समय में उजली चोटियों पर से गेरुआ प्रलेप उतर गया है, सवेरे को उस के ललाट से निकलता रहा है बल-बल शोणित-प्रवाह, या सहसा मध्याह्न में विगलित हुआ है स्वर्ण स्रोत। दृष्टि भ्रम का पता चल चुका है, पता लग चुका है वायु-स्तर भेद की जादूगरी का मगर इस से मन में उत्पन्न हुई है महिमा, सौर विश्व का आह्वान का आभास मिला है, समग्र हिमालय को पाया है अपनी बाहुओं में।

'रिचि' गाँव का वह संकट-संकुल अवरोहण, रामगंगा के निकट उस घाटी गाँव में थी विहंग-काकली, इस के बाद वह टोडम को पहाड़ की धसक वाला कार्निश-पथ—वह आनन्द और आतंक आज भी दिल में धड़कन पैदा कर रहा है। 'सोयाल' पार कर चुका हूँ—जहाँ अस्तित्व खोयी गिरि-निर्झरिणी वनवालिका की तरह गाती हुई अतिकाय चट्टानों की ओट में मोड़ लेती हुई बह चली है। इस के बाद प्रवेश किया है घनघोर 'कुमारिया' के जंगलों में। वहाँ फिर कोशी को पार किया है 'मोहनसेतु (पुल)' के ऊपर से। एक पथ मेरी अपार उत्सुकता लिये खो गया 'साकार' पथ को ओर। मेरा अपना पथ नदी के किनारे-किनारे चला गया रामनगर की तरफ़। 'गरजोया' गहन वन की बात बहुतों को पता है। सुना, किसी भी समय एक या दो नरभक्षी बाघों के भय से स्थानीय निवासी-गण सदा तटस्थ रहते हैं। बाघ है शासक। उस के एक नायकत्व के आगे गाँव के लोग जंगलीपन को स्वीकार लेते हैं। बाघ के डर के मारे वे शिवमन्दिर में मनौती मानते हैं, और उस के आक्रमण को वे भाग्य का लेखा मान कर छाती पीटते हैं। वैसों के गाँव के किनारे काट कर जाना पड़ रहा है—बहुत दूर।

विराट् पहाड़ का मेरुदण्ड उतर आया कोशी नदी की राह में। वह पहाड़ विशाल दीवार के रूप में खड़ा है एक तरफ़, दूसरी तरफ़ विगत वर्षा में उस के पिंजर

से लाखों टनों का चट्टान गिर पड़ा है। उसी भयानक क्षय और ध्वंस के बीच जो भव्यता नज़र आती है उसे देख विमूढ़ होना पड़ता है। फिर याद हो आया है, सम्भवतः जुलाई १९५० में दार्जिलिंग में हुई वर्षा में रात भर का वह इतिहास बड़ा ही भयावह है। उस चट्टान से बहुत सारे घर-मकान गिरे-भहराये और कई तो समाधि में पहुँच गये। कितने स्त्री-पुरुष-बच्चे मरे, कोई ठिकाना नहीं। मृत प्रधान पहाड़ों की छाया में बैठना कई बार तो खतरनाक साबित होता है।

जंगल से घिरे रामनगर के पथ पर बढ़ रहा हूँ। बायीं ओर कोशी की धाराओं के ठीक मध्य में मिला मिट्टी और गिट्टियों से मिल कर बना हुआ एक बड़ा मन्दिर नहीं, मगर उसी की तरह है एक आकार। यह भगवती का मन्दिर है। उस में हैं उपट्टा देवी। उस आकार के भीतर है एक बड़ी सी गुफा—नदी की छाती के ऊपर। उस गुफा में बहुत अरसे से रहते थे एक साधु, नाम—बालक बाबा। वे थे बहुत बड़े तपस्वी। मगर जितने भी बड़े तपस्वी क्यों न हों, रक्त-मांस के देहधारी मनुष्य को प्रकृति का शासन, जैविक प्रताड़ना एवं पार्थिव माँगों को मान कर ही चलना पड़ेगा। बालक बाबा भी थे मनुष्य। एक समय वर्षा के दिनों में पचीस-तीस फ़ुट पानी चढ़ आया। पशु-पंछी, लोग-जन, खेत-खलिहान—सभी उस सर्वग्रासी पानी में बहने लगा। बीच नदी में बची रही वही भगवती की गुफा और बच रहा वही बालक बाबा। उसे बचाने के लिए किसी को खयाल नहीं रहा। जल की लहरों ने उस भगवती खण्ड को भी ग्रस लिया—गुफा और बालक बाबा जलमग्न हो गये।

यहाँ के लोगों का कहना है, बालक बाबा ने उस मृत्यु को मंजूर नहीं किया। जितना उन के लिए सम्भव था, उतनी ऊँचाई से गरदन निकाल कर वे चिल्लाते रहे—विश्वास नहीं करता।

जन-विहीन बाढ़ के अगाध जल में सिर्फ़ बालक बाबा की डूबी हुई देह का मात्र सिर ही ऊपर उठा हुआ था। पानी जितना ऊँचा चढ़ता गया, सिर भी उतना ही ऊपर उठता गया था। पानी चढ़ा पहाड़ के परिमाण तक, सिर भी उतराने लगा उस से भी ऊपर। वह अटल-स्थिर सिर अन्त तक टिका रहा।

बालक बाबा की मौत नहीं हुई। बाढ़ चली गयी—बालक बाबा स्थिर दण्डायमान! वही है भगवती की गुफा!

देखते-देखते रामगंगा के किनारे गाड़ी आ खड़ी हुई। सामने ही है रामनगर।

[७]

संन्यासी ने कहा, जलती हुई धूप एक समय खत्म हो जाती है, मगर अपने परिवेश में एक सुगन्ध छोड़ जाती है। गिरिराज के अपार विस्मय के मध्य तपस्वियों ने जहाँ जप-तप किया, उसी आसन के अगल-बग़ल आ कर खड़े होने पर तुम्हारा हृदय भी एक आश्चर्य अनुभूति से भर उठेगा।

प्रश्न किया, यह भरने का भाव कैसा है महाराज ?

संन्यासी हँसे—चुम्बक के आकर्षण से लोहे का चूरा किस प्रकार थरथरा उठता है, वैसे ही।

प्राचीन काल में तिब्बत था बृहत्तर भारत के अन्तर्गत। जैसे था गन्धार, कम्बोज और जावाद्वीप, जैसा था सुमात्रा और श्रीलंका। उन में किसी का नाम था अमरावती, किसी का स्वर्णदीप। तिब्बत को उस प्राचीन काल में कहा जाता था किम्पुरुषखण्ड, या स्वर्गभूमि तथा स्वर्णभूमि। स्वर्णभूमि तो है ही। तिब्बत में आज भी—अपार सोना प्रायः सर्वत्र नदी और पथों के भीतर एकत्र है। किम्पुरुषखण्ड नाम पड़ा था हिमालय के कारण ही। क्योंकि हिमालय का दूसरा पौराणिक नाम था किम्पुरुष पर्वत। प्रत्येक शिखर पर पुरुषोत्तम का नित्य सिंहासन लगता था। पुराण युग से इतिहास के युग में आ कर देखता हूँ, एक-एक कर भारत की सीमा भू-खण्डों से अलग होता गया भारत के अवयव से—वनस्पति से—शाखा-प्रशाखाएँ जैसे अन्धड़ के कारण टूट कर अलग हो जाते हैं। गन्धार, पामीर, नेपाल, तिब्बत, श्रीलंका, कम्बोज, श्याम, इन्दोचीन, सुमात्रा, जावा द्वीप, एक-एक कर सभी निकल गये। अभी उस दिन निकल गया श्री-क्षेत्र उर्फ़ ब्रह्मदेश—अभी भी पचीस वर्ष नहीं हुए होंगे। और जो कट गया वर्तमान में उस के क्षत स्थान से अभी खून बह रहा है। इसी प्रकार युग-युगान्तर से भारत छोटा होता जा रहा है, उस की सीमा सिकुड़ती जा रही है। सिर्फ़ आनन्द की बात यही है—धर्म-चेतना में, आध्यात्म भावना में और संस्कृति के क्षेत्र में आज भी भारत सम-गोत्रीयता मौजूद है। मगर सवाल अटका रह जाता है मन में। तो क्या सनातन और वैदिक भारत ने बौद्धदर्शन को आज भी ग्रहण नहीं किया ? तो क्या आर्य-द्रविड़ के साथ मंगोलिय रक्त का मेल कभी नहीं हुआ ? किस ने किसे त्यागा ?

हिमालय के उदार प्रशान्ति के मध्य इस का जवाब कभी नहीं मिला। संन्यासी ने कहा, हिमालय के जितना बड़ा रणक्षेत्र भी दुनिया में कहीं भी नहीं था। मगर वह

रहा धर्मों और दर्शनमतों का रणक्षेत्र। उस रणक्षेत्र में खून-खराबी कभी भी नहीं हुई किन्तु योग-साधना में बहुत से तपस्वियों के जीवन का अन्त हुआ है। सत्य का जिन्होंने अथक भाव से अन्वेषण किया है, प्रकाश-सन्धान में जिन्होंने सब कुछ त्याग कर दुर्गम और दुस्सह की ओर अग्रसर हुए हैं—उन से बड़ा रणवीर और कौन हो सकता है इस दुनिया में ? उन्होंने मानव की श्रद्धा पर विजय प्राप्त की, चुपचाप। एकान्त में निर्णय लिया मानव-सभ्यता के नियति का। उन के प्रश्नोत्तर के विश्लेषित पथ पकड़ कर भारतीय संस्कृति बढ़ती गयी है अपने ज्ञान-संसार में। बुद्धि को निर्मल किया सभ्यता को सुन्दर बनाया।

तिब्बत का प्रवेश पथ एक हज़ार वर्षों में कभी भी सहज नहीं हो पाया। वह पथ दुःसाध्य है यह मान कर नहीं बल्कि कोई पर्यटक या तीर्थयात्री तिब्बत वासियों के निकट आज भी काम्य नहीं है। मौर्य साम्राज्य के युग में, सिथियान-युग में, बैक्ट्रीय के समय में, हर्षवर्धन-समुद्रगुप्त-स्कन्दगुप्त-कालों में—तिब्बत और चीन का द्वार खुला हुआ था। मगर मगध साम्राज्य के अन्तिम समय में मुसलमानों के आक्रमण के वक़्त से वह खुला हुआ द्वार बन्द हो गया। आश्चर्य यह है कि लासानगर के समीप 'जो-खांग' नामक विराट् बौद्धमठ में पंचधातु निर्मित जो अतिकाय बुद्धमूर्ति पवित्रतम मान कर पूजित होती है, वह मूर्ति भारत की है। किंवदन्ती है, गौतमबुद्ध के जीवन काल में मगध में इस मूर्ति का निर्माण हुआ था और मुसलमान-आक्रमण के युग में चीन-सम्राट् ने मगध के राजा को सहायता पहुँचायी थी और इसी के कृतज्ञतास्वरूप यह मूर्ति चीन-सम्राट् को उपहार में दी गयी। तत्पश्चात् चीन-सम्राट् की कन्या के साथ जब तिब्बतराज का ब्याह हुआ, उस समय वधूरूपिणी सम्राट् की दुहिता यह मूर्ति तिब्बत लायी। तिब्बत के उसी राजा ने एक विशाल मन्दिर का निर्माण करवा कर इस मूर्ति को प्रस्थापित किया।

यह साफ़ समझ में आता है कि भारत से तिब्बत का सम्बन्ध टूटा मुसलमान-काल में। भारत के बृहत्तर समतल क्षेत्रों में पठान, मुग़ल, पुर्तगीज ओलन्दाज, फ्रान्सीसी, अँगरेज ये सभी जगह पा-पा कर प्रभुत्ववान् बने थे—किन्तु इन से मूल बौद्ध-तिब्बत एकान्त में हट कर खड़ा रहा। वे इतने समय से भूत-प्रेत-पिशाच-दैत्यों के साथ ही पर्यटकों को भी दूर किये रहा-युग के बाद युगों तक। तिब्बत हो गया निषिद्ध।

वे ही शायद हैं पृथ्वी पर एकमात्र ब्राह्मण सम्प्रदाय। उन के देशव्यापी ग्रन्थ-भाण्डार में लाखों-लाख पोथी और धर्मग्रन्थ हैं भरे पड़े। वे जानते हैं पृथ्वी का अन्तिम परिणाम, सभ्यता का आदि-अन्त इतिहास। हिमालय के उस पार वे खड़े हैं सोलह हज़ार फ़ुट की ऊँचाई पर की ऊबड़-खाबड़ धरती पर। वे हैं पृथ्वी के शीर्ष स्थानीय। एक के बाद एक सभ्यता आयी और गयी, हजार-हज़ार वर्षों में सैकड़ों राज्यों का अभ्युदय-पतन हो चुका है पर उन्होंने उधर पलकें भी नहीं उठायीं। मंगोलिया, कोरिया, जापान,

कश्मीर, नेपाल, रूस, तुर्किस्तान—इन के ऊपर से अन्धड़ और तूफ़ान आया-गया, अराजकता और प्रलय मचा, किन्तु तिब्बत ने इस की परवाह नहीं की। वे सदा से पोथी पढ़ते रहे और मन्त्र जपते रहे, मदिचक्र, घुमाते रहे, और प्रेत-पिशाचों को प्रताड़ित करते रहे। मनुष्य से अधिक मन्त्र का उन के निकट महत्त्व है। वे मन्त्रोच्चारण करते हुए मनुष्य की लाश को तलवार से टुकड़े-टुकड़े कर डालते हैं और सियार-गिद्ध और कुत्ते जब उस का भोजन करते हैं तब वे उस क्षण भी मन्त्र पढ़ते रहते हैं। चीन ने उन पर शारीरिक बल से शासन करना चाहा, उन के घरों में पैठ कर क्षीणकाय बनाया है, इसी से चीन से उन का राष्ट्रीय मनमुटाव सदा से है। वे सिर्फ़ आज़ाद रहना चाहते हैं। इतना ही नहीं वे पृथ्वी पर बिलकुल अलग-थलग रहना चाहते हैं। बौद्ध-भिक्षुओं को छोड़ कोई भी उन के समाज में घुस न पाये, मुसलमान के छुए हिन्दू न घुसें, विज्ञान का पैठ न हो, आधुनिक सभ्यता की हवा न समा पाये। दो-चार लोगों को छोड़ सभी लोग तिब्बत की घृणा प्रचारित करते रहे, लगभग सदा से।

तिब्बत की विराट् ऊबड़-खाबड़ भूमि के ऊपर जैसे सैकड़ों पर्वत शिखरें हैं, वैसे ही हैं अनगिनत नमक के सरोवर। लाखों वर्गमील में आदमी कुछ-कुछ ही हैं, मगर पेड़-पौधे नहीं हैं, कहना ठीक होगा। भारत की तुलना में तिब्बत है जनहीन। प्रति वर्गमील के हिसाब से कुल सात व्यक्ति से अधिक आदमी नहीं होंगे। खाद्य चिराग़ ले कर ढूंढ़े भी नहीं मिलता—तिब्बत क्षुधार्त है। पूर्व तिब्बत में जीने की गुंजायश है, जहाँ ब्रह्मपुत्र सृजन कर रहा है जंगल, खेत और निम्नस्तरीय भूमि। बालू-पत्थर, कंकड़, नमक, सोडा और दूसरे धातव पदार्थों से तिब्बत परिपूर्ण है—किन्तु चिकनाहट नहीं है कहीं भी, कुंज-कानन का लोभ नहीं, कहीं भी घने वृक्षों की घनी छाया नहीं है। आत्मनिग्रही अन्धकार से आच्छन्न धर्म और अन्धे आचार-व्यवहारों में कठोरता है। पूर्व तिब्बत का प्रकृति के साथ मेल होने के कारण कोमल हो उठा है—इसी से राजधानी भी स्थित हुई 'काइचू' नदी के उत्तर लासा में। वहाँ के पोटाला प्रासाद में रहते हैं सर्वाधिक नायक दलाई लामा।

'मणिचक्र' घूमता रहा है एक से दूसरे लामाओं के हाथों में युगों तक—और आज भी। मगर समय का चक्र या गाड़ी का चक्र कभी भी नहीं चला तिब्बत में। आज सभ्यता का धक्का आ रहा है गणतान्त्रिक चीन से। वे तिब्बत में गाड़ी चलाना चाहते हैं, प्रकाश करना चाहते हैं अन्धकार में, धर्म के ऊपर मानवता के दावा की प्रतिष्ठा वे करना चाहते हैं। यह दावा स्वीकार कराने की खातिर उन्होंने फ़ौज ला खड़ी की है इस दुस्तर भू-खण्ड में। अब सम्भवतः मशीनों या काल का चक्र चलेगा।

मध्य तिब्बत के बारे में कुछ जानने की चेष्टा व्यर्थ है। वहाँ है नमक, क़ीमती पत्थर, भू-गर्भों में स्वर्ण भाण्डार, आर्यों की बस्ती के आस-पास आदिम युग के कुसंस्कार से आच्छादित गुफाएँ। तेज हवा बर्फ़ के चपेटे में प्रथम सूर्य में उजली चाँदनी में मनमौजी प्राकृतिक चटक में, आकाश के अतिउग्र नीलिमा में तिब्बत अपार्थिव रहस्य से आच्छन्न है।

उत्तर में उस के आदि अन्तहीन तकलामकान और गोबी मरुभूमि है, दक्षिण में हिमालय की अनगिनत चोटियाँ-धवलगिरि, मुक्तिनाथ, मानसलू, गोसाईंथान, गौरीशंकर, एवरेस्ट, माक्लू, कांचनजंघा, कांचनझाऊ, पाऊहुनरी, चमलहरी, ऐसी ही अनेक। इन चोटियों से निकली हैं अनेक नदियाँ—ये तिब्बत के दक्षिण से उत्तर की ओर ब्रह्मपुत्र को शक्तिशाली बनाती हैं। पश्चिम से दक्षिण-पश्चिम में तिब्बत को भारत से अलग किये हैं काराकोरम, लद्दाख, जास्कर और कैलास पर्वत माला। कैलास पर्वतमाला नेपाल की सीमा तक चली आयी है।

तेरह सौ वर्ष पहले तिब्बत के राजदूत भारत आये और भारत के ब्राह्मणों तथा बौद्धों से उन्होंने उच्च शिक्षा ग्रहण की। उन्हीं दिनों मगध और बंगाल में जो नागरी वर्णमाला प्रचलित थी, उसे वह तिब्बत ले गये। संरक्षित तिब्बत में वह वर्णमाला आज भी प्रचलित है, केवल मामूली परिवर्तन हुआ है। मगर सम्पर्क यहीं रुका नहीं रहा। बंगाल से तिब्बत का सम्पर्क तभी से चला आ रहा है। इस के बाद जैसोर के राजकुमार सर्वत्यागी शान्तरक्षित 'बौद्धधर्म में दीक्षित हो कर तिब्बत गये और तात्कालिक नरपति ने उन्हें प्रथम तिब्बतीमठ के महन्त-पद पर आसीन किया। वह गौरव आज भी क़ायम है। आज तक तिब्बती शान्तरक्षित को आचार्य बोधिसत्त्व-महागुरु की उपाधि से विभूषित कर पूजते आ रहे हैं। इस के बाद बंगाल से भी कई बौद्ध विद्वान् तिब्बत गये थे। वे जा कर वहाँ मात्र धर्म प्रचार ही करते हैं यह बात नहीं—बौद्ध-धर्म ग्रन्थों को तिब्बती भाषा में अनुवाद भी किया था। राजशक्ति अनुकूल थी तभी उस ज़माने में बौद्धधर्म का विस्तार सम्भव हो सका था। हिन्दूदर्शन का एक विशेष व्याख्या ही है बौद्ध दर्शन—इसे आज हम भूल चले हैं। गौतम बुद्ध अपने जन्म से मृत्यु पर्यन्त हिन्दू थे, इस सत्य को याद भी नहीं रख सके।

इन के बाद जिस महापुरुष की बात उठती है, वे भी थे बंगाली। वे रहने वाले थे पूर्व बंग के—वे थे ढाका के आदमी। उन का नाम था अतीश दीपंकर श्रीज्ञान। आचार्य शंकर की प्रतिभा से एक समय समग्र भारत जैसे विमुग्ध हो उठा था, दीपंकर ने भी वैसे ही भारत के पण्डितों को उस समय अभिभूत और विमुग्ध किया था। अनेक देश-विदेशों का उन्होंने भ्रमण किया था, और उन के पाण्डित्य और प्रतिभा से भारतवर्ष में उस समय काफ़ी हलचल मची थी। उन की उम्र जब साठ की थी तब तिब्बत के आमन्त्रण पर वे वहाँ गये और बौद्धदर्शन की अभिनव व्याख्या कर के समग्र तिब्बत का हृदय जीत लिया था। उन्होंने विशुद्ध 'महायान' मतवाद का प्रचार किया था और तिब्बत को बहुत सारे कुसंस्कार और तान्त्रिक पन्थी होने से बचाने में समर्थ हुए थे। दीपकंर ने वहाँ 'कदम्पा' नामक एक नये लामा-सम्प्रदाय की प्रतिष्ठा की, वह सम्प्रदाय आज भी तिब्बत में सर्वप्रधान है। दीपंकर तेरहवर्ष तक तिब्बत में रहे और वहीं उन की मृत्यु भी हुई। आज भी वे वहाँ एकमात्र श्रद्धेय और पूजनीय हैं। बुद्ध के बाद ही वे बोधिसत्त्व स्वरूप हैं। तिब्बती उन की मूर्ति की पूजा करते हैं। जहाँ उन की

मृत्यु हुई थी, वहाँ आज भी है उन का समाधि-मन्दिर। १०५३ में दीपंकर ने शरीर त्यागा था।

भारत से तिब्बत का प्रत्यक्ष सम्पर्क-विच्छेद सम्भवतः अतीश दीपंकर श्रीज्ञान के अन्त होने में ही निहित है। इस के बाद का बहुत कुछ इतिहास विलुप्तप्राय है। भारत से उन्हें मिली है भाषा, शास्त्र, धर्म-दर्शन, शिक्षा और संस्कृति। मगर दोनों के सम्पर्क के मध्य जो जीवन धारा थी—वह पठान कोल से ही सूखने लगी थी। जो मुसलमान थे और तातारों के समय समतल भू-भाग छोड़ कर हिमालय के विभिन्न हिस्सों में जा बसे थे, उन के साथ तिब्बतियों का सम्पर्क बना रहा बहुत दिनों तक। मगर बौद्धधर्म व्यापक रूप में भारत में खड़ा नहीं रह सका, इसी से तिब्बत के साथ भारत में सामाजिक और सांस्कृतिक संयोग प्रायः सम्पूर्ण रूप से विच्छिन्न हो गया। राजशक्ति की सहायता का अभाव और भारत पर विधर्मियों का प्रभुत्व—तिब्बत को खोने के मूल में ये ही दो प्रमुख कारण हैं। जो दूर सरक गये, वे अदृश्य लोक में जुड़ गये। तिब्बत से आत्मीयता खत्म हो गयी।

प्रायः डेढ़ सौ वर्ष आगे एक अँगरेज तिब्बत की राजधानी लासा में जा सका था। उस का नाम है टामस मैनिंग। बहुत थोड़े समय के लिए उन्हें लासा में रहने की अनुमति मिली थी, मगर उन की कोई चर्चा कहीं नहीं मिलती। उन के तैंतीस वर्ष बाद दो फ्रांसीसी मिशनरी लासा में कुछ दिनों के लिए भ्रमणार्थ जाने में समर्थ हुए थे, उन के भ्रमण का विवरण कुछ समय पूर्व मिला है। आत्मस्वाभिमानी अँगरेज़ों के मन में यह विक्षोभ बहुत दिनों तक घूमता रहा। इधर भारत पर अँगरेज़ों का प्रभुत्व तिब्बत की आँखों का काँटा था और जिन की सहायता से अँगरेज भारत साम्राज्य पर शासन कर रहे थे—उन भारतीयों के प्रति भी तिब्बत के मन में काफ़ी क्रोध जमा था। मगर तिब्बत के साथ भारत का ऐसा किसी भी विषय में सम्पर्क नहीं था, जिस की खातिर ब्रिटिश भारत गवर्नमेंट के साथ उन का प्रत्यक्ष समझौता हो सकता था। इस के अलावा एक और कारण था, १८वीं सदी के शेषदशक में गोरखाओं ने तिब्बत पर आक्रमण किया और उन के सहयोगी थे भारत के अँगरेज़ों की सेना। गोरखे तिब्बतियों से हार गये। फिर १८४० में नेपाल और तिब्बत के बीच लड़ाई हुई, बहुत से लोगों का खयाल है कि यह भी अँगरेज़ों के भड़काने का ही परिणाम था। नेपाल पराजित हुआ और नियमित क्षतिपूर्ति यानी दक्षिणा देने को बाध्य हुआ। इस के बाद अपमानित अँगरेज़ लम्बे समय तक चुप रहे। मगर भीतर ही भीतर इन का दिल जलता रहा।

सुना जाता है कि १९वीं सदी के प्रारम्भ में राजा राममोहन राय तिब्बत गये थे, मगर इस का ठीक-ठीक पता मुझे नहीं है। एक लम्बे अर्से के बाद १८७९ में दार्जिलिंग स्कूल के एक विकट साहसी अध्यापक स्वर्गीय शरत्चन्द्रदास अपने एक लामा मित्र के जरिये तिब्बत-प्रवेश का अधिकार प्राप्त कर सके। वे अपने यात्रा-पथ का

विवरण तैयार करेंगे और खोज-खबर लायेंगे यही शर्त थी। उन के साथ और भी दो व्यक्ति थे—नयनसिंह और किशनसिंह। आर्किबाल्ड विलियम्स ने लिखा है :

"These men were the emissaries of the Indian Government, their duty being to survey with all possible accuracy such parts of Tibet as they should traverse. The most extensive results came from expeditions of Kischen Singh....who in four years crossed Tibet from North to South and from East to West....and managed to draw out a detailed plan of Lhasa. His survey is considered to be very accurate."

इतना कहना ही काफ़ी है कि सभी लोगों ने छद्मवेश में बहुत सतर्कतापूर्वक तिब्बत भ्रमण किया था। किन्तु शरत्चन्द्र तिब्बत का वास्तविक लेखा-जोखा लाने में समर्थ हुए थे। उन्होंने छह महीने तक तिब्बत के अन्तर्गत 'तासिलानपोत' में संस्कृत और तिब्बती ग्रन्थों का अध्ययन किया और कांचनजंघा इलाक़े से अति मूल्यवान् सूचनाओं का वे संग्रह कर लाये थे। उन के साथ पानचेन रिनपोच के प्रधान लामा पुरोहित की मैत्री हुई थी और वे पुनः आमन्त्रित हो कर १८८१ के नवम्बर में फिर तिब्बत गये थे। अब वे बारम्बार लासा गये। सिर्फ़ लासा ही नहीं, लगभग डेढ़ वर्ष तक वे विभिन्न तिब्बती शहरों में घूम-फिर कर आवश्यक सूचनाएँ एकत्र करते रहे। मगर तिब्बत का अधिकारीवर्ग रत्ती भर भी उन के असली मक़सद का अनुमान नहीं लगा सका। राजनीतिक, सामाजिक, ऐतिहासिक, भौगोलिक, आध्यात्मिक और कूटनीतिक—सब तरह की सूचना इस बार वे अपनी झोली में भर कर लाये थे। उन के लौटने के बाद भारत गवर्नमेन्ट ने उन्हें एक विशेष ऊँची उपाधि से विभूषित किया और 'रायल-जियोग्राफ़िकल सोसाइटी' से उन्हें आर्थिक सहायता भी मिली। लेकिन उन के वापसी के दिनों—'तासिलानपोत' से भारत लौटने के बाद—सहसा लासा के अधिकारियों को शरत्चन्द्र के असली मक़सद का पता चल गया और उस समय उन्होंने पानचेन रिनपोच के प्रधान लामा पुरोहित सर्वजनश्रद्धेय सिनचेन लामा की गिरफ़्तारी का परवाना भेजा। इस की चर्चा मैं ने अन्यत्र कुछ-कुछ की है, फिर भी यहाँ संक्षेप में कहना अप्रासंगिक नहीं होगा। सिनचेन लामा को गिरफ़्तार कर के बर्फ़ीली गुफा में डाल दिया गया था और चाबुक से मार-मार उसे मौत के मुँह में ढकेल दिया गया और अन्तिम समय में दोनों हाथों को बाँध कर ब्रह्मपुत्र के बर्फ़ पिघले जल में फेंक दिया गया। उन के कई जो सेवक थे, उन को और भी भयानक दण्ड दिया गया हर एक के एक-एक पाँव और एक-एक हाथ काटने के बाद भी अधिकारियों को सन्तोष नहीं हुआ। कईयों की आँखें भी निकाल ली गयी थीं—यहाँ यह कहना ज़रूरी है कि शरत्चन्द्र के असली मक़सद का पता सिनचेन को भी नहीं था। सिर्फ़ इन्हें ही नहीं, शरत्चन्द्र को मदद पहुँचाने के जुर्म में अनेक लोगों को भयानक दण्ड दिया गया था। उन में कोई भी जीवित

नहीं है। इन घटनाओं के आधार पर बाद में दासजी ने एक पुस्तक लिखी—'Narrative of a journey to Lhasa'.

इस घटना के पन्द्रह वर्ष बाद स्वीडेन के संसारविख्यात अभियानकर्ता डॉ० सोयेन हेडिन एशिया स्थित 'ताकला माकान' मरुभूमि पार कर के तिब्बत पहुँचे और लासा की ओर बढ़े। मगर तत्कालीन दलाई लामा के आदेश से उन्हें लासा के निकटवर्ती इलाक़े से ही दलबल के साथ भगा दिया गया। हेडिन साहब लद्दाख और कश्मीर होते हुए भारत वापस आये (सन् १८९९) तथा लार्ड कर्जन के निमन्त्रण पर वे कुछ दिनों के लिए कलकत्ता आये। उन्हें खूब सम्मान दिया गया। इस के बाद हेडिन साहब दस वर्ष के बाद ही लासा जा पाये थे। किन्तु इतने दिनों के भीतर तिब्बत ब्रिटिश भारत गवर्नमेन्ट की दासता स्वीकार करने पर बाध्य हो चुका था, अतएव हेडिन के उस अपमान की बात यहाँ उठती ही नहीं।

तिब्बत कभी नाममात्र के लिए ही चीन के आधीन रहा। सिर्फ़ आज ही नहीं, चीन की कभी भी दासता तिब्बत ने स्वीकारी नहीं। चीन यह जानता था—मगर अपना अधिकार मात्र क़ायम रखने की खातिर तिब्बत की प्रशासनिक सीमा में उसे वर्षों हिंसात्मक कार्यवाही में तत्पर रहना पड़ा। चीन विरोधी तिब्बत ने आगे जा कर स्वाधीन भारत के साथ राष्ट्रीय और सैनिक सम्बन्ध स्थापित किया, इसी कारण सन् १९४७ में चीन के फ़ौजी विभाग ने तिब्बत का एक तरह से विरोध किया। इस का कारण भी था। कम्युनिस्ट चीन का नेहरू सरकार के प्रति प्रारम्भ से ही विश्वास और आस्था नहीं थी। बाद को जब देखा गया कि चीन-भारत समझौता सम्पन्न कर नेहरू-सरकार ने तिब्बत अंचल को चीन के अन्तर्गत स्वीकार लिया तभी से चीन-भारत मित्रता बढ़ने लगी। लगभग पैंतालिस वर्ष बाद चीन ने पुनः तिब्बत के ऊपर अपना अधिकार जमाया।

पहले की चर्चा खत्म कर दूँ। स्वर्गीय शरत्चन्द्रदास के तिब्बत विषयक सूक्ष्म से सूक्ष्म विवरणों का तत्कालीन ब्रिटिश भारत के प्रमुख लार्ड कर्जन ने ठीक से उपयोग किया था। उन्हीं से परवाना ले कर सेनापति मि० फ्रांसिस यंग हसबैंड ने १९०३ ई० में शरत्चन्द्र के द्वारा वर्णित मार्गों से तिब्बत पर हमला किया और तिब्बत ने यथा-सम्भव उन के मामूली हमले पर ही घुटने टेक दिये। सम्भवतः इस सफलता के लिए मि० फ्रांसिस यंग हसबैंड ने आगे चल कर नाइट की उपाधि प्राप्त की थी।

ब्रह्मपुत्र की उपनदी काईचुर का किनारा पकड़ कर उत्तर की ओर बढ़ने से नदी के पार ही है लासा। लासा अपने आप ही है प्रधानतीर्थ। वस्तुतः तीर्थ-केन्द्र होने के कारण ही लासा की इतनी प्रमुखता है। यह राजधानी एक उपत्यका के ऊपर स्थित है और इसी के बीच पहाड़ों की चोटी पर क़िले के जैसा 'पोटाला' महल अवस्थित है। लोग केवल महल मान कर ही इस का सम्मान नहीं करते हैं, उस का कारण है तिब्बत के प्रधान धर्मगुरु दलाईलामा का निवास स्थान होना। दलाई शब्द मंगोल शब्द है—उत्पत्ति

सम्भवतः मंगोलिया है और अर्थ है—जो सर्वोच्च सर्वप्रधान है। जैसे हैं रोम के पोप, जैसे जेरुसलम के ग्रैंड मुफ़्ती, भारत के शंकराचार्य आदि। मगर इन के परे है राष्ट्र तिब्बत, दलाई लामा को बाद दे कर वहाँ राष्ट्र या समाज कोई भी जनमान्य नहीं है। एक ज़माने में पश्चिमी देश और प्राच्य के अनेक क्षेत्र इसी नियम के द्वारा नियन्त्रित होते थे। विलायत में यह नियम आज भी चालू है। धर्म-मन्दिरों के पुरोहित ने अपनी सम्मति नहीं दी इसी खातिर अष्टम एडवर्ड को सिंहासन त्याग कर फिर पति परित्यक्ता नारी को ब्याहना पड़ा था। गिरजे की अनुमति नहीं मिलने के कारण उस दिन राजकुमारी मार्गरेट को प्रणय-विवाह से रहित होना पड़ा। मगर धर्मदर्शन की आदि भूमि भारत में यह मध्ययुगीन अन्धविश्वास नहीं है। भारत के सनातनी युग में भी मनुष्य की आत्मिक और व्यक्ति-स्वतन्त्रता सुरक्षित थी। आज से इक्कीस सौ वर्ष पूर्व तक्षशिला ग्रीक राज्य था, उसी राज्य के कुमार हेलियोडोरस हस्तीसंघ के उद्देश्य से आये मालवा राज्य में। उस दिन था मालवा में वसन्तोत्सव। राजकुमारी माधविका सहेलियों के साथ झूला झूल रही थी। तरुण रूपवान् हेलियोडोरस माधविका को देख कर मुग्ध हो उठे और राजकुमार को देख कर माधविका भी प्रणयासक्त हो उठी। इस के बाद बहुत सारी नाटकीय घटनाओं के बीच दोनों का ब्याह हुआ। मध्य भारत में ग्वालियर के अन्तर्गत भेलसा के निकट दो हज़ार वर्ष से भी पहले कुमार हेलियोडोरस द्वारा निर्मित गरुड़स्तम्भ आज भी उस की गवाही देता है।

एक सौ वर्ष से गिर्जा-तन्त्री अँगरेज़ों ने पूरी दुनिया में यह प्रचार किया कि भारतवर्ष योगी, फ़क़ीर, उच्चाटन, जादू, बाघ-भालू, सर्प-घड़ियाल और किम्-आश्चर्यम् राजा-रजवाड़ों का देश है। यहाँ सती नारी आग में कूदती है, काँटों पर कूदता है नंगा संन्यासी, लता-पत्रों के साथ गोबर खाते हैं देश के लोग, साँप से खेलते हैं सपेरे और नागा-फ़क़ीर शीर्षासन करते हैं दोनों पैरों को ऊपर आकाश की ओर उठा कर। मगर यह कहीं भी उन्होंने नहीं कहा कि पूरे शरीर पर सुई चुभो कर अपने को सचित्र बना कर अँगरेज़ नर-नारियाँ अर्धनग्न नरमण्डी के किनारे-किनारे नावों पर जब आवारा बन कर घूमती थीं तब भारतीय सभ्यता और संस्कृति पृथ्वी पर सब से ऊँचाई पर थी। मानवात्मा की उन्मुक्त मुक्ति साधना में आज की तरह उस समय भी भारतवर्ष सब से अग्रगण्य रहा।

प्राचीन भारत को ले कर बाल की खाल निकालने नहीं बैठा हूँ, लेकिन इन बातों को कभी-कभी विचारना अच्छा होता है।

तिब्बत की चर्चा में लौट आऊँ। शरत्चन्द्र के वर्णन में पाता हूँ—एक बौद्ध-मठ का मतलब है लामाओं द्वारा नियन्त्रित एक छोटा-मोटा शहर। उस शहर में कहीं भूत-प्रेत-पिशाच न चले आयें—इस की चेष्टा प्रधान है। हेडिन को तिब्बत से भगाने के समय एक प्रधान लामा ने कहा था—हम सभ्य होना नहीं चाहते, क्योंकि सभ्य संसार की

हम श्रद्धा नहीं कर सकते। हम अपनी ध्यान-धारणा, जप-तप विश्वास-अविश्वास से जुड़े हुए सभी से अलग रहना चाहते हैं, हम किसी से मिलना-जुलना नहीं चाहते। कृपा कर अकेले रहने दो।

शरत्चन्द्र के कथनों में से कुछ को यहाँ उद्धृत करूँ—"तिब्बत के पथ-घाटों में, नगर-मठों और जनपदों में प्रसन्न शत-सहस्र बुद्ध-मूर्तियाँ हैं। राष्ट्रीय और सामाजिक समग्र जीवन बुद्ध के द्वारा अनुप्राणित है। देवासुर के संग्राम में दैवशक्ति की विजय—यही थी साधना। इसी साधना के लिए तुहिन-शीत गुहा-गह्वरों के अँधेरे में अनगिन भिक्षु छिपे रहे।"

'जोखांग' नामक प्रधान मन्दिर के सन्दर्भ में शरत्चन्द्र का कहना है—"डेढ़ हज़ार वर्षों का हो चला मन्दिर, पुराने काठों का मोहाच्छन्न करने वाली गन्ध उस के भीतर व्याप्त है। अँधेरी दीवार अद्भुत प्रकार से चित्रांकित है। पूजा के स्वर्णपात्र चमकते हैं घी के दीये की लौ की आभा से।

१९०४ में कभी किसी एक दोपहर में यंगहसबैंड इस मन्दिर में जा कर स्तब्ध हो खड़े रहे। यहाँ यह कह दूँ, यंगहसबैंड यद्यपि युद्ध-अधिनायक थे—मगर वे थे भगवद्भक्त, ईश्वर-विश्वासी और एक विशिष्ट अध्यात्मवादी। आधुनिक युग के योगी श्रेष्ठ ऋषि अरविन्द जब पांडेचेरी में अपनी ज्योतिर्मय देह के रक्षार्थ योग-समाधिस्थ हुए, इस समाचार के बाद सर फ्रांसिस यंगहसबैंड विलायत में श्री अरविन्द-स्मृति के सक्रिय सभापति-पद पर निर्वाचित हुए थे। सर फ्रांसिस ने अपनी पुस्तक में मुक्तकण्ठ से कहा है कि इस मन्दिर में अध्यात्मवादी तिब्बत की अन्तरात्मा वास्तविक स्वरूप में देदीप्यमान है। मन्दिर का सुविस्तृत आँगन पार कर के मैं ने उदार उदात्त गम्भीर डमरू की गुरु-गंभीर ध्वनि सुनी—उसी के साथ पुजारियों के करुण-मधुर और छन्दोबद्ध मन्त्रोच्चारण और पार्वत्य उपत्यकाओं के असीम विस्तारलोक में दूर-दूरान्तर का शंख-घंटा-रव सुना, देखी भक्तिनम्र अनुराग की भावाविष्ट विह्वलता। सहसा अपनी सत्ता में भी उपलब्ध किया अपरूप दैव-प्रेरणा का उत्स।....तिब्बत के अन्तर्निहित दैवसत्ता को पाया इस आश्चर्यमय जरा-व्याधि विकार विहीन 'जोखांग' मन्दिर में।

देख लेता वह देश कैसा है, जहाँ मानव को किसी भी क्षेत्र में स्वीकृति नहीं मिलती। दो-एक को छोड़ कर कोई भी ऐसा आदमी तिब्बत में श्रद्धेय नहीं हुआ जो बौद्ध धर्मगत नहीं था। हृदय चीर कर देख लेता एक बार उस देश को जहाँ मनुष्य अविश्रान्त कण्ठों से गुहार मचा रहा है बौद्ध भगवान् का—मगर नर के नारायण तब तक श्रद्धा प्राप्त करते नहीं जब तक कि वह 'लामा' नहीं हो जाता। कहना ही काफ़ी है कि बड़ी लालसा से तिब्बत को बहुत बार देखना चाहा। मानार-गिरिसंकट में, कुलू में, किन्नेर में, जोजिला में—कितनी बार गर्दन उठा कर देखने की चेष्टा की है। सिक्किम में, भूटान में, कुमायूँ में—तिब्बत की गन्ध खूब मिली है। देखने की इच्छा हुई है कि कैसा है वह अचम्भे

वाली दुनिया जहाँ पिशाचों के प्रतीक भी पूज्य हैं—किन्तु गणदेवता आराध्य नहीं हैं।

याद हो आयी है एक सौ वर्ष से भी अधिक से इस ज़माने (१८४० से १९४१) तक की बातें। महाराजा गुलाब सिंह के प्रधान सेनापति ने पश्चिम तिब्बत पर आक्रमण किया था। वह आक्रमण नृशंस था—उस में दया नहीं थी। उन्होंने, मठ, गुफा, मन्दिर, जनपद—किसी को भी नहीं छोड़ा। वे वीर थे या नहीं यह पता नहीं, मगर वे इतिहास-विख्यात जोरोवार सिंह थे। ध्वंस के बाद ध्वंस—पश्चिमी तिब्बत के बहुत सारे इलाक़े भग्न स्तूपों में परिणत हो गये थे। यह था १८४०। उन के निर्मम आक्रमण के परिणाम-स्वरूप पश्चिम तिब्बत उर्फ़ लद्दाख भारत में मिला। मगर जोरोवार की क़िस्मत में कुछ और ही बदी थी। बाद के वर्षों में विजयी जोरोवार लाव-लश्कर ले कर तीर्थपुरी से गये ताकलाकोट। वहाँ अपने कैप्टेन के मातहत फ़ौज को छोड़ कई दासों को साथ ले कर वे अपनी पत्नी को पहुँचाने गये गारटक। लौटते समय विशाल चीनी फ़ौजों ने तिब्बतियों के सहयोग से जोरोवार पर बीच राह में आक्रमण किया। जोरोवार का अतिबल और युद्ध-कुशलता से सभी हतप्रभ थे और फिर तिब्बतियों की धारणा रही है कि जोरोवार एक तान्त्रिक जादूगर है—पिशाचसिद्ध! उन्होंने वहीं उसे गोली दाग़ कर मार डाला। वह गोली शीशे की नहीं थी, सोने से मढ़ी हुई थी। उन्होंने जोरोवार को टुकड़े-टुकड़े किया और उस के शरीर के एक-एक टुकड़े को ले कर उस को स्मृति-सौध और स्मारक बनाया। आज भी शिम्बालिंग और शाक्य गुफा में जोरोवार की देह का एक विशेष अंग और उस का एक कटा हाथ सुरक्षित है। उस के व्यवहार में लाये गये हथियारों को लोग आज भी प्रदर्शनी में देखते हैं। जोरोवार 'असुर' था इस लिए तिब्बत में इतना कुख्यात रहा।

इस घटना के तिरसठ वर्ष बाद कर्नल यंगहसबैंड ने पूर्व तिब्बत पर आक्रमण किया—पहले ही यह कह चुका हूँ। उस हमले में हज़ारों तिब्बतियों की जान गयी और दलाई लामा 'पोटला' महल छोड़ कर भाग गये। इस के बाद सन्धि-पत्र हस्ताक्षरित हुए और अँगरेज़ों ने तिब्बत के ऊपर से चीन का दखल बिलकुल खारिज कर दिया। पैंतालिस वर्ष इसी तरह बीता। अँगरेज़ भारत छोड़ कर चले गये १९४७ में। चीन पुनः तिब्बत पर अधिकार जमा लेता है और अँगरेज़ों के द्वारा क़ायम सभी समझौतों को खत्म कर देता है। नेहरू-सरकार ने तब यांगटुंग ग्यान्तसी और गारगट की भारतीय वाणिज्य-संस्थाओं के अतिरिक्त सुरक्षा की व्यवस्था भी हटा ली।

सिर्फ़ पन्द्रह वर्ष पहले की कई कहानियाँ सुनाता हूँ। वह था दूसरी लड़ाई का ज़माना—१९४१। रूस के अन्तर्गत कारगिज कज़ाकों के तीन हज़ार मुसलमान खानाबदोश 'दस्यु' चीनी-तुर्किस्तान के अन्दर से गुज़र कर समग्र पश्चिम तिब्बत पर आक्रमण करते हैं। मानसरोवर के इलाक़े के आठ प्रसिद्ध मठों को उन्होंने लूटा और तीर्थपुरी गुफा को ध्वंस कर डाला। भारत के आन्ध्र प्रदेश के संन्यासी प्रवणानन्द उस समय वहीं थे। सब कुछ उन्होंने अपनी आँखों देखा। देशव्यापी लूटमार में लगे 'दस्यु' का

गिरोह जब लद्दाख पहुँचा तब उन की दखल में थे एक लाख से अधिक भेड़ें और बकरियाँ, चार हज़ार झब्बू, दो हज़ार घोड़े और खच्चर, पाँच सौ राइफ़लें और बन्दूकें, हज़ारों रुपये मूल्य के सोने और चाँदी के बने विग्रह, ज़ेवर वग़ैरह मणि-मुक्ताएँ तथा सोने-चाँदी और मुद्राएँ। वे लद्दाख की सीमा पर जब पहुँचे तब कशमीर सरकार ने उन्हें निशस्त्र करने के बाद भारत-प्रवेश की अनुमति दी। उस वक़्त ब्रिटिश-रूसी बन्धुत्व क़ायम रहने की वजह ब्रिटिश सरकार ने उन्हें सीमा पर स्थित 'हजारा' जिला में टिकने का निर्देश दिया। यहाँ तक कि उन के खर्च-बर्च का भी ज़िम्मा लिया। मगर उस समय दो थे भारत के घरेलू शत्रु—एक हैदराबाद के निज़ाम और दूसरे थे भोपाल के नवाब। उपर्युक्त दस्यु गिरोहों को इन्होंने अपने-अपने इलाक़े में सुरक्षा देने की खातिर आवेदन किया। मगर हजारा जिला ही उन्हें उपयुक्त प्रतीत हुआ। इसी दस्यु दल ने १९४७ में पाकिस्तान की सहायता से सर्व-प्रथम कशमीर पर आक्रमण किया था।

पश्चिमी तिब्बत का उत्तर अंचल है लद्दाख। बौद्ध-हिन्दू सम्राट् ललितादित्य—जो अत्युत्तर भारत के अधिपति थे—उन्होंने मध्य एशिया और तिब्बत पर चढ़ाई की। लद्दाख के साथ अधिकांश पश्चिमी तिब्बत उन के अधिकार में आ गया। वह था आठवीं सदी का प्रथमार्द्ध। बाद में सम्भवतः मुसलमानी अमल में पश्चिम तिब्बत भारत के बाहर निकल गया। अब मात्र लद्दाख भारत की सीमा के अन्तर्गत रहा। भारत के राष्ट्र में सर्वापेक्षा ऊँचा और ऊबड़-खाबड़ प्रदेश है लद्दाख। इस की ऊँचाई अनेक स्थलों में पन्द्रह-सोलह हज़ार फ़ुट है। लेह शहर ग्यारह हज़ार की ऊँचाई पर प्रतिष्ठित है। इस प्रदेश में सर्वत्र तिब्बती भरे हैं। संस्कार में, सामाजिकता में, आचार-व्यवहार में और अर्थनीति में तिब्बत से लद्दाख का अलगाव कम है।

लद्दाख है उत्तर और दक्षिण में विशाल पहाड़ी भू-भाग में फैला क्षेत्र—जो मूल हिमालय और काराकोरम के मध्यवर्ती जास्कार और लद्दाख गिरिश्रेणी में परिव्याप्त है। लद्दाख की दक्षिणी सीमा अनिर्णीत है। शिपकी गिरिसंकट में रंगचुंग उपत्यका पर क़दम बढ़ाते ही तिब्बत का इलाक़ा—जो कारवाँ-पथ गारटक तक विस्तृत है। यह है तिब्बत-भारतीय वाणिज्य-पथ। मगर 'रूपसुहानले' दोमेत और रंगचुंग इत्यादि उपत्यकाओं के सम्बल हैं भी या नहीं, कहना मुश्किल है। आज से प्रायः डेढ़ सौ वर्ष पहले कर्नल लम्बटन ने भारत का पहली बार जरीब किया। उन के इस परिमाप में आज तक कोई परिवर्तन हुआ या नहीं और भारत सरकार की इस विषय में कोई भौगोलिक नीति रही है या नहीं, यह बताना मुश्किल है। उत्तर लद्दाख और उत्तर-पश्चिम कशमीर आज पाकिस्तान के द्वारा अवरुद्ध है। इस के अन्तर्गत है स्कार्दु, बलतिस्तान, खालदा, हुंजा, गिलगिट, दारेल, टांगीर, सोयात कोहिस्तान, चित्रल, काफ़रिस्तान आदि। यह सभी हैं एक-एक विराट् पहाड़ी भू-भाग, अनगिन नदी प्रवाहित उपत्यकाएँ और मालभूमि; अनगिन हिमांग इलाक़े, अनगिन छोटे-बड़े पहाड़ी जनपद—और ये सभी

इलाक़े सभी तरह की सूचनाओं से रहित हैं—बौद्ध और हिन्दू कीर्ति का अगणित भग्नावशेष आज स्थिर रहने पर भी बहुत से भू-भागों में सैकड़ों बरसों से आदमी के चरण भी नहीं पड़े हैं उत्तर लद्दाख में। बलतिस्तान उपत्यका के उत्तर-पूर्व के इलाक़े अर्वाचीन काल से हिमप्रवाह के द्वारा अवरुद्ध हैं। पृथ्वी की उच्चतम शिखर गौरी शृंग की दक्षिणवाहिनी नदियाँ तुषारस्तूप में परिणत नहीं हुईं, मगर मध्य एशिया का सर्वनाश तुहिन-बतास का खुला पथ पा कर काराकोरम शैलश्रेणी की क्रोड़ भू-भाग में शत-शत मीलों तक अत्यधिक परिमाण में जल धाराएँ कठिन हिमवाह में बदल गयीं। उन में हैं वियाफो, हिसपार, सियाचेन, बलटोरो, राइमो, बाटुरा, चोंगो इत्यादि। ये सभी कभी गलते नहीं। इन हिमवाह लोकों के भीतर ही भीतर एक-एक तुषार मण्डित गगनचुम्बी शिखर-लोक हैं और वे प्रत्येक काराकोरम उर्फ़ कृष्णगिरि श्रेणी के अन्तर्गत हैं। इन अनध्यूषित जनपद चिह्नहीन हिमप्रवाहों से हो कर १९५४ ई० में इटली के अध्यापक 'देशियोर' के नेतृत्व में एक अभियात्रियों का जत्था 'गडविन अस्टिन' के शिखर (२८,२५० फ़ुट) पर आरोहण करने में समर्थ हुआ। यह संसार का द्वितीय बृहत्तम पर्वतशृंग है। इस अभियान में एक से अधिक अभियात्री मौत के घाट उतरे। पाकिस्तान अवरुद्ध कश्मीर का इलाक़ा केवल मात्र कश्मीर के दक्षिण-पश्चिम में फैला है यही नहीं—सिन्धु नदी के आरपार समग्र कश्मीर का उत्तर और उत्तर-पूर्व इलाक़े भी उन के द्वारा अवरुद्ध हैं। 'स्कार्दु' इलाक़े से उस की शुरुआत है और चित्रल के दक्षिण में 'अर्णव' इलाक़े और कुनार नदी के मैदान में उस का अन्त है। हम लोगों के साधारण ज्ञान और कल्पना की अपेक्षा कश्मीर भू-भाग बहुत बड़ा है और पूर्व-पश्चिम में अधिकतर विस्तारित है—जिस का ठीक-ठीक जरीब आज भी शेष और अव्याख्यायित है।

पश्चिम तिब्बत में 'गारटक' है एक अत्यन्त प्रमुख मिलन-केन्द्र। लद्दाख से यहाँ आया है सिन्धु का सीमा-पथ सीधे दक्षिण में। टिब्बेट-हिन्दुस्तान पथ आया है पश्चिम से शिपकी हो कर। पूर्व पथ में तिब्बत की प्रसिद्ध सोने की खान 'लोकजांगलू' से एक पथ यहाँ आ कर जुड़ गया है। यह सब एकत्र हो कर सीधा दक्षिण में सोलह हज़ार फ़ुट ऊँची पालभूमि के ऊपर से मानस सरोवर की तरफ़ चला गया है।

मानसरोवर! शंकालु को ठिठक कर रुक जाना पड़ा।

मानस का प्राचीन पौराणिक नाम है 'अनवतप्ता' और कहीं इस का नाम है पद्म-ह्रद। बहुतों का कहना है ये दोनों नाम प्राचीन बौद्ध तथा जैनों का दिये हुए हैं। परम आश्चर्यमय रश्मियों के परकला में सदा ही मानस के ऊपर तैरता स्वर्णकमल का दल तीर्थ यात्रियों के अश्रुसजल नयनों में प्रतिबिम्बित होता रहता है। जबकि यह मात्र है आँखों का भ्रम—यह सब जानते हैं। मगर ऊँची भू-भाग के वायुस्तर में सूर्य रश्मियों की विचित्रता के हेतु मानस और रावण सरोवर का उर्मितरंगित जल झलमल करता

रहता है—इस की प्रखर स्वच्छता में और भी बीस मील दूरवर्ती वज्रवराही कैलास के धवल मुकुट में प्रतिबिम्बित होता है। भू-मण्डल का इतिहास कितने वर्षों का है, यह पता नहीं, मगर मानव-इतिहास में प्रथम बार अन्वेषित ह्रद है मानस—जहाँ से राजहंसों का झुण्ड स्वर्णिम पंख फैलाये अनन्त नीलगगन में बलाका के आयतन में उड़ जाता है। कोटि-कोटि मनुष्यों की दृष्टि में यह सरोवर सर्वापेक्षा पवित्र है, सर्वापेक्षा विस्मय-बोधक और प्रेरणादायिनी है, संसार में सभी ह्रदों में सर्वापेक्षा प्रसिद्ध और मानव वंश की उत्पत्ति के युग से सर्वापेक्षा प्राचीन है। भारतीय जरीब के अधिकारियों में अवसर-प्राप्त कार्यकर्ता और हिमालय के भू-तत्त्वविद् मि० हेडेन ने कहा है—'भूगोल का प्रथम परिचित ह्रद है मानसरोवर। हिन्दू पुराणों में मानसरोवर प्रसिद्ध है। वस्तुतः सभ्य मनुष्य के निकट युरोप के जेनेवा ह्रद को प्रसिद्धि प्राप्त करने से बहुत सदियों पूर्व मानस-सरोवर मानव-जातियों में यश प्राप्त कर चुका है। इतिहास के उषाकाल में भी पहले मानस सरोवर अति पवित्र प्रतीत होता है और इस प्रकार यह सरोवर क़ायम है चार हज़ार वर्षों से।'

अलमोड़ा के उत्तर-पूर्व में कठिन पर्वत श्रेणियों के भीतर से गोरीगंगा, धौली-गंगा पार कर कालीगंगा के किनारे-किनारे एवं आसकोट, धरचूला आदि जनपदों को अतिक्रम कर के 'गार्बियंग' नामक जनपद में पहुँचा जा सकता है। यहाँ से तुषार सीमा और दुःसाध्य तथा जन विरल पहाड़ी कालीनदी के उत्तर पथ नैपाल सीमा से सट कर आँकी-बाँकी होती हुई चली गयी है लिपुगिरिसंकट की ओर। गार्बियंग से तिब्बत का ताकलाकोट बत्तीस मील है। सरकारी हिसाब से १६,७५० फ़ुट ऊँचाई पर (समुद्र तल से) लिपुलेक गिरिसंकट में तुषारमंडित हिमालय पर आरोहण करना पड़ता है। यहाँ के किसी एक स्थल पर जा खड़ा होने से नज़र आयेगा दक्षिण में अनन्त पर्वतमाला में भारतवर्ष, और उत्तर में रौप्यमंडित शुभ्रतुषारावृत तिब्बत का गुरुला मान्धाता की उजली नीलिमा के नीचे प्रखर सूर्यलोक में देदीप्यमान है। अलमोड़ा से कैलास और मानस सरोवर की दूरी है यथाक्रम से आठ सौ मील। कैलास का तिब्बती नाम है—'कांग रिनपोचे'। मानस सरोवर समुद्र तल से पन्द्रह हज़ार फ़ुट ऊँचाई पर मालभूमि पर अवस्थित है। इस की गहराई है तीन सौ फ़ुट, परिधि चौवन मील और मोटाई दो सौ वर्गमील की सीमाबद्ध है।

कैलास के जो आदि देवता हैं वे हैं 'धर्मपाल'। बाघ की खाल से ढके और नरमुण्डों से सजे-धजे। एक हाथ में डमरू और दूसरे हाथ में त्रिशूल। जो शक्ति हैं, वे ही हैं वज्रवराही—वे धर्मपाल के साथ अटूट आलिंगन में, यौन-योग में चिपकी हैं। पुराण में कहा गया है, कैलास के शिखर लोक की तरफ़ कान खड़े रहने से सुनाई पड़ेगा शंख-घंटाध्वनि और झांझ-करताल और भाँति-भाँति के वाद्ययन्त्रों का संगीत झंकार।

जो मानव-प्रेमी संन्यासी हैं, जो स्वभावतः अतर्कित संस्कार से वर्जित हैं, जो ज्ञान और विज्ञान के भिखारी हैं, भावुकता से जो बिलकुल मुक्त हैं—उन्होंने कहा है,

विश्वास करो—जितने तीर्थ हैं हिमालय में, उन में सर्वश्रेष्ठ है कैलास और मानस सरोवर। चतुर्दिक्व्यापी समग्र अंचल अचरज से भरा हुआ। चाहे तुम अस्थिर असन्तोष में चंचल हो, तुम जिस किसी धर्म के, जाति के, समाज के क्यों न हो, तुम संशयी, अविश्वासवादी हो, चाहे आस्तिक या नास्तिक क्यों न हो, एक समय तुम्हें लगेगा अज्ञान में, अचेत में, अप्रतिरोध भाव में, कब तो तुम एकाग्रमय हो उठे हो। किसी ने तुम्हें पीछे से धकेला हो सामने महादेवता के नाट्य मन्दिर की ओर—हो सकता है वह तूफ़ान का बवंडर हो, कोई अदृश्य शक्ति हो या विराट् विश्व की केन्द्रस्थ महत् कामना।"

संन्यासी ने कहा, आजन्म जिस की घ्राण-शक्ति पंगु हो—गुलाब की सुगन्ध कैसी है, वह जानता नहीं। बेतारयन्त्र का काँटा विशेष बिन्दु के ऊपर निर्दिष्ट न होने पर दूर देश का कोई भी संगीत-अनुष्ठान सुनाई नहीं पड़ सकता। मगर यहाँ आ कर खड़े हों। सूँघने से हीन आदमी प्रथम गुलाब की गन्ध पा कर रोमांचित हो उठेगा। उस के अस्तित्व का एक गहरी अध्यात्म लालसा वाला काँटा एक विशेष बिन्दु के ऊपर आ कर घर-घर करता हुआ काँपता रहेगा।

हृदय विदारक आर्तनाद करती हुई सिन्धु उत्तर-कैलास की तरफ़ चल पड़ी है। सिन्धु का आदि-अन्त दिशा भ्रमित है। आदमी के चरणचिह्न उस के बहुत सारे तटों पर नहीं पड़े हैं—सैकड़ों वर्षों से। सभ्यता का सूत्र ढूँढ़े नहीं मिलता—ऐसे अजाने-अनाम भूखण्डों के भीतर से सिन्धु गुजर रही है। सिन्धु है अपरिणामदर्शी। सिन्धु नद ने भारत के सीमान्तों को सर्वापेक्षा क्षतिग्रस्त किया है। सिन्धु की उत्पत्ति है कैलास मानस अंचल में ही।

सिन्धु चली गयी है लद्दाख के भीतर से। बहुत ऊँचाई पर मालभूमि में अवस्थित है ले शहर। बहुत सारी प्रसिद्ध बौद्ध गुफाएँ समग्र लद्दाख में मौजूद हैं। उन में फियांग, काउन्चि, लिकिर और हेमिस प्रमुख हैं। हेमिस गुफा ले शहर से प्रायः पचीस मील दुस्तर और लोकशून्य पहाड़ी मार्ग के ऊपर अवस्थित है। यह एक छोटा सा जनपद है। मगर छोटा होने पर भी संसार-प्रसिद्ध है। इस गुफा में ही महामानव ईसू क्राइस्ट के भारत-भ्रमण का वास्तविक तथ्य-समन्वित प्राचीन पाली भाषा में लिखित पोथी एक रूसी पर्यटक डॉ॰ निकोलस नतोविच को मिली थी। १८८७ में तुर्क-रूस युद्धकाल में वे अकेले काकेशस और मध्य एशिया पार कर भारत-प्रवेश के मार्ग से लद्दाख के एक इलाक़े के पहाड़ से गिर कर घायल हुए। लम्बे दिनों तक उन की हेमिस गुफा में सेवा-सुश्रूषा की गयी। स्वस्थ होने के बाद एक दुर्लभ ग्रन्थ का पता उन्हें वहाँ चला और दोभाषिये की सहायता से उस ग्रन्थ का उन्होंने पाठ किया। इसी से पता चला कि किशोरावस्था में ईसा मसीह विवाह के बन्धन में न बँधने की खातिर मध्य एशिया में वणिकों के संग भाग कर भारत चले आये थे। वे बचपन से ही गौतम बुद्ध की वाणी से अनुप्राणित रहे और भारत-भ्रमण में उन्होंने प्रायः सोलह वर्ष व्यतीत

किया। उन्होंने पुरी, काशी, कपिलवस्तु, कुमायूँ, नेपाल और कश्मीर का भ्रमण किया और बौद्ध शास्त्र का मूल वक्तव्य—जाति-वर्ण के परे सभी मनुष्य समान हैं—का प्रचार करते रहे। उन्नीस वर्ष की उम्र में ईसू क्राइस्ट जेरूसलम लौट गये। इस के बाद सलीब पर चढ़ने के पश्चात् उन के भक्तों ने उन्हें सलीब से उतार कर गुल्मलता-जड़-मूल के रस का लेप उन के कटे-फटे अंगों को चढ़ा-चढ़ा कर ठीक किया और पुनर्जीवित ईसू फिर अपने सपने के भारत में आ गये। कश्मीर में उन की मौत हुई। श्रीनगर के निकटवर्ती थाना-यारो नामक स्थान में ईसू क्राइस्ट के नाम पर एक क़ब्र है और भी एक विश्वास योग्य क़ब्र है करांची शहर से कई मील दूर। उक्त पोथी में उल्लिखित इस चौंकाने वाली कहानी के आधार पर निकोलस नतोविच ने जिस प्रामाणिक ग्रन्थ की रचना की उस का नाम है :—"The Unknown Life of the Jesus Christ." मात्र दो बंगाली इस ग्रन्थ को हेमिस गुफा में देख आये हैं, उन में एक हैं प्रसिद्ध परिव्राजक स्वामी अभेदानन्द और दूसरे हैं अभेदानन्द के ही नित्य सेवक ब्रह्मचारी भैरव चैतन्य।

हेमिस गुफा के प्रधान पुजारी का कहना है ईसू क्राइस्ट ने पाली भाषा सीख कर बौद्ध शास्त्रों का अध्ययन किया और अपने भारत-अवस्थान काल के शेष दिनों में उन्होंने बौद्धधर्म को ग्रहण किया। अपने देश लौट कर वे बौद्धनीति के आधार पर एक नये धर्म का प्रचार करते रहे। ईसू क्राइस्ट को "Sermon on the Mount." नामक धर्मनीति—वक्तव्य अविकल रूप में और हूबहू बौद्ध तथा हिन्दू धर्म नीतिवाद का नक़ल मात्र है।

सिन्धु का जन्म कैलास में हुआ, ब्रह्मपुत्र का जन्म ब्रह्मा द्वारा बनाये गये मानस सरोवर में। इस नदी के दक्षिण में है हिमालय, उत्तर में है कैलास और 'नियेनचेनटाँग्ला'। अनन्त नीलाम्बर की छाया को हृदय में धारण कर संन्यासी ब्रह्मपुत्र ब्रह्मलोक से दौड़ पड़े हैं देवभूमि भारत की ओर। जाड़े के दिनों में अधिकांश नद बर्फ़ से ढके रहते हैं। उस के दोनों बग़ल के गुफा-कन्दराओं में रहते हैं सफ़ेद-पीले भालू, अनाम अतिकाय धूसरवर्ण जन्तु रात के अँधेरे में आश्वेत-नील नदों की गन्ध सूँघ कर लौट जाते हैं। बीच-बीच में आते हैं भयावह विलक्षण पंछी, बहुत से जन्तु उन के भय से पहाड़ों के दरों में छिप जाते हैं। कभी-कभी खोजने पर मिलता है तीर्थयात्री और वणिकों के अस्थि-पिंजर—पहाड़ से घिसके हिमवाह के आघात से वे जड़ीभूत हो गये हैं सदा के लिए। कभी आता है भयानक पहाड़ी महानाग, कभी पथ भूला ईगल। ये सब आते हैं पानी के प्यास के मारे, मगर पानी न पा कर खून से लथपथ भग्न-भग्न चक्कर काटते रहते हैं।

ब्रह्मपुत्र का दक्षिणांचल अगम्य है। भीषण पाताल मार्ग, शून्य अन्धकार, गह्वर लोक, बालू-गिट्टियों वाला कर्कश मैदान—ये घेरे हैं सैकड़ों मीलों को। पृथ्वी की गति यहाँ धीमी है, महाकाल के जप की माला घूमती है यहाँ बहुत धीरे—कर्म-कोलाहल

कहीं भी नहीं, आदम-बस्ती कहीं भी नज़र नहीं आती। कभी-कभी आते हैं मंगोलिया या तिब्बत घुड़सवार डकैतों का गिरोह, ऊँट के कारवाँ पर आक्रमण करते हैं ये और वे नुनही बालू-कंकड़ों-पत्थरों वाली मरुभूमि में सुरक्षित कर जाते हैं, ख़ूनी कहानियाँ। आता है हिमालय, कैलास और निरेनचेनटांग्ला के नीचे-नीचे नमक का बवंडर आता है तूफ़ान, आता है आकस्मिक बादलों का, बिजुली वज्र अन्धकार में, यारखन्द में और खोटान में, ताकला मकान में और तुर्कीस्थान में, कैलास और मानस में।

धूप के प्रचण्ड दाहक ज्वाला में अचानक भयंकर बर्फ़ गिरती है तिब्बत में। हठात् उतर आती है भयानक वर्षा साथ-साथ। दिनान्त के तपिश में हठात् भक-भक लाल आग की लपटें उठती हैं कैलास और मान्धाता की शिखरों पर—उसी ओलों के प्लावन की बग़ल से काले धूएँ का पुंज उठता है। एक ही दिनमान में आग बरसाती धूप, प्रलय, नृत्य-रत वर्षा-शरत् की निर्मल नीलिमा, भयानक जाड़े का सांघातिक तुषार—उसी के साथ ही वसन्त-समीरण का मधुर स्वगत प्रलाप से मानस-हृदय के रक्तकमल उद्वेलित हो तैरने लगते हैं। ऊपर से उतर आती है शुक्लपक्ष की असह्य प्रखर चन्द्रछटा। उसी ज्योति विकिरण के नीचे कैलास शिखर स्थित देवादिदेव की क्रोड़बद्धा वज्रबराही की निविड़-निमीलित मैथुन यन्त्रणा तीर्थयात्रियों की प्राणसत्ता के अस्तित्व को आवेश में उद्वेलित कर देती है। वे कम्पित कण्ठों से मन्त्र-जाप करते हैं नव-विश्व-सृजन के।

[८]

गागर गिरिश्रेणी के नीचे-नीचे मार्ग चला गया है बहुत दूर तक। कहीं-कहीं छोटी-मोटी उपत्यकाएँ हैं, वहाँ मार्ग विभिन्न दिशाओं में बिखर गये हैं। पहाड़ के बाद पहाड़, उसी के अन्दर से आदम के पदचिह्न चले गये हैं—इधर-उधर। पहाड़ों के ऊपर खेत हैं एक-एक सोपानों पर नीचे तक सजे हैं।

'काइंची' और रातघाट' पार करता चला जा रहा था। जंगलीय सीमान्त से सट कर 'गाधेरा' नामक गिरिनदी झिर-झिर बह चली है। विविधरंगी पत्थरों की प्रदर्शनी से नदी का अंग-प्रत्यंग भरा है। लाल, नीले, पीले, हरे, काले—सभी रंगों के पत्थर। उस में से कसौटी (कष्टिपाथर) खोजते आते हैं विभिन्न देशों के लोग। उस पार है वनखजूर का जंगल, उसी के साथ है चीड़ के पेड़ों का झुण्ड। उपत्यका के रंगीन पंछी नदी में उतर आये हैं, पत्थर के फाँक-फाँक में वे नहाने में उलझे हैं। खेतिहर औरतें यहाँ-वहाँ पत्थर सजा कर नाली में से पानी उतार रही हैं छोटे खेतों में। भेड़े

का पाल हाँकता छोटा लड़का चला जा रहा है। नदी के आस-पास उतर जाने पर सांसारिक रूप दीखने लगता है।

कुमायूँन पर्वतमाला विश्वविश्रुत है। बहुत से पर्यटक और पण्डित बाहर से आ कर कह जाते हैं, कुमायूँ है प्राच्य का भू-स्वर्ग! किसी ने कहा, शोभा और सौन्दर्य-श्री की यह है—इन्द्रपुरी—भारत के ललाट पर कुमायूँ मानो मणि-मणिकाओं सा चक-मक कर रहा है। जन-जीवन जिस तरफ़ नहीं है, अचानक मुड़ कर देखो, उधर साधु बैठे हैं जप-आसन पर, या जल रही है धूनी या फिर संसारत्यागी वैरागी ने बनाया है मनमाफ़िक आश्रम। किसी गाँव के माठ-मैदान में पहाड़ के किनारे डाल-डालियों और पत्थरों के सहारे 'कुटीर' बनाया है संन्यासी ने—सिर पर फैलाये है पीपल अपनी छाँह—यहाँ वह रहता आया है अनेक दिनों से। कोई अधिकार नहीं, कभी दावा भी नहीं करता—मगर कोई न कोई सेवक बढ़ आया गाँव से। 'भूरा' या चरस की चिलम में आग सजा कर आगे बढ़ा दिया है। उसी चरस को टाना संन्यासी ने पूरे दम के साथ। देखते-देखते ही 'असारः खलु संसारः'। जय शिव शम्भो!—नशे में बुत्त होना चाहिए वरना संसार माया है यह प्रतीति क्योंकर हो? बाल-बच्चे, धरती, घर-गृहस्थी—इन्हें मानता हूँ, यही तो माया है! उस की गिरह मन-मन में है। चरस के धुएँ से इस मायामय मन का विकेन्द्रीकरण होता है, नाभि-केन्द्र में प्रलय-विपर्यय मालूम होता है। उसी मीठे 'प्रलय' में गाँव की गृहिणी साधु जी के आकर्षण में। गाँव में साधु के आते ही गाँव धन्य हो जाता है। गाँव के लोगों का वहीं हो उठता है बैठका। साधु की अवमानना कुमायूँ में कहीं नहीं है।

बदली घिर आयी है पहाड़ों की गोद-गोद में, या चोटियों पर। नारियाँ उतरा उठीं। सदा लगाई पहाड़-पहाड़ में। भेड़-बकरियाँ निकल गयी हैं दूर-दूर मगर वे इन नारियों के गले की आवाज़ पहचानती हैं। मालभूमि के नीचे से आवाज़ पा कर वे मुँह उठा कर देखती हैं। भैंस की पीठ पर चढ़ बैठे बालक-बालिकाएँ, बकरियों के गले में पड़ी घण्टियाँ गूँज उठीं। देखते-देखते बरखा उतर आयी इस पहाड़—उस पहाड़ पर।

बैलगाड़ी किसी दूर देश से चली है एक माह आगे। शरद्ऋतु के आखीर में पहाड़ी मंजूर अपनी गृहस्थी सहित उस पर सवार है। दस-बीस गाड़ियाँ एक संग चल रही हैं—एक मुल्क से दूसरे मुल्क की ओर। वे जा रहे हैं फ़सल काटने अन्य देशों में। दो महीने तक चलेंगी उन की गाड़ियाँ। वे मंजूर हैं। गाड़ी के अन्दर होते बच्चे या औरतें। पहाड़-पहाड़ पर रात का पड़ाव, पेड़ों के नीचे खाना-पीना और आराम, गाड़ियों के नीचे-नीचे सोने को बिछावन लगे हैं। लाठी और बल्लम लेकर मर्द पहरा देते हैं रात को—कहीं जन्तु-जानवर हमला न करे। गाय, बकरियाँ, कुत्ते सभी के गले में घण्टियाँ लटकी हैं। कोई भी संकट में घिरा कि घण्टी बज उठी। सूर्य का उत्तरायण आरम्भ होते ही वे फिर उसी मार्ग से लौटेंगे। वे इसी में पूरे वर्ष का इन्तज़ाम कर लौटेंगे। जाते-जाते देखता क्या हूँ कि गाड़ी में कई परिवार दिन के वक़्त भी निश्चिन्त

सोये हैं, और बैल अपने मन से गाड़ी खींचते हुए पहाड़ों के संकट-संकुल मार्गों की मोड़ों में मुड़ते हुए गाड़ो लिये जा रहे हैं। गाड़ीवानों की परवाह उन्हें नहीं है। बैल चल रहे हैं, उन के कन्धों पर चली जा रही है एक-एक दुनिया—उसी में कोई औरत प्रसव कर रही है, कोई मर गया है, किसी की पीठ पर पहाड़ी चीते ने तेज़ नखों वाले पंजा मार कर खरोंच लिया है और कि किसी एक गाड़ी का एक बैल ही मर गया है—उन्होंने सिकन तक न आने दी। दाना चबाते हुए, बाजरा-ज्वार का 'डेला' या मकई भून कर खा-खा कर वे चले जा रहे हैं—अपनी राह। मार्ग के मोड़ लेने से ही फिर वही घनी स्तब्धता। किसी एक उड़ती पाँखी की पुकार, सरीसृपों का आभास, झिल्लियों की झंकार—उस स्तब्धता को और गहरा बना देती हैं। चारों तरफ़ की व्यापक आरण्यक से मन सिहर उठता है। जैसे कुछ अगल-बग़ल दीख रहा है, कोई मानो टकटकी लगाये है मेरी ओर हर चट्टानों की ओट से। मैं मानो अनधिकार किसी विचित्र दुनिया में प्रवेश कर रहा हूँ। हर झाड़ियों के अन्धेरे में, हर गुफा के गह्वरों में, हर पेड़ के कोटरों में—है कोई, जिसे जानता नहीं, पहचानता नहीं, समझ पाता नहीं।

कुमायूँ के पश्चिम सीमाना लगता है तमसा नदी द्वारा चिह्नित है। 'बन्दर पंच' पर्वत माला से उतर कर दक्षिण में हरिपुर में आ कर तमसा नदी आ मिली है जमुना से। इसी बन्दर पंच में ही है जमुनोत्री तीर्थ। हरिपुर से एक मार्ग चला गया है चक्रता, और वहाँ से वह मार्ग सीधा उत्तर में अन्तहीन पर्वतमाला और उपत्यकाओं के भीतर से चला गया है 'रावयाहन' और 'पाखड़ी' हो कर किन्नर देश की ओर शतद्रु-तीरवर्ती वाँग्टा में। पाखड़ी से वाँग्टा का मार्ग बड़ा दुःसाध्य है। कुमायूँ का उत्तर भूखण्ड है पश्चिम तिब्बत का सीमान्त। समग्र हिमालय की पर्वतमाला का प्रायः दो हज़ार वर्गमील दीर्घा में कुमायूँ के जैसे एक अधिक संख्यक घननिविष्ट तुषारचूड़ाएँ और कहीं नहीं हैं। कूमायूँ का हर पहाड़ देवता तुल्य है, हर जल-धारा गंगा जैसी है, हर प्रस्तर विग्रह-सम है और हर गुफा को मन्दिर का महत्त्व प्राप्त है। लगभग सभी अधिवासी धर्म-सेवी, सत्यवादी, सरल और अतिथिपरायण हैं। हिमालय के प्रत्येक श्रेष्ठ तीर्थ कुमायूँ के ही अर्न्तगत हैं। कैलास—मानसरोवर की सर्वापेक्षा प्रशस्त और निरापद मार्ग कुमायूँ के भीतर से ही चला गया है। इसी कुमायूँ में उत्तरमुखी हो कर खड़ी है जो तुषार चूड़ाएँ, प्रतिपल मनुष्य की पूजा पाती हैं, उन में हैं, जमुना पर्वत, श्रीकान्त, गंगोत्री, केदारनाथ शतोपथ, बदरीनाथ, नीलकान्त, नन्दादेवी, त्रिशूल, द्रोणगिरि, कामेत, हासीपर्वत, गौरीपर्वत, पंचचूली, नन्दाघुंटी, नन्दमोट—ये सभी सर्वप्रमुख हैं। कुमायूँ का आकाश नित्य शिवशम्भू के नामोच्चारण से गूँजता रहता है, प्रत्येक गिरि-नदी की कलकल ध्वनि में गंगा का स्तवन मुखरित है। लालसाओं में, आकांक्षाओं में, पीड़ाओं में, तृष्णा में तुम हो अजर!—आओ कुमायूँ, शीतल श्वास, मधुर समीरण से तुम्हारी सभी जलन पर शान्ति का लेप चढ़ जायेगा। असाध्य बीमारी से तुम हो

पंगु, आओ नीलधारा की गोद में,—नवजीवन का भरोसा पा जाओगे। यहाँ की मिट्टी में चन्दन की सुगन्ध है, तपोवन की कुसुमशय्या देवसुरभि है, लता-पत्रों में बीजमन्त्रों की फुसफुसाहट है, और मन्दिरों में उदात्त ओंकार ध्वनि। हर बर्फ़ीली चोटी पर है देवता का सिंहासन! हर मार्ग की मोड़ में मिलेगी शिव और शक्ति, विष्णु और लक्ष्मी की वन्दना।

कोशीनदी के किनारे से गुज़र रहा हूँ। कोई कहता है कौशिक, कोई 'कौशल्या' छोटा रामगढ़ पार कर रहा हूँ—अगल-बग़ल हैं मामूली बस्तियाँ। इस के बाद मिला पड़ाव के लायक़ गाँव—'गरमपानी'। नाला-नदी पार कर आदिम अति-प्राकृतिक आरण्यक देखता हुआ साये में डूबी तराइयाँ। ममता में मन रुआँसा हो उठा है जाने कितनी ही बार। अन्तर का पंछी कभी पोश मानता ही नहीं। हिमालय का बृहत्तर प्राकृतिक लोक में पहुँच कर अन्दर से वह डैन फड़फड़ा उठा है, पुकार रहा है विदीर्ण कण्ठ से, आकाश की तरफ़ ताकता हुआ। पिंजड़े का पंछी निश्चिन्त उन्मुक्तता पा कर भी स्थिर रहना नहीं चाहता। अपनी दुनिया को खोज-ढूँढ़ निकाला है उस ने बार-बार।

दक्षिण मार्ग पर मोड़ लेते ही सामने ही मिला 'खैरना' साँको। इस पार है दक्षिण कुमायूँ, उस पार मध्य कुमायूँ। 'खैरना' हुआ नैनीताल और अलमोड़ा का अन्यतम सम्पर्क पुल। देखते-देखते ही आ पहुँचा 'पीलखोली' की घाटी-चौकी पर। यहाँ चुंगी दे कर सलाव ठोंक कर आगे जाना होगा। चढ़ाई पथ यहाँ से चला गया है रानीखेत की तरफ़।

चढ़ाई पथ ऊपर उठ आया है बहुत दूर तक। दिगन्त अब कहीं विस्तृत हुआ। अवरोध हट गया। हेमन्त की स्निग्ध हवाएँ गिरिशिखरों पर बह रही हैं। उत्तर पथ का मोड़ पार करते ही 'रानीखेत' शहर में आ पहुँचा। हिमालय की बर्फ़ीली चोटियाँ फिर सामने आ खड़ी हुईं।

पुराना दोस्त जैसे दोनों बाँहें फैला-बुला कर चिपका लिया छाती से। अब बहुत दिनों बाद आ खड़ा हुआ हूँ। प्राचीन प्रसन्न स्नेह के ज़रिये जैसे प्रीति अभ्यर्थना की रानीखेत ने—अच्छे तो हो?

मन ही मन उत्तर देना पड़ा—ऊँ हूँ, अच्छा नहीं हूँ। किसी दिन भी नहीं था, पैर में चक्कर है बहुत, सिर चकराता है उस से भी अधिक। आँखों से बहा है ढेर सा खून, दिल फाड़ कर निकल आयी हैं बहुत सारी पीड़ाएँ। ललाट पर खिंच आयी हैं लकीरें, तन-वदन में घिर आया है बुढ़ापा! देखो, पलकें खोलो!

"चिह्न की आछे श्रान्त नयने अश्रु-जॅलेर रेखा?
विपुल पथेर विविध काहिनी आछे की ललाटे लेखा?"

सहसा कूद पड़ा आधुनिक उपकरणों के बीच। ठीक-ठीक बताना मुश्किल है—लगता है रानीखेत पूरे कुमायूँ में सब से सुन्दर शहर है। मन नाच उठा उन्मुक्तता पा कर। बहुत सारे लोग नजर आ रहे हैं इकट्ठे, पक्के घर-मकान हैं सर्वत्र, पाइन के वनों में साहेब-सूबों के बँगले, यहाँ-वहाँ सरकारी बैरक़, बहुत बड़ा बाजार।

शहर के दक्षिण में मोटर स्टैण्ड के सामने है 'लतिफ़ मंजिल' नामक मकान, मेरा जाना-पहचाना है। आज मैं राजसी चेहरा और पहिरावे में हूँ। अकेले नहीं हूँ साथ में हैं मित्रवर शशांकमोहन चौधरी। वे पगहा तोड़ कर इस बार निकल पड़े हैं। हम लोगों ने 'लतीफ़ मंजिल' का एक कमरा ले लिया—दोमंजिले पर। सभी इस दफ़े सहज-प्राप्य है। अब रसोइयाँ आया, नौकर और चपरासी आया।

लोभ के उपकरण चारों ओर सजे हैं। चारपाई-खटिया जुट गयी क़िस्मत से—एकदम स्वर्ग-राज्य। खाने की जो चीज़ चाहो, तैयार। काँच के प्लेटों से सजा होटल, प्याले-प्लेटों की टुनटुनाहट, बेतार पर बम्बइया गाने, दूकान-दूकान रंगीन पेय के फेन से फेनिल। सभी है सहज-प्राप्य और अनायास, कहीं कुछ परवाह नहीं, उत्सुकता नज़र नहीं आती कहीं—चारों तरफ़ भोग की चीजें तरतीब से सजी हुई। बाज़ार में जो जी चाहे खरीद लो, जिसे इच्छा हो बुला लो, जब चाहो निकल पड़ो।

अस्थिरता उपत्यका की, रत्ती भर भी रानीखेत कहीं नहीं। ठीक इस के उलटा है—शिलोंग शहर पहुँच कर मन में लगता नहीं कि पहाड़ पर आ गया हूँ, यहाँ तक कि दार्जिलिंग का वह चाँदमारी बाज़ार भी बहुत कुछ चौड़ा और समतल है, और थोड़ा नीचे उतरने पर लेवंग का मैदान है। शिमला में भी मिलता है आनानदेल का मैदान। रानीखेत उस सुयोग से वंचित है। या तो ऊपर चढ़ो या फिर नीचे उतरो। उत्तर में उतराई पथ पर उतरने से जरा समतल मिलता है—वरना रानीखेत शहर है पहाड़ का अंग।

रानीखेत में बहुत सारे जंगल हैं। प्राकृतिक शोभा और जलवायु के आश्चर्य-मय गुणों को देख कर एक ज़माने में लार्ड मेयो ने सोचा, शिमला के बदले रानीखेत को बड़े लाट का पहाड़ी पड़ाव बनाने में हर्ज क्या है? उन का वह अभिप्राय अवश्य कार्यरूप में परिणत नहीं हुआ, फिर भी इस शहर को प्राय: एक सौ वर्ष आगे अँगरेज़ सेना-सामन्तों की छावनी में बदल दिया गया था और यहाँ का गोरा अस्पताल भारत विख्यात हो उठा था। एकमात्र अँगरेज़ों के लिए इस के बाद रानीखेत के ऊपरी हिस्से वाले कूचकवाज के मैदान में, पोलो और गल्फ खेलने का मैदान बना दिया गया। इस के अलावा पाइनवन में अर्धनग्ना तरुणियों के टहलने के लिए पुष्पवीथिका है, आमोद-प्रमोद के लिए निकुंज है, जाड़े के दिनों में मन्द मुसकान वालियों के स्नान करने के लिए स्फटिक धारा में गर्म झरने का कुण्ड भी है, और गिरिशिखर चूड़ा में उन्मुक्त आकाशतले ज्योत्स्ना-रात्रि व्यतीत करने के आनन्द की खातिर 'रक्तकमलदल' को लाया जाता बहुत दूर से।

"जानि तारो पथ दिये बोये जाबे काल,
कोथाये भासाये देवे साम्राज्येर देशबेड़ा जाल।
जानि-तार पण्यवाहि सेना
ज्योतिष्कलोकेर पथे रेखामात्र चिह्न राखिबे ना"—

रवीन्द्रनाथ जाने के पहले कह गये हैं। आज जरूर दूकान उठा कर अँगरेज चले गये हैं, मगर छोड़ गये हैं अपनी रुचियाँ। प्रत्येक पहाड़ी शहरों को अँगरेज जैसे सजा-बजा गये हैं, वैसा और कोई कर नहीं सका। मसूरी, नैनीताल, डलहौजी, शिलोंग, शिमला सर्वत्र अँगरेजों की रुचि का परिचय मिलता है। जहाँ भी खड़े हो जाओ, वहीं से हिमालय की छटा अच्छी तरह देख लो, अँगरेज ने ठीक ऐसी जगह ही आसन जमाया था। हिमालय 'मासोत्रा', नैनीताल का टिफ़िन-टप्, मसूरी का लांडूर, दार्जिलिंग का राजभवन, डलहौजी का ऊपरी हिस्सा—यहाँ तक कि वही सोमेश्वर से आगे 'कौसानी' पहाड़ की चोटी पर डाकबँगलो तक—अँगरेजों की रुचि समान रूप से कारगर है। मजे की बात यह है, अँगरेजों के लिए इस देश में पहाड़ी शहरों में बसनेब-साने के मामले में हिन्दुओं की अपेक्षा मुसलमानों से उन्हें मदद ज्यादा मिली थी। हिन्दुओं ने उन के शासन-तन्त्र में 'मुंशीगिरी' पाया, और मुसलमानों के मातहत था उन का घरेलू जीवन। होटल में ही हो, घर में ही हो और लाटभवन में ही हो उन के बावरची, चाकर, अरदली, चपरासी आदि सभी मुसलमान थे। इस का प्रमुख कारण रहा, गाय। गाय खाते हैं वे दोनों ही। सामाजिक जीवन में खान-पान का महत्त्व बहुत है। इस लिए गोमांस था उभय पक्षों को रुचि का संयोग-सेतु। उधर हिन्दू भी शूकर खाते हैं। बहुत से हिन्दू शूकर खाते हैं और अँगरेज भी शूकर भक्त हैं। अतएव शूकर भी बहुत बार हिन्दू और अँगरेजों को जोड़ते। मुर्ग़ी की बात छोड़ देता हूँ। इस विषय में बहुत बार देखा है हिन्दू-मुसलमान-क्रिस्तान सभी अगल-बग़ल पंघत जोड़ कर बैठे हैं। समग्र भारतीय हिमालय में मुसलमान बहुत ही कम दीख पड़ते हैं, मगर शहर में आते ही उन्हें उन्हीं कामों में नियुक्त देखा जाता है।

रानीखेत शहर बहुत कुछ बारामदे जैसा है। उत्तर अंश सम्पूर्ण खुला हुआ, इस बरामदे में खड़े होने पर तुषारमौली हिमालय में बहुत सारी चोटियाँ अगल-बग़ल दीखती हैं। नीलकान्त, बदरीनाथ, हातीपर्वत, गौरीपर्वत, त्रिशूल, नन्दादेवी और नन्दकोट—एक के बाद एक सजे हैं। कभी दुधिया उजला, कभी गैरिक, कभी स्वर्णाभ, कभी पीत-नीलाभ और कभी मेघमय। रूप में, वर्ण में, सौन्दर्य में, महिमा में—वह मानो हर क्षण रानीखेत को अनुप्राणित कर रखा है। सचमुच कुमायूँ के और किसी शहर से इस प्रकार दिग्वलय प्रसारित हिमालय का अपार सौन्दर्य दीख नहीं पड़ता। दिन-दो हम लोग तन्मय हो रहे थे।

रानीखेत से एक मार्ग उत्तर-पश्चिम की दिशा से नीचे की ओर चला गया है, बदरीनाथ जाने का प्रधान पथ—'बदरीनाथ मार्ग'। कभी केदार-बदरी परिक्रमा में

ऋषीकेश से चलना शुरू कर के ठीक इस मार्ग के मुहाने पर पहुँचने में चार सौ मीलों का अतिक्रमण करना पड़ा था। आज यह मार्ग परित्यक्त है, कारण 'कोटद्वार' से 'कर्ण-प्रयाग' अब 'चामेली' तक मोटर बस का यातायात होता है। रानीखेत से कर्णप्रयाग हो कर सीधा बदरीनाथ था पैदल एक सौ सत्ताईस मील पहाड़। आज अब इस मार्ग से कोई जाता नहीं। मार्ग फोड़ कर चट्टानें निकल आयीं हैं, सुश्री नहीं है कहीं भी। बस्ती का नामोनिशान नहीं, मिलेगा एकाध परित्यागा हुआ खर-पुआल का बना घर। काठ की खूँट गयी है टूट, छप्पर ढह पड़ी है। आदमियों का आवागमन सहसा नज़र-अन्दाज नहीं होता। निहायत देहाती के सिवा और कोई यात्री इधर मँडराता नहीं। मील डेढ़ एक दूर पहुँच कर मिला 'कोटुली' और 'किलकोट' चट्टी। एकाध दूकान, दो-एक लोग। इस मार्ग से झोली कन्धे पर लटकाये कभी अकेला आनन्दपूर्वक लौटा था, दुश्चिता में, निराशा में, कौतूहल में—इस मार्ग में उस दिन था खूब अचम्भा, आग बरसाता हुआ आकाश, चाँदनी चूती हुई सी—भूख और थकान से भरा-भरा, यन्त्रणा और धधकती लालसाओं में, भटकाव के पागलपन में और आशीर्वाद से—यह दुःसाध्य कर्कश प्यास से चीखता मार्ग उस दिन था जी-जान से व्याकुल।

मार्ग प्रशस्त और फैला हुआ है मगर 'बैण्ड' बहुत खतरनाक हैं। एक के बाद एक बैण्ड है। सिर्फ़ डर ही नहीं लगता, मन और तन डर के मारे सूख जाता है। तनिक लापरवाही, ज़रा असावधानी, ब-हिसाब पैर का नहीं पड़ने—का मतलब है जान से हाथ धोना। यह संकट सामने आता है 'माझ खाली' और कालिका स्टेट पार होने पर। सड़क बढ़िया है, नरम और चिकनी—मगर आशंकापूर्ण। हर संकट, संकेत के गाल से गाड़ी मानो अपने को झपट कर चली जा रही है। नीचे की तरफ़ बहुत बार तराई नज़र नहीं आती, जब जहाँ आती है, वहाँ तब जाड़े के दिनों में भी पसीना छूटने लगता है। बीच-बीच में चीड़-पाइन का जंगल है, कहीं-कहीं नदी की चट्टानों से बन गया खड्ड—प्रकृति ने जैसे सर्वत्र जादू का जाल बिछाया है। बायीं तरफ़ बीच-बीच में तुषार-शृंगों की सुदूरवर्ती शोभा, कहीं-कहीं अस्तित्व के आवरण के बाहर अमर्त्य महिमा, नन्दन का सिंहद्वार।

देखते-देखते हम फिर आ गये लगभग कोशी नदी के किनारे। यहाँ से मार्ग चला गया है उत्तर-पश्चिम को तरफ़। सवेरे का अरुण सूर्य की आभा पड़ रही है, नील नदी में। चारों तरफ़ की पहाड़ी के नीचे चौड़ी नदी के दोनों तरफ़ उपत्यका पर खेती का काम चल रहा है। नदी में यहाँ-वहाँ वे ही विविध वर्णों के पत्थर, चमक रहे हैं, दूर-दूर तक चिरकौमार्यव्रती महारण्य खड़ा है मानो अतिकाय कालप्रहरी की तरह। प्रत्येक पालतू जानवरों की आँखों में है सौर जगत् के रहस्य का विस्मय है।

एक-एक कर 'पाटली बाजार', 'साकार', 'मानान' आदि जनपद पार करता जा रहा हूँ। जीव-जन्तु के साथ ही साथ नर-नारी और शिशुओं के चेहरों के गढ़न बदलते

जा रहे हैं, बदल गया है गायों के मुख और रीढ़ की हड्डी, सींगों का आकार और गठन, मर्द और औरतों के जबड़े तथा कुल्हे—धीरे-धीरे दूसरा रूप ग्रहण कर रहे हैं। नजर आता है मंगोलिय रक्त की धारा यहाँ के हिमालय के दक्षिण सीमान्त में भी आ पहुँची है।

देखते ही देखते हमारी गाड़ी 'रानमान्' और 'टाना' गाँवों को पीछे छोड़ कर शिव के छोटे-छोटे मन्दिरों और बस्तियों को छोड़ते हुए चली दूर और दूर।

हिमालय के गहन लोक एक-एक चौड़ी अधित्यका और अनेकों पर्वतों के द्वारा अवरुद्ध है। हिमालय की वन्यता यहाँ बहुत विस्तारित हो गयी है, जो डर की बात है। यहाँ से पेड़ों के तने के बुरादे, पत्थर और दूसरे उद्भिज्ज सम्पदा की बाहर चालानी होती है। तनों को नदी में बहा दी जाती है। जलाने की लकड़ी और पशु के खाद्य भी यहाँ से लोग ले जाते हैं।

'सोमेश्वर' आ पहुँचे। यह एक छोटा शहर है और चारों तरफ़ की इस अधित्यका के बीच कोशी का मैदान बहुत कुछ नाभि-केन्द्र सा लगता है। मन्दिर के पीछे हैं खेत-खलिहान। 'सोमेश्वर' शहर के अन्दर से अन्दाजन चार मील दूर जाने पर मिलता है 'छेन्दाग्राम'। पहाड़ के बीच स्थित है एक सफ़ेद आकार का शिव मन्दिर। मार्ग में मिला एक 'गाँधी आश्रम'। इस के बाद पार किया है कोशी का एक पुल। हम कोशी को पकड़े ही चल रहे हैं। बिना नदी के जनपद सामने नहीं आता। पानी है जीवन का परिचय। कभी चढ़ रहा हूँ, कहीं उतर रहा हूँ। मोड़-मोड़ में है नदी और है अगल-बग़ल खड्ड, चलते-चलते ही चढ़ाई और उतराई। हम 'कौसानी' पहाड़ की चोटी के नीचे से आगे बढ़ते जा रहे हैं। यह इलाक़ा जंगली है। सुनसान जंगल के भीतर से दो पहाड़ों के फाँक में, सहसा कभी-कभी दूर बादलों के बीच नजर आ जाती है बर्फ़ीली चोटियाँ, 'त्रिकोणाकार' त्रिशूल की छटा चित्रवत् लग रहा है। जैसे स्थित है धवल तुषारमौली त्रिशूलश्रृंग का विराट् सर्वकालजयी गौरव। ख़ुशी में हम लोगों का गला सूख गया है। उतराई मार्ग से हम आ पहुँचे 'गरुड़' शहर में। यह है इस इलाक़े का शेष शहर। इस के बाद किसी तरह की पहियेदार गाड़ी हिमालय में जा नहीं सकती। पहाड़ों के अवरोध के इस बीच में है 'कान्तूरी' अधित्यका, मगर समुद्र-समता से यह प्रायः साढ़े तीन हज़ार फ़ुट ऊँचाई पर है—इस लिए इसे मालभूमि कहना अनुचित नहीं होगा। 'गरुड़' का बाज़ार बड़ा है। यहाँ से पशम, लकड़ी आदि चालान होते हैं। पास ही में है 'गरुड़' नदी। हम पैदल ही पश्चिम दिशा की ओर चल पड़े। 'कान्तूरी', राजाओं के ज़माने से इस अधित्यका को 'कान्तूरी' कहा जाने लगा।

तीन नदियाँ हिमालय से उतर कर यहाँ आ मिली हैं। 'गरुड़' के अलावा और दो हुई 'कोशी' और गोमती। हम जा रहे हैं 'बैजनाथ' के दर्शन को। प्रायः मील भर ज़मीन है। 'कोशी' पुल के बाद यहाँ हम गरुड़ और गोमती का साँको पार किया। आ पहुँचे विराट् की गोद में—जहाँ खड़े हो कर किसी महत् का आह्वान किया जा सकता है। हम धीरे-धीरे बढ़ते हुए गोमती के लोहे का पुल पार कर के बैजनाथ के

मन्दिर के इलाक़े में आ खड़े हुए। पलक उठा कर देखा यहाँ हिमालय से गोमती प्रथम मर्त्य में उतरी है—विशाल गज की बाँध भेद कर। इस संयोग स्थल में बैजनाथ का गैरिकवर्ण का प्राचीन मन्दिर अवस्थित है। यहाँ नदी के दोनों पार में मन्दिर हैं। बैजनाथ के 'लल्लीहाट' में हैं लक्ष्मीनारायण, सत्यनारायण और 'राक्षस देवल'। यहाँ कुल सत्रह मन्दिरों का भग्नावशेष मिला। सभी प्राचीन पत्थरों का बना है, तोड़-जोड़ एकदम अलग-अलग—एक भयानक भूकम्प, गोमती की एक बाढ़ इस के बाद हो सकता है कुछ मिले ही नहीं। मगर इसी प्रकार स्थित है यह लगभग सात-आठ वर्षों से। यह मन्दिर पहले-पहल बना चन्द्रवंश के किसी एक राजा के ज़माने में। इस का कोई इतिहास है या नहीं, मालूम नहीं। जैसे कांगड़ा में देख आया हूँ बैजनाथ को—यहाँ भी ठीक वैसा ही है। बैजनाथ को 'वैद्यनाथ' भी कहा जाता है। इस के अतिरिक्त हैं 'बामनी, और केदारनाथ' का देवल। भीतर है एक श्वेतवर्णा पार्वती की मूर्ति, कोई उन्हें कहता हैं अन्नपूर्णा—मूर्ति जयपुरी-साँचे में बनी हुई है—मगर इतनी खूबसूरत और मृदु सफ़ेद पत्थर की मूर्ति हिमालय में और कहीं भी देखी है ऐसा ख्याल नहीं आता। बैजनाथ यहाँ द्वादश ज्योतिर्लिंग के अन्यतम हैं। निकटवर्ती पहाड़ों में एक से डेढ़ मील के बीच 'रानचुलकोट' किला, 'भ्रामरी देवी' और 'नागनाथ' का मन्दिर है। बैजनाथ से वागेश्वर हैं तेरह मील दक्षिण-पूर्व कोने में—वही मार्ग गया है गढ़वाल। चौबीस वर्ष पहले रुद्रप्रयाग के आश्रम में बैठ कर संन्यासिनी नारायनगिरि पायी ने मुझे वागेश्वर हो कर कैलाश को मार्ग बताया था। यह वही मार्ग है। यहाँ से सीधा उत्तर में अशान्त गिरिश्रेणी के भीतर से एक मार्ग चला गया है कर्णप्रयाग की ओर—जहाँ 'पिन्दार' गंगा और अलकनन्दा का संगम है। वागेश्वर जनपद है इसी गोमती और सरयू के संगम स्थल पर बहुत ही रमणीय अंचल में। उसी संगम के मैदान में स्थित हैं वागनाथ, भैरवनाथ, गंगामाता और दत्तात्रेय के मन्दिर। सरयू के ऊपर आश्चर्य-जनक रूप में प्राकृतिक छटा के बीच है लछमन झूला की भाँति काँछी बंधा साँकी है—उसी के नीचे सरयू के गर्भ में है बहुत विशाल 'मार्कण्डेयशिला', जहाँ तपस्यारत ऋषि मार्कण्डेय ने रचा था 'दुर्गासप्तशती' पुराण। लोककथा यह है, सरयू नदी के संगमस्थल में 'दक्ष हिमवान्' अपनी पुत्री दुर्गा को महादेव के संग ब्याहा था। प्रतिवर्ष मकर संक्रान्ति में वागेश्वर में भूटियाओं का विराट् मेला लगता है। तिब्बत से अधिक परिमाण में पण्य-सम्भार यहाँ लाया जाता है।

वागेश्वर के बाद ही ऊपर उठती है 'पाताल भुवनेश्वर', और 'यज्ञेश्वर' की चर्चा। यज्ञेश्वर हैं अलमोड़ा से अठारह मील दूर, यह भी द्वादश ज्योतिर्लिंग के अन्यतम हैं। यहाँ के पहाड़ों में बहुत से तपस्वी हैं। मृत्युंजय, नवग्रह, मार्तण्ड आदि के मन्दिर यहाँ के प्रमुख आकर्षण हैं, और शिवरात्रि और वैशाखी पूर्णिमा में यहाँ मेला लगता है। एक समय मुसलमानों ने इस जनपद पर आक्रमण किया था, जिस से अनेक मूर्तियाँ ध्वंस्त हो गयी थीं। 'पाताल भुवनेश्वर' यहाँ से प्रायः पचीस मील पहाड़ी

मार्ग पर हैं। कई प्राचीन मन्दिरों के अलावा वहाँ है एक बड़ी सी गुफा, उस के अन्दर भाँति-भाँति की देव-मूर्तियाँ खुदी हुई हैं। इस अँधेरी गुफा के अन्दर अत्यधिक नमी की वजह अद्भुत् प्रकार के प्राचीन पत्थरों और धातुओं की गन्ध का भभका भरा हुआ है। उसी के अन्दर दीवालों पर महाभारत की कई कहानियाँ उत्कीर्ण हैं।

बैजनाथ से कर्णप्रयाग की ओर जाने के लिए जिस पथ की चर्चा मैं कर चुका हूँ, वह धीरे-धीरे दुस्तर गिरिमाला के भीतर ऊपर उठता जाता है। मील दस-एक के बाद 'गोयाल्दम' नामक एक जनपद मिलता है। गोयाल्दम के उत्तर की तरफ़ सम्भवतः मूल पिन्दारगंगा की धारा उत्तर से दक्षिण से पुनः उत्तर-पश्चिम की दिशा में प्रवाहित हो गयी है। किन्तु यह मार्ग धीरे-धीरे नदी पार कर के आगे चला गया है। पूरब की ओर से पिन्दारगंगा की ही दूसरी एक प्रशस्त उपनदी यहाँ आ मिली है। उत्तुंग और प्रायः दुःसाध्य शैलश्रेणी के भीतर से यह दुर्गमपथ चला गया है चढ़ाई पार कर के त्रिशूल पर्वत के तुषार हिमवाह की गोद में। यह अंचल है बैजनाथ से लगभग पैंतालीस मील उत्तर में। त्रिशूल के दक्षिण में है पिन्दारगंगा और हिमवाह एवं उत्तर में ऋषिगंगा—जो गंगा जा मिली है जोशीमठ के नीचे धवलीगंगा और विष्णुगंगा में। भारत के सीमान्त के अन्तर्गत हिमालय की जिन कई ऊँची चोटियों को हम जानते हैं, उन में से तीन को यहाँ पास-पास पाता हूँ। पहली है त्रिशूल,—ऊँचाई २३, ५०० फ़ुट, दूसरी है नन्दादेवी—२५, ६४५ फ़ुट, और तीसरी हुई द्रोणगिरि—२३, १८४ फ़ुट। कश्मीर के नंगा और काराकोरम (वृष्णगिरि) को बाद दे देने पर वर्तमान में भारतीय हिमालय की सर्वोच्च शिखर हुई नन्दादेवी की चोटी।

सम्प्रति त्रिशूल पर्वत के हिमवाह के प्रान्तवर्ती 'रूपकुण्ड' नामक एक तुषार सरोवर को ले कर भारत सरकार खोजबीन कर रही है। रूपगंगा के तटवर्ती इस बर्फ़ से ढंके रूपकुण्ड के आस-पास भारी संख्या में नरकंकाल की टूटन (Skale tal remins) अभी-अभी मिली है। ये कंकाल एक वर्ष में दस महीने से भी अधिक बर्फ़ के नीचे दबे रहे; और भादो-आश्विन में तुषार विगलन के दिनों में दीख पड़े। ये कितने काल पहले के मानव होंगे, इस का पता किसी को नहीं है। कब ये मरे यह भी अजाना ही है। अनेकों का खयाल है, ये हारे हुए फ़ौजियों का जत्था होगा—भागने के समय इन पर अतिकाय हिमवाह का आक्रमण हुआ होगा। और बहुतों का कहना है, ये रहे होंगे तीर्थयात्री। त्रिशूल पर्वत के पाददेश में 'होमकुनो' तथा 'त्रिशूली' नामक अंचल में पहुँच कर यह यात्रियों का दल नन्दादेवी तथा गौरीदेवी को पूजा चढ़ाने को चले होंगे, ऐसे समय में ही वे तुषार-झंझा और वर्षण के द्वारा घायल हुए। बैजनाथ से त्रिशूल पर्वत की ओर आज भी प्रतिवर्ष एक दल तीर्थयात्री नन्दादेवी की मूर्ति सहित स-समूह सवारी ले कर त्रिशूली तीर्थ को जाते हैं। इन का नाम है 'नन्दजात'। रूपकुण्ड ह्रद की निकटवर्ती रूपगंगा की तुषार विगलित धारा में अवगाहन करना इन का दूसरा उद्देश्य रहा है। ये कभी वहाँ पहुँच भी पाते हैं—बहुत ही कम,

क्योंकि बर्फ़ पड़ने की सूचना पा कर ये अपने लक्ष्य के प्रति असमंजस में पड़ जाते हैं। विगत तीस वर्ष पहले एक दल को सफलता मिली थी। इस के बाद फिर एक बार प्रयत्न किया गया सन् १९५२ में—मगर वे समर्थ नहीं हुए। इस 'त्रिशूली' तीर्थ के अन्तर्गत 'रूपकुण्ड' के किनारे सिर्फ़ ये कंकाल ही पड़े हैं, इतना ही नहीं, उन्हें विषय बना कर तरह-तरह की किंवदन्तियाँ जनश्रुति और लोक संगीत भी नीचे के हिस्से में प्रचलित है। वे तीर्थयात्री थे इस बारे में स्थानीय लोगों को सन्देह नहीं है। सम्प्रति भारत सरकार के नृतत्व विभाग के निर्देशक डॉ० एन० मजुमदार दलबल सहित दूसरी बार रूपकुण्ड इलाक़े में पहुँच कर कई चमड़े से आवृत कंकालों की खोज कर कलकत्ता ले आये हैं। यह लगभग दो सौ वर्ष पुराने हैं और बर्फ़ के नीचे पड़े होने की वजह आज भी नष्ट नहीं हो पाये हैं। मगर वे हर तरह से परीक्षा कर के इस निष्कर्ष पर पहुँचे हैं कि रूपकुण्ड में मिले नरकंकाल 'त्रिशूली' तीर्थ के यात्री थे। दो सदियों पूर्व इन तीर्थयात्रियों के साथ थीं आभूषण से लदी बहुत सी नारियाँ, बच्चे, भैंसों के चरवाह और कुछ जानवर तीर्थयात्रियों के काम में आने वाले। इन के पास कुछ धातु के बने बर्तन और लोटे आदि भी थे। इस विषय में अब और भी बहुत सारे तथ्यों का उन्होंने उद्‌घाटन किया है। कैलाश पर्वत के भीतर जैसे बर्फ़ से ढँका सरोवर 'गौरीकुण्ड' मिलता है, यहाँ भी एक प्रकार से रूपकुण्ड भी जमा रहता है वर्ष में अनेक दिनों तक। फिर भी गौरीकुण्ड की ऊँचाई १८,५०० फ़ुट है, रूपकुण्ड उस से भी प्रायः डेढ़ हज़ार फ़ुट कम है। बैजनाथ से 'गोयालदम' ह्रद हो कर रूपकुण्ड पहुँचने में पैदल तीन-चार दिन लगते हैं, लगभग पैंतालीस मील ऊँचा पथ है। अभी-अभी एक खबर मिली है, इलाहाबाद के यात्रियों के एक जत्थे ने रूपकुण्ड के कंकाल वाले स्थल में पहुँच कर 'ब्रह्मकमल' प्रमुख सौ से भी अधिक वर्णों के दुष्प्राप्य फूल वहाँ से इकट्ठे किये हैं।

'कोसानी' के नीचे पहुँच कर हम रुके। मार्ग उत्तर से दक्षिण दिशा में चला गया है। चारों तरफ़ सुनसान पहाड़ी प्रकृति। सामने ही था एक छोटा सा पोस्ट ऑफ़िस, उस के बग़ल में छोटी-छोटी छावनी में दो दूकानें। एक में मिलती है चाय। उसी के पीछे से पहाड़ उठ खड़ा हुआ है। दूकान के सामने ही एक चश्मे वाला दुबला-पतला पथ-प्रदर्शक मिला।

चढ़ाई मामूली थी कुल तीनेक सौ फ़ुट। चीड़ के पेड़ों की गहनता के अन्दर से लम्बा मार्ग चोटी की तरफ़ उठता चला गया है। ऊपर इतने महत्, ऐश्वर्य का अनुसन्धान लगेगा, नीचे से हम इस का अन्दाज़ भी नहीं लगा सकते। ऊपर चढ़ कर धीरे-धीरे आकाश जैसे अपने सभी अर्गला खोलकर सामने आ खड़ा हुआ हो। इसी आकाशमार्ग से कुमायूँ के गिरिशृंग चूड़ा पर बिना पहुँचे यह इस का अनुमान नहीं लगाया जा सकता। अन्त में हम एक मालभूमि में आ पहुँचे, और वह सम्पूर्ण मालभूमि है एक बृहत् सुसज्जित आधुनिक डाकबँगलो का आँगन। आदमियों का समागम कहीं

नजर नहीं आता। नीचे से ऊपर आने के समय जिस फटे चीथड़े में लिपटे आदमी ने हमारा साथ पकड़ा था, उस की आँखों पर मोटा चश्मा था—इतना मोटा कि उस की दोनों आँखें छोटी लगती थीं। शक्ल फाँके और अभाव में सिकुड़ा हुआ, तथा असमय शरीर बुढ़ापे को पा बैठा सा। कम बोला, मगर बहुत कुछ अपने मन भूला। उस ने जब मार्ग बताते हुए हम लोगों को डाकबंग्लों की सीढ़ी पर चढ़ाया तब जाना कि वह यहाँ का खानसामा या चौकीदार है। वह जैसा है सीधा वैसा ही है निरीह।

मगर हम लोगों के सामने उस वक़्त बहुत बड़ी शंका खड़ी हुई जब उत्तर मुख हम खड़े हुए। सचमुच, समुद्र में तैरने से समुद्र की शोभा निरखी नहीं जा सकती। हिमवाह देखा है, बर्फ़ की नदी को पार किया है, बर्फ़-लोक में रात भी काटी है—बार-बार—मगर उस वक़्त उस की शोभा निरखने से प्राणरक्षा करने का झोंक अधिक सवार रहता है। कुछ दूर खड़े हुए बिना परम रमणीय चित्रवत्ता की तरफ़ देख कर वास्तविक सुख नहीं मिलता। गगनचुम्बी तुषारलिंग अब कहीं हमारी बाँहों में आ पड़ा है, नीचे से हम यह समझ नहीं सके थे।

हर्ष और उल्लास के मारे शशांक की दोनों आँखें छलछला आयीं।

डाकबंग्ले के अन्दर पहुँच कर महसूस किया कि यह कलकत्ते के बोर्डिंग हाउस को मात दे रहा है। बड़ी-बड़ी आलमारियाँ, बड़ी-बड़ी ड्रेसिंग टेबुलें, बहुत से खाट-पलंग, बढ़िया-बढ़िया कुशन चियर, सिर पर झूलते पंखे, सजे-सजाये बाथरूम। हर हॉल में क़ीमती क़ालीन बिछे हुए। बारामदे में आ खड़ा हुआ। गोलाकार इस पक्के बरामदे में बैठ कर जीवन के बचे-खुचे दिन आराम से बिता दिये जा सकते हैं, ऐसी प्रतीति। नीचे की पृथ्वी नीचे पड़ी रहे। इस स्वर्ग से विदा लेने की अब और इच्छा नहीं हो रही है।

खानसामा आया चाय दे कर खाना तय कर गया।

चोटी के ऊपर बरामदे में बैठ कर हमारा समय बीतने लगा। ठीक इसी बारामदे में बैठ कर और आरामकुरसी पर पड़े रह कर संसार के अन्यतम श्रेष्ठ मनुज ने ग्यारह दिन बिताया था सन् १९२५ में—वे थे महात्मा गान्धी। इसी बारामदे में बैठे-बैठे अपार तन्मयता से उन्होंने अपने 'अनासक्ति योग' के एक परिच्छेद की रचना की थी। लगता है अनासक्त भावना से ओत-प्रोत ऐसा एक ऐकान्तिक क्षेत्र हिमालय में और अन्यत्र कहीं नहीं है, अन्ततः अब तक तो पता नहीं चला है। सामने ही और भी बारह मील सूने मार्ग पर बढ़ जाने से त्रिशूल की शुभ्र चोटी है। पश्चिम की ओर केदार और बदरीनाथ, गौरी और हस्ती पूरब में हैं नन्दादेवी, द्रोणगिरि और नन्दकोट। देवतागण दल-बादल कर एक-एक सिंहासन पर आरूढ़ हैं।

खानसामा सामने आ खड़ा हुआ। मालभूमि के मैदान में ही उस का घर है, वय पैंतालीस से पैंसठ के आस-पास। बिखरे हुए कच्चे-पक्के केश, अगल-बग़ल से बिलकुल उदासीन। गान्धी जी के विषय में पूछा, चेहरे पर एक दबा हुआ गौरव फूट उठा। मगर उस का संयम देख कर हम सभी दंग थे। गान्धी जी आये थे, उस का

पिता उस समय ज़िन्दा था। मगर वह गान्धी जी के ख़िदमत में। गान्धी जी का आसन बिछा देता, बिछावन बिछाता, दूध लाता नीचे से, स्नान के लिए पानी की व्यवस्था करता, पुस्तकें-काग़ज आदि सहेज कर रखता और रात को पहरे में मुस्तैद रहता। उस समय वह बीस-बाईस का था। उस के कन्धे पर हाथ रख कर गान्धी जी घूम चुके हैं बहुत बार। वह धीरे-धीरे कहता रहा है, या रो रहा है यह कहना मुश्किल है। उस के उस विनम्र चेहरे में कोई दार्शनिक छिपा हुआ है, हम मन के द्वारा उस का स्पर्श कर पाते हैं। वह टकटकी लगाये था त्रिशूल की तरफ़। कैलास के हरपार्वती की चर्चा छेड़ते ही वह कुछ उत्साहित हुआ। तीर्थयात्रियों के प्रति उस के मन में कितना आदर था। दिखा दिया केदारनाथ और बदरीनाथ और नन्दादेवी। इस के बाद मधुर स्वर में अपनी भाषा में कहने लगा, आदमी अपना कष्ट और अभाव खुद पैदा करता है, तकलीफ़ उठाता है, संकट में पड़ता है, और फिर दुश्चिता में खुद रोने लगता है। इनसान के लिए इनसान आत्मोत्सर्ग करता है, और मनुज ही मनुज के लिए दुर्गति की उत्पत्ति करता है। गान्धी जी के चरणों पर नैवेद्य चढ़ा कर मनुज ने कहा, तुम हो महात्मा, तुम हो राष्ट्रपिता! उसी आदमी ने फिर हत्या किया और सब रोते बैठे!

चुपचाप उस की बातें सुन रहा था। सोच रहा था उस की उम्र हज़ारों वर्ष से भी अधिक की है। सभ्यता के बचपन का खेल-तमाशा जितने दिनों से हो रहा है वह जैसे उस से भी अधिक बूढ़ा है। जब वह चला गया, तब हम कुछ क्षण स्तब्ध बैठे रहे।

कौसानी की चोटी और स्वामी आनन्द की बातें अलमोड़े में श्री उमा प्रसाद मुखोपाध्याय से सुन चुका था। स्वामी जी अपने 'गंगा कुटीर' में स्थायी रूप से यहीं रहते हैं। कुछ जंगली मार्ग पार कर के प्रायः मील-एक चल कर वहाँ हाज़िर हुआ। उन से भेंट हुई बहुत आसानी से। उम्र लगा सत्तर नहीं हुई है। गोरा चिट्टा चेहरा। वे बम्बई के निवासी हैं, और असली नाम है—अमृतलाल सेठ! व्यापारी दुनिया में उन का खूब नाम है। स्वामी आनन्द गान्धी जी के खास श्रद्धालु हैं, वे रोग मुक्त होने यहाँ आये। गान्धी जी की अकाल मृत्यु की अवधि तक वे पैंतालीस वर्षों से संग रहे। मगर स्वामी जी रक्तचाप के रोगी हैं और उन्हीं के परामर्श से वे यहाँ रोग-मुक्त होने को आये। गान्धी जी की मृत्यु की खबर से उन को ऐसी तबीयत खराब हुई कि वे खटिया पर पड़ गये। इस के बाद उन के प्रिय मित्र तथा गान्धी-दर्शन के सुव्याख्याता मशरू-वाला की मौत की खबर जिस दिन कान में पहुँची, उस दिन से स्वामी आनन्द इस कौसानी में सदा के लिए रहने को कटिबद्ध हो गये। हिमालय की इस परमानन्द शोभा को त्याग कर वे कहीं जाना नहीं चाहते। उन्होंने अपनी सभी प्रकार की विषयासक्ति का परित्याग कर दिया है। अध्यात्म-आदर्श की दिशा में वे रामकृष्ण परमहंस के भक्त हैं। यहाँ वे दूध के अलावा और कुछ ग्रहण नहीं करते। उन के शेष जीवन की एक-

मात्र कामना है शान्ति-उपासना। अध्ययन की दिशा में उन्होंने अपने को विशेष रूप से प्रतिबद्ध कर लिया है।

इस बरामदे में त्रिशूल चोटी के सामने बैठ कर उन्होंने मुझ से खूब बातें कीं। बम्बई से उन के कई आत्मीय—महिलाएँ और नवयुवक—उन्हें देखने आये थे, इस वजह कुछ शोरगुल उस दिन था। हमारे लिए चाय-बिस्कुट आदि आया। बोले, यह सब मगर इस तल्ले पर नहीं मिलता, वे यह सब कुछ अपने साथ ले आये हैं—ये लड़के-लड़कियाँ। हमारे यहाँ कुछ नहीं है। कुछ ले कर नहीं आया था और न कुछ पास में रखूँगा ही, संसार त्यागने के पहले।

स्वामी जी ने यहाँ से चलने के समय हम लोगों को हिमालय के कुछ चित्र भेंट किये। ऐसे सुशिक्षित, भद्र, आदर्शवादी और सरल सज्जन दुनिया में कम ही नजर आते हैं। मन ही मन उन्हें बार-बार प्रणाम किया।

आते समय उन्होंने कहा, त्रिशूल के ऊपर बदली घिरी है, इस के लिए दुखी न होना—वह बदली रहेगी नहीं, पौ फटने के पहले ही फट जायेगी। उस दिन था रासपूर्णिमा, देवदार के जंगलों के ऊपर, नीले आकाश पर बड़े-बड़े तारागण लप-लप प्रज्वलित हो रहे हैं। कई टुकड़े बादल अलकापुरी की तरफ़ भागे जा रहे हैं। चाँद जल रहा है। तुषारलोक में चाँदनी फूटी पड़ रही है। उस आनन्दलोक में हम मार्ग पहचान-पहचान कर डाकबँग्लों की तरफ़ बढ़ रहे हैं। उस रात था खूब जाड़ा। हम लोगों की संसार त्यागी मन की भावना चाँदनी में दिग्भ्रमित हो कर हिमालय की चोटियों पर रुआँसी सी भटकने लगी। नींद आयी नहीं जलती आँखों में। बदली शायद इस पार फटने वाली नहीं है। हम लोगों के निराश नयनों में उदासी भर आयी।

उनींदा पड़ा रहा बिस्तरे पर। रात का जब लगभग दो बजा, सहसा शशांक बरामदे से चिल्लाया। फ़ौरन उठ कर दौड़ा गया बारामदे में—क्यों, क्या बात है? क्या हुआ?

अचानक दोनों चुप। बदली फट गयी है। देवादिदेव के त्रिशूली की पलकें खुलीं महाशून्य की चाँदनी से भरी लोक को ओर। पलक मारते देख लिया, जो कुछ कभी भी नहीं देखा था।

दोनों हम मौन, अवाक्। हर्ष की गहरी यन्त्रणा में सिर्फ़ थर-थर काँपता रहा। स्वामी आनन्द की मंगलकामना सार्थक हुई।

दूसरे दिन विदा होने के पहले खानसामा सामने आ खड़ा हुआ। हम लोगों ने ससम्मान उस का देय दे दिया। देय मात्र पा जाने से ही वह सब पा गया। बख्शीश नहीं चाहिए, कोई माँग नहीं। और जब हम लोगों ने उस की सुनी प्रशंसा से प्रसन्नता प्रकट की तो उस ने एक बही सामने खोल कर रख दी—आप को यहाँ कैसा लगा, ज़रा

लिख दीजिए। वह थी डाकबंगलों की 'लॉगबुक' लिखते हुए एक बार पूछा, तुम्हारा नाम क्या है, भाई ?

उस ने सविनय कहा, हबीब अहमद।

उस के प्रति आन्तरिक श्रद्धा और कृतज्ञता ज्ञापन कल कर विदा हुए।

[९]

बादलों में वायुयान से कूचविहार की ओर चला जा रहा हूँ।

आसमान मार्ग में प्लेन से देख रहा था क्षितिज तक फैला है हिमालय का शुभ्र केशरजाल। असंख्य उजली चोटियों के ऊपर अरुण सूर्य की किरणें पड़ रही हैं, पिपली गेरुआ स्वर्ण-धार देवादिदेव के मस्तक से उतर रही है। दिसम्बर के अन्त का एक सवेरा। इस समय भी उत्तर बंग नींद में पाता है। पृथ्वी है हम से बहुत नीचे, रात का अन्तिम पखवारा अपनी विशाल छाया से सब कुछ को ढँके है। महाव्योम के अनन्त शून्य से मात्र टकटकी लगाये था शुभ्र नीले-रक्तिम आश्चर्यमय हिमालय की तरफ़। बहता-उतराता आकाश मार्ग में चला जा रहा था। नीचे नींद में पृथ्वी के पंछी अभी भी झूम रहे हैं।

कूचविहार हवाई अड्डे से तुषारमौलि 'सिंहचूला' को देखा जा सकता है। धूप की झिलमिलाहट बर्फ़ की स्थिर तरंगों में हो रही है। कोई-कोई उसे कहते हैं, 'चेनचूला', कोई कहता है 'सिनचूला'। १९६५ में उसी सिनचूला के नीचे खड़े हो कर तत्कालीन ब्रिटिश भारत गर्वनमेंट ने भूटान से सन्धि की थी। अंगरेजों ने सिर्फ़ राज्य फ़तह किया था, इतना ही नहीं, राज्य के अगल-बग़ल के वन-जंगल, पहाड़-पर्वतों का भी उन्होंने विश्वास नहीं किया था। कौन जाने, किस तरफ़ से सिंह आ-सवार हो। इस वजह निस्पृह पड़ोसियों की शक्ति का अन्दाज़ लगाने की गरज से वे उन को उसकाते थे— उस की दौड़ कहाँ तक है। नेपाल, तिब्बत, सिक्किम, भूटान, गढ़वाल, अफगानिस्तान,—सभी क्षेत्रों में एक ही भूमिका थी। अवसर पाते ही राज्य हथिया लेता, या अपमानजनक सन्धि उन पर लाद देते।

भूटान की ओर बढ़ रहा था।—

वही सिनचूला सन्धि, इस के बाद से भूटान की चर्चा कहीं कुछ नहीं। पूर्वोत्तर भारत की सीमाने में अट्ठारह हज़ार वर्गमील व्यापी यह पहाड़ी भू-भाग आज भी इस वैज्ञानिक युग में अन्धेरे में पड़ा है—यह अचम्भे की बात है क्यों नहीं, पहियेवाली

गाड़ी आज भी भूटान में कहीं नहीं चलती, यह भी एक अचरज ही है। भारत से इस का इतने समय बाद भी कोई सम्पर्क नहीं है, इस के लिए कुछ उद्योग भी नज़र नहीं आता। सुना जाता है कि मध्ययुगीन राज-पाट आज भी मौजूद है। राजा ही वहाँ सर्वाधिकारी है। मन्त्री नहीं, कोर्ट कचहरी ही नहीं, राजनीतिक दल ही नहीं, शासक सम्प्रदाय की संज्ञाधारी कोई वस्तु ही नहीं। सिर्फ़ हैं राजा और हैं कई राजा के ही प्रतिनिधि,—और हैं जनसाधारण। अब यह सुनने में आया है कि भूटान के राजा महामान्य 'जिग्मा वान चुक् दोरजी' भारत सरकार से कई विषयों में सहयोग के लिए निवेदन किया है। उन में प्रमुख है शिक्षा, सम्पर्क-मार्ग और दवा-दारू आदि। महामान्य की इच्छा भूटान में एक अस्पताल की स्थापना करने की है। इतने दिनों तक भूटान के साथ तिब्बत की आत्मीयता कायम रही अटूट रूप में। दोनों ही एक धर्मी हैं। दोनों समगोत्रीय हैं—जैसा है सिक्किम। दोनों ही एक दूसरे की आत्मा की भाषा से परिचित हैं। परिणाम, तिब्बत और भूटान में इतने दिनों से जो अन्तरंग राजनैतिक, अर्थनैतिक और लोक-व्यावहारिक सम्पर्क नियन्ता आया है, वह दो राष्ट्रों के दोनों कर्णधार की अपनी-अपनी सीमा के अन्तर्गत है, उन में एक हैं दलाई लामा और दूसरे हैं भूटानराज। भाषा, जीवनक्रम, समाज-विचार आदि में भारत के साथ भूटान-तिब्बत-सिक्किम का ताल-मेल नहीं बैठा मध्ययुग में, इन में दुस्तर पहाड़ी भू-खण्ड ने दोनों में व्यवधान उत्पन्न किये हैं। इस वजह सामाजिक और राष्ट्रनीतिक भारत के लिए वे एक प्रकार से अपरिचित रह गये। सिक्किम की भाँति भूटान का सम्पर्क है वैवाहिक। आचार-व्यवहार, धर्मानुष्ठान, सामाजिक रीति-नीति—इन में से एकाध में व्यतिक्रम के अलावा—तिब्बत, भूटान और सिक्किम प्रायः एकाकार है। मगर आधुनिक जगत् से सिक्किम डरते-डरते ही भले मिला-जुला, भूटान ने वह भी नहीं किया। भूटान तिब्बत का अनुसरण करता आया है। राह-घाट कहीं नहीं बनाया, कहीं बाहर के लोग आ घुसें। किसी से भी उस ने लेन-देन के खातिर समझौता नहीं किया, किसी से उस की मित्रता नहीं हुई, कहीं सामाजिक हेल-मेल न बढ़ जाये जबकि बाहर से भूत-प्रेत-पिशाच आदि पहुँच कर भूटान में डेरा डाल लेते हैं। रुचि, स्वभाव और विद्या-बुद्धि का स्तर-मेल है तभी तो तिब्बत के साथ उस का सम्पर्क था गहरा। भारतवर्ष से अतितीव्र प्रकाश-किरणें अगर कभी भटक कर भूटान पहुँची भी हैं, तब राजा की आँखें चौंधिया उठीं, बड़ी मुस्तैदी से सभी द्वार बन्द कर लिया है उन्होंने।

परन्तु आज-कल भूटानराज 'जिगमा दोरजी' महोदय महल के उत्तरदिशि खिड़की से उत्तरी हवा में कैसी तो विषाक्त गन्ध महसूस करने लगे हैं। हवा उठी चीन से तिब्बत की तरफ़, 'सान-पो' उपत्यका पार कर वही हवा बह कर आती है भूटान के उत्तुंग और भयावने जंगली पहाड़ों के अगल-बग़ल। तिब्बत से छोटी-बड़ी बहुत सारी पथरीली नदियाँ उतर आयी हैं शिरा-उपशिराओं में, मगर तिब्बत की नदियों के जल पर भी सम्भवतः भूटानराज विश्वास नहीं कर पा रहे हैं। कहीं उन नदियों के जल में

भी हिमालयोत्तर राजनीति के विषाक्त कीड़े भूटान के रक्त में समा न जायें। इस कारण से महामना भूटानराज सदा से ही सचेत और सजग जीवन-यापन करते रहे हैं। परन्तु अब यह उन्हें सोचना पड़ रहा है कि वे तिब्बत से अपना सम्पर्क रखें या नहीं।

परन्तु यह सम्पर्क कायम रहता आया है तीन सौ वर्ष से भी अधिक और बहुत सम्भव है एक ऐसे युग से जिसे मध्ययुगीन इतिहास में भी ढूंढ़े नहीं मिलता। ऐसा एक युग था प्राक्-पठान तथा बौद्ध-हिन्दू जमाने में,—विश्वास कर लिया जाये एक हज़ार वर्ष से भी बहुत पहले—जब राष्ट्रों की प्रत्यक्ष आंचलिक सीमा को ले कर किसी ने इतना सिर नहीं खपाया, और उस युग में भारत, गन्धार, तिब्बत, नेपाल, सिक्किम, भूटान, वर्मा आदि रहे एक अखण्ड और अविभक्त के हामी राज्य संगठन—जो अपने-अपने राज-तन्त्र को एक केन्द्रीय चेतना में पिरोये रहे, वह थी भारत और भारत को बाहरी आत्म-धर्म की चेतना। ठीक-ठीक कहा नहीं जा सकता, मगर सम्भवतः इस चेतना का योगसूत्र मिटने लगा था आठवीं सदी से ही। भूटान का इतिहास भी इन्हीं कारणों से धूमिल रहा है। पता विशेष कुछ नहीं लगता। जो सभी भूटानी दल बना कर कलकत्ता अध्ययन के निमित्त आते हैं, उन में अधिकांश ही होते हैं देश से निकाले हुए। अपने देश के इतिहास के बारे में वे उतना सिर दर्द नहीं रखते। वे सिक्किम, पूर्व नेपाल, दार्जिलिंग में उपनिवेषिक के रूप में आदमी बने और अँगरेज मिशनरियों ने चतुराई से उन में से बहुतों को क्रिस्तान भी बनाया, उन के पीछे व्यय भी किया। कलकत्ते में मिशनरी स्कूल-कालेज भूटानियों की शिक्षा का केन्द्र रहा।

हवाई अड्डे से हमारी जीप चली थी उत्तर की ओर सुहानी धूप वाले मार्ग से। पूषा का मध्यामध्य, रह-रह कर ठण्डी हवा की छुअन महसूस होती थी। दक्षिण हिमालय की तराई की तरफ़ हमारी अग्रगति है, यह मार्ग अलिपुर दुआर के उत्तर किनारे के पहाड़ी जंगलों और मानव की छायाहीन पर्वतों की गहनता में नदी के सीमान्त में जा कर शेष हुआ है।

बाँयी ओर पश्चिम दुआर का उत्तर किनारा है। वहाँ का मार्ग ऊपर दोनों तरफ़ चढ़ गया है। एक सिक्किम, और दूसरा कालिंगपोंग की तरफ़। अगर शिलीगुड़ी की तरफ़ से जाया जाये तब तो कालिंगपोंग सिक्किम एक ही मार्ग है। पश्चिम दुआर के भीतर से दो उपमार्ग अन्त में मिल गये हैं—जहाँ 'नाथुला' गिरिसंकट है, जो है भारत तथा सिक्किम का संयोगस्थल और 'चुम्बो' उपत्यका का दक्षिणी किनारा, यह है अतिप्राचीन कैरावान मार्ग—तिब्बत के भीतर से विभिन्न दिशाओं में बहुदूर-दूरान्तर तक चला गया है। 'फ़ारिजंग' से 'चमलहरि' की विशाल चोटियों के नीचे से, 'बाप' ह्रद और 'काला' ह्रद के मध्यलोक को पार करते हुए 'गुरु' से 'चांगपो',—इस के बाद 'गियान्सी' से 'नागरतसिर' पूर्वपथ में—जहाँ, जायद्रोक का विशाल जलाशय नीले काँच की भाँति स्थिर है सोलह हज़ार फ़ुट ऊँची मालभूमि में। उसी जायद्रोक का

पश्चिमी सीमाना को पीछे छोड़ कर कैरावान पथ ब्रह्मपुत्र तथा 'सानपो'—के दक्षिण तोर पर आ पहुँचा है, इस के बाद नदी पार हो कर, 'काइचू' नामक और एक नदी के किनारे-किनारे है उत्तर में लासा नगरी का मार्ग। इस मार्ग से ब्रिटिश भारत गवर्नमेण्ट फ्रांसिस यंग हसबैण्ड के नेतृत्व में १९०३-४ में तिब्बत पर हमला किया था, इस के बाद दोनों में सन्धि हुई। पिछले पृष्ठों पर इस की चर्चा कर चुका हूँ।

हम लोग दाहिनी ओर हिमालय के पूर्व दुआर की ओर अग्रसर हो रहे थे। यह अंचल भूटान के ठीक दक्षिण में है। उत्तर भूटान की खबर कोई नहीं रखता। मगर उस अंचल की पर्वतीय चोटियों के भीतर से भूटान से भिन्न-विभिन्न पहाड़ी मार्ग तिब्बत में चले गये हैं। ये ही मार्ग भूटान-तिब्बत के सम्बन्धों की रक्षा करते आ रहे हैं। ये ही हैं भूटानी चावल और तिब्बती नमक के व्यापार-मार्ग। मगर यह 'नमक-भात' (चावल) के सम्बन्ध के अलावा भी कई और सम्बन्ध हैं जो बड़ा आश्चर्यजनक हैं। कमोवेश तीन सौ वर्ष पहले कुछ प्रसिद्ध भूटानी बापा कैलास की यात्रा करते हैं। भूटान से कैलास-मानसरोवर का अन्तर थोड़ा-बहुत एक हजार मील का है। उस समय भी पहिए वाली गाड़ियाँ तिब्बत में नहीं थीं। उन लामाओं ने अपने तपस्या का स्थान ढूँढ़ निकाला कैलास की चोटी के निकटवर्ती अंचल स्थित 'तारचोन' नामक गाँव में। वे थे धर्मनिष्ठ व्यक्ति और अगल-बग़ल के बहुत सारे अंचलों में उन का धीरे-धीरे प्रभाव विस्तार होता गया। उन्होंने वहाँ उन अंचलों में कई बौद्धमठों की स्थापना की। कालक्रम में कैलास और मानस सरोवर अंचलों के इस 'तारचोन' को केन्द्र बना कर बहुत से बौद्ध मठ, गुफाएँ, गाँव तथा पश्चिम तिब्बत के अंचल भूटान राज के अधीन हो गया। उन स्थानों को सम्मिलित रूप से अब 'छोटा भूटान' कहा जाता है। भूटान राज की एक अट्टालिका है अब 'तारचोन' और कुछ भिक्षु भूटानी शासक के निमित्त 'छोटा भूटान' के सभी तरह के शासकीय काम-काज की देख भाल करते हैं।

पश्चिम और पूरब दुआर की सीमा रेखा के ऊपर से हमारी गाड़ी गुजर रही है। समतल किनारे का मार्ग, किनारे के पूर्व की तरफ़ रेलमार्ग कूचबिहार से 'राजा भात खावा' से होते हुए। पश्चिम में है मदारी हाट का मार्ग। मदारी हाट पश्चिम दुआर के अन्तर्गत है। मदारी हाट के पूरब में से उतर पड़ी है 'आमोचू' नदी—यह नदी उतरी है चुम्बी उपत्यका से।

सड़क बहुत लम्बी है, लगता है तीस मील के आस-पास। दूर-दूर पर एकाध किसानों के गाँव पर नजर पड़ी है। धान कट चुका है। सूना मैदान पड़ा हुआ है। भली लग रही है यह जनशून्यता। आदमी दीखता नहीं यही आनन्द है। क्योंकि भारत के सब से अधिक़ भीड़ वाले शहर के हम रहने वाले हैं।

भली लग रही थी उदार सूने माठ-मैदान की मधुर हवा। गाड़ी तेज चल रही है। धीरे-धीरे आ पहुँचा मार्ग के अन्तिम छोर पर। इस अंचल का कई मील धूल-

धूसरमय है। मगर नये देश का आकर्षण ऐसा है कि धूल की तरफ़ निगाह जाती नहीं। उस धूल भरे गाँव की सड़क पार कर एक समय मोटर आ खड़ी हुई कालजानी नदी के माटी वाले तट पर। नौके से हम लोगों को गाड़ी समेत पार होना होगा। रेलमार्ग पर एक सांको है किन्तु वह थोड़ी दूर है। अलीपुर दुआर आ पहुँचा।

नदी पार होते ही वट-वृक्षों की छाया में गाँव की सड़क। यह है शहर का सीमाना। झोपड़ियों के नीचे-नीचे दूकानें, इधर-उधर गाँव के घर। पक्की इमारतें नजर नहीं आतीं—कहीं भी। कोरोगेट के छप्परें, लकड़ी की खूँटियाँ, बाँसों की फराटो की दीवालें—मगर देखने में खूबसूरत। मचान पर सब्ज़ी या थोड़ा सा फ़ूल-बग़ीचा—प्रायः हर गृहस्थ के घर में देखता हूँ। जिन्दगी बड़ी सुनसान—सभ्यता की विडम्बना से बहुत कुछ कटा हुआ। अपनेआप में खोया रहता है अलीपुर—जंगल और नदी को छाती से लगाये। सिरहाने बैठा है अँधेरा भूटान—विराट् हिमालय की दीवार से घिरा है।

अलीपुर है जलपाईगुड़ी का महकमा और सम्पूर्ण जलपाईगुड़ी विशेष कर है अलीपुर—टकटकी लगाये भूटान की तरफ़ भीत नयनों से। जैसे अँधेरे से हठात् उछल कर आमदखोर जानवर हमला करता है, वैसे ही बिना विचारे उत्तुंग भूटान की नदियाँ दौड़ी आती हैं अलीपुर के ऊपर,—इस के बाद वही बाढ़ सब कुछ बहा कर ले जाती है। भूटान के पहाड़ों पर काले बादल के मँडराने पर अलीपुर के गृहस्थों का दिल काँप जाता है। घरकन्ना, माठ-मैदान, गाय-भैंस, धान-चावल,—बह जाते हैं उसी बाढ़ में। पक्का घर कोई बनाता नहीं,—बाँस और खूँटी के सहारे मचान बना कर उसी के ऊपर सभी बेड़ेदार घर बना लेते हैं। बाढ़ के समय गृहस्थों के घरों के नीचे से सिर्फ़ पानी की धार ही नहीं बहती, बल्कि उस के संग जन-जानवर बड़े-बड़े सरीसृप भी डूबते-उतराते बहते रहते हैं।

भूटान के दक्षिण में है पश्चिम बंग और असम, पूरब में असम, पश्चिम में सिक्किम और उत्तर में तिब्बत। इसी अवरोध में स्थित—भूटान ने कभी यह आशा नहीं की लोगों से मिले-जुले। बाहर की रोशनी भूटान में नहीं पहुँची, बिजली पहुँची, कल-कारखाने खोले नहीं गये। एक बूँद एलोपैथिक दवा भी उस ने नहीं खायी, विज्ञान ने उस के दरवाज़े पर कभी भी सिर नहीं धुना, इस का उसे दुःख भी नहीं है। कारण, तिब्बत की तरह ही उस ने सभ्यता को सन्देह की दृष्टि से देखा है सदा से। भूत-प्रेत-पिशाचों को वह सफ़ेद झण्डी दिखा कर दुर-दुर करता है—जैसा देख चुका हूँ नेपाल और सिक्किम के पहाड़ों में, कुलू और उत्तर कुमायूँ में, किन्नर और लद्दाख में—जब कि ये सभ्यता से भयभीत नहीं हुए। उन से ग्रहण और वर्जन दोनों ही किया। मगर भूटान में दूसरी बात है। चौड़ा प्रवेश द्वार यहाँ कहीं भी नहीं है। मार्ग है, मगर वह है वन्य हाथियों के लिए, उस मार्ग पर पड़े रहते हैं पहाड़ी अजगर अपने शिकार की आशा में, भयानक भालू और भूखे चीते उस मार्ग पर निरन्तर चक्कर काटते रहते हैं। उस

मार्ग से अनेकों ने हमला किया है, कुछ पहुँचे नहीं, कुछ लौटे नहीं।

इतने दिनों बाद ध्यान-धारणा बदली है भूटान की। उन की दृष्टि नीचे की ओर गयी है—जहाँ है भारतवर्ष। वह बच्चों को शिक्षा के निमित्त भारत भेजेगा और भारत के साथ सम्बन्ध रखने की खातिर भारत से ही दो-एक पथ निर्माण करवा लेगा। कुछ समय पहले भूटानराज भारत के निमन्त्रण पर दिल्ली पधारे थे—हो सकता है उन के मन का सन्देह कुछ मिटा हो।

जहाँ तक दृष्टि जाती है। 'नागरकाटा' से भूटान के मध्य कई मील आगे बढ़ा जा सकता है; और कोई रुकावट भी पैदा नहीं करता है। किस ने तो कहा था, 'रांगामाटी' नामक एक जनपद भूटान के साथ भारत का सम्पर्क जोड़े है। वहाँ आ कर वे नमक खरीद कर ले जाते हैं और सम्भवतः बहुत जरूरी कुछ-कुछ वस्तुएँ भी। दिवानगिरी है भूटान के दक्षिण-पूर्व का सीमान्त शहर, उपत्यका पर अवस्थित। इतने दिनों तक यह छोटा शहर था भारत के इलाक़े में, कुल सात वर्ष पूर्व आगे दिवान गिरी का बत्तीस वर्ग मील इलाक़ा भारत सरकार ने भूटान को लौटा दिया। भूटान भारत से कभी भी शत्रुता नहीं करे, इस के लिए नेहरू सरकार वर्ष में पांच लाख रुपये उसे देती है। वह अब अपनी परराष्ट्रनीति भारत के परामर्श से स्थिर करेगा—यह है शर्त! वे अस्त्र-शस्त्र आयात करेगा भारत के राय-मशविरे से; भूटान रहेगा भारत की रक्षा-व्यवस्था में—उसे कोई छू न पाये। राजनीति की तटस्थता का मूल्य भूटान को मिला है।

मगर दिवानगिरी से भूटान की राजधानी 'पुनाखा' बहुत दूर पर है। यह दूसरे के मत से चलने वाला नहीं है जो क़दम-क़दम पर तीर्थ मन्दिर हो; कुलू और कांगड़ा भी नहीं है जो मनाली तक मोटर मार्ग हो। नेपाल नहीं है जो 'नामचे बाज़ार' और 'थिमांगबोचे' तक यात्रियों का जत्था नजर आये, यह है अँधेरे से घिरी नम पहाड़ी भूमि। नीचे की उपत्यका से जन-जानवर और इन्सानों में रोज़ ही, बात-बात में संग्राम होता रहता है। भोजन के लिए लड़ते हैं बाघ और मनुष्य। पेड़-पौधे, खेत-खलिहानों पर दल के दल हाथी आक्रमण करते रहते हैं, बिना सूचना दिये वे इस-उस बस्ती पर टूट पड़ते हैं। बर्छा, बल्लम, टाँगी और खुँखरी से लैस जंगली भूटानी पागल हो कर खूनी बाघों के पीछे दौड़ते हैं। हिमालय की तराइ वाले इलाक़े बड़े भयानक हैं।

तामुलपुर से आगे बढ़ कर दिवानगिरी प्रायः साठ मील पड़ता है। मध्यमार्ग में पहाड़ी नदी है। दिवानगिरी से 'तासिंग' है एक सौ मील उपत्यका-मार्ग—इस के बाद भूटान के उत्तर में बीहड़ हिमालय ऊपर उठता चला गया है। उन के शहरी, जनपदों, बस्तियों में पहुँचाने पर सहसा समझ में नहीं आता कि वे बौद्ध हैं या हिन्दू। उस के एक तरफ़ है बंगाल, दूसरी तरफ़ असम। असम का एक हिस्सा वैष्णव है, दूसरा शाक्त। भूटान है बौद्ध, मगर उस ने अपना लिया है बंगाल की शाक्त धारा। चण्डी, काली, तारा, ये हैं उन की पूज्या। पशुपति हैं उन के धर्मांग। सभी पहाड़ी जातियों की

तरह वे मामूली ठिंगने हैं और बलवान् भी। उन के स्वभाव की सरलता का हिंसा में बदलते देर नहीं लगती।

तासिंग से पश्चिम उपत्यका मार्ग में बहुत सी नद-नदियाँ और दुर्गम पथ पार कर प्रायः तीन सौ मील अतिक्रम करने पर कृष्ण गिरि के दक्षिण में पहुँचा जा सकता है। मगर इस मार्ग पर भाँति-भाँति के जानवर और हिंसक कुत्तों का साम्राज्य है। बीच में 'खंकार' और 'मिली' गिरिसंकट को पार कर के आना पड़ता है। 'खंकार' में आ मिली हैं दो बड़ी-बड़ी नदियाँ—इन दोनों नदियों की मूल उत्पत्ति है तिब्बत में। जैसे सिन्धु दक्षिण से उत्तर की ओर प्रवाहित हो कर समग्र कश्मीर को दो खण्डों में वियोजित करती हुई, जैसे अरुण नद गौरिशृंग से सीधे बीस हज़ार फ़ुट नीचे उतर कर संसार की सब से गहरी दर्रे बनाती है, या—याद हो आयी जंगली शतद्रू—वह जैसे मानसरोवर से निकल कर समग्र पंजाब और बहावलपुर को काटते हुए जा मिली है सिन्धु से, वैसे ही ये दोनों नदियाँ भी। ये इतनी चौड़ी नहीं हैं परन्तु बड़ी दुस्साहसिक हैं। इन से जा जुड़ी है तिब्बती ब्रह्मपुत्र नदी—जिस का तिब्बती नाम है—सांग पो। यह कहीं-कहीं बीस हज़ार फ़ुट ऊँचे पहाड़ों को दो खण्ड कर दिया है, पार कर आयी है यह दुर्गम दुस्तर गिरिमाला,—इस के बाद आयी है दक्षिण भूटान की तासिगंग उपत्यका। वहाँ से अपना रूपरंग बदल कर नाम धारण किया है 'डांगमे'। और उधर से कृष्ण पर्वत से तन रगड़ती हुई दौड़ी आयी है 'टंगसा'—उत्तर दक्षिण की ओर। इन दोनों नदियों के संगम से नये नाम वाली एक विस्तृत धारा को जन्म मिला है—मानस को। हर वर्ष इस मानस की प्रबल बाढ़ की धारा असम के गोआल पाढ़ा में पहुँच कर विभिन्न धाराओं में बँट कर ब्रह्मपुत्र में जा मिलती है।

अँधेरा उतरने पर कोई आपत्ति नहीं करता, मगर जब चारों ओर रोशनी होती है, तब अपने घर का अँधेरा हम बर्दाश्त नहीं कर सकते। रोशनी चाहिए, राह-घाट चाहिए, शिक्षा-सभ्यता चाहिए। भूटान के 'हा' नामक इलाक़े में इस का हाहाकार मचा।

महाराजा इतने सहज में इन बातों पर कान नहीं देते। मगर आजकल एक कारण पैदा हो गया है। वर्ष डेढ़-एक पूर्व तिब्बत में भूटानी चावल की चालानी का व्यापार जब टूट गया है, तब तिब्बत से भूटान में नमक आ कर भी नहीं पहुँचता। इस नमक दुर्भिक्ष के ही महाराज को सचेत किया है। खाद्य सामग्रियों में सब से अधिक मीठी वस्तु है नमक। चीनी और गुड़ जितनी मीठी क्यों न हो, नमक उस से कहीं अधिक मीठी है। क्योंकि नमक के बिना मनुष्य का दैनन्दिन जीवन अचल है। अतएव नमक-भिक्षा के लिए महाराजा ने भारत के आगे हाथ फैलाया। और कोई राह-मार्ग न होने का वजह भारत सरकार प्लेन से नमक के बोरे भूटान में गिराने को विवश हुई।

कुल नौ प्रशासक भूटान में हैं—उन को 'पेनलेग' कहा जाता है। वे महाराजा के अधीन एक-एक इलाक़े के अधिनायक हैं,—जैसे कभी-कभी भारत सम्राट् के अधीन थे।

'वायसराय'। ये श्री पेनलप और उन के सचिव—जिन में अधिकांश ही राजपरिवार के तथा महाराजा के आश्रित हैं,—इन के सहयोग से ही वे अपना अट्ठारह हज़ार वर्ग मील व्यापी पार्वत्य भू-खण्ड का शासन कार्य चलाते हैं।

यहाँ भी भूटान कांग्रेस ने महाराजा को घर दबाया। कायमी स्वार्थ की व्यवस्था बदलनी ही पड़ेगी। नियम-क़ानून राजा की इच्छानुवर्ती होने से काम नहीं चलेगा, लिखित विधान चाहिए। कोर्ट-कचहरी चाहिए, न्यायालय और न्यायाधीश चाहिए। शासन में प्रधानमंत्री न हो तो कोई बात नहीं, मगर मन्त्रिपरिषद् के बिना नहीं चल सकता। हटाओ अपने तावेदार 'पेनलप', मनमानी अब हम चलने नहीं देंगे। अब चाहिए जनगण के द्वारा निर्वाचित प्रतिनिधि, चाहिए गणतान्त्रिक शासन-व्यवस्था।

भूटान कांग्रेस की बहुत कुछ माँगें महाराजा ने मान ली है, और शीघ्र ही भूटान के राष्ट्र क्षेत्र में कुछ नयी व्यवस्था लागू करने की बात चल रही है। इस दफ़ा तिब्बत को छोड़ कर महाराजा ने भारत से हाथ मिलाने को तैयार हुए हैं। जनता ने पहली बार सिर उठाया है भूटान में।

उत्तर भूटान पर्वतों से घिरा है,—जैसा है दुरारोह, वैसे ही लोकशून्य। पश्चिम भूटान का रूप प्रायः ऐसा ही है। दुःसाध्य पर्वत, नदी और अतल तल दरों से सिक्किम उस का स्वभावगत पार्थक्य है। उत्तर-सिक्किम की उत्तुङ्ग पाऊनहरी पर्वत से उतरी है 'आमोचू' नदी। यह सीधे दक्षिण में सिक्किम पार कर दक्षिण-पश्चिम भूटान में आयी। इस नदी की धारा मार्ग में सिक्किम में और भूटान में दोनों भू-भाग एक में मिल गया है। दोनों की कोई सीमा का निर्देश नहीं है—है मात्र पर्वतों के बाद पर्वत और पाँच से आठ हज़ार फ़ुट ऊँची मालभूमि है। आमोच नदी दक्षिण मार्ग में मदारी हाट हो कर कालजानी की तरफ़ चली गयी है। दूसरी दो प्रधान नदियाँ हुई रायडाक और मोचू। ठीक याद नहीं आता, कि 'रायडाक' का ही दूसरा नाम 'काल चीनी' है या नहीं। यह रायडाक नदी उतर आयी है जयन्ती जंगल के उत्तर किनारे जिस अंचल का नाम है 'भूटान घाट'।

चुपचाप खड़ा रहा उस भूटान घाट पर रायडाक नदी के तट पर। उधर है भूटान पहाड़, नीचे नदी की नीली धारा बाँयी ओर से दाँयी ओर बहुत दूर तक बह चली है। बही कहाँ तो जैसे गुफा लोक में मिलता है 'फाँस खाया महाकाल'—वहाँ है आश्रम,—मार्ग निकल गया है कालचीनी नदी के ऊपर से। बाँस का पुल पार कर के कहीं उस अँधेरे गुफा-आश्रम में प्रवेश किया जा सकता है। उस के आस-पास जंगली भूटानी बस्तियाँ हैं। और वह देख लिया कालचीनी के पुल पर के उस पार भूटान का जंगल, दिन के वक़्त भी भयभवानी का डेरा, उस अंचल में न कि सर्पराज (Viper जातीय) हाथियों की सूढ़ से लिपट फन फैलाता है।

सामने है वतैली नदी-चट्टानों से भरी-भरी, घना विशाल जंगल है चारों

तरफ़। दिन में भी बहुतों को इधर आने का साहस नहीं होता, चारों तरफ़ हवा अवरुद्ध, गहरा सन्नाटा। ज़रा देर पहले हाथी इधर से गुज़रा है, 'लीद' करता गया है—उस से भाप निकल रही है। नदी के उस पार में भूटान पहाड़ पर चढ़ गया है हाथी का मार्ग। पहाड़ के ऊपर से वे जब-तब अनाज लूटने को आते हैं। ज़रूरत पड़ने पर वे गाँव का गाँव लूटते हैं, वन-बगान को तहस-नहस कर डालते हैं, और रोकने पर मनुष्यों को रौंद कर चले जाते हैं।

पलाशवाड़ी से शामुंकतल्ला का पुल, और बाबूपाढ़ा से 'पाञ्जेर दवड़ी'—इन्हीं के बीच चक्कर काट रहा था। यहाँ है महकमा, अदालत और आपिसपाड़ा है, यहाँ-वहाँ गाँव और लोगों का आना-जाना—मगर शहर नगर इसे कहा नहीं जाता—मिला-जुला कर यह है एक आधुनिक गाँव या क़स्बा। मगर गाँव के बाहर, शाम के बाद से, हो उठता है संशय-संकुल। आदमख़ोर बाघों का आक्रमण कभी-कभी होता है। क्योंकि बाघ का ज़िक्र है बात-बात में। चारों तरफ़ हैं नदियाँ और जंगलें, पहाड़ और नम धरती, बीच में है छोटा अलीपुर दुआर। कुछ आगे बढ़ने पर मिलता है मदनपुर, उस के बाद से जंगलमय तराई प्रारम्भ हो गयी है। हिमालय प्रायः सर्वत्र अपनी उदार महिमा को अभिव्यक्त करता है ध्यानस्थ अरण्य सम्पदा के रूप में। मदनपुर सड़क चली 'बक्सा दुआर' की तरफ़, और बायीं ओर उत्तर-पश्चिम में रेल-मार्ग तथा वन-मार्ग चला गया है। 'राज भात खावा' की ओर। ठिठक गया। ठीक-ठीक याद नहीं आ रही है कहानी। सम्पूर्ण अलीपुर दुआर कभी भूटान के अधीन था। एक दिन यहाँ आये कूचबिहार के महाराजा बाघों के शिकार के लिए। शायद उन का यह प्रवेश ग़ैरक़ानूनी था। दूसरे शब्दों में इस अलीपुर दुआर के ऊपर दोनों पक्षों का अधिकार था—जो भी रहा हो। भूटान बेरुख हो कर खड़ा हुआ कूचबिहार के महाराजा की तरफ़। इस में ज़रा भी सन्देह नहीं कि राजसी खून और राजनीति बहुत भयंकर होती हैं—और इस का स्वरूप दर्शन राजस्थान में करता फिरा हूँ। परिणामस्वरूप, युद्ध हुआ, और समय पर सन्धि भी हुई। अलीपुर दुआर हुआ कूचबिहार के अधीन। समझौते से दोनों पक्षों को खुशी हुई थी। मगर इस खुशी को याद रखने की ज़रूरत है। इस लिए भूटान और कूचबिहार ने तय किया, भोज के द्वारा इस मित्रता को गाढ़ा बनाना चाहिए। जो हुई कथनी वही है करनी। दोनों ने एक साथ बैठ कर अन्न ग्रहण किया जहाँ, उस अंचल का नाम पड़ गया 'राजा भात खावा'। इसी नाम से स्थानीय रेलवे स्टेशन भी है।

जंगलों के घटाटोप वाले मार्ग से हमारी मोटर तेज़ रफ़्तार में जा रही है—दूर, बहुत दूर। ठीक याद नहीं पड़ता किन्तु मार्ग मील चालिस-एक का है। मेरे साथ हैं श्रीमान् दे सरकार—अलीपुर दुआर के सर्वजन परिचित मास्टर मोशाय। उन का प्रौढ़ वय में भी पर्वतारोहण के लिए उमंग-उत्साह बहुत तरुणों को मात कर देता है।

वे पहाड़ और नदियों और दुरूहता की चर्चा में मशग़ूल हो उठे थे। संकोश नदी की उपत्यका-मार्ग पकड़ कर जंगली पठार और तराइयाँ पार कर सीधा उत्तर की दिशा में चला गया है दुःसाहसपूर्ण मार्ग। वनमय नम भूभाग, दोनों तरफ़ हिमालय की गिरि मालाएँ—हाथियों का दल उतर आता है जाड़े के दिनों में, बाइसन प्रताड़ित करता है भूटानियों को, हरिण और बनैले सूअरों का जत्था इधर से उधर आता-जाता है, जंगली कुत्ते खरगोश को ढूँढ़ते फिरते हैं, हायना आगे आ-आ कर जानवरों की हड्डियाँ सूँघ कर लौट जाता है,—ऐसे में से ही हमला-मार्ग चोरंग तक जा पहुँचा है। चोरंग है एक भूटानी जनपद—वहाँ के लोग ग़रीबी में क्षयग्रस्त हो कर मर जाते हैं,—जल और जानवरों से लड़ते रहते हैं वे अहर्निश। 'चोरंग' से 'संकोश' नदी का नाम पड़ गया है पो-चू,—जैसा पड़ा है ब्रह्मपुत्र का नाम सान-पो। इस 'पो-चू' के पूरब में गगनचुम्बी कृष्णपर्वत की शाखा-प्रशाखाएँ फैल गयी हैं दूर-दूरान्तर तक। इस नदी के किनारे-किनारे मार्ग चला गया है 'वांग दू' जनपद को पार कर के सीधे उत्तर में 'पुनाखा' शहर में। नाम पुनाखा है या पुण्याक्ष—ठीक-ठीक मालूम नहीं। मन्दिर, गुफाएँ, बाजार, राजभवन—सभी हैं। कारुकृत मंगोलीय भास्कर्य का भी अभाव नहीं है। पुनाखा से एक घोड़े का मार्ग फरोजंग हो कर चला गया है कालिंगपोंग की तरफ़। भारत से भूटान के सम्पर्क-सूत्र के निमित्त यह एक अन्यतम सुदूरवर्ती मार्ग है।

खूब घनघोर जंगल-झाड़ियों की शोभा निरखता हुआ आगे बढ़ रहा हूँ। दोनों तरफ़ एक अजब प्रकार का अप्राकृतिक जादूगरी का जैसे जाल बिछा हो। जंगलों के नीचे से इधर-उधर रहस्यपूर्ण पथ चले गये हैं। वे सभी मानो संशय से भरे एक-एक प्रश्न हों। जाड़े के दिनों में शीशम के और सेगुन के पत्ते बहुत झरते रहते हैं। एकाध जंगली लकड़हारे का दर्शन हो रहा है। धूमिल मार्ग पर सहसा प्रकट हो रहे हैं काले-कलूटे धरतीपुत्र,—नाक-नक़्श में जंगली, आधे नंगे—हाथ में कुल्हाड़ी। उस के पीछे हैं एकाध लोग और। वे इस इलाक़े में अकेला नहीं चलते कभी। याद हो आते हैं शुकना और अमोलकगंज के जंगल, याद आ रही है देवदार पर्वत के नीचे की द्रोणभूमि, सोमनाथ के मार्ग में गिरनार का सिंह वन। देखते-देखते आ पहुँचा बक्सा पहाड़ के नीचे 'सातरावाड़ी' पुलिस चौकी।

यह इलाक़ा अभी उस दिन तक भूटान में था,—लगभग वर्ष तीस-एक पूर्व अँगरेज़ों ने इस इलाक़े के पाँच मील पहाड़ी इलाक़ों को समेट कर एक दुर्भेद्य क़ैदखाना बनाया था। इस का नाम रखा गया 'बक्सा दुर्ग'। चारों ओर हिमालय की चोटियाँ, एक तरफ़ मात्र निगाह दूर-दूरान्तर तक दौड़ पाती। इस मार्ग पर यहाँ-वहाँ बिखरा है विप्लवी बंगाल का इतिहास। स्वाधीनता के इतिहास में जो स्मरणीय हैं और वरणीय हैं—यहीं बैठे-बैठे उन ने निराशा के दिन गिने थे। प्रेण्टीस, प्रोर्टर, जैक्सन, एण्डरसन, हार्वरट, लीटेन, रेंडिग, यूनिङ्गडन, लिनलिथगो आदि—इन के अमानुषिक आचरण का इतिहास आज भी इस पहाड़ पर खून से लिखा है। ठीक याद नहीं, शायद लार्ड

रेडिंग के ज़माने में यह बदनाम क़ैदखाना खुला और उन्हीं के निर्देश से धीरे-धीरे बंगाल के श्रेष्ठ कर्मवीरों को यहाँ चुपके-चुपके ला रखा गया। जन-जीवन से परे आधी रात को या जंगल के अँधेरे मार्गों से बन्द गाड़ी में ज़ंजीरों से जकड़े और हण्टरों से पीटते हुए उन्हें पहाड़ की चढ़ाई तय करने को बाध्य किया जाता। न देश के लोग जान पाते न क़ैदी ही जानते थे—इस इलाक़े का नाम और धाम। बहुत दिनों तक अँगरेज़ों ने यह देशवासियों को जानने नहीं दिया, और जब उन की अकथ बर्बरता को बर्दास्त न कर बन्दियों ने ज़ंजीरों में जकड़े रह कर ही सिर उठाया—तब जहाँ तक स्मरण है, उन के ऊपर सशस्त्र गुर्खों को ललकार दिया, और उस का परिणाम यह निकला कि कई क़ैदी मर गये। उस मौत का बदला बंगालियों ने नहीं लिया, यह नहीं, लिया मगर उस का परिमाण बहुत नहीं के बराबर है। अमंगल, अन्याय और अनाचार के संहार के लिए हमारे देश में गीताधर्म प्रचलित है। असुर को निर्धन करने के खातिर यदि हाथ नहीं काँपता, दया, माया, मोह, कृपा यदि अन्तर को अभिभूत न करे, परिणाम के प्रति हृदय यदि निरासक्त और निस्पृह रहे—तभी सार्थक है असुर संहार! बंगाल की अनेकों वीर सन्तानें, उस समय अनेक क्षेत्रों में इस गीता-वाणी को जीवन का व्रत बना लिया था। हारी-बीमारी, प्रहार-उत्पीड़न, निराशा में उस दिन बक्सा दुर्ग के सुनसान कोठरी में अनेकों अकाल मृत्यु को समर्पित हो गये, मगर उन्हीं के पुण्य-रक्त से लिखी गयी है आज की स्वाधीनता की कहानी।

अनुमान लगा सकता हूँ, तीन मील से भी अधिक की चढ़ाई होगी। शुरू के एक मील तक पगडण्डियाँ बड़ी दुरूह हैं—दम फूलने लगता है। एक झरना मध्यपथ पर उतर आया है, पहाड़ झाड़ियों से भरा और लोक छाया से हीन है। यह साफ़ है कि उस समय यहाँ से निकल भागने का कोई चारा नहीं था। देश और जाति से एकदम क्रान्तिकारियों को काट कर अनजाने लोक में निर्वासित कर के रखने जैसी जगह और कहीं नहीं है।

लगभग डेढ़ घण्टा लगा बक्सा डाकघर में पहुँचने पर। अँधेरा पहाड़ी इलाक़ा, पहाड़ों में दूर-दूर पर कई एक घर, ग़रीब भूटानियों का वास। डाकघर में एक बंगाली पोस्ट मास्टर हैं, मगर मलेरिया में उन का पूरा परिवार पड़ा है। मजूर औरत-मर्द जा रहे हैं लकड़ियों का बोझा लादे। ग़ौर से सुनने पर पता चलता है कि इन की भाषा बंगाली और हिन्दी का अपभ्रंश है। सुना कि यहाँ बहुत तरह के असाध्य रोगों का प्रकोप होता रहता है—पेट की गड़बड़ी बहुत होती है। अनाज आदि लाना पड़ता है बहुत नीचे से।

दुर्ग की सीमा में आ चढ़ा। क़तार से एकमंज़िले मकान नज़र आ रहे हैं—एक पठार पर। आज भी वैसे ही कटीले तारों का बेड़ा लगा है, वैसे ही सुरक्षित प्रवेश-पथ, पूर्ववत् ही है रहन-सहन। मध्य पथ में दो-तीन लकड़ियों का गुम्बद है, वहाँ हमेशा से सतर्क पहरा पड़ता था। हम अन्दर जाने के पहले कुछ दूर आगे बढ़ कर फोरेस्ट

अफ़सर के बंगले में जा पहुंचे। ये प्रायः सभी बंगाली हैं। इन्हीं में से एक के यहाँ पूर्व व्यवस्थानुसार हम लोगों के खाने-पीने का इन्तज़ाम था। मार्ग का मोड़ घूमते सब से पहले एक कत्थई रंग के बरामदे वाले सरकारी भवन पर निगाह पड़ती है। देख कर पता चलता है कि किसी ज़माने में यही था ऊँचे सरकारी अफ़सरों का निवास। आज तो सब कुछ है जन-शून्य। उधर है जेलखाना, इधर पुस्तकालय, स्कूल, कर्मचारियों के क्वार्टर, खेल-कूद का मैदान। एक पतला सा मार्ग बीच से भूटान के विशाल पहाड़ पर चढ़ गया है।

इधर आ कर जा घुसा जेलखाने में। बीच में चौड़ा सा आँगन है। कँटीले तारों का बेड़ा चारों तरफ़ घिरा है, बाधा के बाद बाधा। कभी कल्पना भी नहीं की थी कि यहाँ भी पहुँच पाऊँगा। बक्सा का अर्थ था भय, आतंक, देशप्रेम, क्रान्ति, उत्पीड़न, निर्वासन—इस पहाड़ के बारे में विचित्र धारणा थी। घूम-घूम कर देखा चारों तरफ़। सुनसान छोटी से छोटी कोठरी किसे कहा जाता है, यह देखा उस के अन्दर जा कर लोहे का फाटक बन्द कर के। आज कुछ याद नहीं है, उस पीड़ा का बोध नहीं है मानो उस दुःस्वप्न में सब कुछ खो गया है। हृदय में उस दिन के जैसा दहक नहीं होती और न ही घिन होती है—रात के बाद रात दाँत पीसते हुए, गोली से एक अँगरेज़ को मारने का समाचार सुन कर गीत गाते हुए सड़कों पर घूमना, उन दिनों की हृदय में वीर-पूजा की भावना—हृदय की वह जलन आज जुड़ा गया है। समग्र पहाड़ी चोटी पर का पठार आज विशाल अजगरों और सरीसृपों के विचरण क्षेत्र में बदल गया है।

जीव-हिंसा महापाप है यह जानता क्यों नहीं हूँ! प्रेम से पृथ्वी विजय की वाणी भारतीय संस्कृति का मूल तथ्य है यह सभी जानते हैं। अँगरेज़ों के प्रति हिंसा और विद्वेष आज अब ढूँढ़े नहीं मिलता—ये चले गये हैं अँगरेज़ों के संग-साथ। मगर अपमान के उत्पीड़न में, अराजकता से उन दिनों के शासकों ने बंगाली मत में जो भयानक क्रान्ति की सृष्टि की थी, अँगरेज़ों की उस हिंसा का हिंसा के द्वारा ही बंगाली लोग उचित मूल्य चुकाने पर विवश हुए थे। लोहे को काटने के लिए बिना लोहे के अस्त्र के और उपाय नहीं था।

अब पचीस वर्ष पहले के इतिहास में थोड़े समय के लिए लौट जाना चाहता हूँ।

अँगरेज़ शासकों के भयानक दमन के समय बंगाली अपने स्वभावधर्म अनुयायी एक आत्मिक सुख का स्वाधीन मार्ग खोजता फिर रहा था। राजनीतिक जीवन में जो अवरुद्ध ग्लानि, निराशा और अपमानबोध था, उसे शासकों के विरुद्ध में विषैला बना रहा था, उसी राहु की छाया को मिटाने के लिए बंगालियों ने चाहा था एक युगजयी सांस्कृतिक और चित्प्राकर्षिक अभिव्यक्ति—जो सर्वव्यापी आनन्द और मुक्तिबोध का नारा गुँजा सके। उस समय इस आनन्द, आशा और मुक्ति के एकमात्र प्रतीक थे जाति के सर्वोत्तम भावनायक और अभिभावक महाकवि रवीन्द्र-

नाथ। इस लिए रवीन्द्रनाथ को केन्द्र बना कर उस समय एक सांस्कृतिक आन्दोलन शुरू हुआ। वह प्रकट रूप में राजनीति से मुक्त होने पर भी भीतर ही भीतर राजनीतिक चेतना से युक्त थी। जो भी हो इस आनन्द के हाट में आ खड़े हुए सभी—सभी दल, सभी मत, सभी पथ, एवं देश के सभी मनीषी और सांस्कृतिक सम्प्रदाय। उन्होंने एक 'रवीन्द्र जयन्ती' संस्था की स्थापना की, और उस के अन्यतम कार्यकर्ता के रूप में मनोनीत किया श्री अमल होम को। होम महोदय के प्राणपण चेष्टा से, प्रेरणा से, और संगठन शक्ति से सभी शिक्षित समाज के मन में जो उत्साह पैदा किया, वह केवल स्मरणीय ही नहीं है बल्कि ऐतिहासिक महत्त्व की परिस्थिति भी है। परिणामस्वरूप देश भर के रवीन्द्र अनुरागियों की चेष्टा से १९३१ के दिसम्बर में कलकत्ते में 'रवीन्द्र जयन्ती' का विराट् अनुष्ठान सम्पन्न हुआ। इस समय बक्सा दुर्ग के राजबन्दी भी चुप न रहे। उन ने अधिकारियों से अनुरोध किया कि यहाँ कवि को वे भी अभिनन्दन करना चाहते हैं। क्योंकि महाकवि के मुक्तिमन्त्र से उन का जीवन दीक्षित है। अधिकारी वर्ग उन की माँग ठुकरा न सके। सुदूर भूटान की हिमालियन चोटी से एक दलपिंजरे में बन्द रक्ताक्त पक्षी का आर्तकण्ठ अभिनन्दन की भाषा में आ पहुँची महाकवि के चरणोपान्त में। उसी आर्तकण्ठ की पुकार से उस दिन महाकवि का हृदय हिल उठा था। अपमानित और यंत्रणादग्ध मानवात्मा की पीड़ा से उन की दोनों आँखें भर आयीं। वे भी उस समय हिमालय की एक दूसरी चोटी पर थे—दार्जिलिंग में। हिमालय के उस शीर्षस्थल पर खड़े हो कर वृद्ध महाकवि के वज्रकण्ठ से जो आशीर्वचन उच्चरित हुआ, वह कविता समग्र बांगला और भारत के दिक्-दिक् लहराती हुई जा पहुँची पृथ्वी के मर्म-मर्म में। बंगाली का आर्तजीवन उस दिन उन की उस कविता में प्रकट हुआ था :

"प्रत्याभिनन्दन
बक्सा दुर्ग स्थित राजबन्दि देर प्रति····

उस दिन के शासक अँगरेज़ काव्य-रसिक अथवा साहित्य विचारक नहीं थे। इस लिए यह कविता बार-बार अँगरेज़ी में अनुवाद करा कर भी उन ने इस का मर्म समझने में समर्थ नहीं हुए। मगर प्रत्येक बंगाली उस दिन इस कविता के प्रत्येक शब्दार्थ के राजनीतिक मर्म की उपलब्धि की थी। तामसिक प्रकृति के अँगरेज़ों के विरुद्ध में अमृत-सन्तान विप्लववादियों के प्रति महाकवि ने अपनी यह कालोत्तीरण कविता के द्वारा आन्तरिक अभिनन्दन व्यक्त किया था।—जो भी हो, इस कविता में विप्लवियों के प्रति महाकवि के आन्तरिक अनुराग की गन्ध पा कर तत्कालीन अँगरेज़ अधिकारियों ने बक्सा दुर्ग के क़ैदियों तक इस कविता को पहुँचने नहीं दिया। कविता यथा समय अमल होम के पास लौट आयी और 'प्रवासी' में प्रकाशित हुई।

संसार के एक निरीह छोटी जाति भूटान पर्वत के एक गहन लोक में रहती है। उन का नाम है 'टोटो' जाति। अब यह 'टोटो बस्ती' का दुस्तर इलाक़ा है अलीपुर दुआर के अन्तर्गत। इस छोटी जाति की लोक-संख्या कमोवेश साढ़े तीन सौ या चार सौ से अधिक नहीं है। ये एक समय पहाड़-पर्वतों पर कहीं स्थायी निवास न पा कर किंवदंती की भाँति चक्कर काटा करती थी, इसी से इस का नाम पड़ गया 'टोटो' यानी बेठौर ठिकाना के खानाबदोश। वह सदा से प्रताड़ित होते आये हैं—नेपाल और भूटानियों के द्वारा। चट्टानों से चट्टानों पर खाना-कपड़े के अभाव में सिर पटकते आये हैं। ग़रीबी और कुष्ट रोग से अनेकों विकलांग हैं, उन की बोली अपनी है—न भूटानी, न नेपाली, न ही सिक्किमी। वे अब इस पीढ़ी में ही सवंश शेष हो जायेंगें, इस में सन्देह नहीं। उन को बचाने की खातिर एकाध मानव प्रेमी उन के बीच जा खड़े होते हैं—मगर वे असफल हो कर लौट आते हैं। पहाड़ी नेपाली और भूटिया उन के हिस्से को जमीन और अनाज झपट लेते हैं, उन की घर-गृहस्थी तहस-नहस कर डालते हैं। कुछ दिनों पूर्व एक बंगाली युवक इस अन्याय के विरोध में लड़ने को टोटो बस्ती में गया था। मगर वश में पा कर विरोध पक्ष ने उसे मार डाला। आजकल सुना जाता है कि अलीपुर दुआर के अधिकारी 'टोटो' को बचाने के प्रयत्न में लगे हैं—ताकि वे तेज़ी से निश्चिह्न न हो सकें। टोटो का जाति-परिचय बिलकुल ही अज्ञात है।

टोटो पहाड़ी बस्ती जलपाईगुड़ी जिला में ही पड़ती है, फिर भी यह है भूटानी इलाक़ा। प्रकृति है भूटानी। यहाँ तेज़ बहने वाली नदी 'आपो-चू' का नाम पड़ा है 'तरसा'। इसी के किसी एक तट के किनारे है टोटो पहाड़—मानव समाज के बाहर। जलमग्न जंगल-पहाड़—इस के अतिरिक्त कुछ नहीं है। इस के परे भी कोई दुनिया है यह 'टोटो' नहीं जानते। सभ्य समाज के बहुत से लोग हाथी पर सवार हो कर टोटो की बस्ती देख आते हैं। उसी मान-हीन मानव गोष्ठी के मध्य जा खड़े होने पर सभ्य मनुष्यों का सिर झुक ही जाता है।

खूँटी के सहारे मचान बना कर उस पर झोपड़ी बनाते हैं। जैसे अलीपुर में, जैसे शिलीगुड़ी और असम में। पानी का डर, जन्तु का डर, सरीसृपों का डर। उन्हें पुकारने पर भी वे सभ्य संसार में नहीं आते, वे किसी से मिलना नहीं चाहेंगे, शायद उन का धर्म-विचार अपनी स्वतन्त्रता खो बैठे, इसी आशंका में। वे बहुत ही आत्म-केन्द्रित हैं, अतिशय आत्मवादी, जाति अभिमानी, अपनेपन के हैं प्रेमी। सम्भवतः इन्हीं कारणों से वे युगों से प्रताड़ित होते आ रहे हैं। उसी बस्ती में है उन का एक-एक मोहल्ला—उन का अधिकारी है एक-एक मण्डल। मण्डल ही हैं उन के जीवन-मरण के मालिक। उन के देवता हैं, तीज-त्यौहार हैं, नाच-गान है, विवाह-नेग-नियम है, समाज व्यवस्था भी है। उन का प्रमुख जीविका है दूसरों के लिए खटना। इस के अलावा थोड़ा-बहुत खेत-खलिहान है। उस से वे शाक-सब्जी उगाते हैं, कुछ-कुछ हल भी

चलता है। ऐसे ही दिन कटते हैं। आज कल राष्ट्रीय कांग्रेस के प्रयत्न से उन्हें बचाये रखने की खातिर तरह-तरह की सहायता-केन्द्र खोले जा रहे हैं। ऐसा पता चला है। दवा-दारू, जल और आश्रय—इस की आवश्यकता खूब है। सिर्फ़ जिन्दा रखना ही नहीं इन्सान बनाने की खातिर सांस्कृतिक जिम्मेदारियाँ भी पालन करना ज़रूरी है।

देवादिदेव हिमालय अपनी सहस्र जटाएँ फैला कर आखें मूंदे स्थिर रहे भूटान के हिमालय में। पड़ा रहा चमलहरी और कृष्ण पर्वत पर गगनभेदी रौप्य चूड़ा, पड़ा रहा 'मनीऊल', 'कांगटी आगोर' दूर अतिक्रमा गिरि संकट, पड़ा रहा पुनाखा से दुर्गम लोक में कैरामान-पथ—जो पथ चला गया है तिब्बत के अजाना-अनामा बालू और पत्थरों के प्रान्तरों में—मगर उस के चरण के नीचे पड़ा रह गया सहस्र-सर्वनाशी नदियों की धाराएँ। अनध्यूषित अपरिचित विशाल जलमग्न जंगल के भू-भाग—जहाँ बाघ, भालू, हाथी, हायना, अजगर, शूअर, हरिण, साँभर, सरीसृप आदि का अबाध उन्मुक्त राज है। वे हैं निमीलित नेत्र योगासीन, उन की भौंहें कल्प-कल्पान्तों में भी नहीं बलखातीं। चराचर व्यापी पशुओं का दल पड़ा रहा उन के आसन के नीचे, प्रसन्नवदन पशुपति ध्यान-गम्भीर रहे।

[१०]

कोशी का साँको एक बार और पार कर रहा हूँ। पहाड़ों के अवरोध का षड्-यन्त्र भेद कर साँकों के नीचे जाने कहाँ से रोशनी आ पड़ी है। पहाड़ों के छोर का यह पश्चिम पार है, हम जायेंगे पूर्व पार। नदी पार कर गाड़ी चली फिर चढ़ाई पथ पर।

जा रहा हूँ अलमोड़ा शहर की ओर, शशांक बाबू साथ ही हैं। आठ मील चढ़ाई और बाक़ी है। मगर अब जरा राहत की साँस ली। पहाड़ 'जरीप' कर के जिन्होंने कभी मोटर-मार्ग निर्माण कराया था उन के प्रति धन्यवाद ज्ञापन किया, बारंबार नमस्कार भी किया।

'गागर' गिरिश्रेणी पार कर 'कूर्माचल' में आ घुसा हूँ। यह अलमोड़ा का ही दूसरा नाम है। कुमायूँ नाम आया है कुर्माचल से, लोग ऐसा कहते हैं। नाम बार-बार क्यों बदलता है, पता नहीं। मगर बदलता है। देशों का नाम, नगर और पहाड़ों का आंचलिक नाम—सभी बदलता रहता है। हस्तिनापुर से इन्द्रप्रस्थ, और फिर दिल्ली। लखनावती से हुआ लखनऊ। पाटलीपुत्र से पटना। काशी, 'जीत्वरी', वाराणसी, बेनारस, बनारस—अब फिर लौट आया है 'वाराणसी' में। पीटर्सबाग, पेट्रोग्राड, लेनिनग्राड।

सिन्धु, हिन्दू, इन्दो, इन्दा, इण्डिया—अर्थात् भारत सेवा से पहले। पहाड़ों का नाम भी बदलता रहा है—मर्जी के मुताबिक। गौरी शिखर हुआ एवरेस्ट। कृष्णगिरि हो गया काराकोरम। कालदण्ड हो गया लांसडाउन। और भी बहुत से ऐसे ही। कूर्मांचल को अनेक लोग 'कूर्मांचल' भी कहते हैं। मगर नदियों का नाम बदलते नहीं सुना कभी। वह अचल नहीं है चल है—इसी लिए टिका है। गंगा हो गयी गोमुख से गंगासागर, इस दो हजार मील पर हाथ रखने का साहस सम्भवतः किसी को नहीं हुआ। प्रथमतः सम्पत्ति और परिचय को ले कर खोंचा-तानी, और द्वितीयतः यह जननी के प्रति अविचार है।

असंबद्ध चर्चा में बहुत दूर निकल आया।

तीखी दोपहरी, जाड़े की हवा अभी भी अलमोड़ा पर नहीं चढ़ी है। हम चढ़ आये अलमोड़ा शहर के प्रमुख राजपथ पर—इस का नाम है गान्धीमार्ग। शहर बहुत बड़ा है। नैनीताल को छोड़ कर अलमोड़ा की तरह बड़ा शहर कुमायूँ में दूसरा नहीं है। काठगोदाम स्टेशन से अलमोड़ा की दूरी है पचीस मील—मोटर से—बल्कि कुछ अधिक ही होगा। मगर रामगढ़ के मार्ग से जाने पर आधा कम हो जाता है। मगर वह पैदल मार्ग है, या फिर घोड़े या डाण्डी से जाया जा सकता है।

'आनन्दमय' धर्मशाला से उठ कर हम लोग आ गये 'रॉयल' होटल में। सब से पहले ही जो निगाहों में खटका वह है पानी का अभाव। पानी अलमोड़ा में कम है—मतलब, मैं शहर की बात कह रहा हूँ—देहात-क़स्बे की नहीं। जहाँ है कालीगंगा, धवलीगंगा, कोशी, गोमती आदि का देश, वहाँ के सर्वप्रमुख शहर में पानी की कमी—इस वैज्ञानिक युग में इस पर यक़ीन नहीं होता। सम्भवतः इस का प्रमुख कारण है, शहर से उच्चतम किसी भी बड़े पहाड़ का भू-सम्बन्ध का न होना। पानी की व्यवस्था नीचे से की जाती है। प्रसंगक्रम में यह कह रखूँ, कि जिन सभी ऊँचे पहाड़ों के झरने नहीं हैं या जिन शिखर लोकों में पानी का संस्थान कम है, उस के त्रि-सीमा में कोई जाना नहीं चाहता—वे सब पहाड़ भयानक होते हैं। इसी कारण साधु-संन्यासी हो या पहाड़ी अधिवासी हो—सभी खूब ऊँचे पहाड़ का किनारा ढूँढ़ते हैं। जहाँ झरने उतरते हैं, जहाँ गुहा-गह्वर के अगल-बग़ल ज़रा जंगल-झाड़ी हो—जहाँ निर्मल जल की धारा खोजे से मिले। यह याद रखना चाहिए कि झरने ही मात्र आमदहीन नहीं हैं; बहुत तरह को जंगली ओषधि-लताओं का धोअन, झरने की धारा में बह कर आती है, विभिन्न प्रकार की धातुओं का मिश्रण उन झरनों के जल में घुला-मिला रहता है। खासकर पहाड़ों के ऊपर को तरफ़ यदि बस्ती हो, तब उस पहाड़ के नीचे के झरने बहुत दूषित जल ले कर उतरते हैं। पेट का दर्द है पहाड़ों में मौत। बहुत स्वस्थ व्यक्ति को भी पेट के रोग से तिल-तिल मरते देखा है। साधु-संन्यासियों की बातें अलग हैं। यातायात के भयंकर भीड़ में भी कलकत्ते में कम वेतन पाने वाले अभागे क्लर्क जैसे सहसा गाड़ी से दबते नहीं, उसी प्रकार अल्पहारी, अर्धनग्न साधु-संन्यासी भी

झरने के पानी के हाथों बचे रहते हैं।

आराम से हूँ 'रॉयल' होटल में। तनिक बड़प्पन, जरा विलास—थोड़ा छड़ी घुमाते हुए पहाड़ के 'रीज' के ऊपर टहल आना—दिन मजे में ही कट रहा है। शहर मेरे लिए बड़ा आर्कषण नहीं है—क्योंकि कलकत्ते का चौरंगी मेरा देखा हुआ है।

पश्चिम तिब्बत का मार्ग यहाँ से सर्वापेक्षा सहज है। तिब्बत से अलमोड़ा का सम्पर्क यहाँ हर जगह विद्यमान है।

अलमोड़ा के एकान्त में है प्राचीन चन्द्रवंशीय राजाओं का एक पुराना दुर्ग। मन्दिर बहुत से हैं। उन में नन्दादेवी, त्रिपुरा सुन्दरी, पातालदेवी, कासारदेवी, बद्रीश्वर—ये सभी प्रमुख हैं। यहाँ रामकृष्ण मिशन शहर से डेढ़-एक मील दूर पर एक अति रमणीय और सुनसान पहाड़ के बीच प्रतिष्ठित है। वहाँ कभी-कभी आगतों को रहने की जगह मिल जाती है।

विभिन्न मार्ग यहाँ से निकल गया है। कुछ दूर पर कासारदेवी पहाड़ के बीच कुछ अमरीकी साधु एक पाइन वन में अपना आश्रम बना कर रह रहे हैं। और भी है कई पाश्चात्य देशों के शिक्षित एवं विद्वान् और संसारत्यागी व्यक्ति यहाँ के पहाड़ों में वे अध्यात्म-साधना करते हैं।

अलमोड़ा से लगभग बीस-बाइस मील दूर में पहाड़-प्रकृतिवत् एक अति मनोरम एकान्त कोने में और भी कई एक विद्वान् और साधकों ने एक और आश्रम की स्थापना की है—उस आश्रम का नाम है, 'उत्तर वृन्दावन'। यहाँ है श्रीकृष्ण का एक मन्दिर। चित्तौड़ के राणा कुम्भा की पत्नी मीराबाई ने जिस प्रकार साधना-भजन आदि के द्वारा अपने जीवन को सार्थक बनाया था, यहाँ के सज्जन साधुओं ने भी बहुत कुछ उसी प्रकार अपने जीवन और व्यक्तित्व को विलीन कर रखा है। उन में से एक साधक अपनी विद्वत्ता, सौन्दर्य बोध और अध्यात्म तपस्या के लिए बंगालियों के निकट परिचित हैं, उन का नाम है कृष्णप्रेम उर्फ़ रोनाल्ड निकसन। और एक हैं 'आनन्दप्रिय' उर्फ़ मेजर अलेकज़ेण्डर। 'उत्तर वृन्दावन' में उन के संग और भी बहुत से लोग हैं। उन्हें आनन्द मिला है, ब्रह्मपुरा गढ़वाल में और कूर्मांचल अलमोड़ा में। हो सकता है, इन दोनों अंचलों के गांगेय होने के कारण ही यह सम्भव हुआ। इन दोनों अंचलों में आ जाने पर चिन्ता और विचार का मार्ग सहज ही में अध्यात्म गतिलाभ करता है। सभ्यता से दूर, सभी तरह के जन कोलाहल के बाहर यथार्थ प्रयोजन से त्रस्त जो जीवन अपने सौर विश्वरचना की एक स्वच्छन्दता प्राप्त करता है, गढ़वाल और अलमोड़ा के पहाड़ों में और गिरिनदी के तटों पर उस का पता चलता है।

•

कुमायूँ के दो सीमानों पर दो प्रमुख नदियाँ हैं। पश्चिम में शतद्रू, पूरब में काली गंगा। दोनों में दो सौ मीलों का व्यवधान है। इस दो सौ मीलव्यापी समग्र उत्तरलोक में कमोबेश पन्द्रह से बीस हजार फ़ुट ऊँचे पर्वत के घेरे से घिरा है। इस घेरे के उस

पार है पश्चिम तिब्बत। पश्चिम तिब्बत का एक बड़ा हिस्सा एक सौ पन्द्रह वर्ष पूर्व भारतीय कशमीर के अन्तर्गत हुआ था, वह है लद्दाख पर्वतमाला और उस के अगल-बग़ल के इलाक़े। वहाँ से दक्षिण में उत्तर शतद्रू पार कर फिर भारत-तिब्बत सीमाना सीधा दक्षिण में चला आया है। यहाँ तिब्बत प्रवेश के समय सब से पहला जो गिरि-संकट मिलता है उस का नाम है 'शिपकी'। शिपकी बुशाहर राज्य का शेष सीमाना है। शिपकी के बाद से बहुत लम्बे दो सौ मील अतिदुर्गम पर्वतमाला का देश है। मगर मनुष्य के अध्यवसाय ने इस दु:साध्य और भयानक प्राय: जनहीन गिरिश्रृंग दलों के भीतर-भीतर और भी बहुत सारी गिरि-कन्दराओं का अन्वेषण किया है। वे हैं, ठेंगा, माना, नीती, शल् शल्, आन्तधूरा, दरमा, लामपीया—और अन्तम लिपूलेक। लिपूलेक के बग़ल में ही है कालीगंगा का उत्पत्ति स्थल। भारत का सीमाना एक तरह से यही खत्म हो जाता है अर्थात् कालीगंगा के पूर्व पार हुआ नैपाल मगर कालीगंगा की धारा भारत सीमाना के ही अन्तर्भुक्त है।

लिपूलेक से टनकपुर—उत्तर से दक्षिण—कमोबेश प्राय: दो सौ मील व्यापी पैदल पथ। यह दो सौ मील लम्बी है कालीगंगा की धारा। आज-कल टनकपुर से पिथौरागढ़ तक मोटर पथ है और पिथौरागढ़ से आशकोट तक मोटर पथ निर्माण का कार्य तेज़ी से हो रहा है। मात्र आशकोट ही नहीं, यह पथ गौरीगंगा पार कर धर-चूला छोड़ कर के निकल जायेगा और आगे। यदि पथ पूरा बन गया तब तो कैलास—मानस के तीर्थयात्रियों के लिए बहुत कुछ सुविधा हो जायेगी। क्योंकि अलमोड़ा से 'आशकोट' अवधि सत्तर मील पैदल पथ छोड़ देने पर दक्षिण के टनकपुर से आशकोट तक १३० मील पथ वे मोटर से पार कर सकेंगे। हो सकता है शीघ्र ही अलमोड़ा शहर को पीछे छोड़ कर आशकोट कैलास-मानस यात्रा का प्रधान केन्द्र बन जाये।

कैलास और मानस सरोवर तीर्थयात्रा प्रसंग में यह कहना ही यथेष्ट है कि अलमोड़ा से यह जुड़ा है। भारतवर्ष के जिस किसी हिस्से से ही कैलास जाया जा सकता है—यहाँ तक कि कशमीर, पंजाब, गढ़वाल, सिक्किम, दार्जिलिंग और असम से भी जाया जा सकता है। इन सभी अंचलों से कैलास और तिब्बत जाने के लिए कैरावान पथ आज भी चालू है। यात्रियों के लिए यह पथ सदा ही खुला है। मगर वह अतिमानविक कष्ट स्वीकारने का धैर्य और असीम अध्यवसाय घर-गत प्राण बंगालियों में बहुत कम है। अगर कोई कशमीर से मानस जाना चाहे तो उसे छह सौ मील से भी अधिक पार करना पड़ेगा। वह पथ है श्रीनगर से 'ले' (लद्दाख), और वहाँ से दक्षिण में 'तासिगंग', गारटक, तीर्थापुरी और कैलास। पंजाब से जाने पर शिमला, नारकन्दा, चीनी, शिप्की और गारटक का मार्ग है। इन दुस्तर अंचलों के भीतर से कारवाँ के साथ-साथ अभियान करने पर कोई रुकावट नहीं आती।

नीती गिरिसंकट है गढ़वाल के उत्तर में। 'होति-नीती', 'गुन्ला-नीती' और 'दायजान नीती'। जोशीमठ की ओर से चलने पर इन तीन मार्गों से तिब्बत में प्रवेश

हो सकता है और इन में से प्रत्येक एक-एक के दो-दो सौ मील चलने पर कैलास-मानस पहुँच गये। आहार, आश्रय और घोड़ा—यह तीनों बराबर मिलते नहीं, फिर भी बहुत से लोग जाते हैं। हिमालय का खिचाव कोई बाधा-विघ्न नहीं मानता। जो सुनता है, वह देहरी में नहीं रहता। जो एक बार जाता है, वह वहाँ के उस दुःख में, दुर्गम में, दुर्योग में पहुँच आनन्द पाता है—घर में उसे सुख नहीं मिलता। वही फटे चीथड़े में लिपटे ग़रीब घरों में लकड़ी के कुन्दे की लपट के आगे बैठ कर खुश होता है। कितना कठोर मन पिघल चुका है हिमालय की चट्टानों पर सिर नवा-नवा कर—कितने तो, डाकू आ कर, महामुनी बाल्मीकि बन गये हैं—किसी को इस का पता तक नहीं।

कैलास मानस कठिन साध्य है--मगर सब से अधिक सुविधाजनक पथ है अलमोड़ा। अलमोड़ा के नीचे-नीचे चला गया है दो-एक मार्ग—कोई सरयू और कोई गोमती के किनारे-किनारे—मगर एक विशेष अंचल में उन्हें पहुँच कर मिलना पड़ा है। प्रमुख और सुविधाजनक मार्ग है अलमोड़ा से थाल, आशकोर्ट, जबलजीवी, धरचूला, खेला, मालपा, गरविभांग, लिपूलेक और ताकला कोट। मगर बीच से एक उप-मार्ग 'खेला' इलाक़े से धवलीगंगा के किनारे-किनारे चला गया है 'पंचोली' उर्फ़ 'पंचचूली' के उत्तुंग शिखर-लोक के पूर्व किनारे से सट कर सीधा उत्तर में दरयागिरि संकट पार करते हुए। इस पथ में मिलता है पश्चिम तिब्बत का एक प्रमुख व्यापारी शहर। नाम है, 'गियानोया मण्डी'। यहाँ से कैलास की दूरी सम्भवतः सत्तर मील की है और मानस सरोवर की दूरी बहुत सम्भव है पचास मील से अधिक नहीं है। मगर यह पथ व्यापार के लिए सुविधाजनक है—तीर्थयात्रियों के लिए दूरी अधिक हो जाती है।

अलमोड़ा से बीस मील दूर पर सरजू नदी पार कर के चला गया है 'थाल' का मार्ग। बीच में पार करना पड़ता है 'भेरीनाग'—'भेरीनाग' से हिमालय की कई तुषारचूड़ाओं का दर्शन कर के मन मुग्ध हो उठता है। नन्दादेवी, नन्दकोट, त्रिशूल और पंचचूली की शोभा यहाँ हिमालय के चिर रहस्य को बात-बात में प्रकट करती है। इस के बाद है आशकोट, जौलजीवी और धरचूला का मार्ग। नदी, झरना उपत्यका, अरण्य, मन्दिर और भिन्न-भिन्न देवस्थान—सब कुछ मिल कर एक तरह से मोहाच्छन्न कर डालते हैं। तुम स्वयं जा नहीं रहे हो, कुछ शक्ति तुम में नहीं है—किन्तु एक अदृश्य शक्ति तुम्हें धकेल रही है पीछे से, और कोई दूसरी शक्ति खींच रही है तुम्हें सामने से—झकझोर-झकझोर कर। चोटें लग रही हैं मगर खुद तुम भागो नहीं हो। दुर्गम पार करते जा रहे हो, मगर अपनी शक्ति से नहीं। मौत को लहका देता है कोई, मुँह से रक्त और फेन बहने लगा है, तब बदन शिथिल होता आता है। दुःसह दुःख, भय, बाधा—ये पथ रोक कर खड़े होते हैं, दुश्चिन्ताओं से भर आया है तुम्हारा हर क़दम। पहाड़ी साँप दौड़ लगाता है तुम्हारे पैरों के आस-पास, घोड़ा या झब्बू तुम्हें उलट देते हैं जरा सी तुम्हारी असावधानी से, कहीं-कहीं भोजन और आश्रय

झपट लिया जा रहा है। विराट् खड्ड की मौत जैसी गहराई में तुम्हें पिशाचनी की कराल दृष्टि तुम्हारे नाश के लिए तुम्हें पुकारती है—मगर फिर भी तुम सब कुछ को अस्वीकारते हुए बढ़ते जा रहे हो। तुम नहीं कोई और। जो व्यक्ति गरवियांग काला पानी की तरफ़ बढ़ रहा है, जो व्यक्ति गौरगंगा और कालीगंगा के किनारे से गुज़र रहा है—वह तुम नहीं हो, तुम्हारी आत्मा से ही निकला कोई और है—उसे तुम पहचान नहीं पाओगे। वह कष्ट की आग में तप कर अब खरा उतरा है, उस ने प्रकट की है अपने दुःख-विदीर्ण जीवन की एकाग्रता, प्रमाणित कर दी है अपनी प्रबल आत्मीयता।

कैलास और मानसरोवर की यात्रा ही हैं तीर्थयात्राओं को सार्थकता !

'चिताई' रोड पकड़ कर लौट रहा था। 'नारायण तिवारी देवल' पार कर, गणेश मन्दिर पीछे छोड़ता चला हूँ। भरे शुक्ल पक्ष में मोह-रहस्य फूट पड़ा है पहाड़ों और पूर्व उपत्यकाओं में। दाहिनी ओर है एक-एक सरकारी केन्द्र। और ज़रा बढ़ते ही है सरकारी जेल। जेल के भीतर के क़ैदियों की जिन्दगी जानने का कोई उपाय नहीं है, यह ठीक है परन्तु ऐसे एकान्तिक इलाक़े में और स्वास्थप्रद परिवेश में जेलखाना देख कर क़ैदियों के प्रति ज़रा ईर्ष्या होती क्यों नहीं है। दार्जिलिंग को याद आती है। लुइस जुबली के बरामदे में खड़े होने से नीचे है जेल; चम्पावती के उस मैदान के किनारे खड़े होने से इरावती की गोद में है वह जेल। प्राकृतिक परिवेश और खास कर हिमालय के पहाड़ी इलाक़े के कई जेलखाने देख कर मन प्रसन्न हो उठा।

मार्ग सूना है चाँदनी से आलोकित। कुछ परिश्रम-साध्य भी था। चलते-चलते पहाड़ का चुनाव पार कर बाग़-बग़ीचे घूम कर शशांक के साथ लौट रहा था। इसी समय दूर से दो व्यक्तियों को आता देखा गया, एक आदमी बातें कर रहा है खूब और एक बड़े धैर्य से उसे सुन रहा है। क़रीब आ कर बग़ल से जाते हुए बातूनी व्यक्ति सहसा रुक गया, और हम लोगों की तरफ़ मुड़ कर बिना किसी लाव-लगाव के साफ़ सुथरी बंगला में पूछ बैठा, आप ज़रूर बंगाली हैं ?

ज़रा आश्चर्य हुआ। भले मानुष खूबसूरत और स्वस्थ थे। उन की पोशाक घुड़सवारों की थी। पहने थे ब्रीजेस। पैरों में बूट और हाथ में एक छड़ी। पलटन का आदमी समझे था। उन के पूछने पर कहा, जी हाँ—

उन्होंने कहा, मैं हूँ बलदेव जोशी। बहुत दिनों तक बंगाल में था। भारत में सब से अधिक प्रिय मुझे है बंगाल।

पूछा, आप क्या पाट का कारबार करते हैं ?

हँसते हुए उन्होंने उत्तर दिया, क़त्तई नहीं।

बड़ी विनम्रता से व्यक्त किया, जो लोग पाट, कपड़े, वनस्पति या सरसों के तेल का व्यापार करते हैं बंगाल उसे प्रिय होता ही है।

यह धारणा आप की ग़लत है—जोशी ठठा कर हँस पड़े, वे ही सब से अधिक हीन बनाते हैं बंगाल को। वे बंगाल को बेवक़ूफ़ बना कर लाखों-लाखों रुपये लूटते हैं। देखिए, इस पर तो बहुत बातें उठ सकती हैं, मैं उठाना नहीं चाहता। मगर मेरे निकट बंगाली नमस्य हैं। बंगाली के चरणों में बैठ कर मैं ने एक दिन पॉलिटिक्स की शिक्षा ली है। नेताजी सुभाषचन्द्र मेरे परम गुरु हैं। गान्धी जी के बाद वे ही इस शताब्दी के श्रेष्ठ पुरुष हैं।

भलेमानस अपने राजनीतिक जीवन की कहानी ले बैठे। एक समय वे थे सुभाषचन्द्र के दाहिने हाथ। यह समय था १९२८ का—बंगाल वाल्टियर के जन्म का समय। विशाल जलूस के साथ सुभाषचन्द्र अपना निवेदन ले कर काँग्रेस मण्डप में जा रहे हैं, सुभाषचन्द्र को समर्थन मिला है जवाहरलाल का, काँग्रेस के सभापति निर्वाचित हुए हैं जवाहरलाल के पिता पण्डित मोतीलाल नेहरू। सुभाषचन्द्र थे जलूस के 'जेनरल आफ़िसर कमांडिंग-इन-चीफ़।' घोड़े पर सवार सुभाष, सैनिक वेश में सुभाष—और उस वेश की सम्मान-रक्षा उन्होंने की बाद को आज़ाद हिन्द फौज़ के सर्वाधिनायक हो कर। खैर, मैं उसी बंगाल वाल्टियर का प्रधान अफ़सर था!—मिस्टर जोशी बड़े गौरव से सब बताते रहे।

एक घण्टे तक उन्होंने हम में से किसी को कुछ कहने ही नहीं दिया। चाँदनी में उन की उम्र का अन्दाज़ लगाया नहीं जा सका। सर पर थी फ़ौजी टोपी।—मगर उन के स्वस्थ प्रसन्न रूप के पीछे एक विशेष विक्रमी योद्धा जो आज भी बैठा है, इस में ज़रा भी सन्देह नहीं। आज हम लोगों के दिन भर का परिभ्रमण सार्थक हुआ—शशांक ने इसे मंज़ूर किया।

इसी बीच और तीन दिनों में हम लोगों का परिचय एक और सज्जन से हुआ, उन का नाम है नीलाम्बर पन्त। वे एक ज़माने में कलकत्ते थे, मामूली कारबार भी था। मगर आश्चर्य की बात यह है कि बंगाल के गाँवों के दुःख-दुर्दशा से वे परिचित हैं। १९४३ में बंगाल के भयानक अकाल के समय, उन्होंने अपने खर्च से शहर में एक भोजन-वितरण का केन्द्र खोला था। अब वे रहते हैं यहाँ, पहाड़ की चोटी पर। वहाँ उन्होंने कई गायें पाल रखी हैं और दूध के अतिरिक्त कुछ खाते नहीं। स्वाद बदलने की खातिर ज़रामना छेना और थोड़ी बहुत मलाई खा लेते हैं। वे अविवाहित हैं। उम्र उन की सत्तर के क़रीब है। जाति के ब्राह्मण हैं। वे हर रोज़ आते शहर घूमने। यहाँ के 'ग्रामोद्योग संघ' के वे एक सदस्य हैं। वे बड़े ही अकपट प्रकृति के व्यक्ति हैं और हंसमुख। यहाँ हमें कोई असुविधा हो तो उन के कभी भी अतिथि हो सकते हैं, यह उन्होंने बार-बार कहा है। तीर्थ और मन्दिरों की चर्चा उन्हें खूब भाती है। वे मरने के पहले यहाँ के रामकृष्ण मिशन को अपना जो कुछ भी है सब दे देना चाहते हैं—यह हम लोगों से उन्होंने कहा है। वे बंगला बोल सकते हैं।

दूर से ही उन्हें देख कर हम लोगों ने नमस्कार कर के कहा, बड़ो क़िस्मत से फिर दर्शन हुए !

पन्त जी ने कहा, होना ही होगा। पूरे अलमोड़ा में मिलेगा दो सम्प्रदाय— राह-घाट हर कहीं। एक जोशी, दूसरा है पन्त। पन्त और जोशी सुनते ही समझ लें ये हैं अलमोड़ा के। ये हैं पहाड़ो।

हम ने कहा, एक जोशी से भो हमारी बहुत घनिष्टता हुई है।

उन्होंने कहा, बलदेव जोशी की बात आप कह रहे हैं न ?—कहने लगे वे, मेरी क्या बिसात जो दूसरों की निन्दा करने के पहले अपने ही जीवन में ही तो खामियाँ नज़र आती हैं। सिर्फ़ यही कहना है कि बलदेव की नज़र आप के ऊपर है, उस के अपने ही स्वार्थ से। आदमी का ऊपरी चिकचाक्य देख कर प्रभावित न हों।

उन की सांकेतिक भाषा से हम विस्मित हुए। उस दिन विदा होने के पहले पन्त जी कह गये, लौटने के लिए अगर आप लोगों को रुपयों की ज़रूरत हो—लगता है जो होगी ही—तो हमें कहिएगा। यहाँ आये हैं घूमने, जुआ के फ़न्दे में मत फँसियेगा।

पन्त जी चले गये। उन के प्रति हमारी श्रद्धा द्विगुणित हो गयी। मगर उस के बाद हम कई दिनों अलमोड़ा रहे, बलदेव जोशी को फिर नहीं देखा।

बातों ही बात में एक विशिष्ट बंगाली की चर्चा उठती थी। यहाँ का एक पहाड़ उन का अपना ही है। जहाँ उन का बहुत बड़ा खेत-खलिहान और प्रयोगशाला है। बहुत से विद्यार्थी और शिक्षक वहाँ मुस्तैद रहते हैं। वहाँ हैं तरह-तरह के यन्त्र, कल-पुर्जे हैं और उस के लिए बड़ा सा कार्यालय है। फूल-फल, फ़सल आदि में वह पहाड़ हरा-भरा है। उस पहाड़ पर बगान जितना बड़ा है अट्टालिका भी उसी के अनुरूप है। महानुभाव का नाम है बशीश्वर सेन।

हिम्मत कर के एक दिन सवेरे-सवेरे उस पहाड़ का फाटक पार कर शशांक के पीछे-पीछे गया। कुत्ते का डर, दरबान का डर और इस से भी अधिक भय था उन से जिन से अब तक परिचय भी नहीं था। क्रमशः दीखा सड़क साफ़ है। कुत्ते और दरबान नज़र नहीं आ रहे थे। कोट-पैंट पहने हुए एक माली फूलों के बग़ीचे में काम कर रहा था। हँसते हुए आगे बढ़ आये तो नौजवान। दो-एक कर्मचारी बड़े खुश। हमारी पहुँच को सूचना पहुँची अन्दर। मिनट भर में ही आ खड़ी हुई एक प्रौढ़ा मेम साहब। सस्नेह दृष्टि से हम लोगों की अभ्यर्थना करते हुए उन्होंने बग़ीचे में हम लोगों के बैठने की खातिर दो कुरसियाँ बढ़ा दीं। उन का परिचय हमें बाद को मिला। यही हैं सुप्रसिद्ध अमेरिकी लेखिका 'श्रीमती गार्टरुड इमर्सन सेन'। उन की बहुत विख्यात पुस्तक 'Voiceless India' का नाम हम लोगों का जाना हुआ था। रवीन्द्रनाथ ने इस पुस्तक की क्या खूब भूमिका लिखी थी। मिसेज एक विशिष्ट अमेरिकन वैज्ञानिक की बहन थीं।

मिनट दो के बाद ही आये बशीश्वर सेन महोदय। श्यामवर्ण, लम्बे-चौड़े—

उम्र साठ से कम नहीं होगी। आते ही उन्होंने हम दोनों को छाती से लगा लिया।—क्या खबर है ? बड़े भाग्य हमारे ! बैठिए, बैठिए,—लम्बे दिनों के बाद नये लोगों को देख कर बड़ी खुशी हुई। आप लोगों को कोई तकलीफ़ तो नहीं हुई ? कहाँ ठहरे हैं ? यह सब काम की बातें नहीं हैं। मेरे यहाँ भोजन करना पड़ेगा। लोग हमें कहते हैं 'वोटनिस्ट', दरअसल हूँ मैं किसान। मगर देखो, भाग मत जाना भाई,—पहाड़ी लोगों के चक्कर में फँस गये हो। चुपचाप बैठ कर यहाँ चाय-बिस्कुट चलाओ, फिर मेरे घर का भात-भुजिया ! अगर कहो तो मालपुआ खिलाऊँ ! रात को मांस-पुलाव ! अरे ओ, चुप क्यों हो, कुछ बोलो भाई, थक गया हूँ जो ! हम भी थक गये हैं। याद हो आयी बहुत दिन पुरानी बातें। नौजवानी में एक बार इलाहाबाद कुम्भ मेले में जा रहा था। बम्बई मेल के तीसरे दर्जे में एक आदमी ने बुला कर भीड़ में जगह दी। बोले, बैठिए किसी तरह, एक रात की तो बात है।

वर्द्धमान पहुँचने पर उस व्यक्ति ने कहा, आओ भाई खाना खा लें।

दूसरे दिन सवेरे को मुग़लसराय पहुँचे तो उस ने कहा, क़सम से अपने पैसे से तुझे चाय पिलाऊँगा ! एक भी नहीं सुनूँगा।

इस के बाद इलाहाबाद पहुँच कर ऐसी दो-एक अपनापे की बातें शुरू की कि हम तो सब कुछ भूल बैठे। ऐसा व्यक्ति ग्रह-नक्षत्र से ही मिलता है।

वशीश्वर सेन महोदय कब तो चुपके से हमारे अजीज 'वशीदा' बन बैठे, यह हमें आभास भी नहीं चला। उन का यह 'आप' से 'तुम' और 'तुम' से 'तू' में आने में ठीक कई मिनट लगे, अभी यह याद नहीं आ रहा है।

सब काम-काज छोड़ कर पति-पत्नी बातों में मशग़ूल हो गये। एक समय रवीन्द्रनाथ की चर्चा उठी। वशीदा के बहुत दिनों अनुरोध करने पर महाकवि पहली बार अलमोड़ा पधारे थे—अपनी मृत्यु के चार-एक बरस पहले। महाकवि ने एक वक़्त क्रोधित हो कर वशीदा से बातें तक नहीं की। जब किया तब यह कहा कि तुम से क्या मेरी कोई दुश्मनी थी, वशी ?

कवि का गम्भीर चेहरा देख कर वशीदा डर के मारे सिकुड़ गये थे। हम लोगों ने पूछा – इस के बाद ?

सुनो भाई क्या ग़ज़ब !—वशीदा ने शुरू किया, कवि का ग़ुस्सा देख कर भय-चिन्ता का कूल नहीं पाया, क्या ग़लत हुआ रे भाई ! मगर इस के बाद हमारा भौंचक चेहरा देख कर कवि ने कहा—अब समझ में आ रहा है परदेश में ला कर हमें जब्त करना ही तुम्हारी मनसा थी।

खाओ धक्के ! धक्के का नाम है बाबा जी ! रोऊँ, या पैर पड़ूँ या बकझयाँ खाऊँ – ठीक कुछ समझ में नहीं आ रहा था। मगर कवि बड़े रसिक थे जो मेरा लुरू-लुरू चेहरा देख कर उन्हें बड़ा मजा मिल रहा था। अब बोले, पहाड़ को ठेल कर हमें लाये मगर पहाड़ के 'वेण्डों' को काट कर समान कर के काट नहीं रख सके !

त—ब बात समझ में आयी रे भाई, यहाँ के 'वेण्ड' सभी कितने भयानक हैं, यह तो देखते ही आये हो। ओफ़् बूढ़ा आदमी नर्म के ऊपर खूब स्ट्रेन पड़ा था। मैं तो आज भी डर से सूख कर काठ हो उठता हूँ! तुम लोगों को भी डर लग रहा था न? कहिए मत!

कवि-कथा सुनते-सुनते मिसेज सेन अब तक खूब हँस रही थीं। अब वे बहुत सहेज कर एक आरामदेह बेंत का चीयर निकाल लायीं। बोलीं, यह चीयर ही हमारे यहाँ महाकवि का आसन था।

हम लोगों ने इस के बाद घूम-घूम कर देखा, वशीदा का वैज्ञानिक सब्जी का खेत। एक प्याज वज़न में पाँच पाव का, एक भण्टा अढ़ाई सेर का! इसी अनुपात में और दूसरे सब्जी। हम तो देख-सुन कर अवाक्। यह है प्रयोगलब्ध उद्भिज्-विज्ञान सम्मत 'कुस-ब्रिडिंग'। वशीदा थे आचार्य जगदीशचन्द्र वसु के प्रिय छात्र। गुरु के प्रति उन की कृतज्ञता का अन्त नहीं। उन्होंने रवीन्द्रनाथ और जगदीशचन्द्र के शतायु होने की कामना की थी। प्रसंगक्रम में कहा जा सकता है, भारतीय उद्भिज्-विज्ञान में वशीदा ने ही प्रथम 'फ़सल बीज सत्त्व' में अनुवीक्षणिक क्रिया-प्रक्रिया (micro-manipulation) की शुरूआत की।

कवि को घर में ला कर हम ने कहा था—वशीदा ने फिर कहना शुरू किया—देखिए, हम ने लिखाई-पढ़ाई उतनी नहीं की, आप की वह कविता-वविता मेरे भेजे में समाती नहीं! मगर कम से कम एक सौ बरस आप को जिन्दा रहना होगा, इस में कोई सुनवाई नहीं! कवि ने कहा, तेरा यह अकारण दावा क्यों है रे, वशी?—कहा, देव सामने हैं तभी न काम-काज करने की प्रेरणा पाता हूँ! आँखों के आगे से हटते ही तो सब अँधेरा ही अँधेरा!—अहा, क्या रूप था, क्या आँखें थीं, कितने विराट् पुरुष थे! चारों तरफ़ चुहियों की भीड़ उस के बीच आ खड़े हुए वनराज सिंह! सच है या कि नहीं भाई?

वशीदा के विमुग्ध हृदय और दृष्टि की ओर हम भी मुग्धदृष्टि से घूर रहे थे।

हम मुसकराते हुए विदाई ले रहे थे। उन्होंने पुनः कहा, और एक पागल आया है आज ढलती दोपहर को। लड़के ने शादी-वादी नहीं की, मगर है हीरा! वही अपने उमाप्रसाद रे! हिमालय का कीड़ा! उस लड़के को देख कर मेरी छाती फूल उठती है।

यह कहते-कहते वशीदा चले गये। हम भी उस समय के लिए विदा हुए।

*

* *

खुद को धिक्कारा सैकड़ों बार। उस दिन क्यों तो इतना अन्यमनस्क रहे, आखिर क्यों उत्तर-पश्चिम पहाड़ का एक मार्ग हमें आकर्षित कर ले गया,—उधर, जहाँ कभी नर्तक श्रेष्ठ उदयशंकर ने अपना नृत्य-शिक्षालय स्थापित किया था उस पठार

पर—उस दिन वशीदा के सान्ध्यभोज में हमारा नहीं जाना कितने खेद का विषय रहा।

इस के लिए हमारे लिए दण्ड निर्धारित था, यही क्यों न कह डालूँ—उस दिन हम वहाँ से लौट कर होटल में आराम कर रहे थे कि इसी समय दरवाज़े पर दस्तकें पड़ी। दरवाज़ा खोलते ही सदा खुश उमाप्रसाद मुखोपाध्याय हँस पड़े। इस हिमालय प्रेमी के प्रति हम हमेशा श्रद्धा विनत रहे हैं, शायद यह वे नहीं जानते। मध्य हिमालय एक विशेष भू-भाग में उन का प्रायः आने-जाने को चर्चा अपने भ्रमण काल में हम बराबर सुनते रहे हैं। कैलास भ्रमण की कहानियाँ उन के मुखश्री से सुन कर बहुत से लोग आनन्दित होते हैं।

डपट कर उन्होंने कहा, फ़ौरन आइए बाहर, आप का सम्मन आया है। भोजन के निमन्त्रण से फाँकी दे कर भागे, यह क्या किया आप ने ? आदमी पहचानते नहीं आप लोग ?

बाहर निकल कर देखा मोटर से उतर कर प्रसन्नमुख खड़ी हैं मिसेज़ गार्डरूड सेन। चेहरे पर प्रसन्नता है। इस से क्या, अन्दर से धधकी हुई हैं। काँपते हुए दोनों सामने जा खड़े हुए। बहुत बक-झक के बाद महोदया ने एक समय कहा,—मैं तो बक-बक करती रही, मगर तुम लोगों के चेहरे पर तो ज़रा भी खेद नहीं ? ठीक है, तो एक काम करो, मेरे सिंगाड़े और मालपुआ के पैसे चुका दो, राजी-खुशी चली जाऊँ।

उमाप्रसाद खूब हँसे। बोले, आप ने मालपुआ बनाया, यह तो ठीक है, मगर उस का प्रमाण इन के पास नहीं है। इस लिए एक बार और खिला कर यह प्रमाणित कीजिए ?

मिसेज़ सेन हँसते हुए जाने क्या तो कहा, यह ठीक स्मरण नहीं है मगर उमाप्रसाद की ओर देख कर वे सम्भवतः यही कह उठी थीं, "Oh, you birds of the same feather !"

इस के बाद उसी दिन शाम को वहाँ हम पहुँचे थे। दरवाज़े के भीतर क़दम रखते ही वशीदा से भेंट हो गयी। उमाप्रसाद को लक्ष्य कर उन्होंने कहा, पकड़ कर ला रहे हो क्यों ! दोनों छोकरे के कान पकड़ तुर्की नाच नचाओ तो ? सिंगाड़ा-मालपुआ छोड़ कर पहाड़ों पर चक्कर काटते फिर रहे थे, बच्चू ?

उन के तिरस्कार से हम लोग हँसी में लोट-पोट। वशीदा ने कहा, लो यहाँ बैठो, गप्पें करो। मैं झट से 'गोपाल का बेगार' निबटा आऊँ।

गोपाल का बेगार !—शशांक ने पूछा, यह क्या है वशीदा ?

तो सुन,—वशीदा ठहर गये—हम ठहरे भाई बाँकुड़ा ज़िले के लोग, गोपाल नामक हमारे देश में एक राजा था। उन्होंने कहा हमारे राज्य में सभी 'वोष्टम' रहें, हरिभजन के सिवा कुछ नहीं चल सकता। फिर राजा और उन के जासूस निकलते—सभी हरिभजन कर रहे हैं या नहीं, मगर क्या धर-पकड़ कर कहीं प्रेम होता है। इस लिए जासूसों की गतिविधियों का पता पा कर सभी आँखें मूँद कर माला जपने लगते।

और जो कामकाजी थे वे काम छोड़ कर घर की तरफ़ दौड़ पड़ते, कहते चलूँ, गोपाल का बेगार चुका आऊँ।

वह धूमिल सन्ध्या की याद ताजी है। शचीन महाराज, पूर्णमहाराज, प्रमुख दो और साधु आये। एक कमरे से दूसरे कमरे में हम आ बैठे। वह कमरा प्रायः चारों तरफ़ से बन्द था—ठण्ड पड़ने लगी थी, बाहर-भीतर से मीठे उत्ताप की व्यवस्था। फ़र्स पर चटाई और कारपेट बिछा है, पाश्चात्य रुचि से सजा हुआ। बग़ल का कमरा पति-पत्नी का पूजा-पाठ गृह है, वे परमहंस श्री रामकृष्ण के पुजारी हैं। वहीं वशीदा गोपाल का बेगार चुकाते हैं। कुरसियों पर सभी गोल बना कर बैठे। चार व्यक्ति गेरुआ वसनधारी विद्वान् हैं वैदिक संन्यासी और इधर बैठे हैं वशीदा, उमाप्रसाद, मिसेज सेन और शशांक। रह-रह कर गरमागरम भोजन आ रहा है। कमरे में बत्तियाँ जल रही हैं, बाहर चाँदनी घनी हो उठी है। अनुभव हुआ पहाड़ों-पहाड़ में अलमोड़ा खामोश हो गया है और बहुत दूर पर क्षितिज में त्रिशूली और नन्दादेवी की तुषार-चूड़ाओं के आसन पर स्थित अनन्त सौर विश्व के महामन्दिरों में आरती-घण्टा भी सम्भवतः शेष हो चुका है। उधर से आँखें लौट आयीं संन्यासियों की तरफ़।

उमाप्रसाद अपने आखिरी बार के हिमालय भ्रमण के अनुभव की चर्चा शेष कर रहे थे। मिसेज सेन ने तर्क पेश किया, कारण के बिना किसी कहानी की वास्तविकता स्वीकार नहीं करूँगी। तुम्हारे विचार में, कथन में, साँस-प्रश्वास में, कष्ट और वर्णन में अलौकिकता के प्रति आग्रह को प्रश्रय नहीं दिया जा सकता।

मिसेज सेन का वैज्ञानिक मन उमाप्रसाद की कहानी-वर्णनता में रह-रह कर बाल का खाल निकालने लगता।—

'उत्तरकाशी का वह कृष्णाश्रम वाला साधु महाराज। उम्र एक सौ वर्ष से भी अधिक। शरीर का रंग ताम्रवर्ण, मगर प्रभामण्डित। निश्चल, योगासीन—दृष्टि अपलक। सन्देह होता कि वे पत्थर के मूरत हैं। एकदम नंगे। उन के साथ रहते हैं एक ब्रह्मचारी। चेहरा रुग्न, मगर सुन्दर। उम्र बाइस या बयालिस, पता नहीं लगता। मगर यह पता चला कि वह स्त्री हैं—दो बार पति-परित्यक्ता। मौनी साधु को छोड़ कर घर गृहस्थी में कभी उन का मन नहीं जमा। उस साधु ने संस्कृत सिखाया है—पत्थरों पर जल से लिख-लिख कर। साधु टक-टकी लगाये रहते हैं गंगा की तरफ़, वह स्त्री देख-भाल करती है।'

मिसेज सेन ने प्रश्न किया, यह अन्धा मोह है?

उमाप्रसाद ने उत्तर दिया, पता नहीं। घटना इतनी ही है।

चुप थे हम सभी। दूसरी कहानी है बद्रिकाश्रम की। उमाप्रसाद ने कहा, मेरे एक मित्र पकड़ कर ले गये तप्तकुण्ड की ओर। यहाँ एक संन्यासी हैं, उन्हें जब तक कोई खिलाता नहीं वे कुछ खाते नहीं। तप्तकुण्ड के बीच एक छोटे से कुटिया में रहते हैं। मैं जा कर खड़ा हुआ। देखा, उम्र में जवान, बिलकुल नंगे एक साधु उम्र

लगभग तीस-पैंतीस के बीच। परमहंस रामकृष्ण के चेहरे से बहुत कुछ मिलते-जुलते। ज़रा सी दाढ़ी है। हिन्दी और अँगरेज़ी में बातें करते हैं, मगर मेरा खयाल है कि वे बंगाली हैं। उन की वह नग्नकान्ति यौवनश्री देख कर कोई भी चौंक जायेगा। आज़मा कर देखा वे विद्वान् और सुशिक्षित हैं। अँगरेज़ी खूब बोलते हैं।

बलात् मिसेज़ सेन पूछ बैठीं, नंगे क्यों थे? कपड़ा नहीं मिलता? या कि effect लेने की चेष्टा है यह?

उमाप्रसाद ने कहा, नहीं जानता। देखा उस के आश्रम के दरारों में तरह-तरह के काग़ज़ात भरे हैं, पत्र तथा लिखने-पढ़ने का सरंजाम है। उन से भाँति-भाँति के प्रश्न किये। वे विलायत की ताज़ा खबरें रखते हैं, उन्हें पता है विगत दो वर्षों में कौन कलकत्ता हाईकोर्ट जज हुए हैं। अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति में इस के बाद क्या घट चुका है और घटने वाला है, उन की भविष्यवाणियाँ सही उतरीं हैं। यह मैं देख चुका हूँ। उन के काग़ज़ातों में देखा, दिल्ली के ऊँचे से ऊँचे शासकीय व्यक्ति और बड़े-बड़े कांग्रेसी नेताओं के खत-ओ-खतूत हैं। चीन-जापान, योरप—इन सभी जगहों से उन का खत-ओ-खिताबत है। आत्मीयतापूर्ण परिचय हुआ।

मिसेज़ गार्टरुड ने सिर उठाया।—हिमालय का कोई जासूस होगा? Trans-Himalayan guard? मगर कपड़े क्यों नहीं पहनते? खाते किस लिए नहीं हैं? झोला-बक्सा कुछ है, या नहीं? कुछ पूँजी-पत्तर?

कुछ भी नहीं! बिलकुल खाली। उमाप्रसाद ने कहा, जानना बहुत कुछ चाहा उस दिन, कुछ पता पा नहीं सका।

जाड़े में नीचे उतर आते हैं?

यह मालूम नहीं। मगर जाड़े में तुषारपात में भी वह सरकारी क़ानून का उल्लंघन कर के भी वहाँ पड़ा रहना चाहता है।—बस, उस दिन यहीं तक हम जान पाये।

बत्ती जल रही थी आकुल प्रश्न सभी के चेहरों पर प्रस्फुटित हुआ है। वे प्रश्न चाँदनी के संग-संग हिमालय के अनन्त अम्बर पर तारे-तारे में निरन्तर चक्कर काटते रहे।

[११]

दिल्ली मेल बहुत लेट है। सितम्बर में भी शरत् का आभास यों नहीं मिल रहा है। मेघ पड़ा है उत्तर प्रदेश में। कानपुर के बादल ने बुलाया, बरसा उतरी टुंडला में।

अलीगढ़ में खूब बरसा। गाजियाबाद में मूसलाधार। खयाल था एक-एक कप चाय और चलेगी—मगर वर्षा से जा छिपे हैं रेस्ट्राँ के 'ब्वॉय'—बरसा के तूफ़ान से भाड़ वाला चाय वाले भी भाग गये हैं। आखिर में शहादरा में गाड़ी खड़ी होने पर दीखा, बादल कुछ थमा है। बड़ा सुनसान है शहादरा। जमुना के इस किनारे पर बैठा जैसे वह करुण नेत्रों से 'लालकिला' की ओर टुकर-टुकर देखता रहता है।

धीरे-धीरे शहादरा से गाड़ी चल कर जमुना पार कर लालकिले के घेरे के ऊपर से दिल्ली मेल आ घुसा राजधानी के प्लेटफ़ार्म में। दिल्ली मेल की रईसी (अभिजात्य) कुछ और ढंग का है। बरखा थम गयी है। फिर वही दिल्ली।

दरवाज़े से टिक कर खड़ा रहा। सहसा प्लेटफ़ार्म पर से ऊँची आवाज़ में श्रीमती माया ने मुझे सम्बोधन कर पुकारा। गाड़ी के थमते ही दौड़े आये श्रीमती और उन के नौजवान पति! उन के साथ थे कई पंजाबी मित्र। मिस्टर गुप्त से यही मेरी पहली मुलाक़ात थी। कुछ कहने-सुनने का अवसर ही नहीं रहा, पल भर में ही मिस्टर गुप्त के आलिंगन में आबद्ध हुआ। स्पर्श मात्र से लगा जैसे हमारा परिचय बहुत पुराना और आत्मीय है। स्वस्थ, सुन्दर और श्यामवर्ण के युवक। ऐसा भद्र और सज्जन दुनिया में ढूंढ़े सहज में मिलते नहीं। चरण छूने को तत्पर हुए पति-पत्नी—हाथ पकड़ कर उठा लिया।

मिस्टर गुप्त हमें घसीटते हुए ले आये बाहर, मोटर में चढ़ाया।

श्रीमती माया विगत एक वर्ष में गयी थीं कलकत्ता और मेरे निवास में कृपा कर गयी थीं—भेंट-मुलाक़ात कई बार हुई है, और बहुत कुछ पारिवारिक आत्मीयता घनी हो चुकी थी। आज उन के पति केशव हुए नये।

दिल्ली स्टेशन से उन का निवास कुछ दूर है। आरावल्ली के घनत्व से सभी परिचित हैं और उस की शाखा-प्रशाखाएँ दिल्ली को बहुत सी जगहों में असमतल बना रखा है। हमारी गाड़ी इधर-उधर घूम कर आरावल्ली के पथरीले वन-जंगलों के भग्नावशेषों को पार कर 'राजेन्द्र नगर' और 'पटेल नगर' को पीछे छोड़ कर उस रात आ पहुँची 'पूषा इंस्टीट्यूट' के विशाल वन-बग़ान में। उस के सुदूर पूर्व किनारे में फाटक खुला मिला और वह फाटक पार कर एक अति निर्जन और अँधेरे अंचल में गाड़ी ने प्रवेश किया। यह है आरावल्ली की एक मनोरम उपत्यका, नाम है इन्द्रपुरी, स्टेशन से अन्दाज़न मील दसेक होगा। अँधेरी रात की वजह कहीं कुछ दीख नहीं पड़ा, बिजली यहाँ आज भी नहीं आयी है—उसी में से गुज़र कर एक छोटे से बग़ान-बाड़ी के फाटक पर गाड़ी आ रुकी। केशव हमें उतार कर ले गये, और अन्दर प्रवेश करने मात्र से ही अनुभव हुआ मेहमानदारी की पूरी व्यवस्था कर के वे हमें स्टेशन लेने गये थे।

पत्नी के हर प्रकार के काम-काज में और मेहमानबाज़ी के इन्तज़ाम में केशव का पूरा सहयोग देख कर मैं मुग्ध था। ऐसे आनन्दमय दाम्पत्य जीवन का उन्मुक्त और

सुखी रूप देखना बाक़ी ही रह गया था। पति-पत्नी के जीवन में इतनी श्रद्धा और सम्मान-बोध का सम्पर्क आधुनिक युग में जब कभी भी देखने को नहीं मिलता। मायादेवी का कथन हरुफ़-हरुफ़ सच था।

इस यात्रा भ्रमण की सूची कुछ लम्बी थी। हिमालय की चम्बा उपत्यका से लौट कर पश्चिम पाकिस्तान की सीमा तक जाऊँगा। वहाँ से सौराष्ट्र के पश्चिम किनारे पर और इस के बाद बम्बई और पंचवटी हो कर लौटूँगा। कुछ मिला-जुला कर साढ़े पाँच हज़ार मील का हिसाब लगा हुआ है। हाथ में है दो महीने का समय। चित्तौड़-उदयपुर जाने का प्रयत्न भी है, इस लिए मन में कुछ हड़बड़ी थी। आगामी कल हमें रवाना होना होगा।

दूसरे दिन सवेरे से दिल्ली के कई काम निबटाने में सारा दिन लग गया। 'इन्द्रपुरी' में लौटा अपराह्न में। केशव बेताबी से इन्तज़ार कर रहे थे। रात साढ़े आठ बजे कश्मीर मेल मुझे पकड़ना है, इस का पूरा इन्तज़ाम पति-पत्नी ने कर रखा है। मगर 'एक नाटकीय' परिस्थिति मेरी ताक़ में थी, और उस के लिए मैं बिलकुल तैयार नहीं था।

केशव बोले, आप ने कहा था कि पाँच मिनट में ही आप अपने भविष्य का कर्म स्थिर कर सकते हैं। यह क्या ठीक है?

हँस कर कहा, शायद पाँच मिनट भी नहीं लगता।

हम चाय पर बैठ गये थे। लगा पीछे श्रीमती माया खड़ी हो कर मुसकराती हुई पति को कुछ इशारा कर रही थीं। केशव ने कहा अगर कहें तो एक बात कहूँ।

अब हँसी नहीं रुकी—भूमिका कुछ लम्बी लग रही है।

आप को हम एक बार और ज़ब्त करना चाहते हैं। माया जायेगी आप के साथ।

सिर उठाया—मतलब? घर-गृहस्थी में जी नहीं लगता?

केशव बोले, आप की ख़ातिर ही उन का हिमालय घूमना सम्भव हुआ।

समझ में आया पहले से ही पति-पत्नी इस विषय में परामर्श कर चुके हैं और उसी के अनुसार तैयारी भी हो चुकी है। इस लिए सब कुछ को अच्छी तरह सोचने-विचारने के पहले ही पंजाबी मित्र ने पटेल नगर से एक टैक्सी लाये। और दो घण्टे में ही हम चारों दिल्ली स्टेशन की तरफ़ रवाना हुए। शायद इसे ही कहा जाता है बहाव में बह जाना। बिलकुल अनमनस्क भाव से दस मील तक गाड़ी में बैठा रहा। अन्त में टिकट कटा कर गाड़ी में दोनों को बैठा, गाड़ी छूटने के वक़्त ज़ोर-ज़बर्दस्ती चरण-स्पर्श कर केशव ख़ुशी-ख़ुशी विदा हुआ। तय रहा पूजा के ठीक पहले लौटूँगा।

वही अति-परिचित पठानकोट। सभी दृश्यों से जैसे परिचित चीज़ों का आभास मिल

रहा है। पुराने मित्र चारों ओर से जैसे दोनों का नेह-छोह पूछ रहे हैं—मजे में तो हो ? इसे लगा कर एक वर्ष में छह बार घूम लिया पठानकोट।

उसी परिचित होटल में आ घुसा। होटल के उस छोकरे ने पहचाना चेहरा देख कर हँस कर नमस्ते किया। उस अन्दर के डरावने कमरे में वही गन्दी टेबुल—जिस की बग़ल में ही है हाथ धोने का टब। वह छोकरा चाय और टोस्ट ले आया। टोस्ट में मक्खन ज़रूरत से ज्यादा लगा लाया है।

मायादेवी ने कहा, बड़े परेशान हुए न ? फिर बोलीं, सच भ्रमण का कष्ट लोग भूल जाते हैं, आनन्द ही ख़याल रखते हैं—बीच एक एक वर्ष खो गया।

कहा, इस दफ़ा आप के गुप्ता साहब ने मुझे चौंका दिया।

पति की मात्र चर्चा से मायादेवी ख़ुशी से भर उठीं। बोलीं, उन्होंने सोचा भी नहीं था कि आप तैयार हो जायेंगे। उन की ख़ुशी के क्या कहने। इस एक वर्ष तक उन ने मुझ से आप की चर्चा सुनी है। लेकिन मुझे डर था, कहीं आप ना न कह दें, इस से उन्हें बहुत चोट पहुँचती।

अब विरोध व्यक्त किया,—मगर औरत को अगर हिमालय का नशा चढ़ जाये तो उस की गृहस्थी कौन सँभाले भला ?

मायादेवी हँस पड़ीं। कई क्षण बाद बोलीं, भ्रमण में इतना आनन्द मिलता है, यह पहले नहीं जानती थी।

मोटर-बस पर जा चढ़ा। समय होगा लगभग आठ का। यहाँ से तीन मार्ग तीन तरफ़ को चला गया है। पहला जम्मू हो कर सीधा श्रीनगर, दूसरा धरमशाला, काँगड़ा और मण्डीराज्य की तरफ़, तीसरा चम्बा उपत्यका के मार्ग की तरफ़। कशमीर है उत्तर-पश्चिम में, चम्बा उत्तर-पूर्व में और काँगड़ा है पूरब-दक्षिण। 'चक्की' से हमारा पथ मुड़ा उत्तर में। हम धवलाधार गिरिश्रेणी की उपत्यका का अन्दर से अतिक्रम कर पीरपंजाल पर्वतमाला के दक्षिणी किनारे पर की उपत्यका में प्रवेश करेंगे। पंचनदी में हम दक्षिणावर्ती शतद्रू और विपाशा को बहुत दूर तक देखता आया हूँ, वितस्ता और चन्द्रभागा के उत्स-अंचल में प्रायः घूम चुका हूँ—अब की हम चल रहे हैं इरावती की राह पकड़ कर। गिरिश्रेणियों के भीतर ही भीतर इरावती नदी किधर से आयी है, इस का पता हमें नहीं है। मगर इतना जानता हूँ, कुलू उपत्यका में जन्मी है विपाशा, लाहुल उपत्यका में जन्म ग्रहण करती है चन्द्रभागा तथा चन्द्रा और चम्बा उपत्यका के किसी एक स्थल से निकली है इरावती।

'चक्की' की घाटी चौकी से हमारी मोटर-बस चल रही है 'भटोया' हो कर 'दून' गेट की तरफ़। यह बहुत कम ऊँची उपत्यका-पथ है। पहाड़ी मगर लगभग समतल। समुद्र सतह से यह इलाक़ा कमोबेश दो हजार फ़ुट ऊँचा है, मगर अन्दाज लगाना कठिन है। यहाँ पंजाब और हिमाचल प्रदेश दोनों मिला हुआ है। एक दूसरे के कन्धे पर कहाँ से सवार होता है, इस का ठीक ठौर पाना दुर्लभ है। परन्तु एक चीज

देखा—हिमालय का स्वभाव रूपायित हो रहा है एक-एक कर, जबकि ऊँचाई अभी आयी नहीं है। पहाड़ का मध्य आ पहुँचा है और उस पर फसल नजर आने लगा है खूब। देखते ही देखते गाड़ी आ पहुँची 'दून' की बस्ती में। यहाँ से सड़क एकतरफ़ा है। घाटी-पहरा यहाँ गेट खोलता है, एक तरफ़ से गाड़ी के आ जाने पर दूसरी ओर को जाने वाली गाड़ी को जाने की अनुमति मिलती है। यह हिमाचल प्रदेश का ठीक सीमा है या नहीं, कह नहीं सकता।

तय था कि श्रीमती माया इस यात्रा का संचालन करेंगी। इस लिए मैं था निष्क्रिय। पुरुषपरक युग लगता है अब खत्म हो आया, अब आया महिला-समाज। महिला है सिपाही, वकील, जज। झाँसी रानी ब्रिगेड देखा नेता जी की कृपा से, नेहरू की कृपा से देखा महिला-राजदूत, गान्धी जी की कृपा से देखा महिला-राज्यपाल और विधान राय की कृपा से हुई महिला मन्त्री। यह है महिला-युग। श्रीमती माया तद्वीर-तदारक़ में लगी थीं। यह कहना ही पर्याप्त है कि भ्रमण का अनुभव उन्हें खूब हो गया है।

धीरे-धीरे आ गया प्राय: पैंतालीस मील पार कर 'वानीखेत'। वानीखेत,—'रानीखेत' नहीं। यहाँ तक आने में रुकना पड़ा है अनेक बार, पार करनी पड़ी है बहुत सी चढ़ाई उतराई। हिमालय ने बहुत बार अपनी राजकीय महिमा का झलक दिखाया है, कहीं-कहीं तो तीव्र स्रोतस्विनी गिरिनदी तेज़ बहाव में सामने से घूम कर अभिसारिका की भाँति धूसर धूमिलता में अपने को छिपा लेती है।

'वानीखेत' में उतरा। यहाँ से दूसरी गाड़ी चम्बा को जायेगी। हम लोगों की गाड़ी चली गयी पास के 'डलहौजी' पहाड़ की चोटी की तरफ़। समय काफ़ी है। इस लिए एक फर्लांग बढ़ कर बाज़ार के किनारे 'जयहिन्द' होटल में मध्याह्न भोजन से फ़ुरसत पाया।

वानीखेत से बाँये हाथ है चम्बा का मार्ग। अँगरेज़ों के ज़माने में साहब-सूबों का आना-जाना कम था इस खातिर चम्बा उपत्यका का यह मार्ग अच्छा नहीं हो पाया। डलहौजी का मार्ग परन्तु कलकत्ते की चौरंगी से कम बढ़िया नहीं है, मगर चौड़ा नहीं है। गाड़ी छूटी, उस समय लगभग पौने दो बजा था। अब हम लोगों ने इरावती का रास्ता पकड़ा। चम्बा पहाड़ की गोद में तब मेघ उतर रहा था। यहाँ से लगभग तीस-बत्तीस मील रास्ता होगा। श्रीमती माया अब फ़ुरसत से बैठीं।

प्राय: आधा मील तक आगे बढ़ने पर अचानक लगा कि, सभ्यता के सभी निशान हमारे सामने से मिट गया है, और उन्मत्ता इरावती के किनारे-किनारे हिमालय ने मानो अब अपना वास्तविक अन्त:पुर का द्वार उद्घाटित किया है। शब्द-जगत् स्तब्ध। एकमात्र शब्द है इरावती का प्रमत्त गर्जन, और दूसरी आवाज़ है मोटर की। सवेरे की सृष्टि दोपहर को चिह्नहीन। इस मार्ग में हम लोग कहीं भी जनपद का उद्घाटन न कर सकेंगे ऐसा लगता है। वर्षा के आक्रमण से मार्ग टूट गया है—

क़दम-क़दम पर, पहाड़ पर से बड़ा-बड़ा 'झोरा' उतर आया है, धस उतर कर पथ तोड़ते हुए नीचे अतिकाय चट्टानें लुढ़क पड़ी हैं। बहुत संकीर्ण मार्ग है। कहीं छाया सिहर रही है, कहीं आतंकपूर्ण तीखे घुमाव। गाड़ी के पीछे के पहिये एक-एक संकट को पार कर रहे हैं। क्षण भर के लिए भी निर्विघ्न महसूस नहीं कर पा रहा हूँ। जन दस-बारह यात्री हैं हम, मगर सभी का मुँह सूखा हुआ है, और सभी व्याकुल हैं। जाड़े में यह पथ इतना दुःसाध्य नहीं रहता। सुनने में आया कि इस धस से यहाँ दो-तीन लोगों की मौत हो चुकी है। अभी तीन दिन पहले तक गाड़ी की आवा-जाही बन्द थी। याद आ गया, तिस्ता बाज़ार से सिक्किम सीमान्त रंगीत नदी का मार्ग। जंगल से भरा, जंगली, जनहीन, चट्टानों के गिरने से संकीर्ण मार्ग में वही टूटन। यात्री सभी लाचार, सामने और पीछे के पहाड़ी मार्ग की रेखा टूटी हुई। तब खड़े-खड़े रोओ। रुलाई सुन कर जानवर अगर आये, एक भी आदमी बचेंगे नहीं। दो-चार दिनों बाद हो सकता है पी० डब्लू० डी० के लोग मुआयने में आयें—देखेंगे तुम बेहाल हो। इस के बाद खबर पहुँचेगी यथास्थान, पहाड़ का मार्ग अगर खड्ड से बहुत ऊँचा हुआ, और सामने-पीछे धस उतर आये—तब शिव भी असाध्य हैं। १९६० में समग्र दार्जिलिंग और सिक्किम में ऐसी घटना घटी थी। दो वर्ष लगा था उबारने में।

आज यहाँ ऐसा ही देखता जा रहा हूँ। दरारें नज़र आ रही हैं पहाड़ों में, पानी पैठ रहा है भीतर। चट्टानों का वजन कब तक सँभाल सकेगा, कौन जाने। ड्राइवर रह-रह कर गाड़ी रोकता है, दाहिनी ओर के पहाड़ों का निरीक्षण करता है, इस के बाद स्टार्ट देता है। सावधान रहना अच्छा है। एक धस के उतरने का मतलब है,—मोटर-बस और यात्रियों का जत्था इरावती में समाधिस्थ! डर के मारे सिर्फ़ यही सोच में डूबा था, इस यात्रा में मायादेवी का आना ठीक नहीं हुआ। राह-घाट के बारे में पहले जान लेना अच्छा होता।

घण्टे तीन-एक के बाद एक समय सहसा गाड़ी खड़ी हो गयी—इस के आगे गाड़ी नहीं जा सकती। अब भी मील चार-पाँच-एक बाक़ी है। यह अंचल तराई का है, और इतने में ही दिन का अन्त सिहर रहा था। सामने ही इरावती के किनारे पुलिस-पहरा पड़ गया है। पास ही एक विशाल पहाड़ से धस उतर आया है—रास्ता बन्द! हम घबरा कर उतर पड़े सामान-वामान ले कर। पता चला, हम लोगों को छोड़ बहुतों को यह सूचना मिल चुकी है, अतएव एक-एक कर अपना-अपना रास्ता ले रहे हैं। हम पड़ गये अकेले। खाली मोटर-बस पड़ी रही एक किनारे ड्राइवर ने तन ढँक लिया।

यह बस्ती है, नाम है 'प्रोल्'। किन्तु उस पुलिस पहरे पर एक हथियारबन्द और एक घुड़सवार के अलावा कोई नज़र नहीं आया—कहीं भी। अचानक पहाड़ी घुमाव में से निकल आये दो किशोर बालक। वे बोझा ढो सकते हैं,—ऐसा कहा। मगर उन्हें देख कर ज़रा भी उत्साह नहीं मिला। इधर शाम होती आ रही है।

पता नहीं क्यों तो ज़रा झुंझला कर अब मुड़ा मायादेवी की तरफ़। और कुछ

नहीं सवाल था एक भद्र महिला की सुरक्षा का !

मैं आता हूँ, आप ज़रा इन्तज़ार करें—इतना कह कर उन के एक तरफ़ अकेले बढ़ते प्रयत्न करते ही, मैं ने रोका—ऊँ हूँ अकेले मत जाइए, अच्छा हो, आप ठहरिए, मैं देखता हूँ उन्होंने भी गरदन उठा कर देखा। उन के होंठों पर हंसी थी। स्थिर भाव से बोलीं, आप मुझे अकेला छोड़ना नहीं चाहते, मगर गुप्ता साहब ने अकेले छोड़ दिया ! क्यों ? जानते हैं ? वे मुझे पहचानते हैं !

पुलिस पहरे पर के उस हथियारबन्द व्यक्ति को साथ ले कर मायादेवी आगे बढ़ीं और दूर जा कर पहाड़ी पथ में खो गयीं।

पाँच मिनट बीते ! दस मिनट कटे ! पन्द्रह मिनट होने को आये ! झिंगुर गुहार मचाने लगे शाम को। पुलिस पहरे का घोड़ा एकदफ़ा हिनहिनाया। पचीस मिनट पार हो गये। कहीं जंगली पंछी पहाड़ों के दरार में अपने डैने फड़फड़ा उठे। तीस मि····हुँ दूर से आ रहे हों जैसे दो घोड़े इधर। एक के ऊपर है स्त्री का आकार, दूसरे पर वही हथियारबन्द सिपाही। साँस रुकी थी इतने क्षण, अब धीरे-धीरे निश्वास ली।

क़रीब आ कर वह व्यक्ति उतरा। पीछे-पीछे आ खड़े हुए दो घोड़े वाले। बग़ल के घोड़े पर दोनों पैर लटकाये बैठी मायादेवी हँस रही हैं। उस सिपाही की सहायता से बस्ती से वे दोनों घोड़े और उन के रखवाले को पकड़ लायी हैं।

बिस्तर खोल दो कम्बल निकाल कर घोड़ों की पीठ पर डाला गया। और भी एक गर्म चादर मायादेवी ने माँग ली। अब दौड़-धूप कर के वे दोनों बालक और घोड़ों के रखवालों ने मिल-जुल कर सभी सामान पीठ पर चढ़ाया। पुलिस के आदमी को कुछ बख्शीश दिया गया। मायादेवी इस बार जिमनास्टिक दिखाते हुए झट से घोड़े की पीठ पर जा सवार हुईं। इस के बाद चादर से अपने को ढंक लिया। रखवाले ने अब मेरी तरफ़ देखा, इस के बाद अपनी चाम्बीयाली बोली में बोला—मेम साहम घोड़े पर चढ़ना अच्छी तरह जानती हैं।

घोड़े नहीं मिलते तो हो सकता है लड़खड़ाते हुए रात को किसी समय चम्बा पहुँचते, परेशानियों का अन्त नहीं होता। मध्यपथ में एक पहाड़ी नदी के पानी में नंगे पैर उतरना पड़ता, अँधेरी राह में साँप-बिच्छुओं का भय लगा रहता—और फिर तो सामानों की कोई व्यवस्था ही नहीं हो पाती। अब सड़क बहुत अँधेरी है। नदी की गर्जना सुनाई पड़ रही है, मगर देख कुछ नहीं पा रहा हूँ। घना जंगल तथा एक पहाड़ी बस्ती से सट कर हमारे घोड़े आगे बढ़ रहे थे।

पाँच मील भी नहीं, उस से कम। सामने एक बड़े से पहाड़ का अवरोध था, इसी से इतना घना अँधेरा और जनशून्यता थी। पश्चिम दिशा की ओर मील-दो आगे बढ़ने पर नज़र आयी पहाड़ पर बत्तियाँ टिमटिमा रही हैं। घोड़ों के रखवाले साव-धानी से हमें लिये जा रहे हैं। दोनों लड़के भी हैं साथ-साथ पीठों पर सामान लादे

हुए। हम आ पहुँचे इरावती के पुल के पास। यह भी लछमनझूला की तरह रस्से पर झूलता हुआ साँको है। लोग अब दीख रहे हैं। दुकानें नजर आ रही हैं। पुल के नीचे से तेज लहरों में नदी बह रही है। पुल पार हो कर दाहिने हाथ में है शहर का चढ़ाई मार्ग। चढ़ाई पथ के घुमाव पर धीरे-धीरे हम चढ़ आये शहर में। शहर के मुहाने पर है एक बड़ा सा प्राचीन दरवाज़ा, मगर उस का नाम अब हो गया है, गाँधी दरवाज़ा। फाटक पार होते ही एक चौड़ा सा मैदान है। यह है शायद पोलो खेलने का मैदान। शहर का बाज़ार फाटक के पास से ही शुरू हो गया है।

मगर अचानक रात के वक़्त शहर में एक घुड़सवार के साथ एक खूबसूरत घुड़सवारिन का प्रवेश देख कर मिनट दो-एक में ही सौ-दो सौ लोग घेर कर खड़े हो गये और जब उन्हें मालूम हुआ कि हम हैं उन के इस मनोरम पहाड़ी उपत्यका में सैल के लिए आये, तो उन में से बहुतों ने आरामदेह स्थान दिखाने की खुशी से आगे बढ़ आये।

वह जगह थी रेस्ट-हाउस। और वह थी एक मैदान के दक्षिण-पश्चिम कोने में एक एकान्त बग़ीचे के मध्य। बग़ीचे के ठीक नोचे था इरावती का दर्रा, गहरे तल में नदी बह चली है। इस बग़ीचे में बहुत सी फूलों की लताएँ थीं, सूर्यमुखी, गुलाब, डालिया क़दम-क़दम पर। बीच-बीच में है ओक और पाइन तथा एकाध चोड़। मास डेढ़-एक पहले पण्डित नेहरू आये थे चम्पावती में। परिणामस्वरूप सभी अलंकारों से विभूषित है चम्पावती। वन्य कौमार्य के तन में जड़ा गया है मूँगे-मोतियाँ।

बग़ीचे में जब हम ने प्रवेश किया, देखा रात साढ़े सात हुई है। दो किनारों से पहाड़ घेरे है—इस वजह इस उपत्यका को असमय ही रात ने घेर लिया है। बारामदे पर टिमटिम कर रही है एक बत्ती, उस के बाहर सभी कुछ है अस्पष्ट।

घोड़ों के रखवालों ने सामान उतारा। खानसामा सामने आ खड़ा हुआ। एक बहुत ही खूबसूरत नौजवान, भला और स्नेहसिक्त। हम जो कुछ कहते, उसी में वह सिर झुका कर सहमत हो जाता और उस का पालन भी करता। करता ठीक, मगर देर से—यही थी असुविधा। दोनों घोड़ों के रखवालों और लड़कों को उन का मेहनताना दे कर विदा किया गया। दोनों लड़कों को मायादेवी ने कुछ खाने को भी दिया।

चम्बा उपत्यका का वास्तविक नाम है चम्पावती। दक्ष-यज्ञ की पौराणिक कहानी का सच-झूठ कभी भी निरूपण करने की चेष्टा नहीं हुई, परन्तु उसी के अनुरूप एक कहानी किसी युग में इस उपत्यका में घटित हुई थी। चम्पावती थी राजकुमारी, रूपवती और बुद्धिमती। किसी एक परदेशी सौम्यस्वरूप तरुण के साथ वे प्रेमाभिभूत हुई और संभवतः छिप कर उस से विवाह किया। राजकुमारी का यह ब्याह उन के पिता के लिए आनन्दप्रद नहीं था और जब उस युवक की आकस्मिक मृत्यु हुई तब राजकुमारी उस की चिता में कूद कर सती हो गयी। यहाँ के एक प्रधान मन्दिर का नाम है 'चम्पावती'—अन्दर जिन की मूर्ति है, वह है महिषासुरमर्दिनी दुर्गा।

दूसरे दिन हम घूमने निकले थे। दूर हिमालय की ओट में—सभी तरह के जन-कोलाहल से परे चम्पावती मानो तपस्विनी हैं। चारों तरफ़ विराट् हिमालय के एक के बाद एक अन्तहीन उत्तुंग स्तर—पृथ्वी यहाँ एकदम निश्चल अवरोध में बिलकुल क़ैद है। चम्पानगरी भी हिमालय के गहन लोक में जैसे एक लक्ष्यहीन खोया हुआ शहर है।

चम्पावती के इस पहाड़ी घेराव के एक तरफ़ है जम्मू और कश्मीर, दूसरी तरफ़ लाहुल, जस्करा और लद्दाख,—इन दोनों के मध्य लोक में दुर्गम और गगनस्पर्शी पीरपंजाल के नीचे से चली गयी चन्द्रभागा की धाराएँ। इस पार चम्पावती, उस पार लाहुल। समग्र पर्वतमाला की ऊँचाई इस अंचल में बीस से बाईस हज़ार फ़ुट है। चम्पावती, लाहुल और कुलू उपत्यका ही है पंजाब की तीन प्रमुख नदियों की उत्पत्तिस्थल—इरावती, चन्द्रभागा और विपाशा। लाहुल के दक्षिण में है कुलू। चम्पावती के दक्षिण के धवलाधार का अतिक्रमण करने पर काँगड़ा उपत्यका में पहुँचा जा सकता है। विगत वर्ष इन्हीं दिनों हम लोगों ने काँगड़ा और कुलू का भ्रमण किया था।

चम्पावती की पार्वत्य उपत्यका का आयतन ३,२१६ वर्गमील है, और जनसंख्या सवा लाख से कुछ अधिक है। चम्पा शहर में मात्र ६,००० नर-नारियों का रहन-सहन है और खेती-बारी, पशु-पालन आदि उन की उप-जीविका है। यह उपत्यका हिमांचल प्रदेश के अन्तर्गत है, और रवीन्द्रनाथ के राष्ट्रीयगीत में इस का उल्लेख है। पूरी उपत्यका घिरी है बहुत सी पहाड़ों की चोटियों से—वे चोटियाँ हैं, हातीधर, धवलाधार, पांगीश्रेणी, मणिमहेश, दागानिधर, छत्रश्र और जास्करा। चम्पा के मूल निवासी हैं राजपूत और राठौरवंशीय। चम्पावती में ये 'राठ' नाम से परिचित हैं। यह स्पष्ट समझा जा सकता है कि तातार, पठान और मुग़लयुग में राजस्थान का एक बड़ा हिस्सा जब टुकड़े-टुकड़े होने लगा, तब हिमालय के अनेकों हिस्सों में बिखर गया और आंचलिक आदिवासियों से हाथ मिला कर अपनी-अपनी शिक्षा-संस्कृति और ऐतिह्य का प्रतिपालन करता रहा,—यह 'राठ' सम्प्रदाय ऐसे ही उन का ही एक अंश हो गया। नेपाल में, काँगड़ा में, मण्डी में, विलासपुर में, कुलू में और बहुत सारे अंचलों में राजस्थानी राजपूत उपनिवेश बना बैठे थे। पंजाबी हिन्दू जिस का एक बड़ा हिस्सा राजपूतों का है उन में और राजस्थानी राजपूतों में बहुत कुछ पार्थक्य है क्यों नहीं। हिमालय प्रदेश में भ्रमण करते समय, कोई भी यह अनुभव करेगा, पंजाब की अपेक्षा बंगाल की आबो-हवा वहाँ प्रत्यक्ष है। बंगाल में जैसे मनसा और शीतलादेवी की पूजा चलती है, चम्पावती में भी इन्हीं की पूजा का प्रचलन है। वहाँ शीतला हिंसक हैं और भयंकरीरूप में प्रकटी हैं, बहुत से अंचलों में बंगाल की 'नागपंचमी' की भाँति मूर्ति के साथ साँप जोड़ कर साँप की पूजा की जाती है। 'नाग' और 'महानाग' के मन्दिर और 'देउल' जहाँ-तहाँ हैं। जाति और सम्प्रदायगत ये 'नाग' या 'नागा' हैं ऐसा कुछ पता नहीं चलता। ये हम लोगों की तरह ही सर्प-पुजारी हैं। साँपों का उत्पात भी

चम्पावती में खूब है। गोखरू, बोड़ा, शंखचूड़ और 'रातिर' नामक सर्प यहाँ अधिक संख्या में मिलते हैं। चम्पावती की अपनी जो भाषा है, उस का नाम है 'चम्बीयाली'। वह पहाड़ी है, मगर हिन्दुस्तानी और पंजाबी का मेल उस में स्पष्ट है। एक ही भाषा घूमती-फिरती है अनेकों तरफ़ और अनेक देशों में, उस की आंचलिक ध्वनियाँ बदलती गयी हैं।

किसी ज़माने में चम्पावती में 'वर्मा' राजवंश अभिजात्यपूर्ण था। वे थे शक्ति के प्रबल पुजारी। कभी भी वे केन्द्रीय प्रभुत्व के आगे घुटने नहीं टेके। ये थे स्वाधीन और स्वतन्त्र। मगर धार्मिक संस्कृति से इन्होंने भारत से अपने को कभी अलग नहीं पाया। धर्मानुष्ठानों की दिशा में ये बृहत्तर से आत्मिक-योग कभी विच्छिन्न नहीं किया। युरॅप की क्रिश्चियन राजनीति में हम जो असम्यता देखते आ रहे हैं एक सौ वर्षों से, इस देश में उस तरह की राजनीति बहुत कम है। हिमालय में तो इस से भी कम है। दूसरे राज्यों के प्रति लालच और ज़ोर-ज़ुल्म, दूसरे के घरों में अशान्ति उत्पन्न करने के कुचक्र, दूसरों के प्रति असम्मान का प्रदर्शन और धमकियाँ। दूसरों पर क़ब्ज़ा करने का प्रयत्न—यह राजनीति भारत के स्वभाव को नहीं सहती। बृहत्तर कल्याण की दिशा में संसार भर में सम्भवतः एकमात्र देश है भारतवर्ष, जहाँ दोनों प्रकार के महासम्मेलन का प्रयत्न मनुष्य के साथ मनुष्य के नैतिक और आध्यात्मिक मिलन की चेष्टा सदा से की जाती रही है। उन में एक है धर्ममहासम्मेलन और दूसरा है 'महाकुम्भ का मेला'। भारत में प्रायः सर्वत्र ही सम्मेलन एवं शत-सहस्र वार्षिक 'मेला' आज भी इस का प्रमाण है। इन सम्मेलनों और 'मेलों' का न तो कोई विज्ञापन है, और न ही प्रचार-प्रयत्न—हाँ, पंचांग के किसी कोने में कहीं ज़रा उल्लेखमात्र है, और यही यथेष्ट है। शत, सहस्र, लाखों की संख्या में देश-देशान्तर से दौड़े आते हैं स्त्रियाँ और पुरुष। उस समय सिर्फ़ एक तीर्थ-पथ में भारत की सभी जाति और वर्ग एकाकार हो जाते हैं।

चम्पावती की प्राचीन राजधानी है 'भ्रामर'। कोई कहते हैं, ब्रह्महर। चम्पा-नगरी से इरावती के किनारे-किनारे पूरब की ओर आगे बढ़ने पर अन्दाज़न पचास मील दूर पर स्थित है 'भ्रमर'। यहाँ के जंगल की पहाड़ी शोभा बड़ी ही मनोरम है। यह बहुत समय पहले बर्मा राजवंश का निवास था। आदित्यवर्मा, लक्ष्मीवर्मा, शाहिला, सोम, उदय, गणेश, प्रतापसिंह, बलभद्र, पृथ्वीसिंह, छत्रसिंह, श्रीसिंह, गोपाल-सिंह, शानसिंह, भूरिसिंह आदि अनेकों नरपतियों का शासन रहा है। चम्पानगर की राजधानी के स्थानान्तरित हुए भी बहुत दिन हुए। इस उपत्यका के दो तरफ़, अर्थात् धवलाधार और पीरपंजाल के मध्यस्थल में बहुत से देव-देवियों के मन्दिर और तीर्थ-स्थल आज भी यहाँ की शिवशक्ति की उपासना का गौरव वहन किये हैं। उन में हैं चन्द्रशेखर, शिखर, लक्षमन, शक्ति, चामुण्डा, भगवती, वंशीगोपाल आदि प्रमुख हैं। चम्पावती में सर्वप्रमुख जो कई उत्सव सम्पन्न होते हैं, उन में एक है 'पत्ररू' संक्रान्ति—इस के संग शायद बरखा की सफलता और सार्थकता का संयोग है। इस के बाद है

मणिमहेश्वर का विराट् महासम्मेलन—'माशरू'। यह मेला शिव-पार्वती के निमित्त लगता है। कुलू के दशहरा उत्सव से बहुत कुछ मिलता-जुलता। 'मणि-महेश' के इस मेले में समग्र चम्पावती की नर्तकियाँ आ इकट्ठी होती हैं और उन के केश-वेश असंवृत और जीवन-मरण से माते नृत्य देखने को बहुत दूर-देशों से पर्यटक आते हैं। उसी नृत्य से झूम-झूम कर कमल-दल रक्त-पद्म में परिणत होते हैं। चाँदनी रात में हर पहाड़ पर नाच की मजलिस जम जाती है।

'खाजीयार' तथा 'खजार' यहाँ से प्रायः आठमील चढ़ाई पथ है। वहाँ के पाइन वनों में और सरोवरों के किनारे जा खड़े होने पर कश्मीर के गुलमर्ग की याद हो आती है। बहुत ही एकान्तिक सुनसान निकुंज-कुंज। पास ही है एक प्राचीन देव-स्थान—नाम है 'खाजीनाग'। वहाँ के जन-हीन डाकबंगलों के बारामदे में बैठ कर बहुत दिशाओं के बहुत सारे दिग्भ्रमित पंछी अपने स्वरालाप गुंजा कर उड़ जाते हैं।

दो दिनों तक घूमते-फिरते हम लोग परेशान रहे। विगत वर्ष मायादेवी थीं गम्भीर, इस बार उत्साह से भरी हुई हैं। ठहाका लगाती हैं राह-घाट में। उन्होंने नाच देखा है, गीत सुने हैं, फ़ोटो इकट्ठी की है। टीले-पहाड़ के ऊपर है चम्पावती का राजभवन, उस में है चिड़ियाखाना। सँकरा मार्ग पार कर वे पहुँची हैं बड़ी सी ड्योढ़ी से लक्ष्मीनारा-यण के मन्दिर में, इधर है गणेश का मन्दिर, उधर चामुण्डा, इन के बाद भगवती। कहीं पूजा कर रही हैं, कहीं स्त्रियों की भीड़ इकट्ठी कर रही हैं। चक्कर काट रही हैं वे, हाट-बाज़ार की बग़ल से दर-दुकानें पीछे छोड़ कर छोटे मैदान के सामने 'भूरिसिंह' जादूघर में—जहाँ, विभिन्न प्रकार के प्राचीन अस्त्र-शस्त्र और तत्सम्बन्धी ऐतिहासिक सामग्रियाँ सुरक्षित हैं।

रात को रेस्ट-हाउस के उसी नन्दन कानन में, 'हरिराम' मन्दिर से गुज़र कर, आ गया। आज बारामदे में बत्ती भी नहीं जली।

टटोल-टटोल कर कमरे का ताला खोला, मगर लालटेन खोज निकालने के लिए चार-पाँच दियासलाई की तीलियाँ जलानी पड़ीं। अचानक इतनी देर बाद याद आयी, मिट्टी के तेल के अभाव में विगत रात बत्ती कब तो बुझ गयी थी। लालटेन सूनी हालत में यों ही पड़ी रही। मोमबत्ती ख़रीदने की याद ही नहीं रही।

मायादेवी मुझे भाँप गयी थीं। बोलीं, महेन्दर ठीक वक़्त पर आयेगा, चिन्ता न करें। सुनिए, परदेश में आ कर आप गुस्सा न हों! अब तो आज की ही रात है!

दूसरे दिन सवेरे ही हमारी यात्रा शुरू है। नियत समय पर घोड़े वाले ने दो बढ़िया घोड़े ला कर दरवाज़े पर खड़ा कर दिया। वक़्त था वह सवेरे सात बजे का। धूप की लाली निखरी है पहाड़ों की चोटियों पर। नीचे की उपत्यका पर उस समय तक सवेरा पहुँचा नहीं था। मधुरशीत में उस वक़्त चम्पावती की पलकें सुख-नींद में जुड़ी थीं।

[१२]

धवलाधार के किनारे उतर रहा हूँ। नीचे उतर कर फिर घूम कर चलना होगा पश्चिम। फिर उसी इरावती की धारा-पथ को लौट रहा हूँ—प्रेल् से 'बानीखेत'—रानीखेत नहीं। संकट और अकालमृत्यु की शंकाएँ, वैसे ही अगल-बग़ल जंगल और अँधेरे पहाड़ों के अन्दर से सुहावनी इरावती चट्टानों-चट्टानों पर पछाड़ खा-खा कर गिरती-पड़ती बही जा रही है। काली-काली एक-एक अतिकाय चट्टानें पड़ी हैं नदी में महिषासुर की भाँति—महिषमर्दिनी इरावती रणोन्मत्ता हो कर उन्हें दलती हुई चली जा रही है।

डर अब नहीं लगता। डर का भी अभ्यास हो गया है। ड्राइवर के हाथों में अगर स्टेयरिंग ठीक है, तब तो हमें मारना शम्भू के बूते के बाहर है। इस लिए अब डर नहीं रहा, वह तो है एक खास तरह की मानसिक कमज़ोरी।

सभी अभ्यासी हो गये हैं। हम लोगों का मन रोज़ ही कमज़ोर होता रहता है कई संस्कारों की वजह। डर उन में सर्वप्रमुख है—क्योंकि माता-पिता के उचित शिक्षा के अभाव में सन्तानों के मन में यह डर घर कर लेता है। भूत-प्रेत का डर, चोर-डकैतों का डर, पुलिस-फ़ौज का डर, सम्भावित आशंकाओं का डर—और भी तरह-तरह के डर हैं। इस के साथ आ मिलते हैं—व्याधियाँ और संत्रासबोध, सुख-दुःख का अहसास शोक-सन्ताप का ख़याल, जरा, विकार, ईर्ष्या, घृणा, काम, लोभ आदि ये भी धरदबोंचते हैं इसी समय। परिणाम, मनुष्य हो जाता है विचित्र प्रकार का एक सम्मिश्रण। इन से मुक्ति मिलना है वास्तविक मुक्ति और यही है मनुष्य की शाश्वत लालसा। दुनिया पीछे से खींच रही है, ताकि लड़खड़ा कर गिर पड़ो, उधर खींच रहा है वेदान्तवाद—असीम-आदि-अन्तहीन मुक्ति की चेतना की ओर। इसी खींचा-तानी में—बीच में पड़ा है आदमी। इसी खींचा-तानी में पड़ कर मनुष्य गुरु ढूँढ़ता है, साधु-सन्तों के निकट धरना देता है, तीर्थों की ओर दौड़ जाता है, मन्दिर बनाता है। भजन-कीर्तन की मण्डली में जा बैठता है या फिर चींटी को चीनी डालता है। सब मिल जाने पर भी आनन्द नहीं, यही है सुधिजनों का कष्ट, सब कुछ त्याग कर भी आनन्द की प्राप्ति नहीं होती, यही तो है ज्ञानियों का भाग्य।

छब्बीस मील पथ है। इस पथ पर अमर्त्यलोक की छाया पड़ी थी। जो कुछ नज़र आता है, सब का सब ज्ञान की उपलब्धि। शास्त्र की देन है भाषा और व्याख्या, मगर ज्ञान नहीं देता। ज्ञान ही है जीवन। उस को विचित्रताएँ ही हैं असीम रहस्य, उस के घात-प्रतिघात में है बड़ी नाटकीयता। गति है तभी तो ग्रहण कर पाते हैं, दृष्टि

है तभी ज्ञान प्राप्त कर लेता हूँ। बुद्धि में पाता हूँ, चेतना में पाता हूँ, ज्ञान में पाता हूँ, दुःख और आनन्द में पाता हूँ, दुर्योग में, प्रीति में, सभी से पाता हूँ। पाण्डित्य में यह पाना नहीं है, इसी खातिर पाण्डित्य हुआ शून्य, ज्ञान हुआ समृद्ध। ज्ञान का जन्म है अनुभव से, ज्ञान का प्रकाश है जीवन-साधना से।

सभ्य-जगत् की चेतना में जब पहुँचा, तब मध्याह्न व्यतीत हो गया था। आखिर के छब्बीस मील पथ एक प्रकार से जनहीन थे। पहाड़ी उपत्यका के बहुत नीचे एकाध स्लेटी पत्थर की छत वाला घर देखने को मिला था, कहीं-कहीं थोड़ी-बहुत फ़सलों वाले खेत—यों सभी आदिम प्रकृति की वन्यता और चट्टानों के घनत्व से एकाकार था। नीचे से उठे पहाड़ दिगंत को अवरोध किये हैं—चारों तरफ़ से। आश्चर्य की कोई सीमा नहीं।

छोटा सा पहाड़ी गाँव है 'वानीखेत'। मोटर यातायात के पथ का है वह नाभि-स्थल। तीन फर्लांग की सीमा में ही है उस की रोज़ी-रोज़गार। इस के परे है दो तरफ़ तराई और किसानों के घर—घूमने-फिरने की जगह वहाँ कहीं नहीं है। कोई कम्बल बुन रहा है, कहीं दर्जी का घर है, कोई फल बेच रहा है, कोई एक लकड़हारिन लकड़ी का बोझा लिये जा रही है, कहीं कोई बुढ़िया धूप में बैठी अपनी नतिनी से सिर के जुएँ निकलवा रही है। सड़क के किनारे गीत गाने बैठा है एक अन्धा वैरागी, और एक जगह जानवरों की हड्डियों और पत्थरों के टुकड़े से जादू का खेल दिखा रहा है कोई। उन्हीं के आस-पास थोड़ी देर घूमता रहा। एक किसान-नार पहाड़ी नदियों में जमी चट्टानों के बीच-बीच से लता-पत्रों का एक गट्ठर लिये चली आ रही है—यह है गाय-भैंसों का खाद्य। यह है तराई अंचल, इस लिए फ़सलें खूब होती हैं यहाँ। पहाड़ों की तराई से सट-सट कर चला गया है जंगली मार्ग—इरावती के आर-पार। फ़ौजी लोग बीच-बीच में यहाँ आते हैं शिकार को जाने वाले संगियों की खोज में। इधर बड़े-बड़े साँप चढ़ आते हैं।

यथासमय गाड़ी आयी, और जब छूटी उस समय बजा था दिन का साढ़े चार। कुल चार-पाँच मील का पथ था। मगर उस समय तक तो बादल में, जंगल में—शरद् के 'आँख-मिचौनी' का खेल शुरू हो चुका था। इधर उदासी, उधर खुशी। थोड़ा पश्चिम में, थोड़ा उत्तर में शुरू हुई चढ़ाई। पथ सपाट और बढ़िया—राजपुर से मसूरी के पथ जैसा। कहीं भी साँस लेने की गुंजाइस नहीं—सिर्फ़ चढ़ाई। गाड़ी की चाल मन्द मगर आवाज़ कान के पर्दे फाड़ने जैसी। चार मील लगभग चार हज़ार फ़ुट की चढ़ाई, कोई इत्ती सी बात नहीं है। वह जो उस बार चढ़ा था बिहार के पारसनाथ के मन्दिर पर—जैन धर्मशाला की बग़ल से चढ़ाई शुरू हुई थी। वह भी थी चार हज़ार फ़ुट की ऊँचाई, मगर छह मीलों में मार्ग फैला था—मगर मध्य पथ में मिली थी कुछ उपत्यका। यहाँ तो वह भी नहीं, सिर्फ़ है चढ़ाई। इस पथ पर लौटने पर पेट्रोल का खर्च नहीं है। स्टेयरिंग पकड़े रहो, ब्रेक लगाये रहो और गाड़ी उतर आयेगी बड़े आराम से। सभी

पहाड़ों पर ड्राइवर यह अकसर पाते हैं।

दिगन्त फैल रहा है धीरे-धीरे। दृष्टि दौड़ रही है दूर तक। चढ़ रहा हूँ ऊँचाई पर।

गाड़ी चक्कर काटती हुई धीरे-धीरे ऊपर चढ़ रही है। भुजंग भूषण की देह में लिपट कर सर्प जैसे उन की जटा पर चढ़ता है। ठण्ड से अब सभी सिकुड़ रहे हैं। बादल उतरा जा रहा है इरावती की ओर। पाइन के झाड़ में बादल प्रवेश कर रहा है। बादल तो घुसा चला आता है हमारी गाड़ी में भी। ड्राइवर बादलों के धुन्ध में भी गाड़ी चलाता जा रहा है। नीचे की धूप से व्याकुल जीवन भूल गया। एक वक़्त ऐसा आया कि कोट का बटन लगाना पड़ा। पहाड़-पहाड़ पर फूलों का झुण्ड-पथों के दोनों किनारे पर आ खड़े हो कर विहँस कर स्वागत कर रहा है। एकाध बस्ती नज़र आ जाती है।

पल्टनों के मुहाल के किनारे आ कर एकदम गाड़ी रुक गयी। हम शहर के निकट आ पहुँचे हैं। अनगिनत मिलिटरी बैरक़ और उन से सम्बन्धित वस्तुएँ नज़र आ रही हैं। अफ़सरों का आना-जाना लगा है। शायद यह पंजाब रेजिमेंट का केन्द्र है। पठानकोट से पचास मील दूर।

गाड़ी वहाँ से फिर छूटी और टेढ़े-मेढ़े मनभावन पथ पकड़ पहाड़ को गोद से सट कर देखते-देखते जा पहुँची। मोटर स्टैंड पर कुछ लोग नज़र आ रहे हैं, मगर चारों तरफ़ सुनसान है। इतनी चुप्पी किसी बड़े पहाड़ी शहर में नहीं महसूस हुई।

भिन्न-भिन्न होटल के दलाल आ खड़े हुए। हम लोगों ने 'ग्रॉण्ट-व्यू' होटल पसन्द किया। यह ग़लत हुआ बाद को मालूम हुआ। मायादेवी बहुत थकी थीं। उन के लिए आराम करना निहायत ज़रूरी था। लगभग बारह से तेरह घण्टे बीते हम लोगों को इधर-उधर घूमते।

डाकघर की बग़ल से एक पैदल ढालू सड़क ऊपर चढ़ आयी एक बहुत बड़े होटल के आँगन में। मगर यह इतने सूने में था कि मन कुछ उतर गया। एक गुजराती दम्पति पहले ही नीचे के दो बड़े-बड़े कमरे दखल कर चुके हैं। इस लिए ऊपर का एक बड़ा कमरा लेना पड़ा। बहुत बड़ा बारामदा—मगर इधर-उधर कहीं कोई आदमी नहीं। चारों तरफ़ इतनी सजावट और अज़रूरी चमकती हुई चीज़ें कि आँखें टिकती नहीं। इस होटल से हिमालय का दृश्य सब से अच्छा दीखेगा, ऐसा दलाल ने कहा था; मगर प्रत्येक के पीछे पन्द्रह रुपये रोज लगेंगे—यह कुछ अधिक मालूम पड़ रहा था। होटल में टिकने वालों की संख्या जितनी थी, कहीं उस से अधिक खानसामों की थी। अन्दर लॉज में पहुँचने का पथ देख कर हम चकित थे। इस होटल में आजकल साधारण उच्च-मध्यवित्त भारतीय आ ठहरते हैं, इस खातिर रेट कम कर के पन्द्रह रुपये करना पड़ा—इस के लिए अधिकारियों के दिल में दर्द दबा है। साहेब-सूबे रुपये देना जानते थे, वे यह देश छोड़ कर चले गये हैं—इस का बहुतों को ग़म भी है।

ठण्ड रोकने के लिए चारों तरफ़ से बन्द है। पूरे बारामदे में लकड़ी की दीवाल है और कांच की खिड़कियाँ। फ़र्श लकड़ी की, सीढ़ी भी लकड़ी की। पहाड़ी अंचलों में लकड़ी के अलावा कोई चारा भी नहीं है। लकड़ी का घर-मकान है हर जगह। बिन कांच की खिड़कियाँ नहीं होतीं। लकड़ी की फ़र्स पर रहने की वजह दूर से पैरों की आहट और थिरकन मालूम पड़ती है। पहाड़ों के ऊपर अच्छा मकान का अर्थ है मोटी लकड़ियों का मकान। आराम और मीठो गर्मी की खातिर ही है लकड़ी की कारीगरी।

शाम की चाय और नाश्ते के घण्टे भर के बाद मायादेवी चंगी हुईं। मगर मेरा खयाल कुछ और था। खयाल था कल रात की तरह वे आज छुट्टी मनायेंगी। मगर रात के खाने की फ़रमाइश कर के आया तो देखा वे घूमने जाने को प्रस्तुत हैं। वे बोलीं, चलिए घूम आयें। मैं सच कहती हूँ चम्बा से डलहौजी बहुत भाया था।

दिन की थोड़ी सी रोशनी उस वक़्त भी लाल थी—दक्षिण-पश्चिम में। मगर उस सूर्यास्त का समय बड़ा सुहावना था, घूमने निकला तब यह पता चला। सीडर और पाइन का विशाल जंगल पहाड़ की सीमाओं में दूर-दूर जा कर खो गया है, किन्तु मगर उन के फांक-फांक से दिनान्त का दिगंत हर कहीं लाली बिखेरे है। अंधेरे पहाड़ के घने जंगलों के भीतर से बायें हाथ में खुशनुमां सड़क ऊपर उठ आयी है। इतना सन्नाटा है कि अभी तक एक भी आदमी नजर नहीं आये। हम धीरे-धीरे चढ़ाई पथ पर चढ़ते जा रहे हैं। सीडर पेड़ के पत्तों में से हवा के झोंके से मरमर ध्वनि आ रही है, पलकें उठा कर देखा कि पश्चिम के आकाश पर बिलकुल अंधेरा होने के पहले ही शुक्लपक्ष का क्षीण चांद वहाँ आ हाजिर है। हर पेड़ प्रायः तने और पत्तों से भरा तथा शैवालों से घिरा है। पथ के हर घुमाव पर बत्तियाँ जल रही हैं। बड़े-बड़े पंछियों के पर मारने की आवाज़ मिल रही है। मगर उन के उस उड़ जाने की गन्ध मिलेगी, ऐसा सोचा भी नहीं था। फूलों की नहीं पेड़ों की गन्ध। फूल की जैसी गन्ध नहीं, मगर नशे में भर देने वाली एक ऐसी गन्ध, जैसी समतल वासियों को कभी नहीं मिलती। हो सकता है 'सीडर' की गन्ध हो, परन्तु यह हिमालय में सर्वत्र फैली है। मृगनाभी की तेज गन्ध का अहसास दो-चार मरतबा हुआ है, राजस्थान में पहुँच कर जाना है कि असली 'चोआ' की गन्ध कैसी होती है; प्राचीन वट जहाँ जीर्ण-शीर्ण मन्दिरों की दीवाल फोड़ कर निकल आया है—उस मन्दिर के भीतर की सोंधी गन्ध का भी पता है। यह मिलती है सिर्फ़ हिमालय में पहुँच कर। कुमायूँ के उत्तर पहाड़ के रास्ते में, नेपाल के पहाड़-पहाड़ में, उत्तर में सिक्किम के ला-चेन इलाक़े में, कश्मीर में—एवं वह जो आज पश्चिम पाकिस्तान के उत्तर-पश्चिम किनारों में—मारी, नाथियागली अथवा हवेलियन के परमरमणीय पार्वत्य अंचलों में। मेरी धारणा है कि नींद न आने वाले रोगी को सुलाने वाली ऐसी गन्ध और दूसरी नहीं है।

अंधेरा हो आया है, मगर ठीक किधर चला जा रहा हूँ, यह स्थिर नहीं कर पा रहा हूँ। यहाँ-वहाँ ओट में बाग़-बाड़ियाँ नजर आ रही हैं, बत्ती जलते देख कर आदमी

के अस्तित्व का बोध होने लगा है—मगर सब कुछ खामोश है। पथ कितनी दूर कहाँ उठ कर शेष हुआ है ठीक अन्दाज़ नहीं लगता।

जो भी हो ढालू पथ पकड़ कर जब चलते-चलते डलहौजी क्लब की बग़ल को काटते हुए होटल आ पहुँचा, उस वक़्त रात खूब हो आयी थी। गुजराती ने दरवाज़ा बन्द कर लिया है।

शाम के बाद से ठण्ड पड़ने लगी है मज़े की।

उत्तर में बहुत दूर पर चम्पावती उपत्यका के ललाट-लोक में दीख रहा है तुषारशुभ्र 'पांगी पर्वतमाला'। समुद्रसतह से 'पांगी' की उच्चता प्राय: २३,००० फ़ुट होगी—सदा बरफ़ से ढँकी हुई। उस के नीचे के दक्षिण पर्वतलोक का नाम है चम्पावती उपत्यका। डलहौजी इसी उपत्यका में पड़ता है। पहले चम्पावती में थे एक सामन्त राजा, अब यह है डिप्टी कमिश्नर के अधीन। यह अब हिमाचल प्रदेश का मात्र एक ज़िला है। जैसे है मण्डी, बिलासपुर, शिरमूर आदि।

बारामदे में एक मुट्ठी मीठी धूप बिखर पड़ी है। लगा था कि दिनमान में शायद आदमी का शोरगुल सुन पाऊँगा। मगर यह सही नहीं साबित हुआ। सूना डलहौजी जैसे चारों तरफ़ से सन-सन कर रहा है। दिन भर टकटकी लगाये रहो। पांगी की तरफ़, दिन भर पंछी की आवाज़ सुनो—सारे दिन, सारी रात निस्तब्ध निसंगता में दिन बिताओ। अगर कुछ है तो वह है बाहर सड़कों में। नाश्ता कर के हम बाहर निकल पड़े।

ओक और पाइन का जंगल धूप-छाँव में झिलमिला रहे हैं। सड़क वैसी ही सूनी-सूनी, वैसा ही वनमय। तीन तरफ़ पहाड़, एक तरफ़ है खड्ड। हम लोगों के उठने-बैठने का स्थान बना 'बारकोटा' पहाड़। दीख रहे हैं चार-पाँच पहाड़ एक दूसरे में संलग्न और उन्हें ही केन्द्र बना कर डलहौजी निर्मित हुआ है। 'चम्बा' उपत्यका में सब से ऊँचा और निकटवर्ती है यही डलहौजी, और यहाँ से उतर कर जंगल की राह पकड़ कर चलने पर अन्दाज़ बीस मील है 'चम्पा नगर'। इस के चारों तरफ़ के जंगल बहुत घने हैं - ऊपर से हिंसक जानवरों का यह विचरण क्षेत्र भी है। उधर असुरनाशिनी चामुंडा दस प्रहरण धारण किये निवास कर रही हैं, इधर पशु राज्य के पशुपतिनाथ अपनी विशाल पशुशाला बना कर ध्यानस्थित नेत्रों से बैठे हैं। सम्पूर्ण 'चम्पावती' जंगलों के लिए विख्यात है।

हम निचले 'बारकोटा' से चढ़ते-चढ़ते ऊपरी 'बारकोटा' की ओर चल पड़े। अन्य पहाड़ों के नाम हैं 'यानज़ार', 'पटराइन', 'तेहरा', 'काठलाग' आदि। रानीखेत, मसूरी, नैनीताल के सम्बन्ध में साधारणत: जो धारणा है यहाँ के लिए भी वही। कशमीर एवं पंजाब—इन दोनों के सन्धिस्थल में अँगरेज़ों ने देखा था चम्पा उपत्यका को। इस उपत्यका को सामन्त राज्यों के हाथों से सौ वर्ष पहले पूर्वोक्त पहाड़ों को

पाते हैं कर्नल चार्ल्स नेपीयर। उस वक़्त थे बड़े लाट लॉर्ड डलहौजी—सिपाही विद्रोह के ठीक पहले। उस समय भी ईस्टइंडिया कम्पनी का जमाना बरक़रार था। इस के बाद नगर निर्माण में तीन साल लगे। हम यहाँ दैव संयोग से आ पहुँचे हैं ठीक एक सौ वर्ष पुराने जमाने में। सम्प्रति कुछ दिनों पहले 'डलहौजी' स्थापना की शतवार्षिकी समारोह के अवसर पर पण्डित नेहरू यहाँ आये थे। उन के आगमन-समारोह के धक्के से आज भी यहाँ के निवासी सँभले नहीं हैं। बाजार में अभी भी गर्मी छायी है।

चढ़ाई तोड़ता हुआ चढ़ा जा रहा हूँ ऊपर की ओर। पेड़-पौधों के फाँक से, पहाड़ की गोद में, जंगल-झाड़ की ओट में, एक-एक बँगले हैं छिपे-छिपे। किन्तु प्रत्येक में आदमियों की संख्या कम है। कोई बँगला तो एकदम खाली है, कोई माली और रखवाले के मातहत पड़ा है, किसी में बाहर के दो-एक लोग हैं। यहाँ के अधिकारियों के हिसाब के अनुसार पाँच सौ बँगलों में से चार सौ से अधिक खाली पड़े हैं। यह डलहौजी आदमियों के शोरगुल से गमगम कर उठा है दस वर्ष पहले—भारत जब स्वतन्त्र नहीं हुआ था। यहाँ के 'बालून' गोराछावनी में थी अँगरेज़ी फ़ौजी अफ़सरों की धूम-धाम। हर पहाड़ों पर साहेब-सूबों के बँगले थे—उन के लड़के-लड़कियों की स्कूल-पाठशालाएँ थीं; मिशनरियों के कनवेंट और गिरजे में प्रार्थना-आयोजन। यही एक ऐसा पहाड़ी शहर है जहाँ गन्दी बस्तियाँ नज़र नहीं आतीं। ग़रीबी जहाँ सर्वापेक्षा कम है, वहाँ है सब से अधिक सफ़ाई। स्काटलैण्ड नहीं देखा, दक्षिण कनाडा भी नहीं देखा—मगर उस के फ़ोटो से डलहौजी हूबहू मिल जाता है। झाड़-जंगल, बाग़-बग़ीचे, पहाड़-नदियों में ओक-पाइन की पाँतियाँ। छायापूर्ण निभृत झाड़ियाँ—डलहौजी शहर मसूरी को क़दम-क़दम पर मात देता है।

'वैकरोट' पर्वत की चोटी पर चढ़ आया। आसमान विस्तारित हुआ है। कड़ी धूप, मगर ठण्डी हवाएँ तन-बदन में चुभ रही हैं। यहाँ से भिन्न-विभिन्न दिशाओं को मार्ग चला गया है। यह अंचल दार्जिलिंग के 'अबजार वेटरी' मुहल्ले की तरह चारों तरफ़ फैला है। ऊपर की तरफ़ मालका बाजार कलकत्ते की चौरंगी का प्रतिरूप है। काम-काज बहुत था मगर आज-कल लोग बहुत कम हैं। माया देवी को भा गयी है यह जनहीनता। वे डलहौजी के गुणगान में पंचमुख हो उठी हैं। चारों तरफ़ पंछी-समाज में शायद यह धारणा बद्धमूल हो गयी है कि, डलहौजी सम्भवतः ऐसे ही जनशून्य सदा रहेगा। वे पेड़-पेड़ में आदिवासियों की भाँति दल बना कर सम्भवतः अपनी बोलियों के द्वारा इसी बात की घोषणा कर रहे हैं,—तुम सभ्यता और संस्कृति के ध्वजधारी हो सकते हो, मगर तुम हो परदेशी; तुम आये हो बाहर से। वस्तुतः किसी पहाड़ पर इतने विचित्र रंग—प्रकार के पंछी नहीं दीखते।

'पांगी' का विशाल शुभ्र पर्वत श्रेणी दीख रहा है उत्तर में। आँखें फिसल जाती हैं—इतनी उजली है वह। हर एक चोटी अगल-बग़ल सजी हुई है,—हर एक झिलमिल कर रहा है धूप से। उत्तर पर्वत के नीचे से प्रवाहित हुई है चन्द्रभागा, डलहौजी के

ठीक नीचे से चली गयी है इरावती, और दूर दक्षिण पहाड़ के भीतर से समतल भूभाग पर प्रकट हुई है विपाशा। विपाशा से कई मील दक्षिण में जाने पर मिलता है मानस सरोवर की सन्तान महानद शतद्रू। चोटी पर खड़े होने से जम्बू की पर्वत श्रेणियाँ क़रीब मालूम पड़ रही हैं—पीरपंजाल के दक्षिण किनारे में। 'उधमपुर' और 'चिनेनी' इलाक़ों में चन्द्रभागा के एक पार में है धवलाधार, दूसरे पार में पीरपंजाल,—और यह सिर्फ़ डलहौजी से ही अच्छी तरह से देखा जा सकता है। इन दोनों पर्वत मालाओं के बीच सेतु बनी है चम्पावती। दीख रहा है डलहौजी का चतुर्दिक् घिरा है चम्बाघाटी से। मगर लार्ड डलहौजी इस शहर को संयुक्त कर गये हैं पंजाब के साथ। डलहौजी जाने के लिए चम्बा ही पार करना पड़ता है और चम्बा से समतल भारत का सर्वापेक्षा निकट सम्पर्क डलहौजी के द्वारा ही होना सम्भव हैं। पंजाब के साथ डलहौजी शहर के इस असंगत सम्पर्क को निभा रही है भारत सरकार सम्भवतः इसी कारण कि सम्पूर्ण डलहौजी शहर एवं 'बालून' गोरा छावनी का निर्माण चम्बा के सामन्त राजा के धन से नहीं हुआ था—बल्कि भारत सरकार के रुपयों से हुआ था। यह बहस आज भी चल रही है। मगर हिमाचल प्रदेश की सरकार सम्भवतः केन्द्रीय सरकार को परेशान करने में जरा भी संकोच नहीं किया। परिणाम, पंजाब और हिमांचल की राजकीय सीमाएँ आज तक उलझी हुई हैं।

बहुत वर्ष पहले—प्रायः चौरासी वर्ष होने को आये—महर्षि देवेन्द्रनाथ आये थे अपने किशोर पुत्र रवीन्द्रनाथ के साथ। यह उन की साधना का एक स्थल था। जाड़े में सवेरे को रवीन्द्रनाथ यहाँ ठण्डे पानी से स्नान करते थे—यह एक अतिमानवी धीरज था यह आज भी स्वीकारता हूँ। १९२५ में यहाँ आये थे पण्डित मोतीलाल नेहरू—वह था लार्ड रेडिंग का काल—देशबन्धु चितरंजन के तिरोधान का वर्ष—उस समय मोतीलाल के साथ थे पुत्र जवाहरलाल—भावी भारत के कर्णधार। यहाँ उन्होंने बहुत समय व्यतीत किया था।

सहसा रुका दोमुँहे मार्ग के एक संयोग स्थल पर। एक बूढ़े घोड़े वाले ने इशारे से निकट ही डॉ० धरमवीर का मकान दिखाया। इस बगान-बाड़ी में १९३७ में भारत के भावी नेता जी सद्यः कारामुक्त सुभाषचन्द्र अस्वस्थ धरमवीर तथा उन की विदेशिनी पत्नी का आतिथ्य स्वीकार कर बहुत दिनों तक रहे। इस मकान से मेरा स्वयं का थोड़ा लगाव था, यही, वहाँ से ही सुभाषचन्द्र ने मुझे उस दिन दो पत्र लिखे थे। मगर इस प्रकार यहाँ ठहरने का कारण आतुरता से जानने वाली मायादेवी को सन्तोषजनक जवाब मुझ से नहीं दिया गया।

उसी १९३७ के बाद डलहौजी के जीवन के और कई वर्ष गुज़र गये। दूसरा विश्वयुद्ध खत्म हुआ, भारत स्वतन्त्रता-आसन्न हो आया। पूर्व पंजाब रह जाता है भारत में। इस के बाद कश्मीर ने अपने को घोषित किया भारत के अन्तर्गत। क्रम से साम्प्रदायिकता की सर्वनाशी आग लहक उठी पंजाब में। अँगरेज चले गये देश छोड़

कर। किन्तु इस डलहौजी की अधिकांश भू-सम्पत्ति थी सम्भ्रान्त अभिजात मुसलमान परिवारों की दखल में। पहाड़ की इस चोटी पर चारों तरफ़ से अवरुद्ध अवस्था में वे रहने को तैयार नहीं थे। और फिर उपजातियों के द्वारा कशमीर आक्रान्त हुआ १९४७ के अक्तूबर में। फलस्वरूप मुसलमान और हिन्दू दोनों सम्प्रदाय आतंकित हो कर इस इलाक़े को त्याग चम्बा स्थित दिग्घी की तरफ़ जाने लगे। मुसलमान चले गये पश्चिम पाकिस्तान की तरफ़ शियालकोट की दिशा में। यातायात की पूरी व्यवस्था, व्यापार-वाणिज्य, बाज़ार-हाट और सरकार द्वारा संचालित बहुत सारा जन-कल्याण संस्थान और शासन तन्त्र आदि सभी कुछ उखड़ गया। डलहौजी की दुरवस्था तभी से होनी शुरू हुई। वहाँ बहुत सी भू-सम्पत्ति उपेक्षित-स्थिति में पड़ी है—मगर उस के भोगने वाले ही नहीं हैं और भोग का अधिकार भी विशेष किसी को मिला हुआ नहीं है।

आराम के बाद एक समय माया देवी उठीं। बोलीं, चलिए।

मन लगता नहीं कभी भी, इतना जनहीन!

परित्यक्त डलहौजी, मगर अनादृत नहीं। बाग़ सजा है कहीं। प्रायः सभी बंगलों में बहुत सारी चीजें, विलास के पर्याप्त उपकरण, आराम और उपभोग का नियोजन—है नहीं तो सिर्फ़ आदमी! जो कोई भी चाहे एक तिहाई मूल्य चुका कर एक-एक संपत्ति ख़रीद सकता है, इस के लिए एक संस्थान भी कार्यरत है। मगर ख़रीदने वाले ही कम हैं। भारत के अन्यतम श्रेष्ठ एक पार्वत्य शहर को यह दुर्गति और अभिशप्त दशा देखते हुए हमारे दिन कट रहे हैं।

'काला पहाड़' यहाँ से केवल मात्र पाँच मील जंगली पथ है। बहुत से लोग कहते हैं 'कालाटप'। अभी शरद् ऋतु है, झाड़ियों के मोड़-मोड़ में आज भी पहाड़ी झरनों का निर्मल सुशीतल जल नीचे खड्डु में झरझर उतर रहा है। छोटी-छोटी बस्तियों से सटे-सटे मामूली उपज की खलिहानें पहाड़ों के दरों में नज़र आ रही हैं। इसी अंचल से पाइन वन शुरू होता है—यह मार्ग चला गया है और भी बहुत दूर-दइनकुंड को पीछे छोड़ कर। यहाँ के निवासी बहुत ही ख़ूबसूरत राजपूत हैं मगर धर्मभीरु। ये सभी 'चम्बा' उपत्यका के निवासी ही अपने को मानते हैं डलहौजी अथवा पंजाब को वे स्वीकारते नहीं। 'दइन कुंड' में कुछ समतल मिलता है, मगर पहाड़ की चोटी पर से हिमालय के दुर्लभ दृश्य साफ़ नज़र आते हैं। ठंड ख़ूब पड़ती है। मगर 'पांगी' पर्वत-माला की अचरज में डालने वाली शोभा हर तरह के परिश्रम को सार्थक बना देती है।

'खजियार' की छटा यहाँ से निरखी जा सकती है। सीजर और पाइन के घने जंगलों से घिरा 'खजियार' का श्यामघन पठार बहुत कुछ निम्नस्तरीय है। मध्य में है एक बड़ा सा सरोवर और उस सरोवर में है एक बहता हुआ द्वीप। चारों तरफ़ ढालू पठार का पानी धीरे-धीरे 'खजियार' को भर देता है। पाइन में समाये हुए पहाड़ के ठीक नीचे एक डाक बँगला है। 'खजियार' में आ खड़े होने से चम्पा नगरी की दूरियाँ शेष रह

जाती हैं कुल नौ मील। दहन कुण्ड के ऊँचे भू-खंड पर जा खड़े होने से दूर के पहाड़ों की तराई-तराई में पंजाब के पूर्वोक्त चार नदियों की प्रवाह में धूप किरणों के पड़ने पर झलमल करती है।

'बारकोट' के ऊपर खड़े हो कर सूर्य-किरणों में दृष्टि गड़ाये रहा, उत्तर पीर पंजाल की पर्वत माला की ओर आकाश घनबरखा के मोघ से मलिन था। मगर इस का परिणाम बाद को झेलना पड़ेगा यह सोचा नहीं था।

उस दिन मध्याह्न के बाद डलहौजी त्याग कर चल पड़ा। हम गोरा छावनी पार कर नीचे चल पड़े उसी पुराने मार्ग से। चम्पावती की कुसुम बल्लरियों के दल ने विदाई-सम्भाषण किया। उसी 'जयहिन्द' होटल में, वहीं दायीं ओर से चम्पा नगरी के संकट-संकुलगिरि संकट ने इशारा किया। अपराह्न में 'डूनेरा' में पहुँचा तो मिली लोगों की खूब भीड़भाड़ जैसे किसी दूसरे ग्रहलोक के अजाने समाज में आ पहुँचा होऊँ। सब कुछ अजाना। जीवन का एक छोटा सा टुकड़ा पहाड़ में खोया सा रहा।

घाटी-पहरे के विघ्न से छुटकारा पा कर और भी लगभग बीस मील पार कर 'चक्की' घाटी में पहुँच कर गाड़ी रुकी। यहाँ से एक मार्ग गया है काँगड़ा को—जो हम दोनों का अच्छी तरह से जाना हुआ है। काँगड़ा, ज्वालामुखी, बैजनाथ, मण्डी, कुलू—सभी के मार्ग जाने हुए हैं।

पठान कोट आ कर गाड़ी जब रुकी, तब दिन का पाँच भी नहीं बजा था। दिल्ली की गाड़ी आ कर खड़ी हुई है। कशमीर दिल्ली मेल। ठण्ड से निकल कर गर्मी से परेशान था।

बिलकुल अप्रत्याशित तौर पर मालूम हुआ कशमीर में भयंकर वर्षा हो रही है, और विगत तीन दिनों तक कशमीर पठानकोट की राह एकदम बन्द थी। आज यह पहली बार यात्री उतर रहे हैं। स्टेशन और उस के आस-पास लोगों की भीड़—रेलवे अधिकारी भौंचक। हम बेतरह दौड़-धूप करने लगे। हिमालय भ्रमण का आनन्द सिर पर चढ़ आया। यह गाड़ी बिना पकड़े काम ही नहीं चल सकता।

इसी बीच ट्रेन में तिल धरने की जगह नहीं। सभी जा रहे हैं दिल्ली या लुधियाना जलन्धर या फिर उस के आस-पास। फर्स्ट क्लास या सेकेण्ड क्लास की टिकट बहुत उपाय करने पर भी नहीं मिली। प्रत्येक 'बोगी' भरी हुई—और ताला लगी हुई। पहले से हम लोगों ने व्यवस्था नहीं की यही हमारी बड़ी भूल थी। कशमीर से पानी के बदले जन-स्रोत उमड़ पड़ा है। हमारी हालत एकदम खस्ता। गाड़ी के पावदान पर भी लोग झूल रहे हैं।

मेरे एक मित्र ने कहा, जवानी है राज-अवस्था! इस उक्ति का असली अर्थ आज समझ में आया। औरत-डिब्बे से दो पंजाबी औरतों ने माया देवी को इशारे से बुलाया, उन के डिब्बे में केवल सिर टिकाने की जगह मिल सकती है। इतने में ही हम कृतार्थ—क्योंकि मि० गुप्ता को खबर दे दी गयी है। कल वे दिल्ली स्टेशन पर

पत्नी की प्रतीक्षा में आ हाज़िर होंगे। पत्नी को अगर नहीं पायेंगे तो हो सकता है वे चिन्ता में डूब जायें कि कहीं माया देवी हिमालय में तपस्विनी तो नहीं हो गयीं! इस लिए पहले देवी को गाड़ी पर चढ़ाना पड़ा बहुत ठेल-धकेल कर। मेरी क़िस्मत में था वही पाँवदानी! लटकते हुए कटेगी सारी रात!

दौड़-धूप मचाये था मैं पूरे प्लेटफ़ॉर्म पर। किसी पाँवदानी पर भी पैर रखने की जगह नहीं। एक सिख सरदार के पैरों के बीच पैर बढ़ाया कि उन्होंने अपने पैर से झटका मार कर मेरा पैर हटा दिया। पैर टूटा नहीं यह गनीमत थी।

यह अचरज की ही बात है कि संकट का भरपूर आक्रमण होने पर भी हमें उस का अहसास नहीं होता। कई महीने पूर्व कलकत्ते के प्रसिद्ध डॉक्टर नलिनीरंजन सेन गुप्त महोदय ने कहा था, आप को हृदय-रोग है। अब पहाड़ पर कभी मत जाइएगा, गये कि मौत हुई!—मगर बिना पहाड़ पर गये मेरा हृदय-रोग बढ़ जाता है—यह उन्हें बताया नहीं था। जो भी हो। सहसा नज़र पड़ी प्लेटफ़ॉर्म पर खड़े एक पुराने मित्र के ऊपर। वे हैं श्रीमान् अश्विनी कुमार गुप्त, एक विशिष्ट पत्रकार। उन दिनों भी होने वाले पत्रकार सम्मेलन में वे सपत्नीक गये थे श्रीनगर। वे दिल्ली स्थित 'हिन्दुस्तान स्टैण्डर्ड' के ख़ास अफ़सर थे। लौट रहे थे दिल्ली। निगाह पड़ते ही वे खुशी की हँसी हँस पड़े।

—किस डिब्बे में हैं?

हँस कर कहा, प्रयत्न में हूँ, अभी चढ़ कहाँ पाया?

—ठीक है, आइए मेरे डब्बे में—मेरा तो पूरा डिब्बा रिज़र्व है!—अश्विनी बाबू ने सहृदयता पूर्ण प्रस्ताव रखा।

अपनी पत्नी से परिचय कराया। साथ थीं उन की तीन-चार (बहुएँ) पुत्र-कन्या। उन का उस दिन का उदार और स्नेहशील व्यवहार सचमुच स्मरणीय है।

अप्रत्याशित रूप से उस शाम मानो स्वर्ग मेरी हथेली पर उतर आया था—छोड़ो, बिना हिचक पहले टिकट-चेकर की आँखों में धूल झोंक कर ट्रेन छूटे, फिर धीरे-सुस्ते एक सिगरेट सुलगा ईश्वर को सुविधा के अनुसार धन्यवाद दिया जायेगा।

माया देवी और उन के पति की चर्चा उठी। पता चला, वे अश्विनी बाबू के किसी तरह से रिश्तेदार हैं।

गाड़ी छूटी यथासमय। मायादेवी जान भी नहीं पायीं कि हम बड़े मौज से गद्दी पर पैर फैला कर सो सके। जिलाये भगवान् तो मारे कौन!

दूसरे दिन सवेरे साढ़े सात बजे गाड़ी दिल्ली पहुँची। फ़ौरन दीखे श्री केशव चन्द्र अपनी पत्नी की प्रतीक्षा में खड़े हैं। जनता की भीड़ में दोनों उतरे दो डब्बों से। श्रीमान् हँसते हुए छाती से आ मिले। उधर मुझे अपने पहाड़गंज के निवास पर ले जाने के लिए आये थे प्रिय दर्शन मित्र विवेकरंजन भट्टाचार्य।

अश्विनी बाबू की कृपा के लिए आन्तरिक धन्यवाद उल्लिखित रहा।

[१३]

गढ़वाल के अन्दर से फिर गुज़र रहा हूँ। हेमन्त की हवा उतर आयी है तराई के झाड़ी-जंगलों में। कोटद्वार में प्रवेश कर रहा हूँ। वही परमाहत मन फिर खींच लाया है इधर। वही नवीनता का खिंचाव, विचित्रिता का वही बे-घर करने वाला आकर्षण। मैं आया नहीं, मुझे ले आया है कोई। मैं चल नहीं रहा हूँ कोई चला रहा है मुझे। वही देख रहा है, वही दिखा रहा है, वही बता रहा है—मेरा अस्तित्व उसी की चेतना में है। मैं हूँ चर्म-चक्षु फाड़े—देखता है वही।

कोटाम्बर पहाड़ पार कर के बढ़ रहा हूँ।

हिमालय परिक्रमा शेष हो आया। डायरी भी प्रायः खाली हो चली है। यही झोली बिलकुल खाली कर के लौटना चाहता हूँ इस यात्रा में। मगर दक्षिण गढ़वाल के ऋषिकेष न पहुँचने पर सर्वस्वान्त होने का परम सुख और कहीं भी नहीं मिलेगा। इस परिक्रमा का अन्त हो ऋषिकेष में। तेंतीस वर्षों का हिसाब-किताब चुका कर खाली झोली फेंक जाऊँगा नीलधारा में। यही मेरी आखिरी मंशा है।

'कालदंड' पर्वतमाला पर चढ़ रहा हूँ। मौजूदा नक़्शे में 'कालदंड' का कहीं भी उल्लेख नहीं है, उस की जगह बैठा दिया गया है लैंसडाउन। कोटाम्बर से लैंसडाउन पचीस मील पहाड़ी और उपत्यका वाला मार्ग है। गाड़ियाँ आती-जाती हैं।

सुदूर समतल भारत दक्षिण में है, और उत्तर में तुषार गिरिश्रेणी के कई परिचित शिखर हैं—इन्हीं दोनों दृश्यों का सन्धिस्थल है 'कालदंड' पर्वत। उधर आँखें खोलो, इधर गर्दन मोड़ो—दर्शन कर लो विराट् आनन्दस्वरूप का! महाकाल के अतन्द्र प्रहरी!

छोटा सा यह शहर टिका हुआ है पहाड़ की चोटी पर, यह सिद्ध हो जाता है कि इस असमतल पठार के बनाने में कभी काफ़ी वक़्त लगा होगा। पतली-पतली पगडण्डियाँ पहाड़ी बस्तियों की बग़ल से यहाँ-वहाँ से निकल गयी हैं। छोटी-सी एक पहाड़ी शहरों की दूकानें जैसी और जितनी बड़ी होनी चाहिए—यहाँ भी वैसी ही हैं। अभाव और ग़रीबी चारों ओर प्रकट है। इसी में कोने-अंतरियों में अनिवार्य और नित्य प्रयोजनीय पण्य-संभार ले कर मारवाड़ियों ने दूकानें खोल ली हैं।

पठार प्रशस्त है, मगर इस के बाहर समतल के नाम पर कहीं कुछ नहीं है। इस के निकट है गढ़वाल रेजीमेंट की फैली हुई गोरा छावनी। लैंसडाउन का यही सब से महत् परिचय है। कटीले तारों से बहुत सारे क्षेत्र घिरे हुए हैं, उस के अन्दर अनगिन पक्के बँगले बने हैं—उसी में है चानमारी का मैदान, अस्त्र-शस्त्रों का गोदाम। लगता है भारतीय फ़ौजों में गढ़वाल रेजीमेंट ही एक ऐसा है जो पहाड़-पर्वतों के बाहर अत्यन्त अनिवार्यता के बिना रहना नहीं चाहता। नेपाल गुरखाओं ने उत्ताप-सहन करना सीख लिया है, मगर गरम मुल्क की बात छिड़ते ही गढ़वाली घबरा उठते हैं। इस रेजीमेंट का चिरस्थायी पड़ाव तथा आय-व्यय दफ़्तर है लैंसडाउन—और इस खातिर हिमालय के आन्तरिक क्षेत्रों में इन का पहरा पड़ा होता है। याद हो आयी एक घटना—सन् १९३० की। वह क़ानून-भंग समय, और गान्धी जी के आदर्श से अनुप्राणित पठानों—खुदा-ई-खिदमतगारों का समग्र सीमान्त में आन्दोलन चल रहा था। शायद पेशावर स्टेशन के निकट पड़ाव डाल कर अँगरेज़ सेनापति ने गढ़वाली सेना को हुक्म दिया, जुलूस तोड़ दो और अहिंसक पठानों पर गोली चलाओ; सम्भवतः यह पहली बार ही गढ़वाल रेजीमेंट विमुख हो कर खड़ा हुआ था, क्योंकि निरस्त्र और अहिंसक पठानों पर वे गोली चलाने को प्रस्तुत नहीं थे।

उस दिन सम्पूर्ण भारतवर्ष के उत्पीड़ित हृदय ने दबी आवाज़ में गढ़वाली रेजीमेंट के प्रति सद्भावना व्यक्त की। मगर इस बाध्यता के लिए वह खास गढ़वाली फ़ौजी जत्था उस के बाद के सत्रह वर्षों तक चुपचाप अँगरेज़ों के दमन-चक्र में पिसता रहा, उन की कठोरता हम लोगों के ओर ही रही।

पहले बता चुका हूँ कि लैंसडाउन का प्राचीन नाम था 'कालदण्ड' पर्वत और उसी कालदण्ड के ठीक नीचे थे दो प्राचीन मन्दिर—कुमारी शाकम्भरी और कालेश्वर महादेव जिस का उल्लेख केदारखण्ड में मिलता है। किसी समय पहाड़ की तराई में जंगल ही जंगल तथा जन्तु-जानवरों का यहाँ एकक्षत्र राज्य था। उस समय खास-खास पर्वों में गढ़वाली उन दो मन्दिरों में तीर्थ को आते थे—बहुत वर्षों तक यह क्रम रहा। किसी का कहना है पाँच सौ वर्षों तक, कोई कहता है हज़ार वर्षों तक। आधुनिक काल में अँगरेज़ ठण्डी जगह ढूँढ़ने निकले। डलहौजी, मसूरी, नैनीताल, शिमला, रानीखेत—यह एक-एक कर निर्मित हुआ दो वर्गों के लिए। उन में एक है शासक अँगरेज़, दूसरा है रक्षक अँगरेज़। शासक का मतलब बड़े लाट, रक्षक का जंगी लाट। १८६५ में 'कालदण्ड' नाम बदल कर उस की जगह बड़े लार्ड ने लैंसडाउन का नामकरण कर के यहाँ गढ़वाल रेजीमेंट को सुगठित कर एक छोटा सा जनपद के रूप में बदल दिया। लैंसडाउन से पचीस मील नीचे उतरने पर कोटद्वार रेल-स्टेशन मिलता है। अब तो इस कोटद्वार से बदरीनाथ जाने के लिए मोटर का यातायात भी शुरू हो गया है।

कालेश्वर निभृत वनमय मन्दिर से विदा हो रहा हूँ। सामने ही है बैलों की मूर्ति। एक घण्टा झूल रहा है। यहाँ-वहाँ दो-तीन घर, एक आँगन—इस के बाहर

पहाड़ों की तराई में चला गया है वनमय-मार्ग। इतने में ही हैं मगन पुजारी। मन्दिर में कोई साज-सजावट नहीं है इसी से सहज में श्रद्धा होती है। केदारखण्ड में उल्लिखित ठीक यहीं पचास वर्षों पूर्व यह कालेश्वर का लिंग-विग्रह मिला था—वही यहाँ प्रस्थापित है।

विदा हो रहा हूँ शाकम्भरी मन्दिर से—लैंसडाउन बाजार के नीचे की तरफ़ है यह मन्दिर।

उमरावखान नामक एक घाटी-पहरे को पार किया। यहीं एक बार सलाम ठोंक कर सोलह आने चुकाने पड़े थे।

दुगड्डा आ पहुँचा। 'खो' नदी के ऊपर ही है जनबहुल छोटा एक शहर। इस शहर के दोनों किनारे खड्ड हैं इस लिए इस का नाम है 'दुगड्डा'। बाज़ार वाले हिस्से का नाम गान्धी चौक है। 'दुगड्डा' से एक मार्ग निकल गया है गढ़वाल के प्रधान केन्द्र 'पौड़ी' की तरफ़। 'पौड़ी' यहाँ से चालीस मील है और कोटद्वार—दक्षिण में दस मील मात्र। 'खो' नदी के किनारे-किनारे ही हमारी गाड़ी चल रही है। इस पथ का नाम पड़ा है— गान्धी मार्ग। और हम 'गान्धी भवन' नामक होटल में आ पहुँचे हैं। यहाँ की सड़क का नाम पड़ गया है—अशोक मार्ग। वस्तुतः विगत पन्द्रह वर्षों में चार व्यक्तियों के नामों पर भारत के असंख्य शहरों और हिमालय के बहुत से अंचलों के राजपथ उत्सर्गित हुए हैं—वे हैं रवीन्द्रनाथ, गान्धी जी, सुभाषचन्द्र और पण्डित नेहरू।

जंगलों की सीमा के पास से, कोटद्वार से, एक पक्की सड़क निकल गयी है—हरिद्वार को तरफ़ पैंतीस मील लम्बी सड़क है। किन्तु वर्षा के दिनों में इस में टूटन की वजह बीच-बीच में पथ अगम्य हो जाता है। यह अरण्य पथ और पहाड़ों के नीचे-नीचे से मुड़ती-जुड़ती गंगा की मूलधारा की तरफ़ चली गयी है।

[१४]

हिमालय सात फेरों में बँधा रहा बहुत समय तक। उस बन्धन को काटने में भी लग गये बहुत दिन। थके हुए दोनों पाँव अब आराम चाहते हैं वहाँ, जहाँ से कभी तैंतीस वर्ष पहले एक दिन यात्रा शुरू की थी। यानी हम हरिद्वार त्याग कर आ गये ऋषिकेश।

'कालीकमलीवाला' की विराट् इमारत के पूरब बग़ल से अपरिचित पथ चला गया है घाट की तरफ़, इसी के ऊपर यहाँ एक छवि बेचने वाले थे आत्मानन्द, कौन तो सदाव्रत से उन्हें रोटियाँ ला कर दे जाता था। वे रहने वाले थे मध्य भारत के।

सन्ध्या के बाद एक मोमबत्ती ले कर उन्हीं के पास जा बैठता था। एक बूढ़ी लछमन की बुआ आती थी चिलम ले कर—आत्मानन्द तब शुरू करते प्राणायाम और योग-साधना की बातें। एक-एक कर चर्चा उठती थी देहतत्त्व और अध्यात्म की। बुढ़िया की आँखों से आँसू की धाराएँ बहतीं, मैं भी मुग्धमना बैठा रहता। मोमबत्ती बुझती कहीं अधिक रात के बाद। बीच-बीच में कहीं घनघना उठता घण्टा, कहीं से उदारमना गम्भीर कण्ठस्वर आता—ॐ शंकर जय शम्भो।

●